‘आर्ष ज्योति’

संयोजक
सद्गुरू प्रसाद आर्य
भूतपूर्व - आई. ए. एस.
सचिव- उ. प्र. एवम् भारत सरकार

प्रकाशक
श्री प्राणनाथ ज्ञान पीठ, सरसावा
जिला-सहारनपुर उ०प्र०

प्रकाशक
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ
श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ ट्रस्ट
सरसावा, जिला-सहारनपुर (उ०प्र०)
फोन : ९१ ७०८८१२०३८१
वेबसाइट : www.spjin.org

विक्रम सम्वत्- २०७६

सर्वाधिकार प्रकाशाधीन - इस पुस्तक में प्रकाशित समस्त सामग्री सर्वाधिकारी श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ, श्री प्राणनाथ ज्ञान केन्द्र ट्रस्ट के पास सुरक्षित है। अतः किसी भी व्यक्ति या संस्था के द्वारा इस पुस्तक का नाम, फोटो, कवर डिजाइन एवं प्रकाशित लेख इत्यादि को किसी भी तरह से तोड़-मरोड़कर आंशिक या पूर्ण रूप से किसी पुस्तक, पत्रिका, समाचार पत्र या वेबसाइट में प्रकाशित करने से पूर्व प्रकाशक की अनुमति लेना अनिवार्य है, अन्यथा समस्त कानूनी हर्जे खर्चे के जिम्मेवार होंगे। किसी भी प्रकार के मुकदमे के लिए न्याय क्षेत्र सरसावा, जिला-सहारनपुर ही होगा।

प्रथम संस्करण- १००० प्रतियां

मुद्रक
ज्ञानपीठ प्रेस
सरसावा, सहारनपुर (उ०प्र०), २४७२३२

न्यौछावर-

भूमिका

अपौरूषेय वेदों का प्रकटन सृष्टि के प्रारम्भ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा के हृदय में हुआ। अक्षर ब्रह्म की ज्ञान धारा उन्हीं चार ऋषियों के अन्दर एक-एक वेद के रूप में अवतरित हुई जिसे ब्रह्मा जी ने आत्मसात् करके सर्वत्र प्रसारित किया। उस ज्ञान का आंशिक प्रवाह ऋषियों द्वारा रचित ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद एवं दर्शन आदि आर्ष ग्रन्थों में विस्तृत रूप में दृष्टिगोचर होता है।

श्री प्राणनाथ जी की तारतम वाणी के द्वारा धर्मग्रन्थों के वास्तविक रहस्यों को सरलतापूर्वक जाना जा सकता है। उसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर इस ग्रन्थ में वैदिक (आर्ष) ग्रन्थों सहित लौकिक ग्रन्थों का भी संक्षिप्त रूप प्रस्तुत किया गया है, जिन्हें कण्ठस्थ कर विद्यार्थीगण लाभ उठा सकते हैं।

इस ग्रन्थ में चारों वेदों के चुने हुए कुछ मन्त्रों एवं सूक्तियों के संग्रह में महर्षि दयानन्द जी, जगदीश्वरानन्द जी सरस्वती स्वामी विद्यानन्द विदेह एवं जयदेव शर्मा जी, आदि की टीकाओं और ग्रन्थों का सहयोग लिया गया है, जिसके लिये हम इन ग्रन्थों के प्रकाशक संस्थानों (सार्वदेशिक सभा, विजय कुमार गोविन्द राम हासानन्द नई दिल्ली और आर्ष साहित्य मण्डल लिमिटेड़ अजमेर) के आभारी है।

इस ग्रन्थ के टंकण कार्य में श्री प्राणनाथ ज्ञानपीठ के विद्यार्थियों में **सच्चिदानन्द, पवन, राजकुमार, आशोक, अविनाश, गणेश एवं नीरज** ने अथक् प्रयास किया है। सच्चिदानन्द परब्रह्म से प्रार्थना है कि इनके ऊपर हमेशा अपनी कृपा दृष्टि बनाये रखें और ये आध्यात्मिक क्षेत्र में विशेष प्रगति करें।

इस ग्रन्थ के संशोधन कार्य में **श्री एस.पी. आर्य** (भूतपूर्व, सचिव उत्तर प्रदेश एवं भारत सरकार) तथा **डा६ प्रवीण जी एम. डी.** का विशेष सहयोग है। प्रियतम परब्रह्म की इन पर कृपा दृष्टि बनी रहें, ऐसी मेरी प्रार्थना है।

मुझे आशा है कि यह ग्रन्थ विद्यार्थियों के लिये अति लाभकारी होगा ःइसी आशा के साथ-

आपका

राजन स्वामी

क्र.स.	ग्रन्थ का नाम	मन्त्र या श्लोक सं०	पृष्ठ सं०
१.	ऋग्वेद की सूक्तियां	११७०	५-७६
२.	ऋग्वेद के मन्त्र	१५३	७७- ९८
३.	यजुर्वेद की सूक्तियां	४०३	९९-१२१
४.	यजुर्वेद के मन्त्र	१०८	१२२-१४१
५.	सामवेद की सूक्तियां	२५०	१४२-१५८
६.	सामवेद के मन्त्र	२५	१५९-१६३
७.	अथर्ववेद की सूक्तियां	६११	१६४-१९७
८.	अथर्ववेद के मन्त्र	१९०	१९८-२३१
९.	उपनिषद्	२३७	२३२-२५१
१०.	न्याय	५१	२५२-२५३
११.	वैशेषिक सूत्र	१११	२५४-२५७
१२.	सांख्य सूत्र	४५१	२५८-२७१
१३.	योग	१९४	२७२-२७८
१४.	मीमांसा सूत्र	४४	२७९-२८०
१५.	वेदान्त	५५४	२८१-२९८
१६.	अष्टाध्यायी सूत्र	३१३	२९९-३१०
१७.	गीता श्लोक	१७४	३११-३२१
१८.	महाभारत श्लोक	४१२	३२२-३४७
१९.	वाल्मीकिय रामायण श्लोक	१५६	३४८-३५८
२०.	हितोपदेश एवं पंचतन्त्र श्लोक	१६३	३५९-३६९

कुल योग-५५२०

ऋग्वेद सुक्ति सुधा

१. अग्निमीडे। १/१/१ मै ज्ञानवान् तथा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूँ।

२. अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्योः। १/१/२ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर श्रेष्ठ ऋषियों द्वारा भी उपासनीय है।

३. स देवां एह वक्षति। १/१/२ वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ही इस ब्रह्माण्ड में सूर्य-चन्द्र आदि दिव्य पदार्थों को धारण करता है।

४. देवो देवेभिरा गमत्। १/१/५ सर्वप्रकाशक और आनन्दप्रद परमेश्वर दिव्यताओं के साथ हमें प्राप्त हो।

५. दाशुषे त्वमग्ने! भद्रं करिष्यसि। १/१/६ हे प्रकाशस्वरूप ! तू आत्मसमर्पण करनेवाले का निश्चय ही कल्याण करेगा।

६. अग्ने सूपायनो भव। १/१/६ हे प्रकाशस्वरूप ! तू हमे सरलता से प्राप्त हो।

७. इन्द्रा याहि चित्रभानो। १/३/४ हे ऐश्वर्यशालिन् ! अद्भुत दीप्तियुक्त! तू हमें प्राप्त हो, हमारे हृदय मन्दिर में साक्षात् दर्शन दे।

८. मा नो अति ख्य, आ गहि। १/४/३ हे परमैश्वर्यशाली ! त हमारा त्याग मत कर, हमारी उपेक्षा मत कर। अपितु हमारे पास आ, हमें प्राप्त हों।

९. स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि। १/४/६ हम सदा परमेश्वर की ही शरण में रहें।

१०. इन्द्रं सोमे सचा सुते। १/५/२ ब्रह्मानन्दरस में तृप्त होकर परमेश्वर की स्तुति करो।

११. इन्द्रमर्भे हवामहे। १/७/५ हम छोटे संघर्षों में भी परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का आह्वान करते हैं।

१२.अस्माकमस्तु केवलः। १/७/१० हे परमेश्वर ! हमारे तो केवल आप ही हो। हमें केवल उस प्रभु का ही सहारा हो।

१३. तमित् सखित्व ईमहे। १/१०/६ हम ऐश्वर्यशाली परमेश्वर से ही मित्रता के लिए याचना करते हैं।

१४. सं गा अस्मभ्यं धूनुहि। १/१०/८ हे परमेश्वर ! तू हमारे लिए ज्ञान-रश्मियों की सम्यक् प्रेरणा कर।

१५. आश्रुत्कर्ण श्रुधी हवम्। १/१०/९ भक्तों की प्रार्थना सुननेवाले ! हमारी भी प्रार्थना सुन।

१६. नव्यमायुः प्र सू तिर। १/१०/११ हृदय मन्दिर में निवास करनेवाले इन्द्र ! तू हमें नवीन आयु अथवा कर्मशक्ति प्रदान कर।

१७. त्वामभि प्रणोनुमः। १/११/२ हम तुझे बारम्बार प्रणाम करते हैं।

१८. सदा हवन्त विश्पतिम्। १/१२/२ सदा प्रजाओं के पालक परमेश्वर की उपासना करो, सदा उसी को पुकारो।

१९. असि होता मनुर्हितः। १/१३/४ परमेश्वर सब सुखों का देनेवाला, सब का आश्रय, विद्वानों से जानने योग्य और सबका हितकारी है।

२०. तवेद्धि सख्यं अस्तृतम्। १/१५/५ हे परमेश्वर ! तेरी मैत्री अटूट है, वह कभी नष्ट नहीं होती।

२१. देवान् देवयते यज।। १/१५/१२ देवत्व प्राप्ति के इच्छुक को विद्वानों का संग और उनका आदर-सत्कार करना चाहिए।

२२. इन्द्रं प्रातर्ह वा महे। १/१६/३ प्रभातवेला में हम ऐश्वर्यशाली प्रभु को पुकारते है, उसका स्मरण करते हैं।

२३. अररूषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य । १/१८/३ हिंसक मनुष्य की विनाशकारी शक्ति सर्वथा नष्ट हो जाए।

२४. रक्षाणो ब्रह्मणस्पते। १/१८/३ हे ब्रह्माण्ड के स्वामी परमेश्वर ! तू हमारी रक्षा कर।

२५. अप्रजाः सन्तवत्रिणः। १/२१/५ प्रजा को लूट-खसोटकर खानेवाले सन्तान रहित हों।

२६. विष्णोः कर्माणि पश्यत। १/२२/१९ हे मनुष्य ! सर्वव्यापक परमेश्वर के सृष्टि उत्पत्ति, पालन आदि कर्मों को देख।

२७. इन्द्रस्य युज्यः सखा। १/२२/१९ सर्वव्यापक परमेश्वर जीवात्मा का योग्यतम सखा है।

२८. अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। १/२३/१९ जल के भीतर अमृत है, ओषधि है।

२९. रसेन समगस्महि। १/२३/२३ हम परस्पर प्रेमपूर्वक मिलें।

३०. मनामहे चारु देवस्य नाम । १/२४/१ हम सर्वप्रकाशक और आनन्दप्रद परमेश्वर के सुन्दर नाम का चिन्तन, मनन और स्मरण करें।

३१. अस्मे अन्तर्निहिताः केतवः स्युः । १/२४/७ हमारे अन्तःकरण में ज्ञान-रश्मियाँ फैली हुई हों।

३२. अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि । १/२४/१० पाप-निवारक (ब्रह्म) के नियम अटूट हैं।

३३. उरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः । १/२४/११ बहुतों द्वारा प्रशंसित परमेश्वर ! हमारी आयु को मत घटा, हमारी आयु (जीवन) को बर्बाद मत होने दे।

३४. अस्मान् राजा वरुणो मुमोक्तु । १/२४/१२ वरणीय एवं पाप-निवारक परमेश्वर हम सब को बन्धनमुक्त करे।

३५. अनागसो अदितये स्याम । १/२४/१५ मोक्ष प्राप्ति के लिए हम निष्पाप बने।

३६. इमं मे वरुण श्रुधी हवम् । १/२५/१६ हे वरणीय परमात्मन् ! मेरी इस टेर, निवेदन, प्रार्थना को सुन।

३७. प्रियो नो अस्तु विश्पतिः । १/२६/७ प्रजाओं का पालक, ब्रह्माण्डनायक परमेश्वर हमारा प्रिय, प्रीतिपात्र हो।

३८. मिथः सन्तु प्रशस्तयः । १/२६/६ भक्त और भगवान हम दोनों की परस्पर प्रशंसाएं हों। अथवा हम लोग परस्पर एक-दूसरे के प्रशंसक हों।

३६. मा ज्यायसः शंसमा वृक्षि । १/२७/१३ मै अपनों से बड़ों का आदर करना कभी न छोड़ूँ।

४०. द्युमत्तमं वद । १/२८/५ हे उपदेशक ! तू ओजस्वी भाषण कर।

४१. सोम्यानां भूमिरसि । १/३१/१६ हे परमेश्वर ! आप शान्त स्वभाववाले भक्तों को अध र्म से धर्म की ओर घुमानेवाले हैं।

४२. महस्ते सतो वि चरन्त्यर्चयः । १/३६/३ सत्यनिष्ठ महात्माओं का तेज चारों और फैलता है।

४३. नो मृळ महाँ असि । १/३६/१२ परमात्मन् ! तू महान् है, सबसे बड़ा है, अतः हमें सुखी कर।

४४. ऊर्ध्वो नः वाह्यहसः । १/३६/१४ हे प्रकाशस्तम्भ ब्रह्म ! सर्वतो महान् तू हमें पाप से बचा।

४५. कृधी न ऊर्ध्वांचरथाय जीवसे । १/३६/१४ परमेश्वर ! हमें उन्नत कर ताकि हम संसार में सम्मानपूर्वक जी सकें।

४६. मिमीहि श्लोकमास्ये । १/३८/१४ तू अपने मुख में वेद मन्त्रों को भर ले

४७. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते । १/४०/१ सावधान होकर सबके हितार्थ प्रयत्न करो।

४८. न दुरुक्ताय स्पृहयेत् । १/४१/६ कटु, कठोर और कड़वा बोलनेवाले से प्रेम न करो।

४६. व्यंहो विमुचो नपात् । १/४२/१ हे अविनाशी परमेश्वर ! आप हमें पाप से, रोगादि दुःखों से मुक्त कीजिए।

५०. वोचेम शंतमं हृदे । १/४३/१ हम हृदय को अति शान्ति देनेवाले वचन बोलें।

५१. नमस्या दैव्यं जनम् । १/४४/६ हे मनुष्य ! तू दिव्य गुणयुक्त विद्वानों का सदा आदर कर।

५२. अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः । १/४५/१० हे विद्वान् ! समीप आये हुए दिव्य जनों का उत्तम भाषण के साथ आदरपूर्वक सत्कार करो।

५३. मो अहं द्विषते रधम् । १/५०/१३ मैं द्वेषी शत्रु के प्रति भी अहित, बुराई न करूँ।

५४. वि जानीहि आर्यान् ये च दस्यवः । १/५१/८ हे विद्वान् ! तू आर्य (श्रेष्ठ पुरुषों) और दस्यु (चोर-डाकुओं) को जान।

५५. तव शर्मन् त्स्याम । १/५१/१५ हे परमेश्वर ! हम सदा तेरी ही शरण में रहें।

५६. इन्द्रं ववृत्यामवसे सु वृक्तिभिः । १/५२/१ मैं अपनी रक्षा के लिए हृदय-ग्राही स्तुतियों से परमेश्वर का वर्णन करता हूँ।

५७. त्वम् अस्य पारे रजसो व्योमनः । १/५२/१२ हे परमेश्वर ! आप इस पृथिवी, अन्तरिक्ष और आकाश के परे भी विद्यमान हैं।

५८. सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् । १/५२/१३ ऐश्वर्यवान् ! सचमुच यह सत्य है कि तुझ जैसा कोई दूसरा नहीं है, तू अद्वितीय है।

५९. न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते । १/५१/१ दानी की निन्दा नहीं करनी चाहिए।

६०. मनो वसुदेयाय कृष्व । १/५४/६ तू धन देने के लिए अपने मन को तैयार कर।

६१.स इद्वने नमस्युभिर्वचस्यते । १/५५/४ परब्रह्म उपासकों के द्वारा प्रशंसित होता है।

६२. अप्रक्षितं वसु विभर्षि हस्तयोः । १/५५/८ हे विद्वान ! तू अपने हाथों में अक्षय धन की धारणा करता है।

६३. तव स्मसि । १/५७/५ प्रभो ! हम तेरे हैं।

६४. कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर । १/५८/४ हे जन्म मरण रहित अविनाशी ! दीप्तिपमय ज्वालाओं से युक्त आत्मन् ! तेरा प्राप्तव्य परमपद अत्यनत आकर्षक और हृदयग्राही है।

६५. त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते । १/५९/१ हे अखिल ब्रह्माण्ड के संचालक प्रकाशस्वरूप ! तुझमें सब भक्त आनन्द पाते है।

६६. धियो मर्जयन्त । १/६१/२ हे विद्वानो ! अपनी बुद्धि और कर्म चेष्टाओं को शुद्ध करो, निष्पाप और सदाचारी बनो।

६७. भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः । १/६४/५ चतुर्दिक् वेगपूर्वक आक्रमण करनेवाले परिव्राजक भूमि को अमृत से सींचते हैं।

६८. सिंहा इव नानदति प्रचेतसः । १/६४/८ ज्ञानी पुरुष सिंह के समान पराक्रमी होकर गर्जना करते हैं।

६९. अग्ने गुहा गुहं गाः । १/६७/३ हे विद्वान ! तू बुद्धि में स्थित होकर, हृदय में ध यान लगाकर गूढ़ परमेश्वर को प्राप्त कर।

७०. वेधा अदृप्तः । १/६९/२ बुद्धिमान् (मेधावी) अहंकारशून्य-विनम्र होता है।

७१. नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके । १/६९/५ सब मनुष्य सुखस्वरूप, आनन्दघन, परमदर्शनीय प्रभु की स्तुति करें।

७२. रूपं जरिमा मिनाति । १/७१/१० बुढ़ापा रूप को, शारीरिक सौन्दर्य को नष्ट कर देता है।

७३. अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । १/७४/१ हम यज्ञ में प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के प्रति मन्त्र बोलें, प्रभु का स्तुतिगान करें।

७४. वोचेम ब्रह्म सानसि । १/७५/२ हम सनातन वेदवाणी का उपदेश करें।

७५. को ह कस्मिन्नसि श्रितः । १/७५/३ तू कौन है और किसके आश्रित है ?

७६. सखा सखिभ्य ईड्यः । १/७५/४ हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू मित्र के लिए प्रशंसनीय मित्र है।

७७. यजा महे सौमनसाय देवान् । १/७६/२ मन को वैररहित और प्रेमयुक्त बनाये रखने के लिए तू विद्वानों का सत्संग कर।

७८. कया दाशेमाग्नये । १/७७/१ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर के लिए हम क्यो और कैसे आत्मसमर्पण करें?

७६. सहस्रं साकमर्चत । १/८०/६ हे मनुष्यो ! तुम सहस्रों की संख्या में एक साथ मिलकर सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, सर्वद्रष्टा परमात्मा की उपासानां करो।

८०. वि भजा भूरि ते वसु । १/८१/६ प्रभो ! तेरे पास विपुल धन है, अतः खूब बांट।

८१. अन्तर्हि ख्यः। १/८१/६ उस परमेश्वर को अन्दर अपनी हृदय गुहा में ही देखो, ढूँढो।

८२. याहि वशाँ अनु । १/८२/३ हे परमेश्वर ! भक्तों की ओर आ।

८३. असावि सोम इन्द्र ते । १/८४/१ आत्मन् ! आनन्दरस, परमानन्द तेरे ही लिए निचोड़ा जाता है, प्रकट होता है।

८४. एक इद्विदयते वसु । १/८४/७ एक (अद्वितीय परमेश्वर) ही सबको धन देता है।

८५. गूहता गुह्यं तमः । १/८६/१० हे वीरो ! बुद्धि में स्थित अज्ञान अन्धकार को नष्ट करो।

८६. देवानां सख्यमुपसेदिमा वयम् । १/८६/२ हम सदा विद्वानों की मित्रता में रहें, विद्वानों का संग करें, विद्वानों को अपना मित्र बनाएँ।

८७. भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः । १/८६/८ वेदवाणी का स्वामी परमेश्वर हमें विद्या से आत्मा के सुख को धारण कराये।

८८. भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः । १/८६/८ हे संगति करनेवाले विद्वान ! हम लोग आँखों से भद्र (कल्याणकार दृश्य) देखें।

८६. व्यमूम देवहितं यदायुः । १/८६/८ हम जीवनभर परोपकार ही करें।

६०. अप्रमूरा महोभिः व्रता रक्षन्ते विश्वाहा । १/६०/२ मोह से मूर्च्छित न होनेवाले ज्ञानी लोग अपने आत्मिक तेज से सदा अपने स्वीकृत व्रतों का पालन करते हैं।

६१. माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः । १/६०/६ ओषधियाँ हमारे लिए मधुर गुणों से युक्त हो।

६२. मधुमान्नो वनस्पतिः । १/६०/८ वनस्पति हमारे लिए मधुर रस, फल और छाया से युक्त हो।

६३. मधुमाँ अस्तु सूर्यः । १/६०/८ सूर्य हमारे लिए सुखदायी और प्रकाश देनेवाला हो।

६४. त्वं सोमासि सत्पतिः । १/६१/५ हे ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! तू सारे ब्रह्माण्ड का उत्तम पालक है।

६५. त्वं भद्रो असि क्रतुः । १/६१/५ हे ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो ! आप अत्यन्त सुख और बुद्धि देनेवाले हैं अथवा आप सबका हित करने वाले हैं।

६६. दक्षं दधासि जीवसे । १/६१/७ हे ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर ! तू दीर्घ जीवन के लिए बल और सामर्थ्य प्रदान करता है।

६७. सुमृळीको न आ विश । १/६१/११ हे जानने योग्य गुण-कर्म स्वभावयुक्त परमेश्वर ! तू सुखप्रद होकर हमें प्राप्त हो।

६८. सुमित्रः सोम नो भव । १/६१/१२ हे ऐश्वर्यशाली परमात्मान् ! तू हमारा उत्तम मित्र बन।

६६. सोम रारन्धि नो हृदि । १/६१/१३ हे ऐश्वर्यवान् परमात्मन् ! तू हमारे हृदय में रमण कर, हमारे हृदय में प्रकाशित हो जा।

१००. उरुष्याणो अभिशस्तेः सोम । १/६१/१५ हे परमेश्वर ! तू निन्दित वचन बोलनेवाले दुष्ट मनुष्य से हामरी रक्षा कर।

१०१. सोम नि पाह्यं हसः । १/६१/१५ हे परमेश्वर ! तू पाप और अविद्या आदि से हमारी रक्षा कर।

१०२. त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ । १/६१/२२ हे शान्तगुणयुक्त परमेश्वर ! आप ज्ञानप्रकाश से हमारे अज्ञान-अन्धकार को नष्ट करो।

१०३. शकेम त्वा समिधम् । १/६४/३ हे प्रकाशस्वरूप ! हम तुझे अपनी आत्मा में प्रदीप्त करने में समर्थ हों।

१०४. मूळा सु नः । १/६४/४२ हे परमेश्वर ! हमें सुखी कर।

१०५. देवो देवानामसि । १/६४/१३ हे प्रकाशस्वरूप ! तू ज्ञानी और तेजस्वी पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ और तेजस्वी है।

१०६. मित्रो अद्‌भुतः । १/६४/१३ हे ज्योतिस्वरूप ! तुम अद्‌भुत, स्नेहवान् और मृत्यु से बचाने वाले मित्र हो।

१०७. वसुर्वसूनामसि । १/६४/१३ हे प्रकाशस्वरूप ! तू पृथिवी आदि लोको में सर्वश्रेष्ठ है। तू धनों का धन है।

१०८. दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने । १/६४/१४ हे प्रकाशस्वरूप ! तू आत्मसमर्पित को, दानशील को रत्न, सुख और ऐश्वर्य प्रदान करता है।

१०९. धन्वन्त्स्रोतः कृणुते । १/६५/१० वीर पुरुष मरुभूमियों में जल प्रवाह बहा देता है।

११०. देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् । १/६६/१ विद्वान लोग परमैश्वर्यप्रद परमात्मा को अपने आत्मा में धारण करते हैं।

१११. द्रविणोदा रासते दीर्घमायुः । १/६६/८ ऐश्वर्यप्रदाता परमेश्वर हमें दीर्घायु प्रदान करे।

११२. अप नः शोशुचदघमग्ने । १/६७/१ प्रकाशस्वरूप ! हमारे पाप को भस्म कर दो।

११३. स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् । १/६८/२ वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर हमें दिन और रात मं सर्वदा हिंसा और हिंसकों से बचाए।

११४. अरातीयतो नि दहाति वेदः । १/६६/१ सर्वज्ञ परमेश्वर शत्रु के समान आचरण करनेवाले मनुष्य के धन को भस्म कर देता है।

११५. दुरितात्यग्निः । १/६६/१ प्रकाशस्वरूप प्रभु हमें पाप से पार करे।

११६. नो भवत्विन्द्र ऊती । १/१००/१ ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारा रक्षक हो।

११७. स विश्वस्य करुणस्येश एकः । १/१००/७ वह परमेश्वर अकेला ही सब प्रकार के अनुग्रह और निग्रह आदि कर्म में समर्थ है।

११८. सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन् । १/१००/८ वह ऐश्वर्यशाली परमेश्वर घोर अन्धाकार में भी सूर्य के समान प्रकाश और मार्ग प्रदान करता है।

११९. स पारिषत् क्रतुभिर्मन्दसानः । १/१००/१४ पुरुषार्थों से हर्षित होनेवाला वह ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमें दुःखों के पार पहुँचाए।

१२०. मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे । १/१०१/१ हम शक्तियों और प्राण के स्वामी परमेश्वर को मित्रता के लिए बुलाते है।

१२१. अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि । १/१०२/४ हे परमेश्वर ! तू हमारे लिए धन को सुगमता से प्राप्त होनेवाला बना।

१२२. अशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि । १/१०२/८ हे ऐश्वर्यशालिन् ! तू स्वभाव से और अनादिकाल से शत्रुरहित है, तेरा कोई नाश करनेवाला नहीं है, तू अविनाशी है।

१२३. अपरिह वृताः सनुयाम वाजम् । १/१०२/११ हम कुटिलता से रहित होकर अन्न और बल प्राप्त करें।

१२४. आर्य सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र । १/१०३/३ हे परमेश्वर ! तू आर्यों, श्रेष्ठ पुरुषों के बल और तेज अथवा ऐश्वर्य को बढ़ा।

१२५. मा नो मघेव निष्षपी परा दाः । १/१०४/५ हे परमेश्वर ! तू हमें अपने से दूर मत फेंक, हमारा त्याग मत कर, हमारा विनाश मत कर।

१२६. अनागास्त्व आ भज जीवशंसे । १/१०४/६ हे परमेश्वर ! तू हमें सब जीवों में प्रशंसनीय और निष्पाप जीवन से संयुक्त कर।

१२७. मन्ये श्रत ते । १/१०४/७ हे ऐश्वर्यशाली ! मै तेरे सत्य को मानता हूँ।

१२८. मा नो अकृते पुरुहूत योनौ । १/१०४/७ हे अनेकों द्वारा पुकारे जानेवाले परमेश्वर! हमें धन शून्य घर में स्थापित मत कर, हमें धन-धान्यपूर्ण घर में बसा।

१२९. अर्वाङेहि । १/१०४/९ हे परमेश्वर्यशाली परमेश्वर ! सामने आ, प्रत्यक्ष दर्शन दे, हृदय मन्दिर में छलक।

१३०. मा व्यन्त्याध्यो वृको न । १/१०५/७ मुझ जीव को मानसिक चिन्ताएँ और देहादि के रोग उसी प्रकार खा रहे हैं, जैसे भेड़िया जानवरों को खाता है।

१३१. स जामित्वाय रेभति । १/१०५/९ वह (जीव) प्रेममय बन्धुभाव के लिए प्रार्थना करता है।

१३२. नव्यो जायतामृतम् । १/१०५/१५ नयी व्यवस्था (नूतन सत्य, वेदज्ञान) प्रादुर्भत हो।

१३३. मा च्छेद्म रश्मीन् । १/१०९/३ हम लोग ज्ञानरश्मियों को न काटें, ज्ञान प्रवाह को बन्द न होने दें। हमारी सन्तानरूपी तन्तु का विच्छेद न हो।

१३४. प्र पृथिव्या रिरिचाये दिवश्च । १/१०९/६ पुथिवी और आकाश से भी अधिक महान् बनो।

१३५. एकं सन्तमकृण ता चतुर्वयम् । १/११०/३ हे मनुष्यों ! एक जीवन को चौगुना बनाओ अर्थात् जीवन की सौ वर्ष की आयु को चार सौ (४००) वर्ष तक बढ़ाने का प्रयत्न करो। अथवा एक जीवन यज्ञ को चार आश्रमों मे बाँट दो। अथवा एक ही जीवन को धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष रूपी चार पुरुषार्थों से युक्त करो।

१३६. मर्तासः सनतो अमृतत्वमानशुः । १/११०/४ मरणधर्मा होते हुए भी मनुष्य मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

१३७. इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः । १/११०/९ हे परमेश्वर ! आप हमें अद्भुत, विलक्षण धन प्रदान कीजिए।

१३८. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात् । १/११३/१ विद्वान्, (योगी) ज्योतियों की परम ज्योति सर्वश्रेष्ठ प्रकाशस्वरूप परब्रह्म को प्राप्त करता है।

१३९. चित्रः प्रकेतो अजनिष्ट विभ्वा । १/११३/१ अद्भुत गुण कर्म-स्वभाववाला ज्ञानी पुरुष परमेश्वर के सत्संग से, उपासना से सुख, ऐश्वर्य और आनन्द से युक्त होता है।

१४०. उदीर्ध्वम् । १/११३/१६ हे मनुष्यों ! उठो, आलस्य त्यागो। उन्नति के मार्ग पर चलने के लिए पुरुषार्थ करो।

१४१. सदमितॎ त्वा हवामहे । १/११४/८ हे दुष्टों को रुलानेवाले परमेश्वर ! हम सदा आपका आवाहन करते हैं, आपको बुलाते है।

१४२. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च । १/११५/१ सूर्य के समान तेजस्वी परमात्मा चराचर, चेतन और जड़ जगत् का स्वामी है।

१४३. सुवीरासो विदथमा वदेम । १/११७/२५ हम प्राणशक्ति से सम्पन्न होकर सर्वत्र ज्ञान-विज्ञान का उपदेश करें।

१४४. कथा विधात्यप्रचेताः । १/१२०/१ अज्ञानी कैसे साधना कर सकता है ?

१४५. पातं नो वृकादघायोः । १/१२०/७ हे अध्यापकों और उपदेशकों ! आप हम पापी, भेड़िये के समान क्रोधी और छल-कपट का व्यवहार करननेवाले दुष्ट मनुष्यों से बचाओ।

१४६. सुक्षेत्रा सिन्धुरद्भिः । १/१२२/६ जैसे बहने वाला जल प्रवाह अपने जलों से उत्तम खेतों को सींच देता है, वैसे ही अध्यापक और उपदेशक हमारे हृदय-क्षेत्रों को अपने उपदेशामृत से सींचे।

१४७. स व्राधतो नहुषो दंसुजूतः । १/१२२/१० जितेन्द्रिय पुरुष बड़े-बड़े महापुरुषों से भी बड़ा हो जाता है।

१४८. अध ग्मन्ता नहुषो हवं सूरेः । १/१२२/११ हे मनुष्यो ! आप लोग सर्वप्रेरक, सबको एक सूत्र में बांधनेवाले परमपुरुष के उत्तम वचन को सुनो और सुनकर उस मार्ग पर चलो।

१४९. पश्चा स दध्यो यो अघस्य धाता । १/१२३/५ जो पाप का पोषण करनेवाला है, उसे परे हटा, पीछे धकेल।

१५०. उषो नो अद्य सुहवा व्युच्छ । १/१२३/१६ हे उषा के समान प्रकाशमान नारि ! तू उत्तम ज्ञानोपदेश से युक्त होकर सदा ही हमारे अज्ञान-अन्धकार को नष्ट कर।

१५१. अबुध्यमानाः पणयः ससन्तु । १/१२४/१० अज्ञानी, दान न देनेवाले कंजूस बनिये नष्ट हो जाएँ।

१५२. प्राता रत्नं प्रातरित्वा दधाति । १/१२५/१ दानशील व्यक्ति प्रातः उठते ही उत्तम वस्तुओं का दान करता है।

१५३. वीरं वर्धय सूनृताभिः । १/१२५/३ उत्तम वचनों से वीरों को उत्साहित कर।

१५४. दक्षिणावन्तो अमृतं भजन्ते । १/१२५/६ दक्षिणा देने वाले मोक्षानन्द का भोग करते हैं।

१५५. मा पृणन्तो दुरितमेन आरन् । १/१२५/७ दानी को पाप और दुःख नहीं घेरते।

१५६. नक्तं यः सुदर्शतरो दिवातरात् । १/१२७/५ नेता की पहचान विपत्ति में होती है।

१५७. ते परि चरन्त्यजर श्रुष्टीवानः । १/१२७/६ हे अविनाशी ! ज्ञानीजन तेरी ही उपासना करते हैं।

१५८. अग्निं होतारमीळते । १/१२८/८ भक्त प्रकाशस्वरूप, दानशील परमेश्वर की स्तुति करते हैं।

१५९. अपाका सन्तमिषिर प्रणयसि । १/१२९/१ हे सर्वप्रेरक ! तू अपरिपक्व उपासक, भक्त को आगे बढ़ाता है।

१६०.याहि पथाँ अनेहसा । १/१२९/९ हे मनुष्य ! तू पापरहित धर्ममार्ग पर चल।

१६१. पाहि न इन्द्र सुष्टुत स्त्रिधः । १/१२९/११ हे स्तुति के योग्य परमेश्वर ! तू हमें दुःखजनक पाप से बचा।

१६२. दसमानो भगमीट्टे तक्ववीये । १/१३४/५ हे शक्तिशाली ! निर्बल मनुष्य कष्ट और आपत्तियों के विनाश के लिए भक्ति करने योग्य आपकी स्तुति करता है।

१६३. असुर्यात् पासि धर्मणा । १/१३४/५ हे शक्तिशाली ! तू अपनी धारण-सामर्थ्य से असुरों से प्रजा की रक्षा करता है।

१६४. अति वायो ससतो याहि । १/१३५/७हे कर्मशील मानव ! तू सोनेवाले आलसी पुरुषों से आगे बढ़, सोनेवालों को लाँघ जा।

१६५. अर्यमाभि रक्षत्युजूयन्तमनु व्रतम् । १/१३६/५ न्यायकारी परमेश्वर सरल और सत्य के मार्ग से चलनेवाले तथा उत्तम व्रतों का पालन करनेवाले मनुष्य की सब प्रकार से रक्षा करता है।

१६६. उरुशंस सरी भव । १/१३८/३ हे बहुतों द्वारा स्तुत्य ! तू हमारी ओर आ, हमें प्राप्त हो।

१६७. पुरो अग्नि धिया दधे । १/१३९/१ मैं ध्यान-धारणाओं द्वारा प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को आदर्शरूप में सर्वदा अपने सम्मुख रखूँ।

१६८. यजति वेन उक्षभिः । १/१३९/१० बुद्धिमान् महात्माओं का सत्संग करता है।

१६९. इन्द्रा गहि श्रुधी हवम् । १/१४२/१३ ऐश्वर्यशाली प्रभो ! हमारी टेर सुन और हमारे पास आ, हमें दर्शन दे।

१७०. तं पृच्छता स जगामा स वेद । १/१४५/१ हे मनुष्यों ! वह परमेश्वर सर्वव्यापक और सर्वज्ञ है, तुम सब उसी से पूछो।

१७१. अस्य क्रत्वा सचते अप्रदृपितः । १/१४५/२ दम्भहीन, विनीत पुरुष परमात्मा के ज्ञान से युक्त हो जाता है।

१७२. धीरासः पदं कवयो नयन्ति । १/१४६/४ क्रान्तदर्शी, ध्यान और धारणाशील योगी परमप्राप्तव्य पद मोक्ष को स्वयं प्राप्त होते हैं, और दूसरों को भी मोक्ष में ले जाते है।

१७३. ते तन्वं वन्दे अग्ने । १/१४७/२ हे प्रकाशस्वरूप ! मैं तेरे स्वरूप की वन्दना करता हूँ।

१७४. मन्त्रो गुरुः पुनरस्तु । १/१४७/४ मंत्र, विचार, तर्क ही हमारा गुरु हो।

१७५. देवनिंदो ह प्रथमा अजूर्यन् । १/१५२/२ विद्वानों की निन्दा करनेवाले सब बातें में श्रेष्ठ होकर भी नष्ट हो जाते है।

१७६. एको दाधार भुवनानि विश्वा । १/१५४/४ एक अद्वितीय परमात्मा सारे लोक और लोकान्तरों को धारण कर रहा है।

१७७. विष्णोः पदे परमे मध्व उत्सः । १/१५४/५ सर्वव्यापक परमेश्वर के सर्वोत्कृष्ट, प्राप्तव्य परम वेद्य स्वरूप में ही मधुर रस, आनन्द रस का स्रोत है।

१७८. सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा । १/१५७/४ हे स्त्री- पुरुषों ! तुम दोनों पारस्परिक द्वेषभावों को दूर करो और एक दूसरे के सहयोगी बनकर रहो।

१७९. ब्रह्मा भवति सारथिः । १/१५८/६ ज्ञानी पुरुष सबको चलाने वाला सारथि होता है।

१८०. पुनाति धीरो भुवनानि मायया । १/१६०/३ योगी अपनी शक्ति और बुद्धि से सब लोकों (लोक में निवास करने वाले मनुष्यों) को प्रवित्र बना देता है।

१८१. जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः । १/१६४/३० मरे हुए मनुष्य का जीव अपनी धारण शक्तियों के साथ विचरण करता है।

१८२. अपश्यं गोपामनिपद्यमानम् । १/१६४/३१ मैंने इन्द्रियों के रक्षक अविनाशी आत्मा का दर्शन किया है।

१८३. यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति । १/१६४/३९ जो मनुष्य वेद के द्वारा प्रतिपाद्य उस परमात्मा को नहीं जानता, उसे वेद पढ़ने से भी क्या लाभ होगा?

१८४. वयं भगवन्तः स्याम । १/१६४/४० हम सब भाग्यवान और ऐश्वर्यशाली हों।

१८५. विश्वमेको अभिचष्टे शचीभिः । १/१६४/४४ एक अद्वितीय परमेश्वर अपनी शक्ति द्वारा सबको देख रहा है।

१८६. एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति । १/१६४/४६ एक ही सत्यस्वरूप परमात्मा को विद्वान् लोग अनेक नामों से पुकारते हैं।

१८७. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । १/१६४/५० योगी लोग उपासना योग से परमेश्वर की उपासना करते है।

१८८. न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः । १/१६५/९ परमेश्वर! तेरे जैसा ज्ञानी, दानशील और तेजस्वी और कोई नहीं है।

१८९. वयमद्येन्द्रस्य प्रेष्ठाः । १/१६७/१० आज हम परमैश्वर्यशाली परमेश्वर के अति प्रिय बन गये हैं।

१९०. हस्तेषु खादिश्च कृतिश्च सं दधे । १/१६८/३ मैं अपने हाथों में अधिकार और कर्तव्य दोनों को धारण करता हूँ।

१९१. नि हेळो धत्त । १/१७१/१ हे मनुष्यों ! तुम क्रोध, अनादर और चंचलता के भावों को वश में करो।

१९२. वि मुचध्वमश्वान् । १/१७१/१ हे मनुष्यों ! अपनी इन्द्रियों को ज्ञान प्राप्त करने के लिए विविध दिशाओं में दौड़ाओं।

१९३. त्वं त्राता त्वमु नो वृधे भूः । १/१७८/५ हे परमेश्वर ! तेरी सहायता से हम महाभिमानी शत्रुओं को भी पराजित कर दें।

१९४. पुलुकामो हि मर्त्यः । १/१७९/५ मनुष्य कामनाओं का पुतला है।

१९५. युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनः । १/१८९/१ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हमसे कुटिलतायुक्त पाप को दूर कर।

१९६. भूयिष्ठां ते नमउक्तिं विधेम । १/१८९/१ हे परमेश्वर ! हम तुझे बारम्बार नमस्कार करते हैं।

१९७. मा ते भयं जरितारं यविष्ठ । १/१८९/४ हे अखण्डैकरस परमेश्वर ! तेरे भक्त को कोई भय न हो।

१९८. बृहस्पते चयस इत् पियारुम् । १/१९०/५ महान् ! तू हिंसक को अवश्य मारता है।

१९९. प्रतिबुद्धा अभूतन । १/१९१/५ हे मनुष्य ! तुम सदा जागरूक, सावधान रहो।

२००. स्याम ते स्तोतारो अग्ने । २/२/१२ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! हम तेरे ही स्तोता भक्त हों।

२०१. इन्द्रं नरो बर्हिषदं यजध्वम् । २/३/३ हे मनुष्यों ! विश्व में व्यापक, हृदय-मन्दिर में विराजनेवाले परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की उपसना करो।

२०२.अन्तर्ह्यग्न इयसे । २/६/७ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू मनुष्यों के हृदय में विचरता है।

२०३. त्वं नो असि । २/७/५ हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू हमारा है।

२०४. धीमहि प्रशस्तिम् । २/११/१२ हम प्रशंसनीय गुणों को अपने जीवन में धारण करें।

२०५. स्याम ते त इन्द्र । २/११/१३ हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! हम तेरे केवल तेरे ही हो जाएँ।

२०६. द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते । २/१२/१३ हे मनुष्यों ! द्युलोक और पृथिवीलोक भी उस परमेश्वर के समक्ष झुक जाते हैं।

२०७. स किलासि सत्यः । २/१२/१५ वह तू निश्चय से सत्य है। तेरी सत्ता में कोई सन्देह नहीं है।

२०८. कामी हि वीरः । २/१४/१ वैदिक कामनाओं से युक्त मनुष्य ही वास्तव में वीर है।

२०९. इन्द्रमुत्सं न वसुनः सिचामहे । २/१६/७ हम परमात्मा को ऐश्वर्य और आनन्द का अक्षय कूप जानकर उससे आत्मा को सींचते है।

२१०. पुरा संबाधादभ्या ववृत्स्व नः । २/१६/८ हे प्रभो ! आपत्ति, कष्ट और संकट आने से पूर्व ही तू हमारे पास पहुँच।

२११. प्राता रथो नवो योजि । २/१८/१ प्रभात वेला में दिव्य जीवन रथ को प्रभु उपासना में जोड़ा जाए।

२१२. न म इन्द्रेण सख्यं वि योषत् । २/१८/८ ऐश्वर्यशाली राजा, ज्ञानी गुरु और परमेश्वर से मेरी मित्रता कभी न टूटे।

२१३. विश्वेषामिज्जनिता ब्रह्मणामसि । २/२३/२ परमेश्वर ! तू समस्त लोकों, ऐश्वर्यों और ज्ञानों का उत्पादक है।

२१४. यस्तुभ्यं दाशान्नं तमंहो अश्नवत् । २/२३/४ हे परमेश्वर! जो मनुष्य तुझे आत्मसमर्पण कर देता है, उसे कोई कष्ट या पाप नहीं व्यापता।

२१५. त्वं नो गोपाः पथिकृद् विचक्षणः । २/२३/६ हे परमेश्वर ! तू हमारा रक्षक, मार्गदर्शक और सतत् द्रष्टा है।

२१६. मा नो दुःशंसो अभिदिप्सुरीशत । २/२३/१० दुष्ट और वंचक अथवा हमें दबाने की इच्छा करनेवाला हम पर शासन न करें।

२१७. अस्मासु द्रविणं धेहि चित्रम् । २/२३/१५ हे परमेश्वर ! हमें अलौकिक, अद्भुत ऐश्वर्य और ब्रह्मतेज प्रदान कर।

२१८. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये । २/२६/२ हे वीर ! तू संग्राम में मन को कल्याणकारी विचारों, शिवसंकल्पों से युक्त कर।

२१९. त्वं विश्वेषां वरुणासि राजा । २/२७/१० हे वरणीय परमात्मन् ! तू सबका शासक है।

२२०. दामेव वत्साद्वि मुमुग्ध्यंहः । २/२८/६ परमेश्वर ! जैसे बछड़े को रस्सी से खोल दिया जाता है, उसी प्रकार तू मुझे पाप के बन्धन से छुड़ा दे।

२२१. मा ज्योतिषः प्रवसथानि गन्म । २/२८/७ हे वरणीय परमात्मान् ! हम प्रकाश के मार्गों, स्थानों से दूर न जाएँ।

२२२. माहं राजन्नन्यकृतेन भोजम् । २/२८/६ हे परमेश्वर ! मैं दूसरे के कर्मफलों का भोग न करूँ। मैं दूसरे की कमाई से भोग न करूँ।

२२३. आरे पाशा आरे अघानि देवाः । २/२६/५ हे विद्वानों ! बन्धन मुझसे दूर रहें और पाप भी मुझसे दूर रहें।

२२४. धीतिमश्याः । २/३१/७ हे मनुष्यों ! धैर्य धारण करो।

२२५. मा नो वि यौः सख्या । २/३२/२ हे परमेश्वर ! हमें अपनी मित्रता से दूर मत कर।

२२६. मनसा तत्त्वेमहे । २/३२/२ परमेश्वर ! हम हृदय से तुझे चाहते हैं।

२२७. आ विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् । २/३३/६ मैं दुःखों को दूर करनेवाले परमात्मा की सुखमय शरण का सेवन करूँ।

२२८. न वा ओजीयो रुद्र त्वदस्ति । २/३३/१० हे परमेश्वर ! तुझसे अधिक पराक्रमी तथा तेजस्वी और कोई नहीं है।

२२६. अनु व्रतं सवितुर्दैव्यस्य । २/२८/६ हे शिष्य ! तू तेजस्वी सूर्य - ज्ञानी आचार्य के व्रत का अनुगमन कर।

२३०. धियं पूषा जिन्वतु । २/४०/६ पोषण कर्ता परमेश्वर हमारी बुद्धियों को बढ़ाएं।

२३१. अग्ने तन्वं जुषस्व । ३/१/१ हे विद्वन् ! अपने शरीर की प्रेम से सेवा कर।

२३२. अग्ने ता विश्वा परिभूरसित्मना । ३/३/१० हे परमेश्वर ! तू अपनी महान् सामर्थ्य से सब लोकों को व्याप रहा है।

२३३. उषसश्चेकितानोऽबोधि । ३/५/१ उषाकाल में उठनेवाला ही ज्ञानवान् होता है।

२३४. उर्ध्वस्तिष्ठ । ३/८/१ हे तेजस्वी विद्वन् ! तू गुणों में उन्नत और ऊँचा हो। तू महान बन।

२३५. सखायस्त्वा ववृमहे । ३/६/१ हम परस्पर सखा बनकर परमेश्वर का वरण करते है।

२३६. शर्मणि स्यामग्नेरहम् । ३/१५/१ मैं ज्ञानवान् परमेश्वर की शरण में रहनेवाला होऊँ।

२३७. वसो नेषि च पर्षि चात्यंहः । ३/१५/३ हे सबको बसानेवाले प्रभो ! तू हमें दुःखों से पार ले जा, हमारे मनोरथों को पूर्ण कर तथा हमसे पाप और बुरे आचरण को दूर कर।

२३८. अग्ने सा ते सुमतिर्भूत्वस्मे । ३/१५/७ हे प्रकाशस्वरूप ! मुझे सदा आपकी सुबुद्धि प्राप्त हो।

२३६. अप द्वेषांस्या कृधि । ३/१६/५ परमेश्वर ! हमारी द्वेष भावनाओं को दूर कर दो।

२४०. भूयाम ते सुष्टुतयश्च वस्वः । ३/१६/३ हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! तेरी स्तुति करनेवाले हम धनों के स्वामी होवें।

२४१. अग्ने वि पश्य । ३/२३/२ ज्ञानिन् ! तू सब ओर देख।

२४२. अग्निं स्तुहि । ३/२३/३ हे साधक ! तू प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की स्तुति कर, प्रभु के गुणों का गान कर।

२४३. अग्ने दा दाशुषे रयिम् । ३/२४/५ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! तू आत्मसमर्पक के लिए धन प्रदान कर।

२४४. धृतं में चक्षुरमृतं म आसन् । ३/२६/७ मेरी आँखों में स्नेह और मेरे मुख में माधुर्य हो।

२४५. विप्रो यज्ञस्य साधनः । ३/२७/८ मेधावी पुरुष ही यज्ञ का साधन-सम्पदान करनेवाला होता है।

२४६. सीद होतः स्व उ लोके । ३/२६/८ हे सुख और ज्ञानदातः ! तू अपने आत्मदर्शन में विराज, आत्मदर्शन में प्रतिष्ठा प्राप्त कर।

२४७. न ते दूरे परमा चिद् रजांसि । ३/३०/२ हे सर्वव्यापक प्रभो ! दूर के लोक भी तेरे लिए दूर नहीं है।

२४८. इन्द्र आ पप्रौ पृथिवीमुत द्याम् । ३/३०/११ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर पृथिवी और द्युलोक को अपने तेज से भर देता है।

२४६. सखा सखी रमुंचन्निरवद्यात् । ३/३१/८ मित्र अपने मित्र को निन्दित पाप ओर दुराचार से बचाये।

२५०. यजाम इन्नमसा वृद्धमिन्द्रम् । ३/३२/७ हम सबसे महान् परमेश्वर की सदा नमस्कारों से उपासना करें।

२५१. अस्मे शतं शरदो जीवसे धाः । ३/३६/१० हे ऐश्वर्यशाली ! जीने के लिए हमें सौ वर्ष प्रदान कर।

२५२. महाँ असि महिष । ३/४६/२ हे बलशाली ! तू महान् है।

२५३. एको विश्वस्य भुवनस्य राजा । ३/४६/२ वह परमेश्वर अकेला ही विश्व ब्रह्माण्ड का शासक है।

२५४. पिबा सोममनुष्वधं मदाय । ३/४७/१ प्रिय आत्मन् ! तू आनन्द प्राप्ति के लिए सोम -भक्तिरस का, ब्रह्मचर्यामृत का यथेच्छ पान कर।

२५५. यथावशं तन्वं चक्र एषः । ३/४८/४ यह ऐश्वर्यशाली योगी अपनी इच्छानुसार शरीर के अनेक रूप धारण करता है।

२५६. तिष्ठा सु कं मघवन् मा परा गाः । ३/५३/२ हे ऐश्वर्यशाली ! आप मेरे हृदय मन्दिर में अच्छी प्रकार बैठिये और मुझे सुख प्रदान कीजिए तथा मुझसे दूर मत जाइए।

२५७. कल्याणीर्जाया सुरणं गृह्हेते । ३/५३/६ हे ऐश्वर्यशालिन् ! तेरे घर में स्त्री कल्याणकारिणी, सुखप्रदा, सौभाग्यवती और सुखपूर्वक रमण करनेवाली हो।

२५८. देवा भवथ । ३/५४/१७ तुम सब देव बनो।

२५६. भगो में अग्ने सख्ये न मृध्याः । ३/५४/२१ हे प्रकाशस्वरूप ! तेरी मित्रता में रहनेवाले मुझ भक्त का ऐश्वर्य नष्ट न हो।

२६०. समिद्धे अग्नावृतमिद् वदेम । ३/५५/३ ज्ञानार्थ अग्नि के प्रदीप्त हो जाने पर हम सत्य ही बोलें।

२६१. ऋतस्य सद्म वि चरामि विद्वान् । ३/५५/१४ मैं सत्य के संसार में विचरता हूँ।

२६२. महद् देवानामसुरत्वमेकम् । ३/५५/१५ वह परमात्मा सूर्यादि लोकों का एक, अद्वितीय संचालक बल है।

२६३. व्रता देवानां प्रथमा ध्रुवाणि । ३/५६/१ देवों के नियम श्रेष्ठ और शाश्वत हैं।

२६४. दस्राविमं श्रृणुतं श्लोकमद्रेः । ३/५८/३ शत्रुओं तथा अज्ञान को नष्ट करनेवाले हे स्त्री-पुरुषों ! सर्वपूज्य परमात्मा की वेदवाणी का श्रवण करो।

२६५. वयं मित्रस्य सुमतौ स्याम । ३/५६/३ हम मृत्यु से बचानेवाले, सर्वस्नेही परमेश्वर, गुरु, आचार्य अथवा मित्र की उत्तम बुद्धि, शुभ सम्मति-नेक सलाह में रहें।

२६६. मित्राय पंच येमिरे जनाः । ३/५६/८ पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ आत्म-कल्याण के लिए उद्योग करें।

२६७. अंगिरसो भवेमाऽद्रिं रुजेम । ४/२/१५ हम अंगारों के समान तेजस्वी बनें और पर्वतों को भी विदीर्ण कर डालें।

२६८. अकर्म ते स्वपसो अभूम । ४/२/१६ हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हम धर्म सम्बन्ध ाी उत्तम कर्म करें और तेरे मित्र होकर रहें।

२६६. कृणुहि वस्यसो नः । ४/२/२० हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! हमें आबाद कर, हमें बसनेवालों में सर्वश्रेष्ठ बना।

२७०. मा सख्युर्दक्षं रिपोर्भुजेम । ४/३/१३ हम लोग मित्र और शत्रु की शक्ति के आश्रित न रहें।

२७१. जहि रक्षो महि । ४/३/१४ विद्वन् ! तू बड़े भारी विघ्नकारी राक्षस को भी मार डाल।

२७२. असन्दितो वि सृज विष्वगुल्काः । ४/४/२ हे राजन् ! तू स्वयं अखण्डित और बन्धनरहित होता हुआ आकाश से चारों और गिरनेवाली उल्काओं के समान आग्नेय अस्त्रों को छोड़।

२७३. प्रति स्पशो वि सृज तूर्णितमः । ४/४/३ हे राजन् ! अत्यन्त शीघ्रता से काम करनेवाला तू अपने गुप्तचरों को चारों और नियुक्त कर।

२७४. भवा पायुर्विशो अस्या अदब्धः । ४/४/३ हे राजन् ! किसी से न दबनेवाला तू इन प्रजाओं का रक्षक बन।

२७५. अग्ने माकिष्टे व्यथिरा दधर्षीत् । ४/४/३हे राजन् ! प्रजा पीड़क भेड़िये के तुल्य पुरुष तुझे कभी भी पराजित न कर सकें। अथवा कोई भी दुःख देनेवाला शत्रु तेरी प्रजा को पीड़ित न करे।

२७६. उदग्ने तिष्ठ प्रत्या तनुष्व । ४/४/४ हे तेजस्विन् ! तू उठ खड़ा हो, शत्रु विजय के लिए उद्यत हो और सब और छा जा।

२७७. न्यमित्राँ ओषतात् तिग्महेते । ४/४/४ हे तीक्ष्ण शस्त्रधारक ! तू शत्रुओं को जला डाल, उन्हें अत्यन्त सन्तप्त कर।

२७८. ऊर्ध्वो भव । ४/४/५ हे तेजस्विन् ! तू सबसे ऊपर विराजमान हो।

२७६. आविष्कृणुष्व दैवयान्यग्ने । ४/४/५ हे तेजस्विन् ! तू अपने दिव्य तेजों, दिव्य गुणों को प्रकट कर।

२८०. जामिमजामि प्र मृणीहि शत्रून् । ४/४/५ हे तेजस्विन् ! शत्रुओं को, चाहे वे बन्धु हों, या अबन्धु, पीस डाल।

२८१. दहाशसो रक्षसः पाह्यस्मान् । ४/४/१५ हे राजन् ! तू नृशंस-प्रजा पीड़क लोगों का जला दे और राक्षसों, कार्यों में विघ्न डालनेवाले लोगों से हमारी रक्षा कर।

२८२. पाह्यस्मान् द्रुहो निदो मित्रमहो अवद्यात् । ४/४/१५ हे मित्र के समान पूजनीय राजन् ! तू देशद्रोही, प्रजा द्रोही, निन्दक और दुष्ट आचारणशाली मनुष्य से हमारी रक्षा कर।

२८३. मा निन्दत । ४/५/२ निन्दा मत करो।

२८४. ऋतं वोचे नमसा पृच्छ्यमानः । ४/५/११ पूछे जाने पर मैं नम्रतापूर्वक सत्य बोलता हूँ।

२८५. किं नो अस्य द्रविणं कद्ध रत्नम् । ४/५/१२ इस संसार का कौन सा धन या रत्न हमारे लिए उपयोगी है ?

२८६. का मर्यादा वयुना कद्ध । ४/५/१३ मर्यादा क्या हैं ? करने योग्य कर्तव्य कौन-कौन से हैं ?

२८७. अनायुधास आसता सचन्ताम् । ४/५/१४ शस्त्र धारण न करनेवाले पराक्रमहीन मनुष्य सदा दुःख से युक्त होकर दुःखी रहते हैं।

२८८. स वेद देव आनमं देवान् । ४/८/३ वह प्रकाशस्वरूप परमेश्वर सूर्य-चन्द्रादि देवों को भी झुकाना जानता है।

२८६. अग्ने मृळ महाँ असि । ४/६/१ हे प्रकाशस्वरूप प्रभो ! तू महान् है, हमें सुखी कर।

२६०. अस्माकं शृणुधी हवम् । ४/६/७ हे प्राणप्यारे ! तू हमारी पुकार सुन।

२६१. तव स्वादिष्ठाऽग्ने संदृष्टिः । ४/१०/५ हे ज्योतिस्वरूप ! तेरी कृपा दृष्टि बड़ी मीठी है।

२६२. क्षियन्तं त्वमक्षियन्तं कृणोति ।४/१७/१३ हे परमात्मा! तू आश्रय रहित को आश्रय प्रदान करता है।

२६३. सनिष्यसि क्रतुं नः। ४/१७/१३ हे परमात्मा! तू आश्रय रहित को आश्रय प्रदान करता है।

२६४. अस्माकमित सु श्रृणुहि त्वमिन्द्र। ४/२०/१० हे परमात्मा! तू हमारी प्रार्थना को अच्छी प्रकार से सुन

२६५. अस्माकं सु मघवन बोधि गोदाः।४/२२/१० हे ऐश्वर्यशाली प्रभो! तूं हमें गोएं दे तथा दे तथा बोध प्रदान कर।

२६६. अहं भूमिमददामार्याय।४/२६/२ मैं परमेश्वर श्रेष्ठ पुरूषों के लिये भूति प्रदान करता हूँ।

२६७. भूरिदा असि वृत्रहन्।४/३२/१६ हे अज्ञान निवारक परमात्मन्! तूं बहुत अधिक देने वाला है।

२६८. भूरिदा भूरि देहिनः।४/३२/२० हे परमात्मा! तू बहुत अधिक देने वाला है। हमें भी खूब दे।

२६६. सुरभि नो मुखा करत।४/३६/६ परमेश्वर हमें शुभ वचन बोलने वाला कर दें।

३००. प्राण आयूंषि तारिषत्।४/३६/६ परमात्मा हमारी जीवन अवधि को लम्बा करे।

३०१. शिवा नः सख्या सन्तु। ४/१०/८ हमारी मित्रताएँ कल्याणकारिणी और मंगलदायिनी हों।

३०२. आरे अस्मदमतिमारे अंहः । ४/११/६ हे प्रभो ! तू हमसे दुर्मति-दुष्ट बुद्धि और पाप को दूर कर।

३०३. कृधी वष्वस्माँ अवितेरनागान् । ४/१२/४ हे राजन् ! मातृभूमि के सेवक हम लोगों को तू सम्पूर्ण पापों, अपराधों से रहित कर।

३०४. व्येनांसि शिश्रथो विष्वगग्ने । ४/१२/४ हे तेजस्वी राजन् ! हमारे सब प्रकार के दुष्कर्मों को शिथिल कर।

३०५. मा ते सखायः सदमिद् रिषाम । ४/१२/५हे परमेश्वर ! तेरे मित्र होकर हम कभी पीड़ित, हिंसित और दुःखी न हों।

३०६. यातमश्विना सुकृतो दुरोणम् । ४/१३/१ हे विद्वान् स्त्री-पुरुषो ! आप लोग उत्तम आचरण करनेवाले धर्मात्मा पुरुषों के घर में जाओ।

३०७. सूर्योज्योतिषा देव एति । ४/१३/१ सूर्य के तुल्य दानशील विद्वान् अपनी ज्ञान ज्योति के साथ चमकता है। अथवा प्रकाशमान सूर्य ज्योति के साथ उदय होता है।

३०८. दीर्घायुरस्तु सोमकः । ४/१५/६ चन्द्रमा के समान शीतल स्वभाववाला मनुष्य दीर्घायु होता है।

३०९. अब्रह्मा दस्युः । ४/१६/६ अज्ञानी दस्यु है।

३१०. ऋतचिद्ध नारी । ४/१६/१० स्त्री सत्य-प्रतिज्ञा करनेवाली और धन का संग्रह करनेवाली हो।

३११. सद्यो दस्यून् प्र मृण । ४/१६/१२ हे राजन् ! तू प्रजा के नाशक शत्रुओं को शीघ्र नष्ट कर।

३१२. भुवः सखावृकः । ४/१६/१८ हे राजन् ! आप हमारे अकुटिल मित्र बनो।

३१३. स्याम रथ्यः सदासाः । ४/१६/२१ हमारे पास रथ-शीघ्र गमन के साधन और सेवक हों।

३१४. राजा कृष्टीनां पुरुहूत इन्द्रः । ४/१७/५ बहुतों द्वारा पुकारे जाने वाला परमैश्वर्यशाली ही प्रजाओं का राजा, स्वामी और शासक है।

३१५. अहिं वज्रेणमघवन्दि वृश्चः । ४/१७/७ हे ऐश्वर्यशाली राजन् ! तू कुटिल शत्रु को, कुल्हाड़े से वृक्ष के समान, शस्त्रास्त्र बल से काट डाल।

३१६. अस्य प्रियो जरिता । ४/१७/१६ उपासक भगवान् का प्यारा होता है।

३१७. अयं पन्था अनुवित्तः पुराणः। ४/१८/१ यह वैदिकमार्ग अनादि काल से सिद्ध

और सुपरीक्षित है।

३१८. नही न्वस्य प्रतिमानमस्ति । ४/१८/४ निःसन्देह उस ऐश्वर्यशाली की कोई मूर्ति, माप, तुल्यता नहीं है। वह परमेश्वर अद्वितीय है।

३१९. शिरो दासस्य सं पिणग्वधेन । ४/१८/९ हे राजन् ! तू प्रजा-नाशक शत्रु के सिर को शस्त्र से कुचल दे।

३२०. विष्णो वितरं वि क्रमस्व । ४/१८/११ हे व्यापक शक्ति से युक्त अथवा विद्याओं में व्याप्त जीव ! तू उत्तम पराक्रम कर। अथवा हे आचार्य ! तू विशेषरूप से दुख से तारक ब्रह्मज्ञान प्रदान कर।

३२१. इन्द्रः सत्यः सम्राट् । ४/२१/१० परमैश्वर्यशाली परमात्मा ही सच्चा सम्राट है।

३२२. अस्मभ्यं वृत्रा सुहनानि रन्धि । ४/२२/९ हे शूरवीर राजन् ! तू हमारे कल्याण के लिए दण्डनीय शत्रुओं को दण्डित कर, वध करने योग्य शत्रुओं को मार।

३२३. जहि वधर्वनुषो मर्त्यस्य । ४/२२/९ हे शूरवीर राजन् ! तू हिंसक मनुष्य के शस्त्र को नष्ट कर।

३२४. अस्मभ्यं चित्रा उप माहि वाजान् । ४/२२/१० हे परमैश्वर्यशाली ! तू हमें अनेक प्रकार के अन्न, भोग, बल और विज्ञान प्रदान कर।

३२५. ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीः । ४/२३/८ वेदज्ञान, सत्य की शक्तियाँ अनन्त हैं।

३२६. ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति । ४/२३/८ सत्य की बुद्धि पापों को नष्ट करती है।

३२७. ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द । ४/२३/८ सत्य का प्रचार बहरे कानों को भी खोल देता है।

३२८. ऋतस्य दृळ्हा धरुणानि सन्ति । ४/२३/९ सत्य का आधार सुदृढ़ होते हैं।

३२९. ऋतेन गाव ऋतमा विवेशुः । ४/२३/९ सत्याचरण से विद्वान् लोग सत्यस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त कर लेते हैं।

३३०. तमिन्नरो वि ह्वयन्ते समीके । ४/२४/३ मनुष्य युद्ध में, जीवन संघर्ष में उस शत्रु विदारक परमेश्वर को ही अपनी सहायतार्थ बुलाते हैं।

३३१. क इमं दशभिर्ममेन्द्रं क्रीणाति धेनुभिः । ४/२४/१० कौन मेरे इस ऐश्वर्यशाली आत्मा को दस गौओं-इन्द्रियों के बदले में खरीद सकता है ?

३३२. ऋषिरस्मि विप्रः । ४/२६/१ मैं मेधावी और मन्त्रद्रष्टा ऋषि हूँ।

३३३. पश्यता मा । ४/२६/१ हे मनुष्यों ! मुझे देखो।

३३४. अहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय । ४/२६/२ मैं (परमेश्वर) आत्मसमर्पण करने वाले उपासक पर नाना समृद्धियों की वृष्टि करता हूँ।

३३५. श्रवो विविदे श्येनो अत्र । ४/२६/५ जीवात्मा इस संसार में ज्ञानमय ब्रह्म को प्राप्त करता है।

३३६. अजहादरातीमदे सोमस्य । ४/२६/७ ज्ञानी पुरुष परमात्मा के आनन्द में मग्न होकर काम-क्रोधादि आन्तरिक शत्रुओं का नाश करे।

३३७. अहन्नहिम् । ४/२८/१ हे आत्मन् ! तू सर्पवत् कुटिल वासनाओं को मार दे।

३३८. करन्न इन्द्रः सुतीर्थाभयं च । ४/२६/३ राजा राष्ट्र को नदियों से पार उतारनेवाले पुलों से युक्त करे तथा प्रजा को चोर, व्याघ्र आदि के भय से रहित करे।

३३९. वयं ते स्याम सूरयो गृणन्तः । ४/२६/५ हे परमेश्वर ! हम ज्ञानी लोग तेरी स्तुति करने वाले हो।

३४०. नकिरिन्द्र त्वदुत्तरः । ४/३०/१ हे परमैश्वर्यशाली ! तुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है।

३४१. न ज्यायाँ अस्ति वृत्रहन् । ४/३०/१ हे अज्ञान-निवारक ! तुझसे बड़ा कोई नहीं।

३४२. नकिरेवा यथा त्वम् । ४/३०/१ परमेश्वर! तुझ जैसा, तेरे सदृश भी कोई नहीं है।

३४३. सत्यमूचुर्नर एवा हि चक्रुरनु । ४/३३/६ मनुष्य सत्य बोलें और सत्यज्ञान के अनुसार ही कार्य करें।

३४४. न ऋते श्रान्तस्य सख्याय देवाः । ४/३३/११ जो थककर चूर नहीं हो जाता, जो परिश्रम और पुरुषार्थ नहीं करता, देव=विद्वान् उसके सहायक नहीं होते।

३४५. ऋभवो माप भूत । ४/३५/१ हे ज्ञानी लोगों ! हमसे दूर मत जाओ।

३४६. पात ऋभवो मधुनः सोम्यस्य । ४/३५/४ हे ज्ञानी पुरुषो ! परमानन्द से युक्त मधुर ब्रह्मरस का पान करो।

३४७. देवासो अभवता सुकृत्या । ४/३५/८ हे ज्ञानी लोगो ! अपने श्रेष्ठ कर्मों के द्वारा तुम देव बनो।

३४८. सौधन्वाना अभवतामृतासः । ४/३५/५ हे प्रणव=ओमूरूपी धनुर्धारियों ! तुम मुक्त बनो, मोक्ष प्राप्त करो।

३४९. यं देवासोऽवथा स विचर्षणिः । ४/३६/६ देव जिसकी रक्षा करते है, वह विश्वविख्यात और बुद्धिमान् होता है।

३५०. वयं चितयेमात्यन्यान् । ४/३६/९ हम अन्यों का आक्रमण करके आगे बढ़ जाएँ। हम दूसरों को लाँघकर सबसे अधिक ज्ञानी बनें।

३५१. देवा यात पथिभिर्देवयानैः । ४/३७/१ हे विद्वान् लोगों ! आप देवयान=विद्वानों के जाने योग्य उत्तम मार्ग से गमन करो।

३५१. ऋभुक्षणः पथश्चितन यष्टवे । ४/३७/४ हे महापुरुषो ! आप लोग दान, मैत्री, सत्संग आदि सत्कर्म करने के लिए उत्तम मार्गों का उपदेश करो।

३५२. क्रतुं सचन्ते वरुणस्य देवाः । ४/४२/१ सूर्य, चन्द्र आदि सभी देव वरणीय परमेश्वर की आज्ञानुसार चलते है।

३५३. राया वयं ससवांसो मदेम । ४/४२/१० हम धन वितरण करते हुए, धन का दान करते हुए प्रसन्न हों।

३५३. प्रियं मधुने युंजाथां रथम् । ४/४५/३ हे स्त्री पुरुषों ! ज्ञान प्राप्ति के लिए परम रमणीय आत्मा को योग द्वारा परमात्मा में जोड़ो।

३५४. दृतिं वहेथे मुधमन्तमश्विना । ४/४५/३ हे जितेन्द्रिय स्त्री पुरुषों ! उत्तम ज्ञान से युक्त, संकटों से उभारने और संशयों को काटनेवाले वेद को जीवन में धरण करो।

३५५. यज्ञैर्विधेम नमसा हविर्भिः । ४/५०/६ हम यज्ञों, नमस्कारों और हवियों=आत्मसमर्पण, श्रद्धा और प्रेम द्वारा परमेश्वर की उपासना करें।

३५६. वयं स्याम पतयो रयीणाम् । ४/५०/६ हम धनों के स्वामी बनें, (दास न बने)

३५७. अप्रतीतो जयति सं धनानि । ४/५०/६ पीछे न हटनेवाला धन-सम्पदाओं को जीतता (प्राप्त) करता है।

३५८. बृहस्पत इन्द्र वर्धतं नः । ४/५०/११ हे वेदज्ञ ब्राह्मण और राजन् ! आप दोनों मिलकर हमें बढ़ाओं।

३५९. पणयः ससन्त्वबुध्यमानाः । ४/५१/३ असावधान, प्रमादी वणिक्, गृहस्थ नष्ट हों, नष्ट हो जाते हैं।

३६०. सुवीर्यस्य पतयः स्याम । ४/५१/१० हम उत्तम बल और वीर्य के रक्षक हों, ब्रह्मचारी बनें, अथवा हम पराक्रमशाली बने।

३६१. श्लोकं देवः कृणुते स्वाय धर्मणे । ४/५३/३ सर्वज्ञान प्रकाशक परमेश्वर अपनी लोक और धर्मव्यवस्था प्रकट करने के लिए ज्ञान प्रदान करता है।

३६२. स नो देवः सविता शर्म यच्छतु । ४/५३/६ वह सर्वोत्पादक देव हमें सुख प्रदान करे।

३६३. ऋतधीतयो रुरुचन्त दस्माः । ४/५५/२ सच्चा पराक्रम करनेवाले तथा सत्य के धारण करनेवाले और दुःखों के नाशक जन अत्यन्त सुशोभित होते हैं।

३६४. मित्रो मित्रियादुत न उरुष्येत् । ४/५५/५ सबका मित्र परमेश्वर मित्रभाव से हमारी रक्षा करे।

३६५. देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु । ४/५५/७ उत्तम गुणों से युक्त स्त्री अखण्ड चरित्र रहती हुई हम गृहस्थ जनों को अपने उत्तम गुणों से पाले और हमारा रक्षण करे।

३६६. देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन् । ४/५५/७ व्यवहारज्ञ, पालकपुरुष प्रमादरहित होकर सब बन्धुजनों की पालना करें।

३६७. मधुमतीरोषधीः । ४/५७/३ जौ-धान आदि ओषधियाँ हमारे लिए मधुर गुणों से युक्त हों।

३६८. धामन् ते विश्वं भुवनमधि श्रितम् । ४/५८/११ हे परमेश्वर ! तेरे ही आधार पर सम्पूर्ण भुवन स्थित है।

३६९. अश्याम मधुमन्तं त ऊर्मिम् । ४/५८/११ हे परमेश्वर ! हम तेरे माधुर्य आदि गुणों से युक्त आनन्द को प्राप्त करें।

३७०. प्र भानवः सिस्रते नाकमच्छ । ५/१/२ ज्ञान दीप्ति से युक्त तेजस्वी पुरुष दुःख

से रहित मोक्षपद को प्राप्त होते हैं।

३७१. देवस्तमसो निरमोचि । ५/१/२ विद्या-दाता आचार्य अविद्यारूपी अन्धकार से छुड़ाता है। अथवा मनुष्य देव बनकर अज्ञान-अन्धकार से छूट जाता है।

३७२. अतिथिः शिवो नः । ५/१/८ अतिथि हमारे लिए शिव एवं मंगलकारी हों।

३७३. प्र सद्यो अग्ने अत्येष्यन्यान् । ५/१/६ हे तेजस्विन् ! अपने गुणों से दूसरों को लाँघकर शीघ्र आगे बढ़ जा, आगे निकल जा।

३७४. किं मामनिन्द्राः कृणवन्ननुक्थाः । ५/२/६ अशिक्षित, अविद्वान्, नास्तिक, भक्तिहीन, ऐश्वर्यरहित शत्रु मेरा क्या बिगाड़ सकते हैं ?

३७५. निन्दितारो निन्द्यासो भवन्तु । ५/२/६ निन्दक स्वयं निन्दा को प्राप्त हों, स्वयं निन्दनीय हो जाते है।

३७६. कदा चिकित्वो अभि चक्षसे नः । ५/३/६ हे ज्ञानस्वरूप ! तू हमें कृपा दृष्टि से कब देखेगा ?

३७७. विश्वान्यग्ने दुरिताति पर्षि । ५/३/११ हे तेजस्विन् ! तू सब पाप-ताप और संकटों से दूर कर दे।

३७८. शत्रूयतामा भरा भोजनानि । ५/४/५ हे राजन् ! तू शत्रु के समान आचरण करनेवाले मनुष्यों के अन्न आदि भोग्य पदार्थों को छीन ला।

३७६. वधेन दस्युं प्र हि चातयस्व । ५/४/६ हे राजन् ! त शस्त्रबल से दस्यु=क्षयकारी दुष्टपुरूष का अच्छी प्रकार नाश कर।

३८०. अग्ने पाहि नृतम वाजे अस्मान् । ५/४/६ हे तेजस्विन् ! तू युद्ध में हमारी रक्षा कर।

३८१. अस्माकमग्ने अध्वरं जुषस्व । ५/४/८ हे ज्ञानस्वरूप! तू हमारे हिंसारहित यज्ञ को प्रेम से स्वीकार कर।

३८२. जातवेदः सिन्धुं न नावा दुरिताति पर्षि । ५/४/६ हे सर्वज्ञ ! जैसे जहाज से समुद्र को पार करते हैं, उसी प्रकार तू हमें समस्त दुःखदायी संकटों से पार कर।

३८३. कविर्हि मधुहस्त्यः । ५/५/२ परमेश्वर ! तू सचमुच कवि है और मधुरतापूर्ण किरणोंवाला है।

३८४. अग्न आ वहेन्द्र चित्रमिह प्रियम् । ५/५/३ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! तू अद्भुत और प्रिय-नाना प्रकार के ऐश्वर्यों को प्राप्त करा।

३८५. ऊर्णम्रदा वि प्रथस्व । ५/५/४ ऊन के समान कोमल और सुखकारी होकर शत्रु का मानमर्दन करनेवाले राजन् ! तू खूब फैल, और यशस्वी बन।

३८६. तवाहमग्ने । ५/६/६ प्रकाशस्वरूप ! मैं तेरा हूँ।

३८७. असंमृष्टो जायसे मात्रोः । ५/११/३ बालक आरम्भ में माता-पिता से अशुद्ध (शूद्र) रूप में उत्पन्न होता है।

३८८. अग्नि नरो वि भरन्ते गृहेगृहे । ५/११/४ मनुष्य यज्ञाग्नि को घर-घर में प्रदीप्त

करें-प्रत्येक घर में यज्ञ का अनुष्ठान हो।

३८९. स जायसे मथ्यमानः । ५/११/६ वह परमेश्वर ध्यान की मथनी से मथने पर प्रकट होता है।

३९०. चिकित्व ऋतमिच्चिकिद्धि । ५/१२/२ हे ज्ञानिन् ! तू सत्य का ज्ञान कर, सत्य की चाहना कर।

३९१. बृहद् वयो हि भानवेऽर्च । ५/१६/१ जीवन का बहुत बड़ा भाग परमेश्वर की उपासना में लगाओ।

३९२. नू न एहि वार्यमग्ने गृणान आ भर । ५/१६/५ हे प्रकाशस्वरूप ! तू हमें प्राप्त हो तथा हमें प्रेरणा देता हुआ हममें सब वरणीय गुणों को भर दे।

३९३. शग्धि स्वस्तये । ५/१७/५ हे मनुष्य ! सुख-प्राप्ति के लिए तू शक्तिशाली बन।

३९४. अप द्वेषो अप ह्वरः । ५/२०/२ हे मनुष्य ! तू द्वेष और कुटिलता को दूर कर।

३९५. स्रुचस्त्वा यन्त्यानुषक् । ५/२१/२ हे परमात्मन् ! मेरे घृतपूर्ण चम्मच तुझे नित्य प्राप्त होते रहें अर्थात् मैं सदा यज्ञ करता रहूँ।

३९६. पृतनाषहं रयिं सहस्व आ भर । ५/२३/२ हे बलशालिन् ! आप हमें शत्रु की सेना को परास्त करने वाला ऐश्वर्य प्रदान कीजिए।

३९७. रेवन्नः शुक्र दीदिहि । ५/२३/४ हे शुद्धाचरणशील नायक ! तू हमारे धन-धान्य से समृद्ध राष्ट्र को चमका।

३९८. द्युमत्पावक दीदिहि । ५/२३/४ हे शोधक प्रकाशस्वरूप ! तू तेज और यश से युक्त होकर सर्वत्र प्रकाशित हो।

३९९. अग्ने त्वं नो अन्तमः । ५/२४/१ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! तू हमारे अत्यन्त समीप है।

४००. स नो बोधि, श्रुधी हवम् । ५/२४/२ प्रभो ! तू हमारी टेर सुन और हमें बोध ा प्रदान कर।

४०१. अग्निं धीभिः सपर्यत । ५/२५/४ हे मनुष्यों ! प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की ध्यान-ध ारणाओं और उत्तम कर्मों द्वारा उपासना करो।

४०२. बृहदर्च विभावसो । ५/२५/७ हे ज्ञानिन् ! तू परमेश्वर की खूब उपासना कर।

४०३. ददन्मेधामृतायते । ५/५७/४ परमेश्वर यज्ञ करने वाले और सत्य की कामना करनेवाले को बुद्धि प्रदान करता है।

४०४. अग्ने शर्ष महते सौभगाय । ५/२८/३ हे तेजस्विन् ! तू महान् सौभाग्य के लिए, धनैश्वर्य की प्राप्ति के लिए शत्रुओं का दमन कर।

४०५. अग्ने वन्दे तव श्रियम् । ५/२८/३ हे ज्ञानस्वरूप ! मैं तेरी शोभा, सम्पदा और तेज की प्रशंसा करता हूँ।

४०६. ऋषिरिन्द्रासि धीरः । ५/२९/१ हे आत्मन् ! तू धीर=कर्मकुशल, धैर्यवान् और ऋषि=मन्त्रार्थ द्रष्टा है।

४०७. अनासो दस्यूंरमृणो वधेन । ५/२६/१० हे राजन् ! तू नायक रहित दस्युओं (चोर-लुटेरों) को शस्त्र द्वारा वध करके नष्ट कर दे।
४०८. दुर्योण आवृणङ्‌ गृध्रवाचः । ५/२६/१० हे राजन् ! तू हिंसक और कटुभाषियों को कारागार में बन्द करके रख।
४०६. कथो नु ते परि चराणि । ५/२६/१३ हे ऐश्वर्यशाली ! मैं तेरी कैसे सेवा करूँ ?
४१०. को अपश्यदिन्द्रम् । ५/३०/१ कौन शूरवीर आत्मा अथवा परमात्मा का दर्शन करता है ? (जितेन्द्रिय)
४११. इन्द्रं नरो बुबुधाना अशेम । ५/३०/२ ज्ञानी मनुष्य ही आत्मा अथवा परमात्मा के दर्शन करते हैं।
४१२. प्र मायाभिर्मायिनं सक्षदिन्द्रः । ५/३०/६ राजा मायावियों=छल-कपट, धोखा करने वालों को अपनी हिंसाकारी शक्तियों से नष्ट कर दे।
४१३. किं मा करन्नबला अस्य सेनाः । ५/३०/६ इसकी बलहीन सेनाएँ मेरा क्या बिगाड़ सकती है ?
४१४. आ प्र द्रव हरिवो मा वि वेनः । ५/३१/२ हे आत्मन् ! तू सब ओर जा, आगे बढ़, परन्तु कभी धर्मविरूद्ध कामना मत कर। अथवा हे बलरूपी शक्तियों से युक्त परमेश्वर ! तू शीघ्र ही मेरे समीप आ, मुझे निराश मत कर।
४१५. नहि त्वदिन्द्र वस्यो अन्यदस्ति । ५/३१/२ हे ऐश्वर्यशाली परमेश्वर ! तुझसे श्रेष्ठ और कोई नहीं है।
४१६. वावन्थि यज्यून् । ५/३१/१३ हे मनुष्य ! तू यज्ञशील, दानी पुरुषों का सत्संग कर।
४१७. अदर्दरुत्सम् । ५/३२/१ हे राजन् ! तू राष्ट्र में कूप आदि का निर्माण कर।
४१८. असृजो वि खानि । ५/३२/१ हे राजन् ! तू अपनी इन्द्रियों को विविध मार्गों में प्रेरित कर।
४१६. एको धना भरते अप्रतीतः । ५/३२/६ पीछे न हटनेवाला अकेला ही धनों को धारण करता हैं।
४२०. य ऊधनि सोमं सुनोति भवति द्युमाँ अह । ५/३४/३ जो रात्रि में सोम=वीर्यरक्षा में तत्पर रहता है, अथवा रात्रि में सोम=ब्रह्मानन्द रस को निचोड़ता है, अपने को परमेश्वर भक्ति के रस से सींचता है, वह निश्चय ही तेजस्वी हो जाता है।
४२१. शक्रस्ततनुष्टिमूहति । ५/३४/३ शक्तिशाली परमेश्वर विषय भोगों में फँसे रहनेवाले, दिखावा करनेवाले अभिमानी को नष्ट कर देता है।
४२२. न किल्विषादीषते वस्व आकरः । ५/३४/४ धन का भण्डार पाप से पृथक् होने पर ही मिलता है। अथवा धन का भण्डार परमेश्वर पाप से,पापी से, दूर भागता है।
४२३. विभीषणो यथावशं नयति दासमार्यः । ५/३४/६ पराक्रमी आर्यवीर शत्रु को अपने वश में करता है।

४२४. सर्मी पणेरजति भोजनं मुषे । ५/३४/७ आर्यवीर कंजूस व्यापारी के धन को लूटने के लिए आगे बढ़ता है।

४२५. वृषा ह्यसि । ५/३५/४ हे मनुष्य ! तू प्राणियों में सर्वश्रेष्ठ और सुखों का वर्षक है।

४२६. राधसे जज्ञिषे । ५/३५/४ हे जीव ! तू सिद्धि के लिए, परमेश्वर की प्राप्ति के लिए पैदा हुआ है।

४२७. स्वक्षत्रं ते धृषन्मनः । ५/३५/४ तेरा मन बल-सम्पन्न और प्रगल्भ है।

४२८. वेपते मनो भिया मे अमतेः । ५/३६/३ मेरा मन बुद्धिहीनता के भय से काँपता है।

४२९. प्र वो वायुं रथयुजं कृणुध्वम् । ५/४१/६ हे विद्वान् लोग ! आप लोग रथों में अश्व के स्थान पर वायु को अच्छे प्रकार जोड़ो (वायु की शक्ति से चलनेवाले रथों-विमानों का निर्माण करो।)

४३०. सिषक्तु माता मही रसा नः । ५/४१/१५ भूमिमाता हमें अपने रसों से सींचे, तृप्त करें।

४३१. मा नोऽहिर्बुध्न्यो रिषे धात् । ५/४१/१६ सब जगत् का मूलकारण और अन्तरिक्ष में भी व्याप्त परमेश्वर हमें हिंसकों के अधिकार में न दे अर्थात् हिंसक हम पर शासन न करें।

४३२. जरां चिन्मे निर्ऋतिर्जग्रसीत । ५/४१/१७ बुरी अवस्था मेरे बुढ़ापे को ही निगले अर्थात् मैं बूढ़ा न होऊ, सदा तरुण रहूँ।

४३३. अवन्तु नो अमृतासस्तुरासः । ५/४२/५ जीवन्मुक्त और शीघ्रकारी लोग हमारी रक्षा करें।

४३४. ब्रह्मद्विषः सूर्याद् यावयस्व । ५/४२/९ हे राजन् ! वेदविरोधी, नास्तिकों को सूर्य से दूर कर अर्थात् उन्हें कालकोठरी में डाल।

४३५. निन्दात् तुच्छ्यान् कामान् । ५/४२/१० मनुष्य निकृष्ट, तुच्छ, क्षुद्र कामनाओं की निन्दा करे।

४३६. कामो राये हवते मा स्वस्ति । ५/४२/१५ मेरा संकल्प मुझे कल्याणकारक ध नप्राप्ति के लिए प्रेरणा देता है।

४३७. देवोदेवः सुहवो भूतु मह्यम् । ५/४२/१६ देवों का देव परमात्मा सरलता से बुलाने योग्य है।

४३८. मा नो माता पृथिवी दुर्मतौ धात् । ५/४२/१६ माता के समान हितकारिणी तथा पालन करनेवाली पृथिवी हमें दुष्ट बुद्धि में स्थापित न करें, हमारी बुद्धियाँ दुष्टमार्ग में प्रेरित न हो।

४३९. न दभाय सुक्रतो । ५/४४/२ हे श्रेष्ठज्ञानयुक्त और कर्मकुशल राजन् ! तू राष्ट्र का नाश करने के लिए न हो अर्थात् राष्ट्र का विनाश मत कर।

४४०. यादृगेव ददृशे तादृगुच्यते । ५/४४/६ जैसा देखा जाता है, वैसा ही कहा जाता

है।

४४१. यादृश्मिन् धायि तमपस्यया विदद् । ५/४४/८ मनुष्य जिस पदार्थ अथवा ऐश्वर्य को प्राप्त करने में अपना मन लगा देता है, उसे अपने पुरुषार्थ से प्राप्त कर ही लेता है।

४४२. य उ स्वयं वहते सो अरं करत् । ५/४४/८ जो मनुष्य स्वयं परिश्रम करता है, वही अपने कार्य को पूर्ण रूप से सिद्ध करता है।

४४३. यो जागार तमृचः कामयन्ते । ५/४४/१४ जो जागरूक=सावधान रहता है ऋचाएँ, ऋग्वेद के मन्त्र, ज्ञान उसे ही प्राप्त होता है अथवा संसार में उसी की स्तुति होती है।

४४४. तवाहमस्मि सख्ये न्योकाः । ५/४४/१४ हे जीव ! मैं सदा तेरे मित्रभाव में निश्चित निवास बनाकर रहता हूँ अर्थात् मैं सदा तेरा मित्र हूँ।

४४५. प्र दुच्छुना मिनवामा वरीयः । ५/४५/५ हम दुष्ट, दुःखदायी लोगों को तथा शत्रुओं में से श्रेष्ठ-श्रेष्ठ वीरों को आगे बढ़कर अच्छी प्रकार नष्ट करें। अथवा हम दुष्टवृत्तियों को अपने में से दूर भगा दें।

४४६. आरे द्वेषांसि सनुतर्दधाम । ५/४५/५ हम द्वेष और द्वेषियों को तथा छिपी हुई द्वेषभावनाओं को सदा दूर करें।

४४७. ऋतस्य पथा सरमा विदद् गाः । ५/४५/८ उत्तम ज्ञान को देनेवाली बुद्धि वेदोपदिष्ट मार्ग से चलकर ज्ञानरश्मियों को प्राप्त करे।

४४८. धिया स्याम देवगोपाः । ५/४५/११ धारणवती बुद्धि से हम इन्द्रियों के पालक बनें।

४४९. धिया तुतुर्यामात्यंहः । ५/४५/११ बुद्धि की सहायता से हम पापकर्मों और उनके दुष्फलों का विनाश करें।

४५०. इदं वपुर्निवचनं जनासः । ५/४७/५ हे मनुष्यो ! यह शरीर स्तुति करने योग्य हैं।

४५१. देवस्य नेतुर्मर्तो वुरीत सख्यम् । ५/५०/१ मनुष्य ब्रह्माण्ड के संचालक परमात्मा की मित्रता का वरण करे।

४५२. द्युम्नं वृणीत पुष्यसे । ५/५०/१ हे मनुष्यो ! आत्म कल्याण के लिए दिव्यधन प्राप्त करो।

४५३. द्विषो युयोतु यूयुविः । ५/५०/३ शत्रुओं का विनाशक तथा सत्यासत्य का विवेकी पुरुष शत्रुओं को दूर करे।

४५४. स्वस्ति पन्थामनु चरेम । ५/५१/१५ हम कल्याण-मार्ग का ही अनुगमन करें, कल्याण मार्ग पर ही चलें।

४५५. ददताघ्नता जानता सं गमेमहि । ५/५१/१५ हम दानशील, अहिंसक और ज्ञानियों का सत्संग करें।

४५६. अतीयाम निदः । ५/५३/१४ हम लोग निन्दकों को लाँघकर उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ें।

४५७. मरुतो याथना शुभम् । ५/५७/२ हे वीरो ! आप लोग सुमार्ग पर गमन करो।

४५८. श्रियसे चेतथा नरः । ५/५९/३ हे मनुष्यो ! तुम आत्मकल्याण और ऐश्वर्य प्राप्ति

के लिए सदा सचेष्ट और सावधान रहो।

४५९. अग्ने वित्ताद्धविषो यद् यजाम । ५/६०/६ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! हम तेरी जो पूजा और उपासना करें, तू उसे स्वीकार कर।

४६०. न कामो अप वेति मे । ५/६१/१८ मेरी इच्छा (ज्ञान श्रवण की अभिलाषा) कभी नष्ट न हो।

४६१. पिन्वतं गा अव वृष्टिं सृजतं जीरदानू । ५/६२/३ जगत् को जीवन देनेवाले स्त्री-पुरुषों ! आप गौओं को पुष्ट करो, भूमियों का सेवन करो, मधुरवाणियों का प्रयोग करो और मेघ के समान सब पर सुखों की वर्षा करो।

४६२. मित्रस्य यायां पथाः । ५/६४/३ मैं मित्र के मार्ग से गमन करूँ, सबके साथ स्नेहपूर्ण बर्ताव करूँ।

४६३. सुमतिरस्ति विधतः । ५/६५/४ धर्म मर्यादा में स्थिर रहनेवाले मनुष्य की बुद्धि सदा ही शुभ होती है। अथवा सेवा करनेवाले शिष्य की बुद्धि उत्तम होती है।

४६४. यतेमहि स्वराज्ये । ५/६६/६ हम स्वराज्य अथवा आत्मराज्य के लिए प्रयत्न करें।

४६५. प्रातर्देवीमदितिं जोहवीमि । ५/६९/३ मैं प्रभातवेला में अखण्डित बोध से युक्त श्रेष्ठ बुद्धि का आवाहन करता हूँ।

४६६. तुर्याम दस्यून् तनुभिः । ५/७०/३ हम अपने स्वस्थ शरीरों से दुष्टों चोरों का नाश करें।

४६७. तिरो विश्वा अहं सना । ५/७५/२ (परमेश्वर! मुझे ऐसी शक्ति दो कि) मैं सदा सभी विघ्न-बाधाओं को हटा सकूँ।

४६८. नासत्या मा वि वेनतम् । ५/७५/७ हे स्त्री-पुरूषों ! जीवन में उदास, हताश और निराश मत बनो।

४६९. न संस्कृतं प्र मीमीतः । ५/७६/२ हे स्त्री पुरुषो ! अच्छे संस्कारों को नष्ट मत करो।

४७०. प्रदिवि स्थानमोकः । ५/७६/४ घर उत्कृष्ट स्थान है।

४७१. मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः । ५/८१/१ सर्वप्रकाशक, सर्वोत्पादक, सर्वप्रेरक सर्वैश्वर्यवान् परमात्मा की महिमा महान् है।

४७२. मित्रो भवसि देव धर्मभिः । ५/८१/४ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! आप धर्माचरणो से (धर्माचरण करने से) उपासकों के मित्र बनते हैं।

४७३. ईशिषे प्रसवस्य त्वमेक इत् । ५/८१/५ हे सविता देव ! तू अकेला ही सभी उत्पन्न हुए जगत् का शासक और स्वामी है।

४७४. तुरं भगस्य धीमहि । ५/८२/१ हम सकलैश्वर्ययुक्त परमात्मा के अविद्यादि दोषनाशक बल को धारण करें।

४७५. परा दुःष्वप्न्यं सुव । ५/८२/४ हे परमेश्वर ! हमारे दुष्टविचारों को दूर भगा।

४७६. यद् भद्रं तन्न आ सुव । ५/८२/५ परमात्मान् ! जो कल्याणकारक मोक्षपद है, वह

हमें प्राप्त कराइए।

४७७. यर्जन्यः स्तनयन् हन्ति दुष्कृतः । ५/८३/२ विद्वान् उपेदश करता हुआ दुष्टाचरण करने वालों और दुष्कर्मों का नाश करता है।

४७८. महान्तं कोशमुदचा नि षिंच । ५/८३/८ हे राजन् ! अपने महान् कोश को और उन्नत कर, बढ़ा और प्रजा पर बरसा दे।

४७९. यत्सीमागश्चकृमा शिश्रथस्तत् । ५/८५/७ हे परमेश्वर ! यदि हम कभी अपराध करें, तो उसे उसी समय शिथिल करता रह अर्थात् हमें अपराध करने से रोकता रह।

४८०. ते स्याम वरुण प्रियासः । ५/८८/८ हे दुष्टवारक ! वरणीय परमात्मन् ! हम तेरे प्यारे बनें।

४८१. दंसनाऽप द्वेषांसि सनुतः । ५/८७/८ हे वीरो ! तुम अपने पराक्रम से शत्रुओं और द्वेषभावों को सदा दूर करो।

४८२. त्वं त्राता तरणे चेत्यो भूः । ६/१/५ हे दुःखों से तारनेवाले परमेश्वर ! तू ज्ञानदाता होकर संसार-सागर से पार उतारनेवाला है।

४८३. पिता माता सदमिन्मानुषाणाम् । ६/१/५ हे परमेश्वर ! तू सदा ही मनुष्यों की माता और उनका पिता है।

४८४. क्षेषदृतपा ऋतेजाः । ६/३/१ सत्य का पालक और सत्य के पालन में अपना जीवन लगा देनेवाला दीर्घायु प्राप्त करता है।

४८५. अश्याम द्युम्नमजराजरं ते । ६/५/७ हे अविनाशी परमात्मन् ! हम तेरी अजर-अमर ज्योति वेद को प्राप्त करें। अथवा हम तेरे अविनाशी ऐश्वर्य=मोक्ष का भोग करें।

४८६. पश्यतेमम् । ६/६/४ इस (अमर आत्मा) का दर्शन=साक्षात्कार करो।

४८७. अविद्युतत् स्वपाकः । ६/११/४ बुद्धिमान् खूब चमकता है, उसका यश सर्वत्र फैलता है।

४८८. अग्निरप्सामृतीषहं वीरं ददाति । ६/१४/४ वीर पुरुष मानवसमाज को कर्म करने में कुशल, शत्रुनाशक, शूरवीर पुत्र प्रदान करता है।

४८९. ऊर्णावन्तं प्रथमः सीद योनिम् । ६/१५/१६ हे ऋत्विक् ! तू ऊन के आसन बिछी हुई वेदी पर सबसे पहले बैठ।

४९०. अग्ने यक्षि दिवो विशः । ६/१६/६ हे राजन् ! आप कामना करती हुई प्रजाओं को सुखयुक्त कीजिए।

४९१. देव जिह्वया परि बाधस्व दुष्कृतम् । ६/१६/३२ हे विद्यायुक्त न्यायाधीश ! तू दुष्कर्म करनेवाले मनुष्य की कठोर वाणी से ताड़ना कर।

४९२. शोचा वि भाह्यजर । ६/१६/४५ हे वृद्धावस्था रहित राजन् ! तू शत्रु के नगरों को तहस-नहस कर डालता है।

४९३. देवं मर्तो दुवस्येत् । ६/१६/४६ मनुष्य प्रकाशस्वरूप, अतिमनोहर परमदेव परमात्मा की उपासना करे।

४६४. उत्तानहस्तो नमसा विवासेत् । ६/१६/४६ मनुष्य हाथ उठाकर नमस्कार से सत्कार करे।

४६५. श्रुधि ब्रह्म वावृधस्वोत गीर्भिः । ६/१७/३ हे मनुष्य ! तू वेद का श्रवण कर और वेदवाणियों के द्वारा निरन्तर उन्नति कर।

४६६. आविः सूर्यं कृणुहि । ६/१७/३ हे इन्द्र (आत्मन्) ! तू परमेश्वर का प्रकाट्य=साक्षात्कार कर। अथवा हे आत्मन् ! तू सूर्य के समान अपने तेजस्वी रूप को प्रकट कर।

४६७. वृत्रहत्याय रथमिन्द्र तिष्ठ । ६/१८/६ हे राजन् ! तू संग्राम करने के लिीए, वृत्र=शत्रु का वध करने के लिए रथ पर आरूढ़ हो।

४६८. अभि प्र मन्द पुरुदत्र मायाः । ६/१८/६ तू उत्तम बुद्धियों को प्राप्त होकर हर्षित और तेजस्वी बन।

४६६. नास्य शत्रुर्न प्रतिमानमस्ति । ६/१८/१२ इस (परमात्मा) का न तो कोई नाश करनेवाला है और न कोई इसके समान है।

५००. करो यत्र वरिवो वाधिताय । ६/१८/१४ हाथ वही उत्तम है जो दुःखी तथा पीड़ितो की सहायता करें।

५०१. कृष्वा कृत्नो अकृतं । ६/१८/१५ जो तूने अब तक नहीं किया है, वैसा पुरुषार्थ करके दिखा।

५०२. इन्द्र पूर्व्यो भूः । ६/२०/११ हे परमेश्वर ! तू पुराणपुरुष है, सबका प्राचीन गुरू है।

५०३. तमु स्तुष इन्द्र यो विदानः । ६/२१/२ मैं उस परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की ही स्तुति और उपासना करता हूँ, जो सर्वज्ञ है।

५०४. श्रुधी हवमा हुवतो हुवानः । ६/२१/१० हे परमेश्वर ! तू पुकारा जाकर पुकारने वाले की पुकार को, निवेदन को सुन, टेरने वाले की टेर सुन।

५०५. न त्वावाँ अन्यो अमृत त्वदस्ति । ६/२१/१० हे अविनाशिन् ! तेरे जैसा, तेरे से भिन्न दूसरा कोई नहीं है।

५०६. विश्वा अजुर्य दयसे वि मायाः । ६/२२/६ हे वृद्धावस्थारहित राजन् ! तू दुष्टों के सम्पूर्ण कपटजालों का विनाश कर।

५०७. पाता सुतमिन्द्रो अस्तु सोमम् । ६/२३/३ इन्द्र=जीवात्मा योगाभ्यास द्वारा निष्पादित भक्ति रस का पान करने वाला है।

५०८. एदं बर्हिर्यजमानस्य सीद । ६/२३/७ हे ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू यजमान के, भक्त उपासक के आसन=हृदय मन्दिर में विराजमान हो।

५०६. उरुं कृधि त्वायत उ लोकम् । ६/२३/७ हे परमेश्वर ! तुझे चाहनेवाले भक्त के लिए तू विस्तृत स्थान=मोक्षपद प्रदान कर, अथवा उसका उत्कर्ष कर।

५१०. गम्भीरे चिद् भवति गाधम् । ६/२४/८ गहरे से गहरे समुद्र में भी थाह होती है।

५११. नः स्पृधः समजा समत्स्विन्द्र । ६/२५/६ हे राजन् ! तू हमारी सेनाओं को शत्रुसेना

का वध करने के लिए संग्राम में प्रेरित कर।

५१२. इन्द्र रारन्धि मिथतीरदेवीः । ६/२५/६ हे राजन् ! तू हिंसा करनेवाली राक्षसी शत्रुसेना को हमारे लिए विनष्ट कर।

५१३. सखायः स्याम महिन प्रेष्ठाः । ६/२६/८ हे परमपूज्य परमेश्वर ! हम तेरे अत्यन्त प्रिय मित्र होकर रहें।

५१४. गावो भगो गाव इन्द्रो मे अच्छान् । ६/२८/५ गौएँ धन है, ऐश्वर्य का स्रोत हैं। परमेश्वर अथवा राजा मुझे गौएं प्रदान करें।

५१५. मा वः स्तेन ईशत माघशंसः । ५/२८/७ हे गौओं ! चोर ओर पापी पुरुष तुम पर शासन न करे।

५१६. न त्वावाँ अन्यो अस्तीन्द्र देवः । ६/३०/४ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर ! तेरे समान दूसरा कोई देव नहीं है।

५१७. समत्सु सासहदमित्रान् । ६/३३/१ हे राजन् ! तू संग्राम में शत्रुओं को पराजित कर।

५१८. जयाजीन् । ६/३५/२ हे ऐश्वर्यवान् ! तू संग्रामों को जीत।

५१६. सत्रा मदासस्तव विश्वजन्याः । ६/३६/१ हे राजन् ! तेरे राष्ट्र-दमन कार्य सदा सर्वजन हितकारी हों।

५२०. एको विश्वस्य भुवनस्य राजा । ६/३६/४ परमेश्वर ! तू सारे संसार का अकेला ही राजा है।

५२१. दूराच्चिदा वसतो अस्य कर्णा । ६/३८/२ इसके (परमात्मा के) कान दूर देश से भी सुनते हैं।

५२२. घोषादिन्द्रस्य तन्यति ब्रुवाणः । ६/३८/२ परमेश्वर की स्तुति उच्चस्वर से की जाती है।

५२३. राजन्निषः पिन्व वसुदेयाय पूर्वो । ६/३६/५ हे राजन् ! तू धन देने योग्य उपासक को बहुत धन प्रदान कर।

५२४. गा अर्वतो नृनृचसे रिरीह । ६/३६/५ हे राजन् ! तू स्तोता (उपासक) के लिए गौ, घोड़े और नौकर-चाकर आदि प्रदान कर।

५२५. त्वायता मनसा जोहवीमि । ६/४०/३ हे परमात्मन् ! तुझे चाहनेवाले हम मन से तुझे बारम्बार बुलाते हैं।

५२६. इन्द्रा याहि सुविताय महे नः । ६/४०/३ हे परमैश्वर्यशाली ! महान् प्रेरणा देने के लिए अथवा हमारे विशेष कल्याण के लिए तू हमें सब ओर से प्राप्त हो।

५२७. सेधा जनानां पूर्वीररातीः । ६/४४/६ हे राजन् ! तू प्रजाओं के बहुत से शत्रुओं का नाश कर।

५२८. वर्षीयो वयः कृणुहि शचीभिः । ६/४४/६ हे परमेश्वर ! बुद्धियों तथा शक्तियों के साथ अतिश्रेष्ठ और बहुत वर्षों तक स्थिर रहनेवाले जीवनप्रदान कीजिए।

५२६. हरिवो मा वि वेनः । ६/४४/१० हे मनुष्यो के स्वामिन् ! तू हमारा त्याग मत

करना।

५३०. अंग रध्रचोदनं त्वाहुः । ६/४४/१० परमप्रिय परमेश्वर ! सब जोग तुझे उत्तम शिक्षा और प्रेरणा देने वाला कहते हैं।

५३१. जह्यसुष्वीन् प्र वृहापृणतः । ६/४४/११ हे राजन् ! तू यज्ञ तथा उपासना न करनेवालों को दण्ड दे और कंजूसों, अपनी सन्तानों का भरण-पोषण न करनेवालों को उखाड़ फेंक एवं दुःख देनेवाले दुर्जनों से हमें दूर कर।

५३२. त्वमसि प्रदिवः कारुधायाः । ६/४४/१२ हे राजन् ! तू विद्वान् और शिल्पियों का पोषक तथा सबके द्वारा कामना करने योग्य है।

५३३. मा त्वादामान आ दभन् मघोनः । ६/४४/१२ हे राजन् ! अदानशील और उच्छृंखल पुरुष तुझे और तेरे राज्य के ऐश्वर्यशाली पुरुषों का नाश न करें।

५३४. इन्द्र सूरीन् कृणुहि स्मा नो अधर्म् । ६/४४/१८ हे राजन् ! तू हमारे विद्वानों को समृद्धि प्रदान कर।

५३५. इन्द्रः स नो युवा सखा । ६/४५/१ वह अखण्ड और एकरस रहनेवाला ऐश्वर्यशाली परमेश्वर हमारा मित्र है।

५३६. वृह माया अनानत । ६/४५/६ हे किसी के समक्ष न झुकनेवाले राजन् ! तू शत्रुओं की मायाओं को काट डाल।

५३७. दूणाशं सख्यं तव । ६/४५/२६ हे प्रभो ! तेरी मित्रता अटूट है।

५३८. न स्तोतारं निदे करः । ६/४५/२७ हे परमेश्वर ! तू स्तोता, भक्त, उपासक, ज्ञानोपदेष्टा को निन्दक पुरुष के अधीन मत कर।

५३९. विश्वा सु नो विथुरा पिब्दना वसो । ६/४६/६ हे सबको बसानेवाले राजन् ! तू सभी दुष्टों को अच्छी प्रकार व्यथित कर।

५४०. रयिमस्मासु धेहि । ६/४७/६ हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! हमें ऐश्वर्य प्रदान कर।

५४१. इन्द्र प्र णः पुरएतेव पश्य । ६/४७/७ ऐश्वर्यशाली प्रभो ! तू हमपर ऐसी कृपा दृष्टि कर जैसी नेता अपने अनुयायियों पर करता है।

५४२. भवा सुपारो अतिपारयो नः । ६/४७/७ परमात्मन् ! तू सुपार-पार लगानेवाला बन जा और हमें संसार-सागर से पार उतार दे।

५४३. भवा सुनीतिरुत वामनीतिः । ६/४७/७ हे परमात्मन् ! तू हमारे लिए उत्तम मार्गदर्शक और कमनीय नीति है।

५४४. बाधतां द्वेषो अभयं कृणोतु । ६/४७/१२ सर्वज्ञ परमेश्वर हमारी द्वेष भावनाओं को नष्ट करे और हमें निर्भयता प्रदान करे।

५४५. दूराद् दवीयो अप सेध शत्रून् । ६/४७/२६ हे वीर ! तू हमारे दूर से भी दूर रहनेवाले शत्रुओं का नाश कर।

५४६. अस्माकमिन्द्र रथिनो जयन्तु । ६/४७/३१ हे राजन् ! हमारे रथारूढ़ वीर सैनिक शत्रुओं पर विजय प्राप्त करें।

५४७. विदा गाधं तुचे तु नः । ६/४८/६ हे आचार्य ! तू हमारे पुत्रादि के लिए प्रतिष्ठा, बुद्धि और ऐश्वर्य प्राप्त करा।

५४८. अग्ने हेळांसि देव्या युयोधि नः । ६/४८/१० हे परमेश्वर ! आपत्तियों, प्रकोपों को हमसे दूर कर।

५४९. मा मा पूषन्नुप द्रव । ६/४८/१६ सबका पोषण करने वाले प्रभो ! तू सब ओर से मेरी रक्षा के लिए आ।

५५०. मा काकम्बीरमुद् वृहो वनस्पतिम् । ६/४८/१७ हे पुरुष ! तू काकादि नाना पक्षियों के भरण-पोषण करने वाले वटादि वृक्षों को मत काट।

५५१. तेऽवृकमस्तु सख्यम् । ६/४८/१८ हे मनुष्य ! तेरी मित्रता छल-कपट रहित हो।

५५२. प्रणीतिरस्तु सूनृता । ६/४८/२० सुनीति सत्यभाषण और न्याय आदि से युक्त हो। अथवा सत्य एवं प्रिय वाणी ही ऐश्वर्य देनेवाली है।

५५३. अर्चेन्द्रं ब्रह्मणा जरितर्नवेन । ६/५०/६ हे स्तोता ! तू नवीन स्तोत्र से परमैश्वर्यशाली परमात्मन् की प्रार्थना, उपासना कर।

५५४. श्रवविद्धवमुप च स्तवानः । ६/५०/६ हे परमात्मन् ! स्तुति किया हुआ तू हमारी प्रार्थना को अवश्य सुन।

५५५. मा तत्कर्म वसवो यच्चयध्वे । ६/५१/७ हे विद्वानों ! जिस पाप को करने से तुम हमें रोकते हो, हम वह पाप कर्म न करें।

५५६. कृतं चिदेनो नमसा विवासे । ६/५१/८ मैं किये हुए पाप को दण्ड से दूर करने में समर्थ होऊँ।

५५७. भारद्वाजः सुमतिं याति होता । ६/५१/१२ अन्न और विज्ञान का दाता शोभन=श्रेष्ठ बुद्धि को प्राप्त करता है।

५५८. जहि न्यत्रिणं पणिं वृको हि षः । ६/५१/१४ हे राजन् ! तू खा जानेवाले बनिये को मार डाल, क्योंकि वह तो भेड़िया ही है।

५५९. ब्रह्मद्विषमभि तं शोचतु द्यौः । ६/५२/२ ब्रह्म से द्वेष करनेवाले को द्युलोक भी सन्तप्त करता है।

५६०. ब्रह्मद्विषे तपुषिं हेतिमस्य । ६/५२/३ हे राजन् ! तू परमेश्वर, वेद और ज्ञान से द्वेष करनेवाले पर संतापदायक वज्र का प्रहार कर।

५६१. अवन्तु मामुषसो जायमानाः । ५/५२/४ उत्तम गुणों के साथ प्रकट होनवाली उषाएँ=प्रभातवेलाएँ मेरी रक्षा करें।

५६२. विश्वदानीं सुमनसः स्याम । ५/५२/५ हम प्रत्येक स्थिति और परिस्थिति में शुभ मनवाले, उत्तम विचार करनेवाले और पुष्प के सामन खिले मुखमण्डलवाले हों।

५६३. उप नः सूनवो गिरः शृण्वन्तु । ५/५२/६ हमारे पुत्र सदा वेदवाणियों का श्रवण करें।

५६४. वि मृधो जहि । ६/५३/४ हे प्रचण्डशक्ति सम्पन्न राजन् ! तू हिंसको को विविध

प्रकार से दण्डित कर।

५६५. वि पूषन्नारया तुद पणेः । ६/५३/६ हे पोषण करनेवाले राजन् ! तू वणिक् को, दुष्ट व्यवहारी को कोड़ों से पीड़ित कर।

५६७. किकिरा कृणु पणीनां हृदया कवे । ६/५३/७ हे ज्ञानिन् ! तू विद्वान के द्वारा हमारा समुन्नयन कर, हमें उन्नत अवस्था में पहुँचा

५६८. प्रथमो विन्दते वसु । ६/५४/४ पहल करनेवाला धन प्राप्त करता है।

५६९. अपो न नावा दुरिता तरेम । ६/६८/८ परमात्मन् कृपा से हम लोग जैसे नौका से जलों को पार करते हैं, उसी प्रकार सब पापों और कष्टों को तर जाएँ।

५७०. प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि । ६/७०/३ धर्म पर स्थिर रहनेवाला ही श्रेष्ठ सन्तान से युक्त होता है।

५७१. माकिर्नो अघशंस ईशत । ६/७१/३ दुष्ट, पापी, पाप का प्रशंसक हम पर कभी शासन न करें।

५७२. धिया वामभाजः स्याम । ६/७१/६ हम बुद्धि के द्वारा उत्तम भोगों को भोगनेवाले हों।

५७३. युवं सूर्यं विविदथुर्युवं स्वः । ६/७२/१ हे स्त्री पुरुष ! तुम दोनों सर्वोत्पादक परमेश्वर को अपना आदर्श जानो और उसी सुख-प्रद, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त करो।

५७४. विश्वा तमांस्यहतं निदश्च । ६/७२/१ हे स्त्री-पुरूषों ! तुम दोनों सब प्रकार के अविद्याजनित मोह, शोक आदि अन्धकारों तथा निन्दक और निन्दनीय व्यवहारों का नाश करो।

५७५. बृहस्पतिः समजयद्वसूनि । ६/७३/३ बड़े राष्ट्र का स्वामी धनों को जीतता है।

५७६. बृहस्पतिर्हन्त्यमित्रमर्कैः । ६/७३/३ महान् राष्ट्र का स्वामी शत्रु को अपने शस्त्रों से नष्ट करता है।

५७७. शं नो भूतं द्विपदे शं चतुष्पदे । ६/७४/१ सोमवत् शान्तिदायक वैद्य और दण्ड देनेवाले राजन् ! आप दोनों हमारे दोपायों और चौपायों के लिए अति शान्तिदायक होइये।

५७८. अनाविद्धया तन्वा जय त्वम् । ६/७५/१ हे शूरवीर ! तू बिना घायल हुए शरीर से संग्राम में विजय प्राप्त कर।

५७९. धन्वना तीव्राः समदो जयेम । ६/७५/२ धनुष के द्वारा हम लोग वेग से आक्रमण करनेवाली हर्ष या मद से युक्त शत्रु सेनाओं को जीतें।

५८०. धनु शत्रोरपकामं कृणोति । ६/७५/२ धनुष शत्रु के इष्टफल का नाश करता है, शत्रु का पराभव करता है।

५८१. धन्वना सर्वाः प्रदिशो जयेम । ६/७५/२ धनुष के बल से हम समस्त दिशाओं को जीतें और दिग्विजयी बनें।

५८२. मनः पश्चादनु यच्छन्ति रश्मयः । ६/७५/६ वृत्तियाँ मन के पीछे-पीछे चलती हैं।

५८३. विश्वाहा वयं सुमनस्यमानाः । ६/७५/८ हम सदा शुभ एवं शान्तचित्त होकर रहें।

५८४. पूषा नः पातु दुरितात् । ६/७५/१० सर्वपोषक परमात्मा हमें पाप और दुष्टाचरण से बचाए।

५८५. अश्मा भवतु नस्तनूः । ६/७५/१२ हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों।

५८६. ब्रह्म वर्म ममान्तरम् । ६/७५/१६ ब्रह्म=परमेश्वर, वेद, ज्ञान मेरा आन्तरिक कवच है।

५८७. विश्वा अग्नेऽप दहारातीः । ७/१/७ हे तेजस्वी नायक ! तू सब शत्रुओं और अदानशीलों को भस्म कर दे।

५८८. मा शून अग्ने नि षदाम । ७/१/११ हे परमेश्वर ! हम पुत्र-पौत्रादिरहित सूने घर में न रहें और न दूसरे के घर में रहें।

५८९. पाहि नो अग्ने रक्षसो अजुष्टात् । ७/१/१३ हे अग्रणी नायक ! तू धर्म का सेवन न करनेवाले, अप्रीतियुक्त, अतिक्रोधी दुर्जन से हमारी रक्षा कर।

५९०. सेदग्निर्यो वनुष्यतो निपाति । ७/१/१५ अग्नि=नेता वही है जो हिंसक से बचाता है।

५९१. सुजातासः परिचरन्ति वीराः । ७/१/१५ कुलीन वीर सब और विचरते सबकी सेवा करते हैं। अथवा कुलीन परमेश्वर की उपासना करते हैं।

५९२. रयिं सूरिभ्य आ वहा बृहन्तम् । ७/१/२४ हे राजन् ! तू विद्वानों के लिए महान् ऐश्वर्य प्रदान कर।

५९३. जुषस्व नः समिधमग्ने । ७/२/१ परमात्मन् ! तू हमारी आत्मरूपी समिधा को स्वीकार कर।

५९४. स्वदन्ति देवा उभयानि हव्या । ७/२/२ विद्वान् लोग शरीर को पुष्ट करनेवाले तथा आत्मा को तृप्ति और प्रसन्नता प्रदान करनेवाले खाने योग्य पदार्थों को रुचिपूर्वक खाते हैं।

५९५. अध्वर्यवो हविषा मर्जयध्वम् । ७/२/४ हे यज्ञ करनेवाले विद्वान् लोग ! तुम लोग ग्राह्य ज्ञान से अपने को शुद्ध आचारवान् बनाओ।

५९६. ऊर्ध्वं नो अध्वरं कृतं हवेषु । ७/२/७ हे विद्वान् स्त्री-पुरुषों ! तुम दोनों हमारे घरों में हिंसारहित यज्ञ को उन्नत करो।

५९७. अपि क्रतुं सुचेतसं वतेम । ७/३/१० हम लोग निश्चय ही प्रबल विद्यायुक्त बुद्धि को प्राप्त करें।

५९८. परिषद्यं ह्यरणस्य रेक्णः । ७/४/७ ऋणरहित मनुष्य का धन पर्याप्त होता है।

५९९. मा पथो वि दुक्षः । ७/४/७ हे विशन् ! तू सन्मार्गों को पाखण्ड आदि से दूषित मत कर।

६००. त्वमग्ने वनुष्यतो नि पाहि । ७/४/९ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो ! तू हमें हिंसकों से बचा।

६०१. जरूथं हन् । ७/९/६ हे राजन् ! तू विद्या, वय और ज्ञान से वृद्ध उपदेष्टा पुरुष को प्राप्त कर।

६०२. न ऋते त्वदमृता मादयन्ते । ७/११/१ हे प्रभो ! तेरी कृपा के बिना जीव आनन्द

नहीं पाते।

६०३. स नो रक्षिषद्दुरितादवद्यात् । ७/१२/२ वह प्रभु हमें पापों और दुराचार, निन्दित कर्मों से बचाए।

६०४. त्वं वरुण उत मित्रो अग्ने । ७/१२/३ हे प्रभो ! तू अति श्रेष्ठ और वरणीय है तथा तू ही हमारा मित्र है।

६०५. वैश्वानर ब्रह्मणे विन्द गातुम् । ७/१३/३ हे सर्वहितैषी संन्यासिन् ! तू परमेश्वर को प्राप्त करने के लिए सन्मार्ग प्राप्त कर।

६०६. वयं दाशेम सुष्टुती यजत्र । ७/१४/२ हे सत्संग करने योग्य प्रभो ! हम उत्तम स्तुति द्वारा आपको आत्मसमर्पण करते हैं।

६०७. देवाय दाशतः स्याम । ७/१४/३ हम आनन्दप्रद परमेश्वर को समर्पण करनेवाले हों।

६०८. त्वं नः पाह्यं हसो दोषावस्तः । ७/१५/१५ हे परमेश्वर ! तू दिन रात हमें पाप से बचा।

६०९. समग्निमिन्धते नरः । ७/१६/३ नर=विषयों में न फंसनेवाले मनुष्य अपनी आत्मा को प्रदीप्त किया करते हैं।

६१०. रास्व तद्यत्वेमहे । ७/१६/७ हे प्रभो ! हम तुझसे जो कुछ माँगें, हमें वही प्रदान कर।

६११. प्रियासः सन्तु सूरयः । ७/१७/१ प्रभो ! धर्मात्मा विद्वान् तेरे अधीन और तेरे अत्यन्त प्रिय होकर रहें।

६१२. अग्ने भव सुषमिधा समिद्धः । ७/१७/१ हे तेजपुंज ! जैसे काष्ठ=लकड़ियों से अग्नि चमक उठता है, उसी प्रकार तू भी उत्तम तेज, सत्कर्म और विद्या से प्रकाश से चमक।

६१३. यक्षि देवान् । ७/१७/३ हे मनुष्य ! तू विद्वानों का सत्संग किया कर।

६१४. सत्या भवन्त्वाशिषो नो अद्य । ७/१५/५ आज हमारी सभी अभिलाषाएँ सिद्ध=पूर्ण हों, अथवा हमारे आशीर्वाद आज सत्य हों।

६१५. सखा सखायमतरद् विषूचोः । ७/१८/६ मित्र मित्र को संकट से बचाता है।

६१६. जेष्म पुरुं विदथे मृध्रवाचम् । ७/१८/१३ हम संग्राम में हिंसक, कठोरभाषी मनुष्य समूह को जीतें।

६१७. विश्वं शत्रूयन्तं जघान । ७/२०/३ हे राजन् ! तू शत्रुता का व्यवहार करने वाले सब लोगों का विविध उपायों से नाश कर।

६१८. न यातव इन्द्र जूजुवुर्नः । ७/२१/५ हे राजन् ! राक्षस लोग हामरा घातपात न करें।

६१९. मा शिश्नदेवा अपि गुर्ऋतं नः । ७/२१/५ व्यभिचारी, कामी, नीच पुरुष हमारे यज्ञ में न आए।

६२०. पिबा सोमिमन्द्र मदन्तु त्वा । ७/२२/१ हे जीवात्मन् ! तू प्रभु के आनन्द रस

का पान कर। यह भक्तिरस तुझे आनन्द प्रदान करे।

६२१. सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि । ७/२२/५ हे प्रभो ! मैं सदा तेरे धन्यनाम् का जप करता रहूँ।

६२२. मनीषी हवते त्वामित् । ७/२२/६ हे प्रभो ! बुद्धिमान् उपासक तेरी ही स्तुति करता है, तुझे ही पुकारता है।

६२३. मारे अस्मन्मघवंज्योक्कः । ७/२२/६ हे परमपूजित प्रभो ! तू अपने आपको हमसे दूर मत कर।

६२५. इन्द्रं समर्ये महया वसिष्ठ । ७/२३/१ हे वसु ब्रह्मचारिन् ! तू उत्तम ज्ञानोपार्जन के लिए आचार्य का आदर सम्मान किया कर।

६२६. नहि स्वमायुश्चिकिते जनेषु । ७/२३/२ मनुष्यों में अपनी आयु को कोई नहीं जानता।

६२७. नक्षन्नृतं जरितारस्त इन्द्र । ७/२३/४ हे परमैश्वर्यशाली प्रभो ! आपके भक्त सदा श्रेष्ठ एवं शुभ कर्म करते हैं।

६२८. याहि वायुर्न । ७/२३/४ हे आत्मन् ! तू वायु के समान चल, वायु के समान गति कर, गतिशील बन।

६२६. मा ते मनो विष्वद्रयग्वि चारीत् । ७/२५/१ हे साधक ! तेरा मन सब ओर न जाए।

६३०. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम् । ७/२७/३ परमात्मा जड़ जगत् और चेतन मनुष्य आदि सभी का स्वामी है।

६३१. ददाति दाशुषे वसूनि । ७/२७/३ परमेश्वर दानशील अथवा आत्मसमर्पण करनेवाले के लिए धन देता है।

६३२. अधा म इन्द्र शृणवो हवेमा । ७/२६/३ परमात्मन् ! अब तो हमारी इन प्रार्थनाओं को सुन लो।

६३३. त्वे अपि क्रतुर्मम । ७/३१/५ हे परमात्मन् ! मेरी साधना तुझे प्राप्त करने के लिए है।

६३४. त्वा वर्मासि सप्रथः । ७/३१/६ हे प्रभो ! तू हमारा कवच है और सर्वत्र संरक्षण करने में प्रसिद्ध है।

६३५. तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः । ७/३१/११ विवेकी मनुष्य परमेश्वर के नियमों को नहीं तोड़ते, उसके नियमों का उल्लंघन नहीं करते।

६३६. नकिर्दित्सन्तमा मिनत् । ७/३२/५ दान देने के इच्छुक को कोई नहीं रोक सकता अथवा दान देने के इच्छुक को कोई भी पीड़ित या दुःखी न करें।

६३७. भवा वरूथं मघवन् मघोनाम् । ७/३२/७ हे परमपूजित ! तू धनवान् दाताओं का कवच जैसा संरक्षक बन।

६३८. सुनोता सोमपाव्ने सोमम् । ७/३२/८ सोमपान करनेवाले के लिए उत्तम औषधि

ायों का रस निकालो।
६३६. तरणिरिज्जयति । ७/३२/६ सब संकटों को पार करनेवाला और शीघ्रकारी पुरुषार्थी पुरुष ही विजय प्राप्त करता है।
६४०. न देवासः कवत्नवे । ७/३२/६ दिव्यताएँ दुराचार के लिए नहीं होती
६४१. अस्माकं बोध्यविता रथानाम् । ७/३२/११ प्रभो ! तू हमारे जीवन रथों का रक्षक बनकर हमें बोध प्रदान कर।
६४२. रदावसो न पापत्वाय रासीय । ७/३२/१८ हे धन के दाता ! मैं पाप के लिए, पाप बढ़ाने के लिए दान न दूँ।
६४३. न दुष्टुती मर्त्यो विन्दते वसु । ७/३२/२१ मनुष्य दुष्ट उपायों से धन प्राप्त नहीं कर सकता। अथवा बदनाम मनुष्य ऐश्वर्य को प्राप्त नहीं कर सकता।
६४४. परा णुदस्व मघवन्नमित्रान् । ७/३२/२५ हे ऐश्वर्यशालिन् ! तू शत्रुओं को परे धकेल दे, शत्रुओं को मार भगा।
६४५. भवा वृधः सखीनाम् । ७/३२/२५ हे परमात्मन् ! तू हमारे मित्रों का बढ़ानेवाला बन।
६४६.इन्द्र क्रतुं न आ भर । ७/३२/२६ हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! तू हमें कर्तृत्व शक्ति और धर्मयुक्त उत्तम बुद्धि प्रदान कर।
६४७. न किला रिषाथ । ७/३३/४ हे मनुष्यों ! तू क्षीण मत होओ (बलवान् बनो)।
६४८. आर्या ज्योतिरग्राः । ७/३३/७ आर्य प्रकाशधारक, प्रकाशदर्शक होते हैं।
६४६. अभि वो देवीं धियं दधिध्वम् । ७/३४/६ हे विद्वानों ! आप दिव्य बुद्धि को ध ारण करो।
६५०. राजा राष्ट्राणां पेशः । ७/३४/११ राजा राष्ट्रों का सौन्दर्य है।
६५१. अद्युं कृणोत शंसं निनित्सोः । ७/३४/१२ निन्दा करनेवाले के शासन को अथवा भाषण को निस्तेज कर दो।
६५२. युयोत विष्वग्रपस्तनूनाम् । ७/३४/१३ हे विद्वानों ! आप लोग मनुष्यों के दोषों को, शारीरिक पापों (चोरी, जारी, हिंसा) को सब उपायों से दूर करो।
६५३. न एषु नृषु श्रवो धुः । ७/३४/१८ हे विद्वानों ! हमारे नेता लोगों में अन्न, धन और यश धारण कराओ।
६५४. शं नो भगः । ७/३५/२ ऐश्वर्य हम लोगों को सुख देनेवाला हो।
६५५. शं नः पुरन्धिः । ७/३५/२ आकाश, विशालबुद्धि और राष्ट्र को धारण करनेवाली नारी-ये सब हमारे लिए शान्तिदायक हों।
६५६. शं न उरूची भवतु स्वधाभिः । ७/३५/३ गति करनेवाली पृथिवी हमें अन्नादि द्वारा शान्तिदायक हों।
६५७. शं नो मित्रावरुणौ । ७/३५/४ सूर्य और चन्द्रमा अथवा प्राण और अपान हमें शान्ति देनेवाले हों।

६५८. शं न इषिरो अभि वातु वातः । ७/३५/४ गतिशील वायु हमारे लिए कल्याणकारी होकर बहता है।

६५९. शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु । ७/३५/१२ सत्य भाषण आदि व्यवहार के पालन करनेवाले हमें शांति देनेवाले हों।

६६०. सदा नो दिव्यः पायुः सिषक्तु । ७/३७/८ दिव्य रक्षक परमेश्वर हमें सदा सुखों से संयुक्त करें।

६६१. उदु तिष्ठ सवितः श्रुध्यस्य । ७/३८/२ हे सर्वप्रेरक सविता ! आप इस (भक्त) की प्रार्थना को सुनिए और इसके हृदय-मन्दिर में प्रकाशित होइए।

६६२. श्रुष्टिर्विदथ्या समेतु । ७/४०/१ संगठन से प्राप्त होनेवाला सुख हमें प्राप्त हो।

६६३. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे । ७/४१/१ प्रभातवेला में ज्ञानस्वरूप और परमैश्वर्यशाली परमेश्वर को पुकारते हैं। उसका स्मरण और उपासना करते हैं।

६६४. प्रातः सोममुत रुद्रं हुवेम। ७/४१/१ हम प्रभातवेला में सौम्यस्वरूप और दण्ड देकर रुलानेवाले परमेश्वर को स्मरण, ध्यान करते हैं।

६६५. इदानीं भगवन्तः स्याम । ७/४१/४ हम वर्तमान समय में, इसी जीवन में भाग्यशाली, धनों के स्वामी हों।

६६६. वयं देवानां सुमतौ स्याम । ७/४१/४ हम आप्त विद्वानों की श्रेष्ठ मति में स्थिर रहें, विद्वानों की शोभनमति के अनुसार चलें।

६६७. यशसं कृधि नः । ७/४२/५ प्रभो ! हमें यशस्वी बना।

६६८. मा नो वधी रुद्र मा परा दाः । ७/४६/६ हे परमेश्वर ! तू न तो हमारा वध ा कर और नहीं हमें त्याग।

६६९. आपो देवीरिह मामवन्तु । ७/४९/२ सर्वव्यापक और आनन्दप्रद परमात्मा इस संसार में अवश्य इस जीवन में मेरी रक्षा करें अथवा दिव्यजल इस संसार में मेरी रक्षा करें।

६७०. शं नो भव द्विपदे शं चतुष्पदे । ७/५४/१ हे गृहपते ! तू हमारे दोपाये=मनुष्य आदि और चौपाये=गौ आदि के लिए कल्याणकारी हो।

६७१. आरे गोहा नृहा वधो वो अस्तु । ७/५६/१७ हे विद्वानों ! गोहत्यारा और मनुष्यघातक आप लोगों से दूर हो और वह पाप द्वारा दण्डनीय अथवा वध्य हो।

६७२. बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् । ७/५९/१२ हे सर्वज्ञ ऐश्वर्यवान् ! मैं मृत्यु के बन्ध ान से छूट जाऊँ परन्तु मोक्षप्राप्ति की कामना से कभी विरत न होऊँ।

६७३. स्याम तव प्रियासो अर्यमन् । ७/६०/१ हे न्यायकारी ! हम तेरे प्यारे हों।

६७४. शग्मासः पुत्रा अदितेरदब्धाः । ७/६०/५ अमृत पुत्र किसी से न दबनेवाले और सुख बढ़ानेवाले होते हैं।

६७५. परि द्वेषोभिरर्यमा वृणक्तु । ७/६०/९ न्यायाधीश द्वेषयुक्त जनों से सदा दूर रहे अथवा न्यायकारी राजा हमें शत्रुओं से दूर रखे।

६७६. द्रुहः सचन्ते अनृता जनानाम् । ७/६१/५ द्रोही मनुष्य लोगों की झूठी प्रशंसा ही

पाते हैं, सच्ची नहीं।

६७७. अपो न नावा दुरिता तरमे । ७/६५/३ जैसे नौका से जलों को पार करते हैं, वैसे ही हम सब पापों और दुःखों को पार करें।

६७८. सुप्रावीरस्तु स क्षयः । ७/६६/५ हमारा निवास-स्थान उत्तम प्रकार से सुरक्षित हो।

६७९. ते स्याम देव वरुण । ७/६६/९ हे आनन्दप्रद परमात्मन् ! हम तेरे होकर रहें।

६८०. अचेति केतुरुषसः पुरस्तात् । ७/६७/२ विशेष प्रज्ञा के उदय होने पर प्रकाशस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार होता है।

६८१. देवस्य श्लोकं सवितुर्मनामहे । ७/८२/१० हम सर्वजगदुत्पादक सर्वप्रेरक एवं आनन्दप्रद परमेश्वर की स्तुति करें।

६८२. उरुं न इन्द्रः कृणवदु लोकम् । ७/८४/२ ऐश्वर्यशाली राजा हम प्रजाजनों के रहने के लिए विशाल क्षेत्र प्रदान करे, नाना भूमियों को बसने के योग्य बनाएं।

६८३. कदा मृळीकं सुमना अभि ख्यम् । ७/८६/२ मैं कब निर्मल चरित होकर आनन्दमय परमात्मन् का साक्षात्कार करूँगा।

६८४. वयं स्याम वरुणे अनागाः । ७/८७/७ सर्वश्रेष्ठ परमात्मा के अधीन हम निष्पाप होकर रहें।

६८५. मा वपुर्दृशये निनीयात् । ७/८८/२ परमात्मन् मुझे साधना द्वारा ईश्वरसाक्षात्कार के लिए शरीर प्रदान करता है।

६८६. विश्वेन्नरः स्वपत्यानि चक्रुः । ७/९१/३ मनुष्य अपनी सन्तानों को सुप्रजा=सुसन्तान बनाए।

६८७. सरस्वतीमिन्महया । ७/९६/१ हे योगिन् ! तू ज्ञानदाता परमेश्वर की ही पूजा=उपासना किया कर।

६८८. भद्रमिद्भद्रा कृणवत्सरस्वती । ७/९६/३ सरस्वती (परमेश्वर, विद्या) कल्याण करनेवाली है, निःसन्देह कल्याण करती है।

६८९. न ते महित्वमन्वश्नुवन्ति । ७/९९/१ हे सर्वव्यापक परमात्मन् ! तेरी महिमा का पार कोई नहीं पा सकता।

६९०. मा वर्पो अस्मदप गूहे । ७/१००/६ परमात्मन् ! हमसे अपने तेजोमय रूप को मत छिपा।

६९१. इन्द्रासोमा तपतं रक्ष उब्जतम् । ७/१०४/१ हे शासक और प्रजाजन ! तुम दोनों राक्षसों, विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को मारो और जला दो अथवा उन्हें पीड़ित करो और उनका गर्व दूर करो।

६९२. न्यर्पयतं वृषणा तमोवृधः । ७/१०४/१ हे बलवान् (शासक व प्रजा) जनों ! तुम दोनों अज्ञान और अन्धकार बढ़ानेवाले लोगों को नीचे दबाओ।

६९३. इन्द्रासोमा समघशंसमभ्यघम् । ७/१०४/२ हे शासक और प्रजाजन ! तुम दोनों

मिलकर पाप की प्रशंसा करनेवाले और आक्रामक हिंसक को नष्ट करो।

६६४. दुष्कृते मा सुगं भूत् । ७/१०४/७ दुष्कर्मी, खोटे कर्म करनेवाले को कभी सुख नहीं मिलता।

६६५. न वा उ सोमो वृजिनं हिनोति । ७/१०४/१३ शान्तस्वरूप परमात्मा पापी को कभी नहीं छोड़ता, उसे अवश्य दण्ड देता है।

६६६. हन्ति रक्षो हन्त्यासद् वदन्तम् । ७/१०४/१३ परमात्मा! राक्षस (झूठ बोलनेवाले लोग) तेरे द्वारा कष्टमय जीवन को प्राप्त हों।

६६७. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि । ७/१०४/१५ यदि मैं प्रजा-पीड़क, दुःखदायी, राक्षस होऊँ, तो आज ही मर जाऊँ।

६६८. जहि रक्षसः पर्वतेन । ७/१०४/१६ हे राजन् ! राक्षसों को पर्वतास्त्र से, पुरुषार्थ से मार दे।

६६९. नूनं सृजदशनि यातमद्भ्यः । ७/१०४/२० राजा प्रजापीड़क राक्षसों पर विद्युदस्त्र, वज्र फेंके।

७००. इन्द्रो यातूनामभवत्पराशरः । ७/१०४/२१ राजा प्रजापीड़को, हिंसक राक्षसों पर दूर तक मार मारनेवाला हो।

७०१. दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र । ७/१०४/२२ हे राजन् ! राक्षसों को पाषाण के समान वज्र से अथवा जैसे सिल=बट्टे पर चटनी पीसते है, वैसे मारो।

७०२. विग्रीवासो मूरदेवा ऋदन्तु । ७/१०४/२४ दूसरों को मारनेवाले राक्षस ग्रीवारहित होकर नष्ट हो जाएँ।

७०३. मा चिदन्यद्वि शंसत सखायः । ८/१/१ हे मित्रों ! तुम सुखों के वर्षक, सर्वशक्तिमान् परमैश्वर्यशाली परमात्मन् की ही स्तुति करो।

७०४. क्वेयथ क्वेदसि । ८/१/७ हे परमात्मन् ! तू कहाँ गया ? तू कहाँ है ?

७०५. क ईशानं न याचिषत् । ८/१/२० भला, अपने स्वामी, परमात्मन् से कौन नहीं माँगाता ? सब माँगते है।

७०६. त्वं भा अनु चरः । ८/१/२८ हे मनुष्य ! तू प्रकाश के मार्ग का अनुसरण कर।

७०७. रेवाँ इद् रेवतः स्तोता स्यात् । ८/२/१३ ऐश्वर्यशाली परमात्मन् की उपासना कर भक्त भी धनाढ्य हो जाता है।

७०८. शिक्षा सचीवः शचीभिः । ८/२/१५ प्रभो ! मुझे भी शक्तियों से सशक्त बनाने का अनुग्रह करो।

७०९. पिबा सुतस्य रसिनः । ८/३/१ हे आत्मन् ! तू रसीले सोम का, प्रभु भक्ति के आनन्दामृत का पान कर।

७१०. मा नः स्तरभिमातये । ८/३/२ हे राजन् ! तू किसी अभिमानी शत्रु के स्वार्थ के लिए हमें पीड़ित मत कर।

७११. इन्द्रे ह विश्वा भुवनानि येमिरे । ८/३/६ सारे लोक-लोकान्तर परमैश्वर्यशाली

परमेश्वर द्वारा ही नियमित एवं व्यवस्थित होते हैं।

७१२. शग्धि स्तोमाय पूर्व्य । ८/३/११ हे चिरन्तन=आदि गुरो ! तू स्तुति करनेवाले के लिए सब=कुछ करने में समर्थ है।

७१३. कदु स्तुवत आ गमः । ८/३/१४ परमात्मन् ! तू स्तुतिकर्ता उपासक के पास कब आता है ?

७१४. मा भेम मा श्रमिष्म । ८/४/७ हे परमात्मन् ! हम न तो कभी डरें और न कभी थकें।

७१५. सं नः शिशीहि भुरिजोरिव क्षुरम् । ८/४/१६ हे पराक्रमी ! नाई के हाथ में विद्यमान तीक्ष्ण क्षुरे के समान हमारी बुद्धियों को तू अत्यन्त तीक्ष्ण कर।

७१६. वेमि त्वा पूषन्नृंजसे । ८/४/१७ हे सर्वपोषक परमात्मन् ! मैं तुझे प्रसन्न करना चाहता हूँ।

७१७. अस्माकं पूषन्नविता शिवो भव । ८/४/१८ हे सर्वपोषक ! तू हमारा रक्षक तथा हमारे लिए कल्याणकारी हो।

७१८. अहं सूर्य इवाजनि । ८/६/१० मैं सूर्य के समान ओजस्वी एवं तेजस्वी होऊँ।

७१९. इन्द्र प्राजसि क्षितीः । ८/६/२६ हे ऐश्वर्यशाली ! तू मनुष्यों पर प्रकृष्टरूप से शासन करता है।

७२०. अस्येक ईशान ओजसा । ८/६/४१ हे प्रभो ! आप अपने सामर्थ्य से अकेले ही सारे संसार के शासक हो।

७२१. युयुतं या अरातयः । ८/६/१ जो अदानशील हैं, उन्हें सदा दूर ही रखो।

७२२. त्वमग्ने व्रतपा असि । ८/११/१ हे प्रकाशस्वरूप ! तू व्रतों की रक्षा करनेवाला है।

७२३. त्वमस्मदप द्विषो युयोधि जातवेदः । ८/११/३ हे सर्वज्ञ! तू हमसे द्वेष करनेवालों और द्वेष भावनाओं को दूर कर।

७२४. विश्वा वसूनि दाशुषे व्यानशुः । ८/१२/२१ आत्मसमर्पण करनेवाले को, दानशील को सारे ऐश्वर्य प्राप्त होते है।

७२५. महान् हि षः । ८/१३/१ वह परमेश्वर निश्चय ही महान् और पूजनीय है।

७२६. भवा नः सुम्ने अन्तमः सखा वृधे । ८/१३/३ हे परमात्मन् ! सुख के लिए तू हमारे निकट आ, हमारे हृदय मन्दिर में रम जा और हमारी समृद्धि के लिए हमारा मित्र बन जा।

७२७. वृषा त्वं शतक्रतो वृषा हवः । ८/१३/३१ हे अनन्तकर्मा परमात्मन् ! तू सुखवर्षक है और तुम्हारे प्रति की गयी प्रार्थना कामनाओं को पूर्ण करनेवाली है।

७२८. येषामिन्द्रस्ते जयन्ति । ८/१६/५ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर जिनका सहायक होता है, वे विजय प्राप्त करते है।

७२९. इन्द्रो वृत्राणि जिघ्नते । ८/१७/८ राजा राष्ट्र के शत्रुओं को मारता है। आत्मा काम-क्रोध आदि शत्रुओं को नष्ट करता है।

७३०. इन्द्र प्रेहि पुरस्त्वम् । ८/१७/६ हे जीवात्मन् ! तू आगे बढ़, उन्नति कर।
७३१. इन्द्रो मुनीनां सखा । ८/१७/१४ परमेश्वर मुनियों=मननशील मनुष्यों का मित्र है।
७३२. अदितिः पात्वंहसः । ८/१८/६ परमात्मा, विदुषी माता, अखण्ड राज्यशक्ति हमें पाप से बचाए।
७३३. शं नस्तअतु सूर्यः । ८/१८/६ सूर्य हमारे लिए कल्याणकारक होकर तपे।
७३४. स्वैः ष एवै रिरिषीष्ट युर्जनः । ८/१८/१३ दुर्जन अपने ही कर्मों और आचरणों से मारा जाता है।
७३५. त्रिवरूथं मरुतो यन्त नश्छर्दिः । ८/१८/२१ हे विद्वान् पुरुषों ! हमें गरमी, सरदी और वर्षा-तीनों से बचानेवाला घर दो।
७३६. भद्रा रातिः । ८/१६/१६ परमात्मन् ! हमारा दिया हुआ दान कल्याणकारी हो।
७३७. नूला इदिन्द्र ते वयमूती अभूम । ८/२१/७ हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! तेरे संरक्षण मे हम सदा नये, सदा जवान और सदा स्फूर्तियुक्त रहते हैं।
७३८. दृळ्हश्चिद् दृह्य मघवन् मघत्तये । ८/२४/१० हे ऐश्वर्यशाली परमात्मन् ! तू ध ान दान करने के लिए कठोर से कठोर हृदय मनुष्य को भी दयार्द्र कर, पिघला दे।
७३६. नह्यंग नूतो त्वदन्यं विन्दामि राघसे । ८/२४/१२ हे सबके नायक ! मै ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए तुझसे भिन्न किसी को नहीं पाता हूँ।
७४०. इन्दुमिन्द्राय सिंचत । ८/२४/१३ हे मनुष्यों ! आत्मा के लिए सोमरस तैयार करो।
७४१. घृतात्स्वादीयो मधुनश्च वोचत । ८/२४/२० हे मनुष्यों ! घृत से भी अधिक स्वादिष्ट और मधु से भी अधिक मधुरवचन बोलो।
७४२. त्वं नो विश्वा अभिमातीः सक्षणिः । ८/२४/२६ हे राजन् ! तू हमारे सभी शत्रुओं को नष्ट कर।
७४३. सुमति न जुगुक्षतः । ८/३१/७ हे मनुष्यो ! अपनी बुद्धि को आच्छादित मत करो।
७४४. सुगा ऋतस्य पन्थाः । ८/३१/१३ सत्य, न्याय, धर्म और वेद का मार्ग सरल एवं सुख से गमन करने योग्य होता है।
७४५. न किर्वक्ता न दादिति । ८/३२/१५ वह परमात्मन् नहीं देता-ऐसा कहनेवाला कोई नहीं है।
७४६. पन्य इदुप गायत । ८/३२/१७ हे मनुष्यों ! प्रशंसनीय परमेश्वर के ही गीत गाओ।
७४७. वृषा त्वं शतक्रतो । ८/३३/११ हे सैकड़ों कर्म करनेवाले ! तू महाबलशाली और सुखवर्षक है।
७४८. स्त्रिया अशास्यं मनः । ८/३३/१७ स्त्री के मन पर शासन करना असम्भव है।
७४६. अधः पश्यस्व मोपरि । ८/३३/१६ हे नारि! तू नीचे देख, ऊपर न देख अर्थात् तूं विनयशील बन, उद्धत न बन।
७५०. दिवं यय दिवावसो । ८/३४/१ विद्याभिलाषी विद्यार्थिन् ! तू ज्ञान प्राप्त कर।
७५१. आ याह्यर्य आ परि । ८/३४/१० हे परमात्मन्! तू सब ओर से आ, हमारे

हृदय-मन्दिर में दर्शन दे।

७५२. ब्रह्म जिन्वतम् । ८/३५/१६ हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों दो राजहंसों और दो पथिकों की भाँति गमन करो।

७५३. हतं रक्षांसि सेधतममीवाः । ८/३५/१६ हे स्त्री-पुरुषो ! तुम दोनों दुष्ट पुरुषों, विघ्नकारियों को मारो और रोगों को दूर करो।

७५४. धेनूर्जिन्वतम् । ८/३५/१८ हे स्त्री-पुरूषों ! आप दोनों गौओं की वृद्धि करो, उन्हें पुष्ट करो।

७५५. अश्विना तिरो अह्नयम् । ८/३५/१६ हे स्त्री-पुरूषों ! आप दोनों प्रातः-सायं कृत्यों (सन्ध्या-यज्ञ) का अनुष्ठान किया करो।

७५६. अग्निः स द्रविणोदाः । ८/३६/६ वह ज्ञानस्वरूप! धन-प्रदाता है।

७५७. ओजो दासस्य दम्भय । ८/४०/६ हे राजन् ! तू दास=क्षयकारी,तोड़ फोड़ करनेवाले के बल को नष्ट कर।

७५६. अति विश्वा दुरिता तरेम । ८/४२/३ हम सब दुष्कर्मों, बुराइयों को पार कर जाएँ।

७५७. सुतर्माणमधि नावं रुहेम । ८/४२/३ हम सुख अथवा सुगमता से पार उतारनेवाली वेदवाणी रूपी अथवा यज्ञरूपी नौका पर चढ़ जाएँ, उनका आश्रय लें।

७५८. सखा सख्या समिध्यसे । ८/४३/१४ आत्मा का परमस्नेही परमात्मा अपने मित्र आत्मा के द्वारा जाना जाता है।

७५६. अग्निमीळे स उ श्रवत् । ८/४३/२४ मैं ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुति करता हूँ, वही वस्तुतः सब कुछ सुननेवाला है।

७६०. भिन्धि द्वेषः सहसकृत । ८/४४/११ हे बलसम्पन्न ! तू द्वेष करने वालों को छिन्न-भिन्न कर।

७६१. अग्नेः सख्यं वृणीमहे । ८/४४/२० हम परमात्मा की मित्रता का वरण करते हैं।

७६२. यस्ते वष्टि ववक्षि तत् । ८/४५/६ हे परमात्मन् ! जो तुझसे किसी पदार्थ की कामना करे, उसे तू वह पदार्थ प्रदान कर।

७६३. यद् वीळयासि वीळु तत् । ८/४५/६ हे प्रभो ! जिसे तू बलवान् बनाता है, वह बलवान् हो जाता है।

७६४. भिन्धि विश्वा अप द्विषः । ८/४५/४० हे राजन् ! तू समस्त शत्रुओं को छिन्न-भिन्न कर डाल।

७६५. ईशानं राय ईमहे । ८/४६/६ हम सबके स्वामी परमेश्वर से धन की याचना करते हैं।

७६६. नहि ते शूर राधसोऽन्तं विन्दामि सात्रा । ८/४६/११ हे शूर ! दुष्टनाशक परमात्मन् ! सचमुच मैं तेरे धनैवर्श्य का अन्त नहीं पाता हूँ।

७६७. स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि । ८/४७/५ हम लोग परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की शरण

में ही रहें।

७६८. नेह भद्रं रक्षस्विने । ८/४७/१२ इस संसार में राक्षसी बलवालों का कल्याण नहीं होता।

७६९. अपाम सोमममृता अभूम । ८/४८/३ हमने सोम (शान्ति और समतारूपी अमृतरस का) पान कर लिया और हम अमर हो गये।

७७०. अगन्म ज्योतिरविदाम देवान् । ८/४८/३ हमने परमात्मारूपी ज्योति प्राप्त कर ली और शुभगुणों का पा लिया, जीवन में धारण कर लिया है।

७७१. प्र ण आयुर्जीवसे सोम तारीः । ८/४८/४ हे सौम्यस्वरूप ! तू दीर्घ जीवन के लिए हमारी आयु को बढ़ा।

७७२. त्वं हि नस्तन्वः सोम गोपाः । ८/४८/९ हे सौम्यस्वरूप ! तू ही हमारे शरीरों का रक्षक है।

७७३. मा नो निद्रा ईशत मोत जल्पिः । ८/४८/१४ न तो निद्रा=आलस्य हमपर शासन करे और न बकवास=वितण्डावाद।

७७४. वसुत्वना सदा पीपेथ दाशुषे । ८/५०/६ परमेश्वर अपने महान् ऐश्वर्य द्वारा अपने आत्मसमर्पण भक्त का सदा पालन करता है।

७७५. विश्वा द्वेषांसि जहि । ८/५३/४ सब शत्रुओं को, द्वेषों और द्वेषभावनाओं को मार भगाओ।

७७६. त्वमस्माकं शतक्रतो । ८/५४/८ हे अनन्तकर्मा! तू हमारा है।

७७७. एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः । ८/५८/२ एक ही सूर्य समस्त विश्व को प्रकाश देने और पिण्डों को थामने में समर्थ होता है।

७७८. एकैवोषाः सर्वमिदं वि भाति । ८/५८/२ एक ही उषा इस सारे विश्व को प्रकाशित कर देती है।

७७९. अग्न आ याह्यग्निभिः । ८/६०/१ हे प्रकाशस्वरूप ! तू समस्त प्रकाशों के साथ आ, हमारे हृदय-मन्दिर में दर्शन दे।

७८०. अग्ने कविर्वेधा असि । ८/६०/३ हे ज्ञानस्वरूप ! तू क्रान्तदर्शी ओर कर्मफल-प्रदाता है।

७८१. शोचा शोचिष्ठ दीदिहि । ८/६०/६ हे सुन्दरतम ! प्रकाशस्वरूप ! तू अपने तेज से चमक और दमक।

७८२. दह मित्रमहो यो अस्मध्रुक् । ८/६०/७ हे मित्रों में पूज्यतम ! जो हमसे द्वेष करता है, तू उसे भस्म कर दे।

७८३. मा नो रक्ष आ वेशीदाघृणीवसो । ८/६०/२० हे राष्ट्र के बसानेवाले तेजस्वी राजन् ! हमारे अन्दर नाशकारी उपद्रवी न आ धुसें।

७८४. यद्यद्यामि तदा भर । ८/६१/६ परमात्मन् ! मैं जो जो माँगूँ, वही मुझे प्रदान कर।

७८५. नो अभयं कृधि । ८/६१/१३-परमात्मन् ! हमें निर्भय बना दे।

७८६. आरे अस्मत् कृणुहि दैव्यं भयम् । ८/६१/१६ परमात्मन् ! हमारे दैवीभय=अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि को दूर कर।

७८७. महाँ असुन्वतो वधः । ८/६२/१२ उपासना=-भक्ति, यज्ञ न करनेवाले का महाविनाश होता है।

७८८. भूरि ज्योतींषि सुन्वतः । ८/६२/१२ उपासक को, यज्ञकर्ता को बहुत सी ज्ञान-ज्योतियाँ प्राप्त होती है।

७८९. अव ब्रह्मद्विषो जहि । ८/६४/१ हे राजन् ! तू वेद, ज्ञान और ईश्वर से द्वेष करनेवाले को मार भगा।

७९०. पदा पणी रराधसो नि बाधस्व । ८/६४/२ हे प्रभो ! तू यज्ञ, दान और उपासनारहित धनिकों को पैरों से कुचल डाल।

७९१. नहि त्वा कश्चन प्रति । ८/६४/२ हे परमेश्वर ! तेरे जैसा कोई नहीं है।

७९२. त्वं राजा जनानाम् । ८/६४/३ हे प्रभो ! तू सब प्राणियों का राजा, शासक है।

७९३. ब्रह्मा कस्तं सपर्यति । ८/६४/७ कौन ब्रह्मावेत्ता उस परमात्मा की उपासना करता है।

७९४. शविष्ठ श्रुधि मे हवम् । ८/६६/१२ हे सर्वशक्तिमान् ! मेरी पुकार सुन।

७९५. वयं घा ते । ८/६६/१३ हे ऐश्वर्यशाली ! हम तेरे हैं।

७९६. इन्द्र विप्रा अपि ष्मसि । ८/६६/१३ हे परमैश्वर्यशाली ! हम ज्ञानीजन भी तेरे ही अधीन, तुझमें ही निमग्न रहें-मोक्ष प्राप्त करें।

७९७. न आस्नो वृकाणामादित्यासो मुमोचत । ८/६७/१४ हे सूर्य के समान तेजस्वी वीरों ! आप हमें भेड़ियों के मुख-दुष्ट मनुष्यों के चंगुल से छुड़ाओ।

७९८. ते स्वादु सख्यम् । ८/६८/११ हे परमात्मन् ! तेरी मित्रता अत्यन्त मधुर है।

७९९. अपस्फुरं गृभायत । ८/६९/१० हे शासनाधिकारियों ! आप कुमार्ग में जानेवाली प्रजा को पकड़ो और जेल में डाल दो।

८००. सुदेवो असि वरुण । ८/६९/१२ हे वरणीय ! तू सर्वश्रेष्ठ देव=दानशील है।

८०१. दासं शिश्नथो हथैः । ८/७०/१० हे राजन् ! तू तोड़-फोड़ करने वाले को शस्त्रों से मार डाल।

८०२. त्वं नो अग्ने महोभिः पाहि । ८/७१/१ हे ज्ञानस्वरूप ! तू अपनी महान् शक्तियों द्वारा हमारी रक्षा कर।

८०३. उरुष्याणो मरा परा वाः । ८/७१/७ हे सर्वज्ञ ! तू हमारी रक्षा कर, हमारा त्याग मत कर।

८०४. मा परा दा अघायते जातवेदः । ८/७१/७ हे सर्वज्ञ ! तू हमें पापकारी, हिंसक के हाथ में मत सौंप।

८०५. अग्निमीळिष्वावसे । ८/७१/१४ हे स्तुति करनेवाले मनुष्य ! तू अपनी रक्षा के लिए ज्ञानस्वरूप परमेश्वर की स्तुति कर।

८०६. पावक श्रुधी हवम् । ८/७४/११ हे शोधक ! पवित्रकारक ! हमारी टेर, पुकार को सुन।

८०७. नमस्ते अग्न ओजसे । ८/७५/१० हे प्रकाशस्वरूप ! तेरे पराक्रम के लिए नमस्कार है।

८०८. अमैरमित्रमर्दय । ८/७५/१० हे परमात्मन्! तू अपने बलों से शत्रुओं को कुचल डाल।

८०६. विश्वं शृणोति पश्यति । ८/७८/५ ऐश्वर्यशाली परमेश्वर सब-कुछ सुनता और देखता है।

८१०. भवा नः सोम शं हृदे । ८/७६/७ हे सौम्यस्वरूप ! सोमरस=आध्यात्मिक आनन्द के स्रोत ! तू हमारे हृदय के लिए सुखकारक हो।

८११. प्रथमं नो रथं कृधि । ८/८०/५ हे परमात्मन् ! तू हमारे जीवन-रथ को सर्वप्रथम, सबसे आगे कर।

८१२. प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् । ८/८०/१० मनुष्य को चाहिए कि प्रातः ब्रह्ममुहूर्त में ध्यान-समाधि द्वारा परमात्मा का साक्षात्कार करे।

८१३. त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः पाहि । ८/८४/३ हे सर्वशक्तिमान् ! तू दानशील, आत्मसमर्पक मनुष्य की रक्षा कर।

८१४. नृः पाहि शृणुधी गिरः । ८/८४/३ हे सर्वशक्तिमान् ! तू मनुष्यों की पुकार सुन और उनकी रक्षा कर।

८१५. मर्जयन्त सुक्रतुम् । ८/८४/८ शोभन=उत्तम कार्म करने वाले को अलंकृत=पुरस्कृत करो।

८१६. देवास्त इन्द्रसख्याय येमिरे । ८/७८/२ हे ऐश्वर्यशाली ! विद्वान् लोग, योगिजन तेरी मित्रता के लिए अपने आप को यम-निमय में बाँधते हैं।

८१७. हनो वृत्रं जया स्वः । ८/८६/४ हे ज्ञानिन् ! तू अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करके परम सुख को प्राप्त कर।

८१८. त्वं हि सत्यो मघवन्ननानततः । ८/६०/४ हे परमैश्वर्यशाली ! तू ही सत्य=अपरिर्वतनशील और किसी के भी समक्ष झुकनेवाला नहीं है।

८१६. न त्वामिन्द्राति रिच्यते । ८/६२/१४ हे परमैश्वर्यशाली ! तुझसे बढ़कर और कोई नहीं है।

८२०. एवा ह्यसि वीरयुः । ८/६२/२८ हे परमात्मन् ! तू निःसन्देह वीरों को चाहनेवाला, वीरों से प्रेम करनेवाला है।

८२१. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भुवः । ८/६२/३० हे मानव ! तू यज्ञ के ब्रह्मा के समान आलस्ययुक्त मत बन, तू ज्ञानी बनकर आलसी मत हो।

८२२. मत्स्वा सुतस्य गोमतः । ८/६२/३० हे मनुष्य ! तू गोदुग्ध से युक्त अन्नादि से तृप्त हो।

८२३. **त्वमस्माकं तव स्मसि। ।** **८/६२/३२** हे परमात्मन् ! तू हमारा है और हम तेरे है।

८२४. **सर्वं तदिन्द्र ते वशे ।** **८/६३/४** हे परमात्मन् ! संसार में जो कुछ है, सब तेरे वश में है।

८२५. **अजातशत्रुरस्तृतः ।** **८/६३/१५** अजातशत्रु (निर्वैर मनुष्य) कभी किसी से हिंसित नहीं होता।

८२६. **श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र ।** **८/६५/४** हे परमैश्वर्यशाली ! तू शरणागत की पुकार सुन।

८२७. **इमा विश्वाः पृतना जयासि ।** **८/६६/७** हे राजन् ! तू सब फिसादियों (झगड़ालुओं) पर विजय प्राप्त कर।

८२८. **द्रुणा न पारमीरया नदीनाम् ।** **८/६६/११** हे परमात्मन्! जैसे नाविक नदी के पार ले जाता है, उसी प्रकार तू हमें संसाररूपी नदी से पार ले जा।

८२९. **उप भूष जरितः ।** **८/६६/१२** हे स्तुतिकर्ता ! तू अपने आपको परमात्मा के गुणों से अलंकृत और सुभूषित कर ।

८३०. **इष्यामि वो वृषणे युध्यताजौ ।** **८/६६/१४** हे बलशाली लोगों ! मैं चाहता हूँ कि आप लोग संग्राम में शत्रुओं से युद्ध करो, जीवन संग्राम में संघर्षों से जूझो।

८३१. **त्वं शुष्णस्यावातिरः ।** **८/६६/१७** हे बलशालिन् ! तू प्रजा पीड़क दुष्ट का नाश कर।

८३२. **त्वं गा इन्द्र शच्येदविन्दः ।** **८/६६/१७** हे राजन् ! तू अपनी सामर्थ्य से भूमियों को अपने अधीन कर।

८३३. **स वाजस्य श्रवस्यस्य दाता ।** **६/६६/२०** वह परमैश्वर्यशाली परमेश्वर हमें बल, शक्ति, विज्ञान और यश प्रदान करनेवाला हो।

८३४. **वज्रिन् द्यावा रेजेते पृथिवी च भीषा ।** **६/६७/१४** हे वज्रधारी ! सूर्य और पृथिवी सब तेरे भय से काँपते, गति करते हैं।

८३५. **एन्द्र नो गधि ।** **८/६८/४** हे परमैश्वर्यशाली ! तू हमें प्राप्त हो।

८३६. **त्वं न इन्द्रा भर ओजो नृम्णम् ।** **८/६८/१०** हे परमैश्वर्यशाली ! तू हमें बल, पराक्रम और ऐश्वर्य प्रदान कर।

८३७. **त्वं हि नः पिता वसो ।** **८/६८/१०** हे सबमें व्यापक ! तू निश्चय ही हमारा पिता है।

८३८. **त्वं माता शतक्रतो ।** **८/६८/११** हे अपरिमित ज्ञान और अनन्त कर्म करनेवाले परमात्मन् ! तू ही हमारी माता है।

८३९. **विश्वतूरसि त्वं सूर्य तरुष्यतः ।** **८/६६/५** हे शत्रुनाशक परमात्मन् ! तू समस्त विश्व का संचलक और संचालक और समस्त शत्रुवर्ग का नाशक है, अतः तू हिंसकों और पीड़कों को नष्ट कर।

८४०. असश्च त्वं दक्षिणतः सखा मे । ८/१००/२ हे परमात्मन् ! तू मेरी दाहिनी और रहनेवाला मेरा सबसे प्रबल सखा है।

८४१. अयमस्मि जरितः पश्य मेह । ८/१००/४ हे स्तुति करनेवाले ! मैं हूँ, मुझे अपने समीप देख, संसार के कण-कण में निहार।

८४२. हनाव वृत्रम् । ८/१००/१२ हे परमात्मन् ! तू और मैं-हम दोनों मिलकर शत्रुओं को मारें, अज्ञान को नष्ट करें।

८४३. बण्महाँ असि सूर्य । ८/१०१/११ हे तेजपुंज परमेश्वर ! तू सचमुच महान् है।

८४४. विभु ज्योतिरदाभ्यम् । ८/१०१/१२ हे परमात्मन् ! तू सर्वव्यापक, प्रकाशस्वरूप और अविनाशी है।

८४५. मा गामनागामदितिं वधिष्ट । ८/१०१/१५ हे ज्ञानिन् ! तू न मारने योग्य और निष्पाप गौओं का वध मत कर।

८४६. गामा मावृक्त मर्त्यो दभ्रचेताः । ८/१०१/१६ अल्पज्ञ मनुष्य वेद का त्याग न करे।

८४७. वरिवोधातमो भव । ९/१/३ हे मनुष्य ! तू बहुत धन देनेवाला बन।

८४८. इन्दो त्वे न आशसः । ९/१/५ हे परमात्मन्! हमारी आशाएँ, इच्छाएँ तुझमे समर्पित रहती हैं।

८४९. इन्द्रमिन्दो वृषा विश । ९/२/१ हे आत्मन् ! तू अपने सामर्थ्य से परमात्मा में प्रवेश कर। तू ब्रह्मनिष्ठ बन।

८५०. मध्वः पवस्व धारया । ९/२/९ हे सोम ! तू आनन्दरस की मधुर धाराओं से हमें पवित्र कर।

८५१. आत्मा यज्ञस्य पूर्व्यः । ९/२/१० आत्मा जीवन यज्ञ का मुख्य आधार है।

८५२. हरिः पवित्रे अर्षति । ९/३/९ दुःखों का हरण करनेवाला परमात्मा पवित्र हृदय में छलकता है, दर्शन देता है।

८५३. इन्दविन्द्र इति क्षर । ९/६/२ हे परमात्मन् ! तू इन्द्र है, परमैश्वर्यशाली है, अतः अपना आनन्दरस बहा, हमारी आत्मा को अपने आनन्दरस से सींच।

८५४. मघोन आ पवस्व नः । ९/८/७ हे सोम ! हम शम-दमादि षट्क-सम्पत्ति साधकों के लिए रस बहा, भक्तों के हृदयों को आनन्दरस से सींच।

८५५. इन्दो सखायमा विश । ९/८/७ हे परमात्मन्! तू अपने सखा जीवात्मा में प्रविष्ट हो।

८५६. नमसेदुप सीदत । ९/११/६ हे मनुष्यों ! तुम नमस्कार करके ही विद्वानों के समीप बैठो।

८५७. इन्दुमिन्द्रे दधातन । ९/११/६ परमैश्वर्यशाली परमात्मा के लिए अपने आपको समर्पित करो।

८५८. इन्दविन्द्रेण नो युजा । ९/११/९ हे रसीले परमात्मन् ! तू हमें आत्मशक्ति से युक्त

कर।

८५६. **पुनीहीन्द्राय पातवे । ६/१६/३** हे मानव ! इन्द्र=ब्रह्मानन्दरस का पान करने लिए तू अपने को शुद्ध, पवित्र और निर्मल बना।

८६०. **मदेषु सर्वधा असि । ६/१८/१** हे आनन्दप्रद ! आनन्द देनेवालों में सबसे अधिक तू है।

८६१. **त्वं विप्रस्त्वं कविः । ६/१८/२** हे मनुष्य ! तू मेधावी, ज्ञानी और कवि है।

८६२. **भियसमा धेहि शत्रुषु । ६/१६/६** हे नरनायक ! तू हमारे शत्रुओं में, उनके हृदयों में भय उत्पन्न कर, उन्हें स्वीकार कर दे।

८६३. **इन्दो सखित्वमुश्मसि । ६/३१/६** हे आनन्ददायक परमात्मन् ! हम तुझसे मित्रता की कामना करते है। हम तेरी ही मित्रता चाहते है।

८६७. **तरत् स मन्दी धावति । ६/५८/१** स्तुति कर्ता ईश्वर के आनन्द में मस्त होकर त्रिविध तापों, पापों, दुःखों और संसार-सागर से तर जाता है।

८६८. **पवमान जहि मृधः । ६/६१/२६** आत्मन् ! तू काम क्रोधादि हिंसक शत्रुओं को पराजित कर।

८६६. **रक्षा समस्य नो निदः । ६/६१/३०** हे सोम ! तू हमारे शत्रुओं से हमारी उत्तम प्रकार से रक्षा कर।

८७०. **स्वदन्ति गावः पयोभिः । ६/६२/५** गौएँ आपने दूध से भोजन को मधुर बनाती है।

८७१. **कृण्वन्तो विश्वमार्यम् । ६/६३/५** हे मनुष्यों ! सारे संसार को आर्य बनाओ।

८७२. **वायुमारोह धर्मणा । ६/६३/२२** हे मनुष्य ! तू अपने धारकबल से उच्चपद पर आरूढ़ हो जा।

८७३. **पिप्रः समुद्रमा विश । ६/६३/२३** हे मनुष्य ! तू समुद्र (ब्रह्म) में प्रवेश कर, समुद्र का अन्वेषण कर।

८७४. **सत्यं वृषन् वृषेदसि । ६/६४/२** हे सुख एवं बलवर्धक ! यह सत्य है कि तू सुखपूर्वक और बलवर्धक है।

८७५. **अक्रान् देवो न सूर्यः । ६/६४/६** हे परिव्राजक विद्वान् ! तू सूर्य के समान तेजस्वी होकर देश-देशान्तर में भ्रमण कर।

८७६. **मज्जन्त्यविचेतसः । ६/६४/२१** अज्ञानी लोग भवसागर में डूब जाते हैं।

८७७. **सखित्वमा वृणीमहे । ६/६५/६** हे परमात्मन् ! मित्रता के लिए हम तेरा वरण करते हैं।

८७८. **महाँ असि सोम ज्येष्ठः । ६/६६/१६** हे परमात्मन् ! तू बड़ा है, श्रेष्ठ है।

८७६. **आरे बाधस्व दुच्छुनाम् । ६/६६/१६** हे परमात्मन्! तू हमसे कुत्ते के समान दुष्ट मनुष्यों और कुत्ते के समान, खुशामद, चापलूसी तथा थुके हुए को चाटने की वृत्ति को दूर कर दे।

८८०. पुनान इन्दुरिन्द्रमा । ९/६६/२८ पवित्र करते हुए परमैश्वर्यशाली परमात्मन् आत्मा के पास आता है, आत्मा को प्राप्त होता है।

८८१. आयुः पवत आयवे । ९/६७/८ हे सोम ! तू दीर्घायु के लिए जीवन को पवित्र बना।

८८२. पवस्व सोम मन्दयन्निन्द्राय । ९/६७/१६ हे सोम ! तू आत्मा को आनन्द देने के लिए प्रवाहित हो, हृदय-मन्दिर में छलक।

८८३. मां पुनीहि विश्वतः । ९/६७/२५ हे आनन्दप्रद ! मुझे अन्दर बाहर सब ओर से पवित्र कर दे।

८८४. पुनन्तु मां देवजनाः । ९/६७/२७ दिव्यजन मुझे पवित्र करें।

८८५. जातवेदः पुनीहि मा । ९/६७/२७ सर्वज्ञ परमेश्वर मुझे पवित्र करे।

८८६. सं दक्षेण मनसा जायते कविः । ९/६८/६ दक्षता युक्त मन से मनुष्य कवि, विशेष ज्ञानी बन जाता है।

८८७. नेन्द्रादृते पवते धाम किं चन । ९/६९/६ परमैश्वर्यशाली परमात्मा की प्रेरणा के बिना कोई भी लोक गति नहीं कर सकता।

८८८. यूयं हि सोम पितरो मम स्थन । ९/६९/८ हे सोमकणों-वीर्यबिन्दुओं ! तुम ही मेरे पितर और रक्षक हो, अर्थात् ब्रह्मचर्य ही जीवन है।

८८९. पुरा नो बाधाद् दुरितानि पारय । ९/७०/८ हे आनन्ददायक परमात्मन् ! हमें दुःख देनेवाल पाप से तू पहले से ही, आरम्भ से ही दूर रख। अथवा परमात्मन् ! कष्ट आने से पहले ही तू हमें बुरे आचरण से बचा।

८९०. क्षेत्रविद्धि दिश आहा विपृच्छते । ९/७०/९ जाननेवाला ही मार्ग पूछनेवाले को ठीक-ठाक मार्ग बता सकता है।

८९१. शूरो न युध्यन्नव नो निदः स्पः । ९/७०/१० हे सोम ! तू शूर की भाँति युद्ध करता हुआ हमारी रक्षा कर तथा हमारे निन्दकों और शत्रुओं को पराजित करके दूर कर।

८९२. सत्यस्य नावः सुकृतमपीपरन् । ९/७३/१ सत्य की नौकाएँ सकर्मी को, सदाचारी को पार उतार देती है।

८९३. पवित्रवन्तः परि वाचमासते । ९/७३/३ पवित्रता के अभिलाषी, सदाचारी जन चारो और से वेदवाणी का आश्रय लेते है।

८९४. पदेपदे पाशिनः सन्ति सेतवः । ९/७३/४ पद-पद पर बाँधनेवाले भी है और पार उतारने वाले उद्धारक भी हैं।

८९५. ऋतस्य पन्थां न तरन्ति दुष्कृतः । ९/७३/६ दुष्ट मनुष्य सत्य के मार्ग से पार नहीं जा सकते, सत्य के मार्ग पर नहीं चल सकते।

८९६. वाचं पुनन्ति कवयो मनीषिणः । ९/७३/७ मनस्वी और तत्त्वज्ञानी विद्वान् अपनी वाणी को पवित्र करते हैं।

८९७. ऋतस्य गोपा न दभाय सुक्रतुः । ९/७३/८ सत्य का प्रचारक, यज्ञ, धर्म और

वेद का संरक्षक, उत्तमकर्म कर्मा मनुष्य किसी से दबाया नहीं जा सकता।

८९८. **अव्रा कमव पदात्यप्रभुः । ९/७३/९** जो कर्म करने में असमर्थ होता है, वह इस संसार में नीचे गिरता है।

८९९. **उर्वी गव्यूतिरदितेर्ऋतं यते । ९/७४/३** मुमुक्षु के लिए तो अविनाशी प्रभु का मार्ग ही सबसे बड़ा मार्ग है।

९००. **नरो हितमव मेहन्ति पेरवः । ९/७४/४** नेतागण रक्षक होते हैं और वे हितकारक पदार्थों की दृष्टि करते है, जनता का हित करते हैं।

९०१. **ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियम् । ९/७५/२** सत्यवादी अथवा सदाचारी की जिह्वा माधुर्ययुक्त प्रिय वचन बहाती, बोलती है।

९०२. **कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रय स्य । ९/७७/१** मधुर सोम=आनन्ददायक भक्ति रस आत्मा के आनन्दमय कोश में निनाद किया करता है।

९०३. **जहि शत्रुमन्तिके दूरके च यः । ९/७८/५** हे सोम ! जो शत्रु दूर या समीप हैं, उन सबको मारो, पराजित करो, दूर भगाओ।

९०४. **सनिषन्त नो धियः । ९/७९/१** हमारी बुद्धियाँ (बुद्धि से सोचे गये तथा बुद्धिपूर्वक किये गये कार्य) सफल हों।

९०५. **पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते । ९/८३/१** हे ज्ञान के स्वामिन् ! तेरा पवित्र करने वाला तेज सर्वत्र फैला हुआ है।

९०६. **अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते । ९/८३/१** जिसने तप के द्वारा अपने शरीर को तपाया नहीं है, ऐसा कच्चा मनुष्य अथवा शम, दम आदि तपरहित, अपरिपक्व बुद्धि उस परम पावन परमात्मन् को नहीं पा सकता।

९०७. **कृधी नो अद्य वरिवः स्वस्तिमत् । ९/८४/१** हे सोम ! हमारे लिए आज ही कल्याण करने वाला धन प्रदान कर।

९०८. **द्रविणस्वन्त इह सन्त्विन्दवः । ९/८५/१** परमात्मन्! उपासक इस संसार में धन धान्य से सम्पन्न हों।

९०९. **उरुं नो गातुं कृणु सोम मीढ्वः । ९/८५/४** हे परमानन्दप्रद ! तू हमारे लिए उन्नति का मार्ग प्रशस्त कर।

९१०. **इन्दवो मदिन्तमासः परि कोशमासते । ९/८६/१** आनन्द बढ़ाते हुए सोमविन्दु (भक्त रस की बूँदें) हमारे हृदयरूपी पात्र में आते हैं।

९११. **सोमः पुनानः कलशेषु सीदति । ९/८६/६** सोम=आनन्दप्रद परमात्मा पवित्र किये हुए हृदय मन्दिर में रहता है, ठहरता है।

९१२. **सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरम् । ९/८६/१६** मित्र मित्र की बात को नहीं टालता है।

९१३. **पवस्व सोम दिव्येषु धामसु । ९/८६/२२** हे सोम ! तू दिव्यधाम-शुद्ध, पवित्र, वासनारहित हृदयों में छलक, प्रवाहित हों, दर्शन दें।

६१४. त्वं समुद्रो असि विश्ववित् कवे । ६/८६/२६ हे परमात्मन् ! तू सर्वज्ञ और आनन्द का सागर है।

६१५. तव व्रते सोम तिष्ठन्तु कृष्टयः । ६/८६/३७ हे आनन्दप्रद! मनुष्य तेरे व्रत=नियमों में रहे, तेरे नियमों का पालन करें।

६१६. ऋषिर्विप्रः पुरएता जनानाम् । ६/८७/३ क्रान्तदर्शी, मन्त्रद्रष्टा ब्राह्मण ही जनता का सच्चा नेता होता है।

६१७. रुजा दृळ्हा चिद्रक्षसः सदांसि । ६/६१/४ हे सोम ! तू राक्षसों के सुदृढ़ स्थानों को नष्ट कर।

६१८. विश्ववार सूक्ताय पथः कृणुहि प्राचः । ६/६१/५ सबके द्वारा वरणीय ! तू स्तुति करनेवाले उपासक के हितार्थ प्राचीन मार्गों का उपदेश कर।

६१६. इन्दो वि ष्या मनीषाम् । ६/६५/५ हे इन्दो! तू बुद्धि के यज्ञ=श्रेष्ठकर्म करने की प्रेरणा दे।

६२०. पवस्व स्वस्तये सर्वतातये बृहते । ६/६६/४ हे राजन् ! तू प्रजा के तथा विश्वजनीन कल्याण के लिए उद्योग कर।

६२१. सोमो विराजमनु राजति । ६/६६/१८ चन्द्रमा सूर्य के पीछे प्रकाशित होता है।

६२२. समुद्रं तुरीयं धाम मदिरो ममत्तु । ६/६६/१६ योगशक्ति से सम्पन्न महाशक्तिशाली ही सर्वरसों की खान परमपद परमात्मा अथवा मोक्ष को प्राप्त करता है।

६२३. इन्द्रं ते रसो महिषो विवक्ति । ६/६६/२१ हे सोम ! तेरा रस आनन्द बढ़ाने वाला होकर इन्द्र=आत्मा के आनन्द को बढ़ाए।

६२४. अपघ्नन्नेषि पवमान शत्रून् । ६/६६/२३ हे सोम ! तू शत्रुओं का नाश करके लौटता है।

६२६. ग्रन्थिं न वि ष्य ग्रथितम् । ६/६७/१८ हे विद्वन् ! तू स्वयं पवित्र होकर पाप-पंक में फंसे हुए मुझे पाप से ऐसे पृथक् कर दे जैसे कोई गाँठ खोलता है।

६२७. सुपर्णोऽव चक्षि सोम । ६/६७/३३ प्रभो ! पालन पोषण करने की शक्तियों से युक्त तू चारों ओर देख।

६२८. अप श्वानं श्नथिष्टन सखायो दीर्घजिह्वयम् । ६/१०१/१ हे मित्रों ! तू लम्बी जीभ निकाले हुए कुत्ते को, लोभी मनुष्य और लोभ वृत्तियों को दूर भगाओ।

६२६. अप श्वानमराधसं हता । ६/१०१/१३ परमात्मन्-आराधना से हीन (नास्तिक) कुत्ते को दूर भगाओ।

६३०. सखाय आ नि षीदत । ६/१०४/१ हे मित्रों ! आओ, प्रभु उपासना के लिए एक साथ मिलकर बैठो।

६३१. अपादेवं द्वयुमंहो युयोधि नः । ६/१०४/६ हे सोम ! तू नास्तिक और दो प्रकार का व्यवहार करनेवाले (छली-कपटी) को दूर कर तथा हमें पाप से बचा।

६३२. रुचे भव । ६/१०५/५ हे मनुष्य ! तू शोभा के लिए हो। तू शोभनीय बन। तू संसार

में चमक। तू दिव्य जीवन जी।

६३३. इन्द्रायेन्दो परि स्रव । ६/१०६/४ हे रसीले परमात्मन् ! तू इन्द्र=आत्मा के लिए प्रवाहित हो, तू हृदय-मन्दिर को अपने रस से सींच दे।

६३४. द्युमन्तं शुष्ममा भरा स्वर्विदम् । ६/१०६/४ हे आनन्दप्रद परमात्मन् ! तू हमें दीप्तिमय और आनन्द देने वाला बल प्रदान कर।

६३५. पवित्रं पर्येषि विश्वतः । ६/१०६/१४ परमात्मन् ! तू पवित्रहृदय मनुष्य को ही चारो ओर से प्राप्त होता है।

६३६. उत्सो देव हिरण्ययः । ६/१०७/४ देव ! तू हितरमणीय ज्ञान और आनन्द का निर्झर=स्रोत, फव्वारा है।

६३७. तवाहं सोम रारण सख्ये । ६/१०७/१६ हे परमात्मन्! मैं तेरी मित्रता में प्रतिदिन आनन्दित होऊँ।

६३८. इन्द्रस्य हार्दि सोमधानमा विश । ६/१०८/१६ हे सोम ! तू आत्मा के हृदयरूपी कलश में प्रवेश कर।

६३६. प्र सोम याहीन्द्रस्य कुक्षा । ६/१०६/६ हे सोम ! तू आत्मा की कुक्षि=हृदय गुहा में प्रविष्ट हो जा।

६४०. सासह्वान्त्सोम शत्रून् । ६/११०/१२ हे सोम ! तू शत्रुओं का पराभव कर।

६४१. माममृतं कृधि । ६/११३/८ प्रभो ! तू मुझे अमर बना दे।

६४२. सप्त दिशो नानासूर्याः । ६/११४/३ सातों दिशाओं में अनेक सूर्य हैं।

६४३. धन्वन्निव प्रपा असि त्वमग्ने । १०/४/१ हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तू मरुस्थल में प्याऊ की भाँति भक्तों को आनन्दामृत का पान करने वाला और उनका रक्षक है।

६४४. मूरा अमूर न वयं चिकित्वो महित्वम् । १०/४/४ हे ज्ञानिन् ! मोह में पड़े हुए हम मनुष्य तेरे महान् सामर्थ्य को नहीं जानते।

६४५. ऋतस्य पदं कवयो नि पान्ति । १०/५/२ विद्वान् लोग सत्य=न्याय-मार्ग, धर्म मर्यादा की रक्षा करते हैं।

६४६. सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः । १०/५/६ परमात्मा ने सात मर्यादाएँ बनाई=निर्धारित की हैं। १. मद्यपान, २. जुआ, ३. स्त्री व्यसन, ४. शिकारर खेलना, ५. कठोर दण्ड, ६. कठोर वचन, और ७. सरे पर मिथ्या दोषारोपण न करना।

६४७. अग्निं मन्ये पितरम् । १०/७/३ मैं सर्वप्रकाशक ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को पालक पिता के तुल्य मानता हूँ।

६४८. त्रास्वोत नस्तन्वो अप्रयुच्छन् । १०/७/७ हे राजन् ! तू हमारे शरीरों और पुत्र-पौत्रादि की बिना प्रमाद के रक्षा कर।

६४६. पापमाहुर्यः स्वसारं निगच्छात् । १०/१०/१२ जो बहन को स्त्री भाव से प्राप्त होता है, उसे पाप कहते है।

६५०. सदासि रण्वः । १०/११/५ परमात्मन् ! तू सदा रमणीय है।

६५१. हर्यतो हृत्त इष्यति । १०/११/६ परमात्मन् ! प्रेम करने वाला तुझे हृदय से चाहता है।

६५२. शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः । १०/१३/१ अविनाशी परमेश्वर के सभी पुत्र वेद ज्ञान का श्रवण करें।

६५३. इमं यम प्रस्तरमा हि सीद । १०/१४/४ हे यम ! तू इस श्रेष्ठ न्यायासन पर बैठ।

६५४. हित्वायावद्यं पुनरस्तमेहि । १०/१४/८ हे मनुष्य ! तू निन्दनीय आचरण को छोड़कर उत्तम मानव देह को प्राप्त कर।

६५५. यमो ददात्यवसानमस्मै । १०/१४/६ मृत्यु विश्राम प्रदान करती है।

६५६. राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवं च धेहि । १०/१४/११ हे राजन् ! प्रजा का रंजन करने वाले ! तू अपनी प्रजा के लिए सुख, नीरोग शरीर और उत्कृष्ट जीवन प्रदान कर।

६५७. उदीरतामवर उत् परासः । १०/१५/१ छोटे और बड़े-सभी ऊपर उठें, उन्नति करें।

६५८. अजो भागस्तपसा तं तपस्व । १०/१६/४ हे विद्वन् ! कर्मफल भोक्ता आत्मा अजन्मा हे, उसे तप से शुद्ध कर।

६५६. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरम् । १०/१६/६ मैं कच्चा मांस खानेवाली चिन्तारूपी अग्नि को परे भगाता हूँ।

६६०. अप्रयुच्छन् पुर एतु प्रजानन् । १०/१७/५ सर्वज्ञ परमेश्वर सदा जागता हुआ हमारे समक्ष मार्गदर्शक होकर रहे।

६६१. सरस्वतीं सुकृतो अह्वयन्त । १०/१७/७ पुण्यात्मा ज्ञानमयी वेदवाणी का ही स्मरण करते हैं।

६६२. सरस्वती दाशुषे वार्यं दात् । १०/१७/७ परमात्मा आत्मसमर्पक साधक को वरणीय धन प्रदान करता है।

६६३. पयस्वन्मामकं वचः । १०/१७/१४ मेरा वचन दूध के समान पुष्टिकारक, बल से युक्त और मधुर हो।

६६४. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थाम् । १०/१८/१ हे मृत्यो ! तू मेरे पास मत आ, अन्य मार्ग से प्रयाण कर।

६६५. मृत्योः पदं योपयन्तो यदैत । १०/१८/२ हे मनुष्यों ! मौत के पैर को भी परे ध ाकेलते हुए आगे बढ़ो।

६६६. शुद्धाः पूता भवत यज्ञियासः । १०/१८/२ आप लोग बाहर से शुद्ध, अन्दर से पवित्र और परोपकारी हो।

६६७. अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन । १०/१८/४ हम अकाल मृत्यु को ब्रह्मचर्य, विद्या और पुरुषार्थ से मार भगाएँ।

६६८. इमा नारीरविधवाः । १०/१८/७ वे नारियाँ विधवा न हों, सदा सौभाग्यवती रहें।

६६६. भद्रं नो अपि वातय मनः । १०/२०/१ परमात्मन्! तू हमारे मन को कल्याणकारी

मार्ग की ओर ले चल।

६७०. अस्माकं ब्रह्मोद्यतम् । १०/२२/७ परमात्मन्! हमारा ऐश्वर्य तेरे लिए समर्पित है।

६७१. अन्यव्रतो अमानुषः । १०/२२/८ व्रतरहित मनुष्य ही राक्षस है।

६७२. द्विषो नः पह्यंहसः । १०/२४/३ परमात्मन् ! तू द्वेष करने वाले शत्रु और पाप से हमारी रक्षा कर।

६७३. भद्रं नो अपि वातय मनो दक्षमुत क्रतुम् । १०/२५/१ हे परमेश्वर ! तू हमें कल्याणकारी मन, बल, उत्साह, और कर्म सामर्थ्य प्रदान कर।

६७४. सेध राजन्नप स्रिधः । १०/२५/७ हे राजन् ! तू हिंसक शत्रुओं को दूर कर।

६७५. मा नो दुःशंस ईशत । १०/२५/७ कटु भाषी, बुराई का प्रशंसक हमपर शासन न करे।

६७६. द्रुहो नः पाह्यंहसः । १०/२५/८ हे परमात्मन् ! तू हमें द्रोह करनेवाले और पापी पुरुष से बचा।

६७७. इन्द्रस्येन्दो शिवः सखा । १०/२५/६ आनन्दप्रद परमात्मन् ! तू जीव का कल्याणकारी मित्र है।

६७८. ऋषिः स यो मनुहितः । १०/२६/५ ऋषि वही है, जो मनुष्यों का हितकारी है।

६७६. न वा उ मां वृजने वारयन्ते । १०/२७/५ मुझे मेरे गन्तव्य मार्ग पर जाने से कोई भी शक्ति नहीं रोक सकती।

६८०. न पर्वतासो यदहं मनस्ये । १०/२७/५ जब मैं दृढ़ संकल्प कर लेता हूँ, तब पर्वत भी मुझे नहीं रोक सकता।

६८१. आविः स्वः कृणुते । १०/२७/२४ प्रकाशस्वरूप परमेश्वर उपासक जीव के लिए अपने स्वरूप प्रकट करता है।

६८२. कन्न आगन् । १०/२६/४ परमात्मन्! तू हमें कब प्राप्त होगा ?

६८३. हिनोत ब्रह्म सनये धनानाम् । १०/३०/११ हे विद्वान् लोग ! हमें धन प्राप्ति के लिए वेद का उपदेश करो।

६८४. तरन्तो विश्वा दुरिता स्याम । १०/३१/१ हम समस्त दुःखदायी पापाचरणों, बुरे आचरणों से पार हो जाएँ।

६८५. ऋतस्य पथा नमसा विवासेत् । १०/३१/२ मनुष्य सत्य के मार्ग का विनयपूर्वक सेवन करे।

६८६. स्वेन क्रतुना सं वदेत । १०/३१/२ मनुष्य अपने कर्म के द्वारा बोले, कर्म के द्वारा अपने अभिप्राय को प्रकट करे।

६८७. नवेदसो अमृतानामभूम । १०/३१/३ हम मोक्षसुख को प्राप्त करनेवाले हैं।

६८८. वसुः सुमना बभूव । १०/३२/८ गुरु के समीप वास करता हुआ ब्रह्मचारी ज्ञानसम्पन्न हो जाता है।

६८६. जनानां वहामि स्म पूषणमन्तरेण । १०/३३/१ मैं समस्त मनुष्यों के पोषक

परमेश्वर को अपने हृदय में धारण करता हूँ।

९९०. नि बाधते अमतिः । १०/३३/२ अज्ञान मुझे बहुत पीड़ित करता है।

९९१. अक्षैर्मा दीव्यः । १०/३४/१३ हे मनुष्य ! तू पाशों से मत खेल। तू इन्द्रियों से काम विलास का खेल मत कर।

९९२. वित्ते रमस्व । १०/३४/१३ हे मनुष्य ! तू धन-धान्य में आनन्दलाभ कर।

९९३. स्वस्त्यग्निं समिधानमीमहे । १०/३५/३ हम तेज से देदीप्यमान, ज्ञानज्योति से प्रकाशित परमेश्वर से सुख की याचना करें।

९९४. अनमीवा उषस आ चरन्तु नः । १०/३५/६ प्रभात वेलाएँ हमें नीरोगता प्रदान करें।

९९५. स्वर्वज्ज्योतिरवृकं नशीमहि । १०/३६/३ हम लोग छल-कपट से रहित सुखदायक ज्ञानज्योति को प्राप्त हों।

९९६. इन्द्रियं यमीमहि । १०/३६/८ हम इन्द्रियों के स्वामी आत्मा को संयम द्वारा प्राप्त करें।

९९७. मा सत्योक्तिः परि पातु विश्वतः । १०/३७/२ सत्यवचन मेरी सब प्रकार से चहुँ ओर से रक्षा कर।

९९८. सूर्य ज्योतिषा बाधसे तमः । १०/३७/४ हे परमात्मन् ! तू ज्योति, ज्ञानज्योति से अन्धकार को दूर करता है।

९९९. मा शूने भूम सूर्यस्य संदृशि । १०/३७/६ हम प्रकाशमय परमात्मा के ज्ञानदर्शन में शून्य, निस्सार न हों, आलस्य तथा दुःख में न रहें।

१०००. भद्रं जीवन्तो जरणामशीमहि । १०/३७/६ हम कल्याणमय जीवन व्यतीत करते हुए वृद्धावस्था को प्राप्त हों।

१००१. वयं जीवाः प्रति पश्येम सूर्य । १०/३७/८ हे सर्वसंचालक परमात्मन्! हम तेरा प्रत्यक्ष दर्शन करें।

१००२. सूर्य द्रविणं धेहि चित्रम् । १०/३७/१० हे सर्वसंचालक ! तू हमें ज्ञानमय, संग्रह करने योग्य, अद्‌भुत ऐश्वर्य प्रदान कर।

१००३. किमु त्वावान् मुष्कयोर्बद्ध आसते । १०/३८/५ क्या ज्ञानी मनुष्य इन्द्रिय-सुख आदि में बंधा रह सकता है ? (कभी नहीं)

१००४. श्रदरिर्यथा दघत् । १०/३९/५ सत्य वह है जिसे शत्रु भी याथातथ्य स्वीकार करता है।

१००५. न मृत्यवेऽवतस्थे कदाचन । १०/४८/५ मैं अमर आत्मा मृत्यु के समक्ष कभी झुक नहीं सकता।

१००६. न मे पूरवः सख्ये रिषाथन । १०/४८/५ हे मनुष्यों ! तुम मेरी (आत्मा अथवा परमेश्वर) की मित्रता में कभी नष्ट नहीं होओगे।

१००७. ज्येष्ठश्च मन्त्रो विश्वचर्षणे । १०/५०/४ हे विश्वद्रष्ट ! तू सबसे महान् है तथा

सबके लिए मनन, ध्यान और उपासना करने योग्य है।

१००८. को मा ददर्श । १०/५१/२ मुझे (परमेश्वर को) कौन देखता है ?

१००६. मनुर्भव । १०/५३/६ हे मानव ! तू मनुष्य बन।

१०१०. जनया दैव्यं जनम् । १०/५३/६ हे मानव ! तू दिव्य सन्तानों को उत्पन्न कर।

१०११. उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः । १०/५३/८ हे मित्रों ! उठो, सावधान हो जाओ और संसाररूपी नदी को पार करो।

१०१२. त्वष्टा माया वेत् । १०/५३/६ ज्ञानी माया (संसार-माया, जगत् के रहस्यों) को जाने।

१०१३. विद्वांस पदा गुह्यानि कर्तन । १०/५३/१० हे विद्वानों ! बुद्धिगम्य ज्ञानों का सम्पादन करो।

१०१४. वनते कार इज्जितिम् । १०/५३/११ कर्मकुशल मनुष्य ही संसार में विजय पाता है।

१०१५. पश्य देवस्य काव्यम् । १०/५५/५ हे मनुष्यों ! परमात्मा के वेद अथवा सृष्टिरूपी काव्य को देखो।

१०१६. अद्या ममार स ह्यः समान । १०/५५/५ जो कल जीवित था, श्वास ले रहा था, वह आज मर गया।

१०१७. यच्चिकेत सत्यमित् । १०/५५/६ परमेश्वर जो कुछ करता है, वह ठीक ही है।

१०१८. चारुरेधि । १०/५६/१ हे मनुष्य ! तु सुन्दर वन, उत्तम श्रेष्ठ बन।

१०१६. मा प्र गाम पथो वयम् । १०/५७/१ परमात्मन् ! हम लोग सन्मार्ग से कभी च्युत न हों, कुमार्गगामी न बनें।

१०२०. आ त एतु मनः पुनः । १०/५७/४ तेरा मन=उत्साह पुनः लौट आये।

१०२१. अभी ष्वर्यः पौस्यैर्भवेम । १०/५६/३ हम लोग पौरुषमय कर्मों से शत्रुओं को अच्छी प्रकार पराजित करें।

१०२२. पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् । १०/५६/४ हम उदय होते हुए सूर्य को अवश्य देखें, सूर्योदय से पूर्व उठें।

१०२३. द्युभिर्हितो जरिमा सू नो अस्तु । १०/५६/४ हमारी वृद्धावस्था दीप्तियों (ज्ञानदीप्तियो, अनुभवों) से युक्त, दूसरों के लिए सुखदायक और हितकारी हो।

१०२४. असुनीते मनो अस्मासु धारय । १०/५६/५ प्राणधारी जीवों को सन्मार्ग में चलानेवाले प्रभो ! तू हममें मन=मनन शक्ति, उत्साह तथा दृढ़ संकल्पशक्ति स्थापित कर।

१०२५. घृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व । १०/५६/५ हे मनुष्य ! तू घृत के सेवन से अपने शरीरों को हृष्ट पुष्ट बना।

१०२६. पणीन् न्यक्रमीरभिविश्वान् राजन्नराधसः । १०/६०/६ हे राजन् ! तू नास्तिक पणियों=बनियों को पराजित कर, उन्हें नीचा दिखा।

१०२७. अयं मे हस्तो भगवान् । १०/६०/१२ यह मेरा हाथ ऐश्वर्यशाली है।

१०२८. विप्रस्तरति स्वसेतुः । १०/६१/१६ ज्ञानी मनुष्य स्वयं पुल का निर्माण करके संसार सागर से पार हो जाता है।?

१०२९. इमे मे देवा अयमस्मि सर्वः । १०/६१/१९ ये इन्द्रियाँ मेरी सहयोगिनी हैं और मैं सब कार्यों के सम्पादन में समर्थ हूँ।

१०३०. रक्षा च नो मघोनः । १०/६१/२२ हे परमात्मन्! तू आध्यात्मिक यज्ञ करनेवाले हम उपासकों की रक्षा कर।

१०३१. पाहि सूरीन् । १०/६१/२२ परमात्मन्! तू विद्वानों की रक्षा कर।

१०३२. प्रति गृभ्णीत मानवं सुमेधसः । १०/६२/१ हे मेधावी जनों ! आप शिष्य भाव से प्राप्त हुए मनुष्य को स्वीकार करो।

१०३३. आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये । १०/६३/३ उत्तम सुख, कल्याण प्राप्ति के लिए ज्ञानियों की संगति कर।

१०३४. को मृळाति । १०/६४/१ हमें कौन सुखी करता है ?

१०३५. कतमो नो मयस्करत् । १०/६४/१ कौन सा देव हमारा कल्याण करता है ?

१०३६. क्रतुं सचन्ते सचितः सचेतसः । १०/६४/७ ज्ञानी तथा उत्तम चित्त वाले मनुष्य कर्म में जुटे रहते हैं।

१०३७. रण्वः संदृष्टौ पितुमाँ इव । १०/६४/११ परमात्मन् का साक्षात्कार होने पर वह परमेश्वर अन्नादि से समृद्ध निवास गृह के समान अत्यन्त सुखदायी होता है।

१०३८. आर्या व्रता विसृजन्तो अधि क्षमि । १०/६५/११ व्रतशील आर्य = देव, श्रेष्ठजन, पृथिवी पर सदाचार फैलाते हैं।

१०३९. यज्ञं जनयन्त सूरयः । १०/६६/२ विद्वान् लोग यज्ञ का विस्तार करते हैं अथवा उपासक प्रभु का साक्षात्कार करते हैं।

१०४०. प्राचं नो यज्ञं प्र णयत साधुया । १०/६६/१२ सबसे अधिक पूजनीय आत्मा को योग-साधना द्वारा प्राप्त करो।

१०४१. ऋतस्य पन्थामन्वेमि साधुया । १०/६६/१३ मैं साधना द्वारा वेदोपदिष्ट मार्ग का अनुगमन करता हूँ।

१०४२. सत्यमाशिषं कृणुत । १०/६७/११ हे विद्वानों ! इच्छा भी सच्ची ही करो।

१०४३. बृहस्पतिर्भिनदद्रिं विदद्गाः । १०/६८/११ वेद का विद्वान अज्ञान-आवरण को दूर करे, वेदवाणियों को प्राप्त करे और अन्यों को भी इनका उपदेश करें।

१०४४. इदमकर्म नमो अभ्रियाय । १०/६८/१२ मे के समान उदारतापूर्वक वेदोपदेष्टा के लिए हम नमस्कार करें, अन्न आदि द्वारा उसका साक्षात्कार करें।

१०४५. स रेवच्छोच । १०/६९/३ तू ऐश्वर्यशाली होकर खूब चमक।

१०४६. स गिरो जुषस्व । १०/६९/३ वह तू वेदवाणियों का प्रेम से सेवन कर, वेद पढ़, और उसका उपदेश कर।

१०४७. प्र नु वोचं वाध्र्यश्वस्य नाम । १०/६९/५ मैं गतिशील पदार्थों के स्वामी

परमेश्वर के नाम और स्वरूप का सदा दूसरों लिए प्रवचन करूँ।

१०४८. त्वमग्ने पृतनायूँरभि ष्याः । १०/६६/६ हे तेजस्विन् ! तू शत्रुओं को पराजित कर।

१०४६. प्रति हर्या घृताचीम् । १०/७०/१ प्रिय आत्मन् ! तू अज्ञान अन्धकार की रात्रि को हटा।

१०५०. असतः सदजायत । १०/७२/२ असत्=अव्यक्त कारण से सत्=व्यक्त जगत् प्रकट होता है।

१०५१. अप ध्वान्तमूर्णुहि । १०/७३/११ परमात्मन्! तू हमारे अज्ञान-अन्धकार को दूर कर।

१०५२. अप हत रक्षसः । १०/७६/४ हे वीरों ! दुष्ट पुरूषों को बुरे कर्मों से हटाओं।

१०५३. भंगुरावतः स्कभायत । १०/७६/४ हे वीरों ! नियम=व्यवस्था भंग करनेवालों, सत्यानाश करनेवालों को वश में करो।

१०५४. वाचा प्रुषा वसु । १०/७७/१ हे मानव ! तू वाणी से मनुष्य में जीवन सींच दे, मीठा बोलकर सभी को तृप्त कर दे।

१०५५. अग्नये ब्रह्म ऋभवस्ततक्षुः । १०/८०/७ सत्यज्ञान से देदीप्यमान विद्वान् परमेश्वर का ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेद का स्वाध्याय करते हैं।

१०५६. स्वयं यजस्व तन्वं वृधानः । १०/८१/५ हे मनुष्य ! जीवन को उन्नत करता हुआ तू स्वयं यज्ञ कर।

१०५७. स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् । १०/८१/६ हे मनुष्य ! तू स्वयं जमीन और आसमान को एक कर, प्रबल पुरूषार्थ कर।

१०५८. तं संप्रश्नं भुवना यन्त्यन्या । १०/८२/३ सारे लोक और प्राणिवर्ग उस जिज्ञासा करने योग्य परमात्मन् की ओर जा रहे हैं।

१०५६. न तं विदाथ य इमा जजान । १०/८२/७ हे मनुष्यों ! तुम उस को नहीं जानते, जिसने इन सब लोकों को रचा हैं।

१०६०. अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् । १०/८३/६ परमात्मन् ! मैं तेरा हूँ, मेरे सम्मुख आ, मुझे दर्शन दे।

१०६१. हनाव दस्यून् । १०/८३/६ परमात्मन्! तू और मैं हम दोनों मिलकर नाशकारी अन्तः बाह्य शत्रुओं का नाश करें, शत्रुओं को धुन डालें।

१०६२. अग्निरिव मन्यो त्विषितः सहस्व । १०/८४/२ हे तेजस्विन् ! तू अग्नि के समान दीप्तियुक्त होकर शत्रुओं को पराजित कर।

१०६३. अस्मे रुजन् मृणन् प्रमृणन् प्रेहि शत्रून् । १०/८४/२ हे तेजस्विन् ! तू हमारे शत्रुओं को रौंदता-खौंदता आगे बढ़।

१०६४. विशंविशे युधये सं शिशाधि । १०/८४/४ हे राजन् ! तू जन-जन को युद्ध करने के लिए प्रशिक्षित और उत्तेजित कर।

१०६५. द्युमन्तं घोषं विजयाय कृण्महे । **१०/८४/४** हम विजयप्राप्ति के लिए महान् गर्जन, सिंहनाद करते हैं।

१०६६. अस्माकं मन्यो अधिपा भवेह । **१०/८४/५** हे माननीय राजन्! तू इस संसार में हमारा पालक पोषक बन।

१०६७. सत्येनोत्तभिता भूमिः । **१०/८५/१** भूमि सत्य पर, सत्य के आधार पर ठहरी हुई है।

१०६८. अग्निरासीत् पुरोगवः । **१०/८५/८** वधु के आगे-आगे उसका पति चले अर्थात् पत्नी सदा पति का अनुसरण करे, पति की अनुगामिनी बने।

१०६९. सं जास्पत्यं सुयममस्तु देवाः । **१०/८५/२३** हे विद्वानों ! हमारा दाम्पत्य संयमयुक्त हो।

१०७०. ब्रह्मभ्यो वि भजा वसु । **१०/८५/२९** हे देवि ! तू ब्रह्मज्ञानियों, विद्वान् ब्राह्मणों को धन दान कर।

१०७१. जाया विशते पतिम् । **१०/८५/२९** योग्य पत्नी पति में समाविष्ट हो जाती है अर्थात् पति के मन, वचन और कर्म के साथ एकाकार हो जाती है।

१०७२. अघोरचक्षुरपतिघ्न्येधि । **१०/८५/४४** हे स्त्रि ! तू सौम्य दृष्टिवाली और पति की हिंसा न करनेवाली बनकर रह।

१०७३. सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव । **१०/८५/४६** हे देवि ! तू सास के अधीन रहकर भी रानी के सदृश बन।

१०७४. ननान्दरि सम्राज्ञी भव । **१०/८५/४६** हे स्त्रि ! तू नन्दों में उत्तम गुणों से सुशोभित रानी के तुल्य बन।

१०७५. सम्राज्ञी अधि देवृषु । **१०/८५/४६** हे नारि ! तू देवरों में सबसे अधिक दीप्तियुक्त बन।

१०७६. अग्ने त्वचं यातुधानस्य भिन्धि । **१०/८७/५** हे तेजस्विन् ! तू कुटिल मायावी लोगों की खाल उधेड़ दे।

१०७७. नि जहि शोशुचान आमादः । **१०/८७/७** हे तेजस्विन् ! तू तेज से दीप्त होता हुआ कच्चा मांस खाने वाले दुष्टों को मार दे।

१०७८. मा त्वा दभन् यातुधाना नृचक्षः । **१०/८७/९** हे मनुष्यों पर दृष्टि रखने वाले राजन् ! अत्याचारी तुझे न दबा पाएँ।

१०७९. परा शृणीहि तपसा यातुधानान् । **१०/८७/१४** हे तेजस्विन् ! तू पीड़ादायक दुष्टों को सन्तापकारी साधनों से दूर तक मार भगा।

१०८०. वृश्च्यन्तामदितये दुरेवाः । **१०/८७/१८** माता-पिता के प्रति बुरा यवहार करने वाले जन बुरी तरह से पी ड़ित किये जाएँ।

१०८१. असिर्न पर्व वृजिना श्रृणासि । **१०/८९/८** हे इन्द्र ! जैसे तलवार शरीर के पोरु पोरु को काट डालती है, उसी प्रकार तूं भी पापों को काट डाल।

१०८२. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः । १०/६०/१६ लोग यज्ञ=आत्मा के द्वारा सर्वोत्तम परमात्मन् की उपासना करते हैं।

१०८३. कृधी नो अह्रयो देव सवितः । १०/६३/६ हे समग्रैश्वर्यप्रदातः ! तू हमें निष्पाप कर कि हमें कभी लज्जा से मुँह न छिपाना पड़े।

१०८४. प्र रामे वोचमसुरे मघवत्सु । १०/६३/१४ मैं रमण करने योग्य और अत्यन्त बलशाली प्राणप्रद परमात्मन् के सम्बन्ध में धन सम्पन्न मनुष्यों में प्रवचन करूँ।

१०८५. पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तः । १०/६५/१५ बहुत रोने-धोनेवाले मानव ! तू मृत्यु को प्राप्त मत हो और जीवन संघर्षों से दूर भी मत भाग।

१०८६. अश्वत्थे वो निषदनम् । १०/६७/५ हे मनुष्यों ! तुम्हारा निवास अस्थिर, चलायमान संसार में ही है।

१०८७. चित्रस्ते भानुः । १०/१००/१२ प्रभो ! तेरा प्रकाश अद्भुत, विचित्र है।

१०८८. प्रांचं यज्ञं प्र णयता सखायः । १०/१०१/२ हे मित्रों ! प्रत्येक कार्य के आरम्भ में यज्ञ करो, सबसे पूर्व परमात्मा की स्तुति करो।

१०८९. व्रजं कृणुध्वम् । १०/१०१/८ हे मनुष्यों ! गोशालाओं का निर्माण करो।

१०९०. पुरः कृणुध्वमायसीरधृष्टाः । १०/१०१/८ शत्रु से पराजित न होने योग्य, शस्त्रादि से सुसज्जित लोहे की नगरियाँ बनाओ।

१०९१. मा वः सुस्रोच्चमसः । १०/१०१/८ हे विद्वानों ! आपका जीवनरूपी पात्र चूए (टपके) नहीं, दृढ़ हो।

१०९२. त्वं विश्वस्य जगतश्चक्षुरिन्द्रासि चक्षुषः । १०/१०२/१२ हे इन्द्र ! तुम सारे संसार के नेत्र हो, नेत्रवालों के भी नेत्र हो।

१०९३. सखायो अनु सं रभध्वम् । १०/१०३/६ हे मित्रजनों ! मिलकर कार्य करो, मिलकर उद्योग करो।

१०९४. उद्धर्षय मघवन्नायुधानि । १०/१०३/१० हे ऐश्वर्यसम्पन्न नायक ! तू अस्त्र-शस्त्रों से युक्त वीर शत्रुओं पर विजयी हो।

१०९५. अस्माकं वीरा उत्तरे भवन्तु । १०/१०३/११ हमारे वीर उच्चतर, श्रेष्ठतर रहें।

१०९६. प्रेता जयता नरः । १०/१०३/१३ हे मनुष्यों ! आगे बढ़ो और विजय प्राप्त करो।

१०९७. आ भूतांशो अश्विनोः काममप्राः । १०/१०६/११ समस्त प्राणियों में व्यापक परमेश्वर जितेन्द्रिय स्त्री-पुरूषों की कामनाओं को पूर्ण करे, करता है।

१०९८. विश्वं जीवं तमसो निरमोचि । १०/१०७/१ समस्त जीव-संसार दुःख से मुक्त रहे।

१०९९. उरुः पन्था दक्षिणाया अदर्शि । १०/१०७/१ हमें दानशीलता का महान् मार्ग दिखाई दे।

११००. उच्चा दिवि दक्षिणावन्तो अस्थुः । १०/१०७/२ दक्षिणा देनेवाले आकाश में तारों के तुल्य संसार में उच्चस्थिति को प्राप्त करते हैं।

११०१. न भोजा मम्रुर्न न्यर्थमीयुः । १०/१०७/८ रक्षकजन न मरण को प्राप्त होते हैं और न नीच गति को।

११०२. भीमा जाया ब्राह्मणस्योपनीता । १०/१०६/४ उपनीता ब्राह्मण की पत्नी प्रचण्डशक्ति से युक्त होती है।

११०३. मनीषिणः प्र भरध्वं मनीषाम् । १०/१११/१ हे बुद्धिमानों ! अपनी बुद्धियों को खूब बढ़ाओ।

११०४. स हि वीरो गिर्वणस्युर्विदानः । १०/१११/१ लोकों का संचालक, महान् शक्तिशाली, सर्वज्ञ प्रभु भक्तों को चाहता है, उनसे प्रेम करता है।

११०५. न ऋते त्वत् क्रियते किंचन । १०/११२/६ परमात्मन् ! तेरे बिना कुछ भी नहीं किया जा सकता।

११०६. एकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति । १०/११४/५ एक अद्वितीय परमात्मन् का ही अनेक प्रकार से वर्णन किया जाता है।

११०७. स्वस्तिदा मनसा मादयस्व । १०/११६/२ विश्व के प्राणियों को स्वस्ति दो, उनका कल्याण करो और अन्तर्मन से सदा प्रसन्न रहो।

११०८. प्रतीत्या शत्रून् विगदेषु वृश्च । १०/११६/५ हे राजन् ! तू संग्रामों में शत्रुओं पर आक्रमण करके उन्हें काट डाल।

११०९. सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः । १०/११६/८ यजमान की कामनाएँ सफल, सिद्ध, पूर्ण हों।

१११०. अपृणन् मर्डितारं न विन्दते । १०/११७/१ अदानशील अपने लिए कोई सहायक, दया करने वाला नही पाता।

११११. न स सखा यो न ददाति सख्ये । १०/११७/४ जो मित्र की सहायता नहीं करता, वह मित्र नहीं है।

१११२. न तदोको अस्ति । १०/११७/४ अदाता का घर घर ही नहीं है।

१११३. केवलाघो भवति केवलादी । १०/११७/६ अकेला खाने वाला अत्यन्त पापी होता है।

१११४. वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् । १०/११७/७ उपदेश करने वाला ज्ञानी मौन रहने वाले ज्ञानी से श्रेष्ठ होता है।

१११५. पृणन्नापिरपृणन्तमभिष्यात् । १०/११७/७ इच्छा पूर्ण करने वाला दानशील न देने वाले कंजूस से बढ़ जाता है।

१११६. अग्ने रक्षस्त्वं दह । १०/११८/७ हे तेजस्विन् ! तू दुष्टों को भस्म कर दे।

१११७. गोपा ऋतस्य दीदिहि । १०/११८/७ हे मनुष्य ! तू सत्यज्ञान, वेद, न्याय और धर्मतत्त्व का रक्षक होकर चमक।

१११८. अहमस्मि महामहोऽभिनभ्यमुदीषितः । १०/११९/१२ मै अन्तरिक्ष में उदय होने वाला सूर्य हूँ, मैं महान् से भी महान् हूँ।

१११९. मा त्व दभन् यातुधाना दुरेवाः । १०/१२०/४ हे राजन् ! बुरी चाल वाले, पीड़ादायक दुष्टजन तुझे नष्ट न करें।

११२०. कस्मै देवाय हविषा विधेम । १०/१२१/१ हम आनन्दस्वरूप परमात्मा के लिए श्रद्धा और भक्ति की भेंट समर्पित करते हैं।

११२१. अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति । १०/१२५/४ जो मुझ को नहीं मानते वे नष्ट हो जाते हैं।

११२२. श्रुधि श्रुत श्रद्धिवं ते वदामि । १०/१२५/४ हे श्रवणशील ! श्रवण कर, सुन। मैं तुझे श्रद्धा से धारण करने योग्य सत्य ज्ञान का उपदेश करता हूँ।

११२३. ज्योतिषा बाधते तमः । १०/१२७/२ प्रकाश से अन्धकार हटाया जाता है, नष्ट होता है।

११२४. आकूतिः सत्या मनसो मे अस्तु । १०/१२८/४ मेरे मन के संकल्प सच्चे हों, पूर्ण हों।

११२५. पूर्वेषा पन्थामनुदृश्य धीरा अन्वालेभिरे । १०/१३०/७ बुद्धिमान् लोग, पूर्वगुरुओं, विद्वानों, ऋषियों के मार्ग को देखकर निरन्तर यज्ञ करते हैं।

११२६. नहि स्थूर्यृतुथा यातमस्ति । १०/१३१/३ जिस छकड़े में एक ही चक्र हो वह कभी अपने गन्तव्य स्थान पर नहीं पहुँच सकता।

११२७. ऋतस्य नः पथा नय । १०/१३३/६ परमात्मन्! तू हमें सत्य के पथ पर ले चल।

११२८. नकिर्देवा मिनीमसि । १०/१३४/७ हे विद्वान पुरुषों ! हम कभी हिंसा नहीं करते।

११२९. मन्त्रश्रुत्यं चरामसि । १०/१३४/७ हम वेद के अनुसार वैदिक शिक्षा के अनुसार आचरण करते हैं।

११३०. आप इद्वा उ भेषजीः । १०/१३७/६ जल सब रोगी की एकमात्र दवा है।

११३१. आपो अमीवचातनीः । १०/१३७/६ जल रोगों के कारणों का नाश करने वाले हैं।

११३२. आपः सर्वस्य भेषजीः । १०/१३७/६ जल सब रोगों की औषधि हैं।

११३३. ब्रह्म यज्ञं च वर्धय । १०/१४१/६ आत्मन् ! ब्रह्म=वेदज्ञान और यज्ञ को बढ़ा, फैला, प्रचार कर।

११३४. उच्छ्वंचस्व नि नम वर्धमानः । १०/१४२/६ हे मनुष्य ! तू उन्नति कर और ऊँचा उठता हुआ, आगे बढ़ता हुआ विनयशील होकर नीचे झुक।

११३५. अहमस्मि सहमाना । १०/१४५/५ मैं नारी सहनशीला हूँ, सब कष्टों और आपत्तियों को पराजित करने वाली हूँ।

११३६. त्वमसि सासहिः । १०/१४५/५ हे मनुष्य ! तू शत्रुओं को पराभव करने वाला है।

११३७. श्रत्ते दधामि । १०/१४७/१ परमात्मन्! मैं तुझमें श्रद्धा, विश्वास रखता हूँ।

११३८. श्रद्धयाग्निः समिध्यते । १०/१५१/१ श्रद्धा से अग्नि प्रज्वलित की जाती है,

श्रद्धापूर्वक यज्ञ किया जाता है, और श्रद्धापूर्वक परमात्मा की उपासना की जाती है।
११३९. श्रद्धया हूयते हविः । १०/१५१/१ श्रद्धापूर्वक यज्ञ में हवि की आहुतियाँ दी जाती है।
११४०. प्रियं श्रद्धे ददतः । १०/१५१/२ श्रद्धे ! श्रद्धापूर्वक दान देने वाले का कल्याण कर।
११४१. अस्माकमुदितं कृधि । १०/१५१/३ हे श्रद्धे ! हमारा उत्थान हो।
११४२. श्रद्धया विन्दते वसु । १०/१५१/४ श्रद्धा से धन=ऐश्वर्य प्राप्त होता है।
११४३. श्रद्धां प्रातर्हवामहे । १०/१५१/५ हम प्रातःकाल अपने जीवन में श्रद्धा का आह्वान करते हैं, अपने जीवों को श्रद्धोपेत बनाते हैं।
११४४. श्रद्धे श्रद्धापयेह नः । १०/१५१/५ हे श्रद्धे ! तू हमें इस संसार में सत्य को ही धारण करा।
११४५. शास इत्था महाँ असि । १०/१५२/१ परमात्मन् ! तू सचमुच बड़ा भारी विश्वशासक है।
११४६. त्वमिन्द्रासि वृत्रहा । १०/१५३/३ हे इन्द्र ! तू विघ्नकारी शत्रुओं का नाश करनेवाला है।
११४७. हता इन्द्रस्य शत्रवः । १०/१५५/४ वीर, शक्तिशाली राजा के शत्रु नष्ट हो जाते है।
११४८. अहं केतुरहं मूर्धा । १०/१५६/२ मैं नारी ज्ञानवाली और गृहस्थ में शिरोमणि हूँ।
११४९. अहमुग्रा विवाचनी । १०/१५६/२ मैं प्रचण्ड शक्तिशाली और विविध वचनों को बोलने वाली हूँ।
११५०. मम पुत्राः शत्रुहणः । १०/१५६/३ मेरे पुत्र शत्रुआं का हना करने वाले हैं।
११५१. अहमस्मि संजया । १०/१५६/३ मैं सम्यक् विजयशीला हूँ।
११५२. अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर । १०/१६४/३ हे पाप संकल्प ! तू दूर हट, परे भाग, दूर जाकर विचर।
११५३. पर्जन्य महि शर्म यच्छ । १०/१६६/२ हे रसरूप पपरमात्मन्! तू हमें महासुख प्रदान कर।
११५४. ध्रुवस्तिष्ठाविचाचलिः । १०/१७३/१ हे राजन् ! तू अविचल और स्थिर होकर खड़ा हो।
११५५. विशस्त्वा सर्वा वांछन्तु । १०/१७३/१ हे राजन् ! समस्त प्रजाएँ तुझे चाहें।
११५६. प्र ससाहिषे पुरुहूत शत्रून् । १०/१८०/१ हे बहुतों से प्रशंसित राजन् ! तू शत्रुओं को पराजित कर।
११५७. बृहस्पतिर्नयतु दुर्गहा तिरः । १०/१८२/१ संकटनाशक परमेश्वर हमारे सब संकटों को दूर करो।
११५८. व्यख्यन् महिषो दिवम् । १०/१८९/२ महामानव अपने मस्तिष्क को प्रकाशित

करता है।

११५६. वाक् पतङ्गाय धीयते । १०/१८६/३ वाणी से आत्मा की स्तुति की जाती है।

११६०. सं गच्छध्वम् । १०/१६१/२ हे मनुष्यों ! तुम सब मिलकर चलो।

११६१. सं वदध्वम् । १०/१६१/२ हे मनुष्यों ! तुम सब मिलकर परस्पर प्रेम से बातचीत करो।

११६२. सं वो मनांसि जानताम् । १०/१६१/२ हे मनुष्यों ! तुम सब लोगों के मन भी एक-समान होकर ज्ञान प्राप्त करें।

११६३. समितिः समानी । १०/१६१/३ हे मनुष्यों ! तुम्हारी समिति भी एक हो।

११६४. समानं मनः । १०/१६१/३ हे मनुष्यों ! तुम सबके मन भी एक समान हों

११६५. समानि वः आकूतिः । १०/१६१/४ हे मनुष्यों ! तुम लोगों के संकल्प और निश्चय एक समान हों।

११६६. समाना हृदयानि वः । १०/१६१/४ हे मनुष्यों ! तुम सबके हृदय एक जैसे हों।

११६७. समानमस्तु वो मनः । १०/१६१/४ हे मनुष्यों ! तुम्हारे मन एक समान हों।

११६८. मयो भूर्वातो अभिवातु। १०/१६६/१ सब ओर सुख जनक वायु बहे।

११६६. पश्चा सन्तं पुरस्कृधि। १०/१७१/४ हे परमात्मा! हमारे पिछड़े हुए जीवन रथ को आगे कर दो।

११७०. स न पर्षदति द्विषः। १०/१८१/१ वह ब्रह्म एवं आन्तरिक शत्रुओं से बचाये।

।। इति ।।

***

ऋग्वेद मन्त्र

१. पंच पदानि रुपो अन्वरोहं चतुष्पदीमन्वेमि व्रतेन ।
अक्षरेण प्रति मिम एतामृतस्य नाभावधि सं पुनामि ।। ऋ १०/१३/३, अ १८/३/४०

व्रत द्वारा सीढ़ी के पांचों पदों को मैं अनुक्रम से चढ़ गया हूं और चार-पदवाली को

अनु क्रम से प्राप्त करता हूं। वर्णविज्ञान द्वारा तो मैं इस चतुष्पदी का केवल माप-अध्ययन कर पाया हूं। सत्य सदाचार की नाभि पर अधिष्ठित होकर मैं इस चतुष्पदी से सम्यक् शोधता, पवित्रता की स्थापना करता हूं।

२. पवस्व वृष्टिमा सु नो ऽपामूर्मिं दिवस्परि । अयक्ष्मा बृहतीरिषः । ऋ ६/४६/१ सा १४३५

द्यौ से वृष्टि को, जलों की तरंग को, निरोग को हमारे लिए सर्वत्र, भलीभांति भर-पूर बरसा।

३. तमिद् वोचेमा विदथेषु शंभुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद् वामा वो अश्नवत् ।।ऋ १/४०/६

विद्वानों! हम यज्ञों-सत्संगों में उस शं-कर, निर्दोष मन्त्र को ही बोलें। और, लोगो! तुम इस वाणी को प्रति-हरण-प्रति -कामना करो। सारी ही प्रशंसा तुम्हें सेवन करे, प्राप्त करे-हो।

४. नकिर्देवा मिनीमसि नकिरा योपयामसि मन्त्रश्रुत्यं चरामसि ।
पक्षेभिरपिकक्षेभिरत्राभि सं रभामहे ।। ऋ १०/१३४/७ सा १७६

हम देव न तो हिंसा करते हैं न ही बहकाते हैं। मन्त्र-ज्ञान-वेद-विधान को आचरते-आचरण में लाते हैं। स्वपक्षों-स्वपक्षियों के साथ वि-कक्षों-वि-पक्षियों के साथ यहां अभितः, सर्वतः समारम्भ करते, मिलकर कार्य करते-चलते-व्यवहार करते हैं।

५. मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ।। ऋ १०/२४/६

मेरा परा-गमन, प्र-याण मधुर हो। पुनः आ-गमन मधुर हो। दोनों देवो! तुम दोनों दिव्यता के द्वारा हमें मधुर करो।

६. एक एवाग्निर्बहुधा समिद्ध एकः सूर्यो विश्वमनु प्रभूतः ।
एकैवोषाः सर्वमिदं वि भात्येकं वा इदं वि बभूव सर्वम् ।। ऋ ८/५८/२

अग्नि एक-अकेला ही बहुत प्रकाश से प्र-काशित-प्रज्ज्वलित होता है। सूर्य अकेला विश्व के प्रति प्रादुर्भूत होता है। उषा अकेली ही इन सबको जगमगाती-चमकाती-प्रकाशती है। निस्सन्देह, अकेला ब्रह्म सबको व्यापे हुए है।

७. अग्ने भव सुषमिधा समिद्ध उत बहिरुर्विया वि स्तृणीताम् । ऋ ७/१७/१

ज्ञानिन्! सु-समिध् से सु-प्रकाशित हो और विशाल आकाश-संसार को वि-स्तार-व्याप दे।

८. यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन् धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ।। ऋ १/४३/६

जो तेरी प्रजा होती हैं वे अ-मृत के पर धाम में, ऋत की नाभि में वि-भूषित रहा करती है। सोम मूर्धास्थ-मूर्धन्य तू कामना कर, चाह, प्यार कर, समझ, प्राप्त कर।

९. ये अग्ने नेरयन्ति ते वृद्धा उग्रस्य शवसः ।
अप द्वेषो अप ह्वरो ऽन्यव्रतस्य सश्चिरे ।। ऋ ५/२०/२

ज्ञानिन् वृद्ध वे हैं जो नहीं कांपते हैं। वे उग्र, असह्य विराधी के द्वेष को दूर कर दिया

करते हैं, कुटिलता को दूर कर दिया करते हैं।

१०. विश्वदानीं सुमनसः स्याम पश्येम नु सूर्यमुच्चरन्तम् ।

तथा करद् वसुपतिर्वसूनां देवाँ ओहानो ऽवसागमिष्ठः ।। ऋ ६/५२/५

देवों को प्राप्त कराते हुए, अवस् के साथ आगन्तुकतम-निकटतम, वसुओं का वसु-पति वैसा करे कि हम सदा सु-मनाःरहें। हम उदय होते हुए सूर्य को ही देखें।

११. विश्वकर्मन् हविषा वावृधानः स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम् ।

मुह्यन्त्वन्ये अभितो जनास इहास्माकं मघवा सूरिरस्तु ।। ऋ १०/८१/६, य १७/२२, सा १५८६

सर्व-कर्मकुशल! हवि से बढ़ता हुआ पृथिवी और द्यौ को स्वयं संगत कर।

१२. सप्त होतारस्तमिदीळते त्वाग्ने सुत्यजमह्रयम् ।

भिनत्स्यद्रिं तपसा वि शोचिषा प्राग्ने तिष्ठ जनाँ अति ।। ऋ ८/६०/१६

सात होता उस मुझ सु-त्यागी, अ-लज्ज, निर्दोष, निष्पाप, शुद्ध को ही स्तुतते हैं। तूं तप और तेज से मेघ, पर्वत, वृत्र को तोड़ डालता, छिन्न-भिन्न कर देता है। तू जनों को अतिक्रमण करके प्रस्थित हो।

१३. सना दक्षमुत क्रतुमप सोम मृधो जहि। अथा नो वस्यसस्कृधि । ऋ ९/४/३ सा १०४९

प्रभो! हमें दक्षता-क्षमता-धैर्य तथा कर्तृत्व-अध्यवसाय दे। हिसकों-बाधकों-बाधाओं को मार भगा। अब हमें सफलकाम-सौभाग्यशाली कर।

१४. पुनर्ये चक्रुः पितरा युवाना सना यूपेव जरणा शयाना ।

ते वाजो विभ्वाँ ऋभुरिन्द्रवन्तो मधुप्सरसो नो ऽवन्तु यज्ञम् ।। ऋ ४/३३/३

जिन्होंने दोनों जीर्ण, सुप्त पिताओं को फिर स्तम्भ-वत् सदा युवा कर लिया, वे मधु-रूप आत्म-वान् संग्राम, ज्योति, शक्ति, व्याप्ति गति, विकास, हमारे यज्ञ की रक्षा करें।

१५. सीद होतः स्व उ लोके चिकित्वान्त्सादया यज्ञं सुकृतस्य योनौ ।

देवावीर्देवान् हविषा यजास्यग्ने बृहद् यजमाने वयो धाः ।। ऋ ३/२९/८, य ११/३५

यज्ञकर्त- आत्मन् ! ज्ञानी- विवेकी अपने लोक में ही बैठ-विराज यज्ञ को सुकर्म की योनि में रख। देवों- दिव्यताओं का रक्षक हवि द्वारा देवों- दिव्यताओं का संगत करता है। प्रकाशस्वरूप! यजमान- आत्मा में विशाल ज्ञान, बल स्थापन कर।

१६. उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम् ।

हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ।। ऋ १/५०/११

मित्र-महान् सूर्य! मेरे उच्चतर द्यौ पर उदय होता आ-रोहण करता हुआ आज मेरे हृदय-रोग और पीलिया को नष्ट करदे।

१७. इयं वेदिः परो अन्तः पृथिव्या अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः ।

अयं सोमो वृष्णो अश्वस्य रेतो ब्रह्मायं वाचः परमं व्योम ।। ऋ १/१६४/३५ य २३/६२ अ ६/१०/१४

यह वेदि है पर पृथिवी का अन्त हैं यह यज्ञ भुवन की नाभि है। पूछती हूं तुझे वर्षणशील अश्व का रेत। पूछती हूं वाणी का परम व्योम।

१८. इमं जीवेभ्यः परिधिं दधामि मैषां नु गादपरो अर्थमेतम् ।

शतं जीवन्तु शरदः पुरूचीरन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन ।। ऋ १०/१८/४ य ३५/१५ अ १२/२/२३

जीवों के लिए इस परि-धि को निर्धारित करती हूं। इनमें से कोई भी अ-श्रेष्ठ, नि-कृष्ट बनकर इस धन को न गंवाए, न खोए। बहु-प्रगतिशील सौ शरद् वर्ष जीएं। मनुष्य मृत्यु को पर्वत से दबोच दें।

१९. जुहरे वि चितयन्तो ऽनिमिषं नृम्णं पान्ति। आ दृळ्हां पुरं विविशुः। ऋ ५/१९/२

वि-चिन्तन करते हुए, त्याग करते हैं, निरन्तर धन-संबल को रक्षा करते रहते हैं, दृढ़ दुर्ग में प्रविष्ट हो जाया करते हैं।

२०. ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो निकेतुन विश्वं समत्रिणं दह ।

कृधी न ऊर्ध्वांचरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ।। ऋ १/३६/१४

हे सर्वोपरि परमात्मा! तू हमें पाप से निरन्तर बचा। केतु द्वारा सकल अत्रि को सम्यक् भस्म करदे। चरथ जीवन के लिए हमें उच्च बना। प्राप्त करा देवों में हमारी सेवा।

२१. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव। ऋ ५/८२/५ य ३०/३

सविता देव! समस्त बुराइयों को दूर कर। जो कल्याणकारी है, उसे हमें प्राप्त करा।

२२. अलाय्यस्य परशुर्ननाश तमा पवस्व देव सोम ।

आखुं चिदेव देव सोम ।। ऋ ९/६७/३०

दिव्य रस दिव्य आनन्द आ, क्षरण कर, प्रवाहित हो। आततायी के फरसे ने उस खनक, खड्डा खोदनेवाले को भी नष्ट कर दिया।

२३. उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय ।

अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ।। ऋ १/२४/१५, य १२/१२, अ ७/८३/३

हमसे, उच्च-तम पाश को ऊपर खोल दे, निम्नतम को नीचे और मध्यवर्ती को मध्य में खोल दे। अखंडव्रत प्रभो! अब हम तेरे व्रत में अ-दीनता, बंधन-राहित्य के लिए निष्पाप हो जाएं।

२४. अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः। आरे बाधस्व दुच्छुनाम् । ऋ ९/६६/१९, य १९/३८, ३५/१६ सा ६२७, १४६४,१५१८

हे प्रभो! तू जीवनों को पवित्र करता है। हमें ऊर्ज् इष् प्रदान कर। दुच्छुनाओं को दूर (बाध ान) कर।

२५. सं मा तपन्त्यभितः सपत्नीरिव पर्शवः ।

नि बाधते अमतिर्नग्नता जसुर्वेर्न वेवीयते मतिः ।। ऋ १०/३३/२

उपक्षय-विनाश-सर्वनाश! मुझे वासनाएं सपत्नियों के समान सर्वतः सन्तप्त कर रही हैं। श्र-मति, नग्न्ता, सता रही है। मति पक्षी के समान उड़ रही है।

२६. उलूकयातुं शुशुलूकयातुं जहि श्वयातुमुत कोकयातुम् ।

सुपर्णयातुमुत गृध्रयातुं दृषदेव प्र मृण रक्ष इन्द्र ।। ऋ ७/१०४/२२ अ ८/४/२२

आत्मन्! उलूक-वृत्ति, शुशुलूक-वृत्ति और कोक-वृत्ति को नष्ट कर दे। सुपर्ण-वृत्ति और गृध्र-वृत्ति को भी नष्ट कर दे। राक्षस को, लोढ़ी (पत्थर) से पीस डाल।

२७. श्रद्धां देवा यजमाना वायुगोपा उपासते ।

श्रद्धां हृदय्ययाकूत्या श्रद्धया विन्दते वसु ।। ऋ १०/१५१/४

श्रद्धा को देव, वायु-रक्षक-प्राण-पोषक-परोपकारी- यज्ञकारी - लोकसेवक हार्दिक संकल्प के साथ उपासते हैं। मनुष्य श्रद्धा से धन प्राप्त करता है।

२८. आ नो भर भगमिन्द्र द्युमन्तं नि ते देष्णस्य धीमहि प्ररेके ।

ऊर्वइव पप्रथे कामो अस्मे तमा पृण वसुपते वसूनाम् ।। ऋ ३/३०/१६

हमें प्रकाश युक्त धन प्रदान कर। हम प्र-शंका में, बड़े संकट में तुझ दाता का नितरां ध्यान करें। हममें काम वड़वानल के समान फैला हुआ हैं, व्याप गया है। वसुओं के वसु-पते! उस को शमन-शान्त करदे।

२६. यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः ।

एकेषं विश्वतः प्रांचमपश्यन्नधि तिष्ठसि ।। ऋ १०/१३५/३

तूने जिस नवीन चक्र-रहित एक-ईषा तथा सब ओर गमन करनेवाले रथ को मन से सम्पन्न किया है, उसे तू न देखता हुआ, आंख मींचे अधि-ष्ठित-सवार होरहा है।

३०. सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुस्तासामेकामिदभ्यंहुरो गात् ।

आयोर्ह स्कम्भ उपमस्य नीळे पथां विसर्गे धरुणेषु तस्थौ ।। ऋ १०/५/६ अ ५/१/६

कवियों ने सात मर्यादाएं बनाई हैं। उनमें से यदि एक को भी लांघा तो पापी हुआ। सचमुच, जीवन-मानवता का आधार समीप के निवास में, मैत्री में, पथों के वि-सर्जन में, शत्रुता में, धैर्य के अवसरों पर स्थिर रहा करता हैं।

३१. सं यद् वयं यवसादो जनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ।

अत्रा युक्तो ऽवसातारमिच्छादथो अयुक्तं युनजद् ववन्वान् ।। ऋ १०/२७/६

मैं सम्यक्, ठीक कहता हूं कि विशाल- संसार के अन्दर, जनों के मध्य हम घास-तृण-भूसा अथवा जौ खानेवाले है। युक्त-समाहित योगी यहां रक्षण-स्रंभक्ता- त्राण-प्रदाता- मोक्ष-प्रदायक ब्रह्म को चाहे और, सेवनशील विषय भोगी को (अ-समाहित को) ज्ञान से युक्त करे- चिपटाए।

३२. अभि वेना अनूषतेयक्षन्ति प्रचेतसः। मज्जन्त्यविचेतसः । ऋ ६/६४/२१

मेधावी, कान्त योगी साक्षात् स्तुता करते हैं। सु-चेता मिलन की चाह करते रहते हैं। अ-विवेकी डूब जाते हैं।

३३. आ त एतु मनः पुनः क्रत्वे दक्षाय जीवसे । ज्योक् च सूर्य दृदृशे। ऋ १०/५७/४ य ३/५४

तेरा मन फिर आ जाए। क्रतु के लिए, दक्षता-क्षमता-बल-वृद्धि के लिए, जीवन के लिए और चिरकाल सूर्य को देखने के लिए।

३४. इन्द्र क्रतुं न आ भर पिता पुत्रेभ्यो यथा ।
शिक्षा णो अस्मिन् पुरुहूत यामनि जीवा ज्योतिरशीमहि ।। ऋ ७/३२/२६, सा २५६, १४५६ अ १८/३/६७,२०/७६/१

बहुत पुकारे जानेवाले प्रभो! जैसे पिता पुत्रों के लिए प्राप्त होता है वैसे ही तूं हमारे लिए प्राप्त हो। इस मार्ग पर हमें शिक्षा कर। प्राणी ज्योति का सेवन करें।

३५. मा कस्याद्भुतक्रतू यक्षं भुजेमा तनूभिः । मा शेषसा मा तनसा ।। ऋ ५/७०/४

अद्भुत-कर्माओं! हम शरीरों से किसी का दान, भेंट न भोगें, दायभाग, विरासत से न भोगें, सन्तान से न भोगें।

३६. मा क्रुध्र्यगिन्द्र शूर वस्वीरस्मे भूवन्नभिष्टयः ।
वयंवयं त आसां सुम्ने स्याम वज्रिवः ।। ऋ १०/२२/१२

हममें जो व्यापक आकांक्षाएं, महत्त्वाकांक्षएं हो, वे कुत्सित साधन वाली न हों। हम सब तेरी सुमनस्कता में रहें।

३७. न्यग् वातो ऽव वाति न्यक् तपति सूर्यः ।
नीचीनमघ्न्या दुहे न्यग् भवतु ते रपः ।। ऋ १०/६०/११ अ ६/९२/२

वायु नीचे, शिर झुकाकर, विनम्रतापूर्वक यह बह रहा है। सूर्य नीचे, शिर नमाकर, नम्रता के साथ तप रहा है। गौ नीचे नम्रता के साथ दूध देती है। तेरा मल, पाप नीचे होवे, गिर जाए।

३८. वात आ वातु भेषजं शंभु मयोभु नो हृदे ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ।। ऋ १०/१८६/१, सा १८४,१८४०

वायु हमारे हृदय के लिए शान्ति दायक, सुख-दायक औषधि प्रवाहित करके लाए। हमारी आयु को बढ़ाए, सुदीर्घ करे।

३९. यददो वात ते गृहे ऽमृतस्य निधिर्हितः । ततो नो देहि जीवसे । ऋ १०/१८६/३ सा १८४२

वायो! तेरे गृह में अमृत का जो कोश निहित है उससे, उसमें से हमारे जीवनार्थ अमृत दे।

४०. नाहमतो निरया दुर्गहैतत् तिरश्चता पार्श्वान्निर्गमाणि ।
बहूनि मे अकृता कर्त्वानि युध्यै त्वेन सं त्वेन पृच्छै ।। ऋ ४/१८/२

यह संसार बड़ा विकट है। मैं इस तिरछे मार्ग से न निकल पाऊंगा। पार्श्व से निकल जाऊं।

मेरे लिए बहुत से अ-कृत कर्तव्य, अनेक साधनीय साधनाएं है। एक से युद्ध करूं, झगडूं, एक से पूछता फिरूं, झक-झक करूं?

४१. बृहस्पते! प्रथमं वाचो अग्रं, यत् प्रैरत नाम-धेयं दधानाः ।

यद् एषां श्रेष्ठं यद् अ-रिप्रम् आसीत्, प्रेणा तद् एषां नि-हितं गुहाविः ।। ऋ १०/७१/१

वाणी के अग्र को नाम-धेय (वेद) को धारण करते हुए नाम धेय को धारण करने वाले आदिम ऋषियों ने प्रथम, पहली बार, सर्वप्रथम प्र-प्रेरा था, उच्चारा था, गाया था। उनका जीवन श्रेष्ठ था, निर्मल, निर्विकार था। वह उनकी गुहा में नि-हित था, आत्मप्रेरणा से, ब्रह्मप्रेरणा से आविष्-कृत हुआ, प्रकट हुआ।

४२. अग्ने! नय सु-पथा राये अस्मान्, विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।

युयोध्य् अस्मज् जुहुराणम् एनो, भूयिष्ठां ते नम-उक्तिं विधेम ।। ऋ १/१७६/१, य ५/३६,७/४३,४०/१६

सन्मार्ग-दर्शक प्रभो! ऐश्वर्य के लिए हमें सु-पथ से ले जा। तू समस्त वयुनों को जानने वाला है। हमसे कुटिलता और पाप दूर कर। हम तेरे प्रति भूयो भूयः, अधिकाधिक नमन और निवेदन अर्पण करें।

४३. ऋजीते! परि वृङ्धि नोश्मा भवतु नस् तनूः ।

सोमो अधि ब्रवीतु नोदितिः शर्म यच्छतु ।। ऋ ६/७५/१२ य २६/४६

सरलते! हमारा अभिवर्धन कर। हमारा शरीर पत्थर हो। धर्मात्मा हमें उपदेश करें। वे अदिति शर्म प्रदान करें।

४४. भद्रो नो अग्निर् आ-हुतो भद्रा रातिः सु-भग! भद्रो अध्व-रः ।

भद्रा उत प्र-शस्तयः ।। ऋ ७/१६/१६ य १५/३७ सामवेद १११,१५५६

सु-धन! हमारे लिए भद्र होवे। आ-हुत अग्नि, राति, अध्वर और हमारी प्रशस्तियां भद्र होवे।

४५. रथे तिष्ठन् नयति वाजिनः पुरो, यत्र-यत्र कामयते सु-षारथिः ।

अभीशूनां महिमानं पनायत, मनः पश्चाद् अनु यच्छन्ति रश्मयः ।। ऋ ६/७५/६ य २६/४३

रथ पर बैठा हुआ सु-सारथि ले जाता है घोड़ों को आगे, जहां-जहां चाहता है। रासों की महिमा को स्तुतो, पहचानो, मन के पीछे अनु-गमन करती हैं रश्मियां।

४६. आ त एतु मनः पुनः, क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।

ज्योक् च सूर्यं दृशे । ऋ १०/५७/४

कर्तृत्व के लिए, दक्षता के लिए, जीवित जीवन के लिए, और चिरकाल सूर्य को देखने कि लिए तेरा मन फिर आ जाय।

४७. परा हि मे वि मन्यवः, पतन्ति वस्य-इष्टये। वयो न वसतीर् उप । ऋ १/२५/४

मेरी वि-मान्यताएं, मनोवृत्तियां, मनःकामनाएं समृद्धतर इष्ट-लक्ष्य के लिए परे ही जा रही हैं, यथा पक्षी बसेरों घोंसलों के निकट जाते हैं।

४८. सोमेनादित्या बलिनः, सोमेन पृथिवी मही ।

अथो नक्षत्राणाम् एषाम्, उप-स्थे सोम आ-हितः ।। ऋ १०/८५/२

सोम से आदित्य बलवान् हैं। सोम से भूमि महती हैं और इन नक्षत्रों की उप-स्थ में सोम स्थित हैं, रखा हुआ है।

४९. आपो! हि ष्ठा मयो-भुवस्, ता न ऊर्जे दधातन ।

महे रणाय चक्षसे ।। ऋ १०/९/१, य ११/५०,३६/१४ सा १८३७ अ १/५/१

जलों! तुम, निस्सन्देह, सुखकारी हो। हमें बल के लिए, महान् शब्द के लिए दिव्य दृष्टि के लिए धारण करो।

५०. अप नः शोशुचद् अघम्, अग्ने! शुशुग्ध्य् आ रयिम् ।

अप नः शोशुचद् अघम् ।। ऋ १/९७/१ अ ४/३३/१

अग्ने! हमारा पाप भस्म हो जाए। हमारे रयि को पूर्णतया शोध दे। हमारा पाप भस्म हो जाए।

५१. श्रद्धां देवा यजमाना, वायु-गोपा उपासते ।

श्रद्धां हृदय्यया-कूत्या, श्रद्धया विन्दते वसु ।। ऋ १०/१५१/४

देवजन, यज्ञानुष्ठानी, यज्ञशील जन प्राण-रक्षक जन हृदय्य भावना द्वारा अभीष्ट को प्राप्त कराने वाली श्रद्धा को उपासते हैं। वे श्रद्धा से ही अभीष्ट धन प्राप्त करते हैं।

५२. भद्रं वै वरं वृणते, भद्रं युंजन्ति दक्षिणम् ।

भद्रं वैवस्वते चक्षुर्, बहु-त्रा जीवतो मनः ।।

जो भद्र व्रत, वरणीय वर वरण करते हैं वे, निश्चय से भद्र दक्षिणा, शोभनीय बल, उत्तर अभिवृद्धि एवं सुन्दर सफलता को युक्त करते हैं। तेजस्वी में भद्र नेत्र, भद्र दृष्टि होती है। जीवित का मन बहु-तारक, बहु-सम्पादक, बहुत साधों का साधक होता है।

५३. अपो अद्यान्व् अचारिषं, रसेन सम् असृक्ष्महि ।

पयस्वान् अग्न्! आगमं, तं मा सं सृज वर्चसा, प्र-जया च धनेन च ।। ऋ १/२३,व २३/१०/९/९ य २०/२२

आज मैंने जलों को अनु-चरा है, जलों के समान आचरण किया है। हम रस से आप्लावित हो गए। पावक! पवित्रकर्तः! प्रकाशस्वरूप! अब मै तेरी शरण में आया हूं। मुझे मानवता के पय से संयुक्त कर दे सौन्दर्य से, धर्म तेज से, सु-सन्तान से धन से भी, और धन्यता से भी।

५४. एवामृताय महे क्षयाय, स शुक्रो अर्ष दिव्यः पीयूषः । ऋ ९/१०९/३, सा १३९७

वह ब्रह्म पीयूष, शुक्र, दिव्य है। हे मानव! तूं निश्चय ही अमृत के लिए, मोक्षप्राप्ति के लिए, महान् निवास के लिए और अमित आश्रय के लिए दौड़।

५५. देवेन नो मनसा देव! सोम!, रायो भागं सहसा-वन्न् अभि युध्य ।
मा त्वा तनद् ईशिषे वीर्यस्यो, भयेभ्यः प्र चिकित्सा गव्-इष्टौ ।। ऋ १/१६/२३ य ३४/२३

आत्मन्! हमारे लिए दिव्य मन से सर्वतः युद्ध कर। आत्मैश्वर्य का भाग प्राप्त करा अज्ञान मुझे नहीं आच्छादे। तूं हर्ष और शोक (वीर्य) का ईशत्व करता है। तू पराक्रम का स्वामी है। जीवन यज्ञ में दोनों के लिए सु-चिकित्सा कर।

५६. युंजते मन उत युंजते धियो, विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्-चितः ।
वि होत्रा दधे वयुनाविद् एक इन्, मही देवस्य सवितुः परि-ष्टुति ।। ऋ ५/७१/१, य ५/१४,११/४,३७/२

मेधावी जन, योगी जन मन और धारणाओं को युक्त करते हैं। सब चेष्टाओं गतियों का जानने वाला एक ही, अकेला ही होत्रों, यज्ञों, लोक-लोकान्तरों को धारण कर रहा है। महान् ज्ञानी, मेधावी, बुद्ध सविता देव की अभि-स्तुति, महिमा महती है।

५७. वर्धान् यं पूर्वीः क्षपो वि-रूपाः, स्थातुश् च रथम् ऋत प्र+वीतम् ।
अराधि होता स्वर् नि-षत्तः, कृण्वन् विश्वान्य् अपांसि सत्या ।। ऋ १/७०/४

बढ़ाएं जिसे सनातन वि-रूपा रात्रियां, वह स्थावर और जंगम को, अचर और चर को ऋत्त से प्रकाशित करता है, जिस आत्मसाधक ने रात्रि में साधना की, वह स्वः में नितराम् स्थित, आत्मसमाहित, आत्मावस्थित हो गया। वह सब सत्य कर्मों को किया करता है।

५८. त्र्य्-अम्बकं यजामहे, सु-गन्धि पुष्टि-वर्धनम् ।
उर्वारुकम्-इव बन्धनान्, मृत्योर् मुक्षीय मा+मृतात् ।। ऋ ७/५६/१२ य ३/६०

हम तीन गुणों वाले परब्रह्म की आराधना करते हैं। अमृतस्वरुप ब्रह्मानन्द के द्वारा मैं सुगन्धियुक्त, पुष्टि-वर्धक उर्वारुक समान मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाऊं।

५९. त्वां यज्ञेष्वृत्विजमग्ने होतारमीलते।
गोपा ऋतस्य दीदिहि स्वे दमे।।३/१०/२

हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! उपासना आदि व्यवहारों में ज्ञानवान् पुरुषों में ज्ञान देने वाले! सत्य धर्माचरण के पालकजन तेरी स्तुति करते हैं और तू भी सत्य ज्ञान का रक्षक होकर अपने जगत् के दमन कार्य करते हुए अन्तःकरणों में प्रकट रूप में प्रकाशित हो।

६०. स घा यस्ते ददाशति समिधा जातवेदसे।
सो अग्ने धत्ते सुवीर्य स पुष्यति।।३/१०/३

हे प्रकाशक प्रभो! जो पुरुष उत्पन्न हुए प्रत्येक पदार्थ के तुझे विद्यमान जानकर हृदय को प्रकाशित करने वाले विज्ञान द्वारा अपनी आत्मा सौंप देता है, वह उत्तम बल, पराक्रम को धारण करता है और वही धनधान्य, गौ, पशु सुवर्णादि से पुष्ट और समृद्ध होता है।

६१. अग्ने कदा त आनुषग्भुवद्देवस्य चेतनम्।

अघा हि त्वा जगृभ्रिरे मर्तासो विक्ष्वीड्यम्।।४/७/२

हे तेजस्वरूप! प्रकाशस्वरूप यह मनुष्य कब तेरे अनुकूल होता है और निश्चित् रूप से मनुष्य लोग प्रजाओं के बीच में स्तुति करने योग्य, सबको ज्ञानवान् करने वाले तुम्हें जीवनदाता रूप से ग्रहण करेंगे?

६२. ऋतवानं विचेतनसं पश्यन्तो द्यामिव स्तृभिः।
विश्वेषामध्वराणां हस्कर्तारं दमेदमे।।४/७/३

उस परमेश्वर को विद्वान् लोग सत्य ज्ञान और मूल कारण प्रकृति रूप 'ऋत' या अव्यक्त तत्व के स्वामी, विविध ज्ञानों से युक्त नक्षत्रों से युक्त, आकाश के समान व्यापक नाना लोकों का आश्रय वा व्यापक देखते हुए समस्त जीवों और यज्ञों के गृह में दीपक रूप मानते हैं।

६३. अहं मनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षीवाँ ऋषिरस्मि विप्रः।
अहं कुत्समार्जुनेयं न्यृंजेऽहं कविरुशना पश्यता मा।।४/२६/१

परमेश्वर कहता है कि मैं मननशील, चराचर का ज्ञाता हूँ। मैं सूर्य के समान स्वयं प्रकाश हूँ। मैं समस्त लोकों में व्यापक कर्तृशक्ति का स्वामी हूँ। मैं विशेष रूप से संसार को पूर्ण करने और ज्ञान, कर्मफल का दाता, सबका द्रष्टा, ज्ञान स्वरूप हूँ। मैं विद्वान् पुरुष से बनाये शस्त्रास्त्र के तुल्य विघ्ननाशक और ऋजु मार्ग पर चलने एवं स्तुतियों के करने वाले विद्वान् भक्त को अपनाता हूँ। मैं क्रान्तदर्शी सबको प्रेम से चाहने वाला हूँ। मुझको साक्षात् करो।

६४. अहं भूमिमददामार्यायाहं वृष्टिं दाशुषे मर्त्याय।
अहमपो अनयं वावशाना मम देवासो अनु केतमायन्।।४/२६/२

मैं परमेश्वर श्रेष्ठ पुरुष को भूमि देता हूँ, दानशील मनुष्य के हाथ नाना समृद्धि-वर्षा देता हूँ। मैं ही कामनावाले लिंग शरीरों, प्राणों, वायु और जलों को इस संसार में लाता और चलाता हूँ। सूर्यादि लोक और ज्ञानी विद्वान् और कामनाशील जीव मेरे ज्ञान वा बुद्धि का अनुसरण करते हैं।

६५. अहं पुरो मन्दसानो व्यैरं नव साकं नवतीः शम्बरस्य।
शततमं वेश्यं सर्वताता दिवोदासमतिथिग्वं यदावम्।।४/२६/३

मैं सर्वत्र जगत् में सौवें वर्ष में वर्तमान प्रकाशक सूर्य के समान तेजस्वी व्यापक किरणों के तुल्य वाणी का प्रसार करने वाले पुरुष का जब पालन करता हूँ तब शान्ति चाहने वाले उस जीव के ९९ संख्या वाली पूर्ण को एक साथ ही विशेष रूप से संचालित करता हूँ। मनुष्य की सौ वर्ष की आयु का भोग भी मेरे ही हाथ है।

६६. तत्सवितुर्वृणीमहे वयं देवस्य भोजनम्
श्रेष्ठं सर्वधातमं तुरं भगस्य धीमहि।। ५/८२/१

हे मनुष्यों! हम लोग सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त, अन्तर्यामी, सम्पूर्ण जगत् के प्रकाशक, जगदीश्वर के अतिशय उत्तम और पालन करने योग्य, सब को अत्यन्त धारण करने वाले, अविद्या आदि दोषों के नाश करने वाले सामर्थ्य को स्वीकार करते हैं और धारण करते हैं, उसे तुम लोग स्वीकार करो।

६७. ध्रुवं ज्योतिर्निहितं दृशये कं मनो जविष्ठं पतयत्स्वन्तः।
विश्वे देवाः समनसः सकेता एकं क्रतुमभि वि यन्ति साधु।। ६/६/५

इस देह में दर्शन करने के लिये स्थिर सुख-दुःखादि का प्रकाशक स्वयं प्रकाश स्वरूप आत्मा स्थित है जो सुखमय कर्तारूप है और गति करने वाले, अपने स्थान पर अपनी वृत्तियों के स्वामी के समान, अध्यक्षों के तुल्य विषयों की ओर दौड़ते हुए इन्द्रियों के बीच या उनके ऊपर, घोड़ों के सारथि के समान देह के ही भीतर अति वेग से युक्त ज्ञान-साधन मन स्थित है। विषयों की कामना वाली सब इन्द्रिय। मन सहित मिलकर ज्ञानयुक्त होकर एक ही कर्ता आत्मा की ओर विशेष रूप से जाती हैं।

६८. तं सुप्रतीकं सुदृशं स्वंचमवद्वांसो विदुष्टरं संपेम।
स यक्षद्विश्वा वयुनानि विद्वान्प्र हव्यमग्निरमृतेषु वोचत्।। ६/१५/१०

उस सुख रूप में ज्ञात उत्तम द्रष्टा, सुख से प्राप्य, महान् ज्ञानी प्रभु को हम अविद्वान् जन प्राप्त हों। वह ज्ञानवान्, अग्नि तुल्य प्रभु समस्त ज्ञानों को देता है। वह ही अविनाशी हम जीवों के लिए ग्रहण योग्य ज्ञान का उत्तम उपदेश करता है।

६९. त्वमग्ने पास्युत तं पिपर्षि यस्त आनट् कवये शूर धीतिम्।
यज्ञस्य वा निशितिं वोदितिं वा तमित्पृणक्षि शवसोत राया।। ६/१५/११

हे भयरहित दृष्ट दोषों के विनाश करने और अविद्यारूप अन्धकार के नाश करने वाले! जो आपकी आज्ञा को प्राप्त होता है, उस विद्वान् के लिए धारणा देते है, उसकी रक्षा करते है और उसकी पालना करते वा श्रेष्ठ गुणों से पूरित करते है वा यज्ञ की अत्यन्त तीक्ष्णता का उदय का सम्बन्ध करते हो उसका बल से, धन से भी सम्बन्ध करते है, वह ही आप परमात्मा उपासना करने योग्य हैं।।११।।

७०. अध त्वा विश्वे पुर इन्द्र देवा एकं तवसं दधिरे भराय।
अदेवो यदभ्यौहिष्ट देवान्त्स्वर्षाता वृणत इन्द्रमत्र।। ६/१७/८

हे अत्यन्त ऐश्वर्य के देने वाले, स्वामिन् जगदीश्वर! जो सम्पूर्ण विद्वान् जन पालन के लिए, जिसके समान दूसरा नहीं, उन बल आदि के बढ़ाने वाले को आगे धारण करते हैं, उनको आप विज्ञान से धारण करते हैं ।जो सुखों का विभाग करने वाला, प्रकाश से रहित व्यक्ति विद्वानों के सन्मुख विशेष करके कुतर्क करता हैं वह संज्ञान को नहीं प्राप्त होता है। जो इस संसार में अत्यन्त ऐश्वर्ययुक्त आपको स्वीकार करते हैं, वे इसके अनन्तर सम्पूर्ण आनन्द को प्राप्त होते हैं।।८।।

७१. य एक इद्धव्यश्चर्षणीनामिन्द्रं तं गीर्भिरभ्यर्च आभिः।
यः पत्यते वृषभोवृष्ण्यावान्त्सत्यः सत्वा पुरुमायः सहस्वान्।। ६/२२/१

जो अद्वितीय ही मनुष्यों में सबके पुकारने योग्य है, उस ऐश्वर्यवान् की इन वेद-वाणियों से साक्षात् अर्चना कर। जो समस्त सुखों का दाता, के बलों का स्वामी है, वह स्वयं भी सत्य व्यवहार वाला, बहुत सी प्रज्ञाओं, वाणियों का ज्ञाता और बलवान् है।

७२. यूयं गावो मेदयथा कृशं चिदश्रीरं चित्कृणुथा सुप्रतीकम्।
भद्रं गृहं कृणुथ भद्रवाचो बृहद्वो वय उच्यते सभासु।। ६/२८/६

हे विद्वानों! आप लोग जो वाणियां हैं, उनको मधुर करिये। अमंगल स्वरूप और अधर्माचरण करने वाले को क्षीण करिये। उत्तम प्रतीति कराने वाले द्वार आदि जिसमें कल्याण करने वाली शुद्ध वायु, जल और वृक्ष वाले गृह को करिये और आप्त विद्वानों से प्रकाशमान सभाओं में जो कल्याण करने वाली सत्यभाषण से युक्त वाणियां हैं उनको स्वीकार करिए। इसके अतिरिक्त अपने जीवन को उन्नत बनाएये।

७३. प्र या महिम्नामहिनासु चेकिते द्युम्नेभिरन्या अपसामपस्तमा।
रथ इव बृहती विभ्वने कृतोपस्तुत्या चिकितुषा सरस्वती।। ६/६१/१३

जो ज्ञान से पूज्य हैं, जो इन सबमें ज्ञान-प्रकाशों से अन्य प्रजाओं को भी ज्ञानयुक्त करती है और कर्मकारी विद्वानों में उत्तम कर्मोपदेशिका है, जो रथ-वत् विशाल, व्यापक ब्रह्म की स्तुति के लिये प्रकट की जाती है, जो विद्वान् द्वारा उपासना काल में भी परमेश्वर की स्तुति है, वह वेदवाणी पूज्य है।

७४. महाँ अस्यध्वरस्य प्रकेतो न ऋते त्वदमृता मादयन्ते।
आ विश्वेभिः सरथं याहि देवैर्न्यग्नै ने होता प्रथमः सदेह।। ७/११/१

विद्या आदि शुभ गुणों के दाता! हे स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर! आप इस जगत् में सब विद्वानों के साथ पहले हमको रथसहित निरन्तर प्राप्त होइए। जिस कारण आपसे भिन्न नाश रहित जीव नहीं आनन्द करते हैं, इससे आप स्थिर होइए। आप सब व्यवहारो के लिये उत्तम बुद्धि के प्रकाशक हैं।।१।।

७५. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहें।। ७/३२/२३

हे बहुधन युक्त परम ऐश्वर्य देने वाले जगदीश्वर! कोई पदार्थ न आपके सदृश और शुद्ध स्वरूप है, न पृथिवी पर जाना हुआ है, न उत्पन्न हुआ है और न उत्पन्न होगा। महान् विद्वानों की कामना करने वाले विज्ञान और अन्न वाले और अपने को उत्तम वाणी वा उत्तम भूमि की इच्छा करने वाले हम लोग आपकी प्रशंसा करते हैं।।२३।।

७६. शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु सन्तु गावः।
शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो भवन्तु पितरो हवेषु।। ७/३५/१२

हे जगदीश्वर! जैसे हवन आदि अच्छे कामों में सत्य भाषण आदि व्यवहार के स्वामी हम लोगों के लिये सुखरूप होवें। उत्तम घोड़े हमारे लिये सुख रूप होवें। दूध देती हुई गौयें हम लोगों को सुखरूप ही हों। सुन्दर अच्छे कामों में हाथ डालने वाले धर्मात्मा एव बुद्धिमान् जन हम लोगों के लिए सुखरूप हों। पितृजन हम लोगों के लिए सुखरूप होवें, वैसा विधान कीजिए।।१२।।

७७. त्वामच्छां चरामसि तदिदर्थे दिवेदिवे। इन्द्रो त्वे न आशसः।। ६/१/५

हे परमात्मन्! आपको भली-भांति हम लोग प्राप्त हो और प्रतिदिन हे परमात्मन्! आपके लिये ही हमारा जीवन हो, यही प्रार्थना है।।५।।

७८. तमी हिन्वन्त्यग्रुवो धमन्ति बाकुरं दृतिम्। त्रिधातु वारणं मधु।। ६/१/८

उस पुरुष को उग्र गतियां प्रेरणा करती हैं और भासमान शरीर को वह पुरुष प्राप्त होता है, जिसमें

तीन प्रकार से दूसरों का वारण करने वाला मधुमय शरीर मिलता है।।८।।

७६. अभी३ममघ्न्या उत श्रीणन्ति धेनवः शिशुम्। सोममिन्द्राय पातवे।। ६/१/६

उस सौम्यस्वभाव वाले श्रद्धालु पुरुष को कुमारावस्था में ही सब प्रकार से अहिंसनीय गौवें तृप्त करती हैं। ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए अथवा उक्त श्रद्धालु पुरुष को अहिंसनीय वाणियां ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए संस्कृत करती हैं।।६।।

८०. पवस्य देववीरति पवित्र सोम रह्या। इन्द्रमिन्दो वृषा विंश।। ६/२/१

हे सौम्यस्वभाव! और दिव्यगुणयुक्त परमात्मन्! आप हमें पवित्र करें और हे ऐश्वर्युक्त परमात्मन्! आप ऐश्वर्य प्राप्त करायें। हे आनन्दवर्षक! आप शीघ्र ही हमारे हृदय में प्रवेश करें, पवित्र करें, तथा अवश्य रक्षा करें।।१।।

८१. आ वच्यस्व महि प्सरो वृषेन्दो द्युम्नवत्तमः। आ योनि धर्णसिः सदः।। ६/२/२

हे सब कामनाओं के पूर्ण करने वाले यशस्वी महान् परमात्मन्! आप हमें सर्वव्यापी ज्ञान का उपदेश करें क्योंकि आप सद्विज्ञान को और संसार के कारणभूत प्रकृति को सब ओर से धारण किये हुए हैं।।२।।

८२. अधुक्षत प्रियं मधु धारा सुतस्य वेधसः। अपो वसिष्ट सुक्रतुः।। ६/२/३

वह परमात्मा अपने गुण, कर्म, स्वभाव से सबको अपने वशीभूत कर रहा है। वह सत्कर्मों वाला है। अभिलषित पदार्थों को देने वाला है और अमृत की वृष्टियों से प्रिय वस्तुओं से परिपूर्ण करने वाला है।।३।।

८३. महान्त त्वा महीरन्वापो अर्षन्ति सिन्धवः। यद्गोभिर्वासयिष्यसे।। ६/२/४

हे परमात्मन! सबसे बड़े आपको पृथ्वी और जल तथा स्पन्दनशील सब पदार्थ आश्रय किये हुए हैं, क्योंकि आप अपनी शक्तियों से सबका नियमन करते हैं।।४।।

८४. अचिक्रदद्वृषा हरिर्महान् मित्रो न दर्शतः। सं सूर्येण रोचते।। ६/२/६

दूष्टों का दलन करने वाला सबका मित्र के समान सन्मार्ग दिखलाने वाला वह ब्रह्म भली प्रकार अपने विज्ञान से प्रकाशमान हो रहा है। सर्वकामप्रद वह परमात्मा सबको अपनी ओर बुला रहा है।६।।

८५. अस्मभ्यंमिन्दविन्द्रयुर्मध्वः पवस्व धारया। पर्जन्यो वृष्टिमाँ इव।। ६/२/६

हे परमैश्वर्ययुक्त और सर्वव्यापक परमात्मन्! आनन्द की वृष्टि से वर्षा करने वाले मेघ के समान आप हमको पवित्र करें।।६।।

८६. एष देवो विपा कृतोऽति ह्वरांसि धावति। पवमानो अदाभ्यः।। ६/३/२

इस पूर्वोक्त देव का मेधावी विद्वानों ने विस्तार से वर्णन किया है उपासना किया हुआ यह पवित्र देव उपासकों के हृदय में प्राप्त होता है।।२।।

८७. एष देवो रथर्यति पवमानो दशस्यति। आविष्कृणोति वग्वनुम्।। ६/३/५

यह परमात्मदेव सबको पवित्र करता हुआ सदा सबका शुभ चाहता है। वह मनोवांछित फलों की प्राप्ति कराता है तथा सत्य को प्रकट करता है।।५।।

८८. एष प्रत्नेन जन्मना देवो देवेभ्यः सुतः। हरिः पवित्रे अर्षति।।६/३/६

यह परमात्मा अनादि काल से आविर्भाव से विद्वानों के लिए सुप्रसिद्ध है सब दुःखों का हरने वाला वह मनुष्य के पवित्र हृदय में प्रकट होता है।।६।।

८९. सना ज्योतिः सना स्व र्विश्वा च सोम सौभगा। अथा नो वस्यसस्कृधि।। ६/४/२

हे सौम्यस्वभाव परमात्मन! अप सदा ज्योति स्वरूप हैं, और सदा सुखस्वरूप हैं। आप हमें सम्पूर्ण सौभाग्यदायक वस्तुएं और मुक्ति सुख दें।।२।।

९०. सना दक्षमुत क्रतु मप सोम मृधो जहि। अथा नो वस्यसस्कृधि।। ६/४/३

हे सौम्यस्वभाव परमात्मन्! हमारे शुभ कर्मों की आप रक्षा करें और पाप कर्मों को हमसे दूर करें। सुनीति से हमें युक्त कर मुक्ति दीजिए। ।।३।।

९१. सुशिल्पे बृहती मही पवमानो वृषण्यति। नक्तोषासा न दर्शते।। ६/५/६

रात्रि और उषःकाल परमात्मा की उपासना करने योग्य हैं और सुन्दर-सुन्दर कलाकौशलादि विद्याओं के अनुसन्धान करने योग्य हैं। बड़े और पूज्य अर्थात् सफल करने योग्य हैं। इन कालों में उपास्यमान परमात्मा सब कामनाओं को देता है और जो इस प्रकार के उपासक नहीं, उनकी कामनाओं को पूर्ण नहीं करता है। ।६।।

९२. उभा देवा नृचक्षसा होतारा दैव्या हुवे। पवमान इन्द्रो वृषा।। ६/५/७

परमात्मा जो अन्नादि ऐश्वर्यों को दे उसका नाम इन्द्र है और वह इन्द्र रूप परमात्म, जो सब कामनाओं को देने वाला है, सबको पवित्र करने वाला है, उस परमात्मा के साक्षात् कराने वाले, अपूर्व सामर्थ्य देने वाले ज्ञान तथा कर्म जो दिव्य शक्ति सम्पन्न हैं, उनसे मैं परमात्मा का साक्षात्कार करता हूँ।।७।।

९३. मन्द्रया सोम धारया वृषा पवस्य देवयुः। अव्यो वारेष्वस्मयुः।। ६/६/१

हे शान्त्यादिगुणसम्पन्न परमात्मन्! आप आह्लाद करने वाली वृष्टि से हमको पवित्र करें, क्योंकि आप सब कामनाओं के देने वाले हैं। देवताओं के प्रिय हैं और पृथिव्यादि लोकलोकान्तरों में व्यापक हैं। आप हमको प्राप्त होकर आनन्दित करें।।१।।

९४ . तं गोभिर्वृषणं रसं मदाय देववींतये। सुतं भराय सं सृज।। ६/६/६

उक्त परमात्मा को जो कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, आहलाद् के लिए रसरूप है, ऐश्वर्य उत्पन्न करने के लिए, धारण करने के लिए स्वतः सिद्ध है, उस परमात्मा को ध्यान का विषय बनाओ।।६।।

९५. आत्मा यज्ञस्य रंह्या सुष्वाणः पवते सुतः। प्रत्नं नि पाति काव्यम्।। ६/६/८

पूर्वोक्त परमात्मा यज्ञ की आत्मा है। सर्वप्रेरक और आनन्द का आविर्भावक है सर्वत्र गति रूप से पवित्र करता है। वही परमात्मा प्राचीन काव्य की रक्षा करता है।।८।।

९६. पुनानः कलशेष्वा वस्त्राण्यरुषो हरिः। परि गव्यान्यव्यत।।६/८/६

वह परमात्मा विद्युत के समान तेजोमय वस्त्रों को धारण करता हुआ प्रत्येक वस्तु को अपने भीतर रखकर प्रत्येक ब्रह्माण्ड में आप व्यापक होकर सबको पवित्र कर रहा है। सबके दुःखों को हरने वाला वह ब्रह्म प्रत्येक पृथिव्यादि ब्रह्माण्डों का आच्छादन कर रहा है।।६।।

६७. स सप्त धीतिमिर्हितो नद्यो अजिन्वद्रदुहः। या एकमक्षि वावृधुः।।६/६/४
वह परमात्मा इडा, पिंगलादि सात नाड़ियों को जब बुद्धि की वृत्तियों से धारण किया जाता है तो योग द्वारा तृप्त करता है। वे नाड़ियां स्वकर्तव्य पालन करती हुई उस एक अविनाशी परमात्मा को प्रकाशित करती हैं।।४।।

६८. अभि विप्रा अनूषत गावों वत्सं न मातरः। इन्द्रं सोमस्य पीतयें।। ६/१२/२
जैसे बछड़ा माता का आश्रयण करता है, उसी प्रकार उस परमात्मा को पाने के लिये सौम्य स्वभाव वाले ज्ञानी जन आश्रण लेते हैं। ।।२।।

६६. जुष्ट इन्द्राय मत्सरः पवमान कनिंक्रदत्। विश्वा अप द्विषो जहि।। ६/१३/८
जो धर्मप्रिय विद्वानों का संगी है, जो न्यायरूपी मद से मत है, वह सबको पवित्र करने वाला, सब को सदुपदेश दाता, सम्पूर्ण हमारे राग द्वेषादि हैं, उनका नाश करें।८।।

१००. मधोर्धारामनु क्षर तीव्रः सधस्थमासदः। चारुर्ऋतायं पीतयें।। ६/१७/८
हे परमात्मन्! आप हमारे इस यज्ञ में प्रेम की धारा बहाइये। आप गतिशील हैं और सुन्दर हैं। सत्य की प्राप्ति के लिये यज्ञ में स्थित हुए हमको स्वीकार कीजिये।८।।

१०१. सोमा असृग्रमाशवो मधोमर्दस्य धारया। अभि विश्वानि काव्या।। ६/२३/१
अनन्त प्रकार के कार्यरूप ब्रह्माण्ड प्रकृति के हर्षजनक भावों की सूक्ष्म अवस्था से शीघ्र गति वाले बनाए गये हैं और तदनन्तर सब प्रकार के वेदादि शास्त्रों की रचना हुई है।१।।

१०२. अनु प्रत्नास आयवः पदं नवीयो अक्रमुः। रुचे जनन्त सूर्यम्।। ६/२३/२
उनमें से शीघ्रगामी प्रकृति के परमाणु जो स्वरूप से अनादि हैं, वे नवीन पद को धारण करते हैं। दीप्ति के लिये परमात्मा ने उन्हीं परमाणुओं में से सूर्य को पैदा किया।२।।

१०३. अभिगावो अधन्विषुरापो न प्रवता यतीः। पुनाना इन्द्रमाशत।। ६/२४/२
इन्द्रियां कर्मयोगियों में जल के समान वेग वाली होती हैं और वशीभूत होती हैं। वे वशीकृत इन्द्रियां मनुष्य को पवित्र करती हुई परमात्मा को चाहती हैं।।२।।

१०४. दुहानः प्रत्नमित् पयः पवित्रे परिं षिच्यते। क्रदन् देवाँ अजीजनत्।। ६/४२/४
प्राचीन, वेदवाणियों में ब्रह्मानन्द को उत्पन्न करता हुआ वह परमात्मा उपासकों के पवित्र हृदय में ध्यान का विषय होता है और उसी शब्दायमान परमात्मा ने देदीप्यमान चन्द्रादिकों को उत्पन्न किया।।४।।

१०५. अमि विश्वानि वार्याऽभि देवाँ ऋतावृधः। सोमः पुनानो अर्षति।। ६/४२/५
सर्वोत्पादक परमात्मा सत्य को बढ़ाने वाले सत्कर्मियों को सर्वथा पवित्र करके सम्पूर्ण वांछनीय पदार्थों को उनके लिये प्राप्त करता है।।५।।

१०६. प्र ते धारा असश्चतो दिवोनयन्ति वृष्टयः। अच्छा वाजं सहस्रणम्।। ६/५७/१
हे परमात्मा! द्युलोक से वृष्टि के समान आपके ब्रह्मानन्द की अनेक प्रकार की धाराएं विद्वानों के हृदयों में प्रादुर्भूत होती हैं। आप अपने उपासकों को अनेक प्रकार के ऐश्वर्य के अभिमुख करिये।१।।

१०७. दिवि ते नाभां परमो य आदद पृथिव्यास्ते रुरुहुः सानवि क्षिपः।
अद्रयस्त्वा वप्सप्ति गोरधि त्व च्यप्सु त्वाहस्तैर्दुदुहुर्मनीषिणः।। ९/७९/४
मेधावी लोग तुमको ज्ञानयोग, कर्मयोगादि साधनों द्वारा साक्षात्कार करते हैं। उनकी चित्तवृत्तियां अपने मन में कर्मों के लिये तुमको ग्रहण करती हैं। हे सोम! तुम्हारे लोक-लोकान्तरों के बन्धनरूप द्युलोक में जो पुरुष तुमको ग्रहण करता है, वह सर्वोत्कृष्ट होता है और तुम्हारे पृथ्वी लोक के उच्च शिखर में रखा हुआ उत्पन्न होता है।४।।

१०८. अरूरुचदुपसः पृश्निरग्रिय उक्षा बिभर्ति भुवनानि वाजयुः।
मायाविनो ममिरे अस्य मायया नृचक्षसः पितरो गर्भमा दधुः।। ९/८३/३
पूर्वोक्त परमात्मा सूर्य के प्रभामण्डल को प्रकाशित करता है। प्रलय काल में जो सबको भक्षण करे उसका नाम पृष्णि है। जो इस सम्पूर्ण संसार को अपने प्रेमवारि से सिंचित करे उस महान् पुरुष का नाम उक्षा है। वह सब भुवनों का भरण-पोषण करता है, सब बलों का आधार है। उसकी शक्ति से मायावी लोक लय हो जाते हैं। वह सर्वज्ञ, सबको उत्पन्न करने वाला है और इस संसाररूपी गर्भ को धारण करता है।।२।।

१०९. शतं धारा देवजाता असृग्रन्तसहस्रमेनाः कवयो मृजन्ति।
इन्दो सनित्रं दिव आ पवस्व पुर एतासि महतो धनस्य।।९/९७/२९
हे प्रकाश स्वरूप परमात्मान! आप उपासना के साधनरूप ऐश्वर्य को द्युलोक से देकर हमको पवित्र करें, क्योंकि आप प्राचीन काल से ही बड़े धनों के दाता है। आप अनन्त ब्रह्माण्डों के धारण करने वाले हैं और सहस्रों प्रकार की विभूतियां आप को अलंकृत करती हैं दिव्यशक्तिसम्पन्न क्रान्तदर्शी विद्वान् आपको शुद्ध स्वरूप से वर्णन करते हैं।।

११०. महत तत् सोमो महिषश्चकाराऽपां यद्गर्भोऽवृणीत देवान्।
अदधादिन्द्र पवमान ओजो जनयत् सूर्ये ज्योतिरिन्दुः।। ९/९७/४१
जो प्रकाश स्वरूप परमात्मा भौतिक सूर्य में प्रकाश को उत्पन्न करता है और सबको पवित्र करने वाला है, वह परमात्मा कर्मयोगी के लिये ज्ञान प्रकाश रूपी बल धारण कराता है। वह महान् सोम उस बड़े काम को करता है जो वाष्परूप प्रकृति के अंशों में सूर्यादि दिव्य पदार्थों के उत्पत्तिरूप गर्भ से वरण किया गया है।।४१।।

१११. यथाहान्यनुपूर्वं भवन्ति यथ ऋतव ऋतुभिर्यन्ति साधु।
यथा न पूर्वमपरो जहात्येवा धातरायूंषि कल्पयैषाम्।। १०/१८/५
दिन और रात्रि पूर्वापर ऋतुओं के साथ क्रम से होती हैं। जिस प्रकार दूसरा पूर्व को नहीं छोड़ता है ऐसे ही हे परमेश्वर! आप इन जीवों की आयु निश्चित करते है।।५।।

११२. उदीर्ष्व नार्यभि जीवलोकं गतासुमेतमुपं शेष एहिं।
हस्तग्राभस्य दिधिषोस्तवेदं पत्युर्जनित्वमभि सं बभूथ।। १०/१८/८
हे स्त्री! जीवित पति को लक्ष्य करके उठ खड़ी हो, मृत पति के पास क्यों पड़ी है? आ, हाथ ग्रहण करने वाले नियुक्त इस पति के साथ सन्तान जनने को लक्ष्य में रखकर सम्बन्ध कर।।८।।

११३. परो दिवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति।

कं स्विद्गभं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे।। १०/८२/५

वह परमेश्वर महान् आकाश से भी परे हैं। वह इस पृथ्वी से भी परे है, तथा दिव्य पदार्थों और मेघों से परे है। किस श्रेष्ठ कर्म रूपी विराट् हिरण्यगर्भ को प्रकृति के परमाणु धारण करते हैं जिसमें समस्त देव दिव्य पदार्थ और जीवगण अपने को देखते हैं? ।।५।।

११४.अयं ते अस्म्युप मेह्यर्वाङ् प्रतीचीनः सहुरे विश्वधायः।
मन्यो वज्रिन्नभि मामा ववृत्स्व हनाव दस्यूँरुत बोध्यापेः।।१०/८३/६

हे विश्व के जानने वाले! हे सबके अपराधों को क्षमा अर्थात् सहन करने वाले! विश्व को धारण करने वाले! दुग्ध पिलाकर सबको पुष्ट करने वाले! हे बल वीर्यशालिन्! प्रभो! मैं यह मेरा ही हूँ। तू मेरे सन्मुख आ। तु मुझ से पराङ्मुख हो गया है। प्रभो! मेरे प्रति और मेरे समक्ष तू ही तू विद्यमान हो। हम दोनों मिलकर नाशकारी बाह्य और भीतरी शत्रुओं का नाश करें। और तू अपने इस बन्धु का भी कुछ ध्यान रख।

११५. अभि प्रेहि दक्षिणतो भवा मेऽधा वृत्राणि जङ्घनाव भूरि।
जुहोमि ते धरुणं मध्वो अग्रमुभा उपांशु प्रथमा पिबाव।।१०/८३/७

हे प्रभो! तू समक्ष आ, दर्शन दे। मेरे दक्षिण ओर हो, दायां हाथ मेरा परम सहायक और मेरा परम माननीय हो। और हम दोनो विध्नकारी शत्रुओं और आत्मा को घेरने वाला काम, क्रोधादि बाधक कारणों का नाश करें। मैं तेरे लिए मधुर रस रूप आनन्द के सर्वश्रेष्ठ, धारण करने वाले काम, आत्मा को जल पत्र के तुल्य अर्ध के तुल्य प्रदान करता हुं और तेरे मधुर अनन्द के सर्वश्रेष्ठ धारक स्वरूप को मैं स्वयं प्राप्त करूं। इस प्रकार अति समीपतम एक दूसरे में व्याप कर हम दोनों सर्वश्रेष्ट एवं देहग्रहण के पूर्ण शुद्ध आत्मरूप होकर एक दूसरे का पान करें। तू मेरा पान अर्थात् पालन कर वा मुझे अपने भीतर अपनी रक्षा में ले ले और मैं तुझे अपने हृदय में धारण करूं, वा तेरे आनन्दमय रस का पान करूं।

११६. गीर्ण भुवनं तमसापगूळहमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य।। १०/८८/२

यह जगत् अव्यक्त प्रधान में लीन हो जाता है और फिर अग्नि अर्थात् सर्वाग्रणी तेजोमय हिरण्यगर्भ के प्रकट होने पर व्यक्त हो जाता है। जगत् के प्रलय करने वाले इस महान् अग्नि रूप स्वप्रकाश स्वरूप प्रभु के मित्रभाव में ही समस्त देव, पृथ्वी और आकाश और समस्त लोक और ओषधि ायां वा तेज-धारक सूर्य आदि रमण करते हैं।

११७.न यस्य द्यावापृथिवी न धन्व नान्तरिक्षं नाद्रयः सोमो अक्षाः।
यदस्य मन्युरधिनीयमानः शृणाति वीकु रुजति स्थिराणि।।१०/८६/६

जिस परमेश्वर के द्यु और पृथिवी भी माप नहीं है, नहीं जल उसका प्रतिमान है, न अन्तरिक्ष और न पर्वत ही उसके प्रतिमान हैं। सोम पदार्थ भी उसके अधीन ही क्षरित होकर पृथिवी आदि पर आता है। जिसका तेज जब सर्वोपरि विराजमान होकर कार्य करता है तब दृढ़ वस्तु को शीर्ण करता है और स्थिर को भेदन करता है।

११८. तस्माद्यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।

छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत।। १०/९०/६

सब कुछ को सृष्टि रचना रूप सर्वमेध में हुत करने वाले, पूज्य एवं जगत् को योजनाबद्ध करने वाले उस परमेश्वर से ऋचायें, साममन्त्र उत्पन्न होते हैं। अथर्ववेद के मंत्र उससे उत्पन्न होते हैं और यजुर्वेद उससे उत्पन्न होता है।।६।।

११९. तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः।

गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः।। १०/९०/१०

उसी से दोनों तरफ दांत वाले घोड़े आदि उत्पन्न होते हैं। उसी से ही गौ, बकरी और भेड़ आदि भी उत्पन्न होते है। ।।१०।।

१२०. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद बाहू राजन्यः कृतः।

ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भयां शूद्रो अजायत।। १०/९०/१२

इस समाज वा सामाजिक पुरुष का ब्राह्मण मुख के सदृश बताया गया है। बाहुएं क्षत्रिय मानी गयी हैं। जो इसका ऊरु भाग के सदृश है, वह वैश्य है। पादस्थानीय सेवा और अभिमान राहित्य से शूद्र उत्पन्न होता है।।१२।।

१२१. नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत।

पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात् तथा लोकाँ अकल्पयन्।। १०/९०/१४

नाभि से अन्तरिक्ष होता है, शिर से द्युलोक होता है, पैर से भूमि, श्रोत्र से दिशायें और इस प्रकार अन्य लोकों को बनाया।।१४।।

१२२. तमेव ऋषि तमु ब्रह्माणमाहुर्यज्ञन्यं सामगामुक्थशासम्।

स शुक्रस्य तन्वो वेद तिस्रो यः प्रथमो दक्षिणयारराध।।१०/१०७/६

जो श्रेष्ठ होकर दक्षिणा द्वारा सबके हाथों को सिद्ध करता है, वह शक्तिशाली प्रभु के तीन रूपों को जानता है। उसको ही ऋषि कहते हैं, उसको ही ब्राह्मण कहते हैं। उसको ही यज्ञ का नेता, साम का गान करने वाला तथा उत्तम वेदवचनों का शासक या उपदेष्टा कहते हैं।

१२३. तिस्रो देष्ट्राय निर्ऋतीरुपासते दीर्घश्रुतो वि हि जानन्ति वह्नयः।

तासां नि चिक्युः कवयो निदानं परेषु या गुह्येषु व्रतेषु।। १०/११४/२

दीर्घ काल तक वेदों का श्रवण करने वाले और ज्ञान के धारक विद्वान् जन सर्वसामान्य जनों को उपदेश करने के लिए ही तीनों निःशेष सत्यज्ञान से पूर्ण वेदों को गुरु या प्रभु के समीप रह कर उपासना द्वारा प्राप्त कर अभ्यास करते हैं। वे क्रान्तदर्शी जन उन वेदवाणियों के विशेष विज्ञान रहस्य को जान लेते हैं, और जो सर्वोत्कृष्ट बुद्धि में स्थित ज्ञानमय कर्त्तव्यों का स्थिर सम्बन्ध है, उसको भी निश्चयपुर्वक जान लेते हैं।

१२४. इमा ब्रह्म बृहद्दिवो विवक्तीन्द्राय शूषमग्रियः स्वर्षाः।

महो गोत्रस्य क्षयति स्वराजो दुरश्च विश्वा अवृणोदप स्वाः।।८।।१०/१२०/८

सूर्य और आकाश से भी महान् प्रभु इन वेद-वचनों का विविध प्रकार से उपदेश करता है। वेदवचन जीव को बल प्रदान करते हैं। वह प्रभु सबसे प्रथम, समस्त तेजों और सुखों का प्रदान करने वाला है। वह स्वयं चमकने वाले, बड़े भारी वाणियों के पालक वेद-ज्ञान का स्वामी है।

वह ही समस्त अपने द्वारों को खोलता है। वही अपने समस्त रहस्यों को प्रकट करता है।

१२५. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्

स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम।। १०/१२१/१

सृष्टि की प्रागवस्था में भी प्रकाशस्वरूप परमेश्वर विद्यमान रहता है। वह उत्पन्न सम्पूर्ण जगत् का एकमात्र स्वामी होता है। वह इस पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है। सुखस्वरूप उस देव के लिए हम श्रद्धा और भक्ति विशेष से उपासना करें।।१।।

१२६. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः।

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम।।१०/१२१/२

वह परमेश्वर आत्मज्ञान का दाता, भौतिक और आध्यात्मिक बलों का दाता है, जिसकी सभी उपासना करते हैं, जिसके प्रकृष्ट शासन तथा आज्ञा को समस्त प्राकृतिक शक्तियां और विद्वज्जन स्वीकार करते हैं, जिसकी कृपा की छाया अमरत्वमय है और जिसका न मानना ही मृत्यु है, उस सुखस्वरूप देव के लिए हम सदा श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें।।२।।

१२७. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैक इद्राजा जगतो बभूव।

य ईशे अस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। १०/१२१/३

जो श्वास लेने वाले, आंख झपकाने वाले अथवा अजीवित जगत् का अपनी सामर्थ्य से एक ही राजा है जो दो पैरों वाले मनुष्य आदि तथा पशु आदि प्राणियों का स्वामी है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर के लिए श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करते हैं।।३।।

१२८. येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृळहा येन स्वः स्तभितं येन नाकः।

यो अन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। १०/१२१/५

जिससे प्रचण्ड द्युलोक और पृथिवी दृढ़ किए गए हैं, जिससे अन्तरिक्ष धारित है, जिससे आदित्य आदि प्रकाशमान लोक स्थापित हैं, जो अन्तरिक्ष में धूलि कणों के समान लोकों का बनाने वाला है अथवा जो अन्तरिक्ष में जल की बूंदों का बनाने वाला है, उस सुखस्वरूप देव परमेश्वर की हम श्रद्धा और विशेष भक्ति से उपासना करें।।५।।

१२९. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव।

यत् कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम।। १०/१२१/१०

हे प्रजा के स्वामिन्! आपसे भिन्न कोई इन उन समस्त उत्पन्न हुए पदार्थों पर अध्यक्ष नहीं होता है। जिस की कामना वाले हम तेरी उपासना करें, वह हमें मिले। हम धनों के स्वामी होवें।।१०।।

१३०. समुद्रादूर्मिमुदियर्ति वेनो न भोजाः पृष्ठं हर्यतस्य दर्शि।

ऋतस्य सानावधि विष्टपि भ्राट् समानं योनिमभ्यनूषत व्राः।।१०/१२३/२

आकाश में उत्पन्न आदित्य अन्तरिक्ष से जलधारा को भूमि पर प्रेरित करता अथवा बरसाता है। कान्तिमान् आदित्य के पीठ को विद्वान् लोग देखते हैं। जल के शिखर भूत अन्तरिक्ष में समान स्थान वाले इस आदित्य की विद्वानजन प्रशंसा करते हैं।

१३१. अप्सरा जारमुपसिष्मियाणा योषा बिभर्ति परमे व्योमन्।

चरत्प्रियस्य योनिषु प्रियः सन्त्सीदत्पक्षे हिरण्ये स वेनः।।१०/१२३/५

जिस प्रकार रूपवती स्त्री, ईषत् स्मित करती हुई, अपने पति को परम प्रेम योग्य पद पर धारण करती है, और अपने प्यारे पति के गृहों में विचरती है, और पत्नी को चाहने वाला वह पुरुष भी उसका प्रिय होकर हित तथा रमणीय कलत्र रूप गृह में विराजता है, इसी प्रकार वह उपासक सब कष्टों को दूर करने वाले प्रभु को परम रक्षा पद पर धारण करता है, उस प्यारे के दिये लोकों में विचरता है। उसका प्यारा होकर तेजोमथ प्रभु के आश्रय में विराजता है।

१३२. ऊर्ध्वो गन्धर्वो अधि नाके अस्थात् प्रत्यङ् चित्रा बिभ्रदस्यायुधानि।
वसानो अंत्क सुरभिं द्दशे कं स्वर्ण नाम जनत प्रियाणि।। १०/१२३/७

सर्वोपरि विराजमान, सूर्य और भूमि आदि लोकों का धारण करने वाला, मोक्ष में व्यापक होकर सर्वोपरि विराजता है। वह इस जगत् के अद्भुत अद्भुत साधनो को धारण करता हुआ, और कवचवत् इस उत्तम रीति से ग्रहण करने योग्य जगत् को धारण करता हुआ दीखता है। वह जलों को सूर्यवत् प्रिय रूपों वा पदर्थो को उत्पन्न करता है।

१३३. नासदासीन्नो सदासीत तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्।। १०/१२६/१

सृष्टि की उत्पत्ति से पूर्व न अभाव होता है और न व्यक्त जगत् रहता है, न परमाणु रहता हैं और न अन्तरिक्ष रहता है। जो आकाश से ऊपर नीचे लोक-लोकान्तर है, वे भी नहीं रहते। कुहरान्धकार के रुप में विद्यमान वह गहरा जल क्या है?।।१।।

१३४. न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धन्यन्न परः किं चनास।। १०/१२६/२

उस अवस्था में न तो मृत्यु रहती है और न उस समय काल का नित्य व्यवहार रहता है। रात्रि और दिन का प्रज्ञापक चिन्ह वा व्यवहार भी नही रहता है। कम्पनरहित प्रकृत्ति से युक्त वह एक ब्रह्म महान् परमेश्वर चेतना का व्यवहार करता है। उससे परे दूसरा उसके समान, उससे बड़ा वा उस जैसा कोई नहीं रहता है।।२।।

१३५. तम आसीत तमसा गूळहमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीतत पसस्तन्महिनाजायतैकम्।। १०/१२६/३

सृष्टि से पूर्व की अवस्था में अन्धकार से आच्छादित प्रकृति रहती है। अप्रकट चिन्ह्यरहित सबको लीन किये हुए, सलिल प्रधान प्रकृति व्यापती है। व्यापक प्रकृति कारणरूपता से आच्छादित रहती है। उसको संकल्प के प्रभाव से एक परमेश्वर कार्यरूप में उत्पन्न करता है।।३।।

१३६. कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासींत।
सतो बन्धुमसति निरविन्दन्हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा।। १०/१२६/४

प्रागवस्था में सृष्टि रचना का ईक्षण सबके ऊपर विद्यमान होता है। वह मन का प्रथम बीज होता है। विश्वसृज् तत्व प्रकृति के केन्द्र में विद्यमान परमेश्वर की ज्ञान शक्ति से प्रेरित होकर व्यक्त जगत् के बांधने वाले कार्य कारणात्मक व्यवहार को अव्यक्त प्रकृति में प्राप्त करते हैं।।४।।

१३७. तिरश्चीनो विततो रश्मिरेषा मधः स्विदासी३दुपरी स्विदासी३त्।
रेतोधा आसन् महिमान आसन् त्स्वधा अवस्तात् प्रयतिः

परस्तात्।।१०/१२६/५

इस कारण तत्वों की रश्मि चारों तरफ हुई फैली हुई हो जाती है, नीचे को भी होती है और ऊपर को भी होती है। उसमें दिखाई पड़ता है कि अपने कर्म फलों के बीज को धारण करने वाले जीव हैं और मुक्त जीव भी है। प्रकृति नीचे और परमेश्वर का प्रयत्न उसके ऊपर हैं।।५।।

१३८. को अद्धा वेद क इह प्र वोचत् कुत इयं विसृष्टिः।

अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेनाऽथा को वेद यत आबभूव।। १०/१२६/६

प्रजापति परमेश्वर निश्चय से जानता है। इस विषय में सुख स्वरूप वह ही बताता है कि कहां से यह विविध सृष्टि प्रकट हुई है। विद्वान् और इन्द्रिय आदि इस जगत के रचने के बाद होते हैं। अतः इनमें कौन जानता है, जिससे यह जगत् उत्पन्न होता है?।।६।।

१३९. यं कुमार नवं रथमचक्रं मनसाकृणोः। एकेषं विश्वतः प्रांचमपश्यन्नधि तिष्ठसि।। १०/१३५/३

हे कुमार जीव! चक्ररहित एक प्राणरूपी दण्ड वाले सर्वत्र जाते हुए जिस नूतन शरीर रूपी रथ को तू मन से अपनाया करता है। इस पर उसके रहस्य को तू बिना जाने स्थित है।।३।।

१४०. यं कुमार प्रावर्तयो रथं विप्रेभ्यस्परी। तं सामानु प्रावर्तत समितो नाव्यहितम्।। १०/१३५/४

हे कुमार जीव! ज्ञान के साधन इन्द्रियों से प्रेरित होकर तू जिस शरीर रथ को चलाता है, उसमें सम्वन्वय और शान्ति प्रवृत्त होवे और इस संसार से पार होने का साधन बने। जिस प्रकार नौका में सम्यक् रखी हुई वस्तु पार जाती है।।४।।

१४१.उप तेऽधां सहमनामभि त्वाधां सहीयसा।

मामनु प्र ते मनो वत्सं गोरिव धावतु पथा वारिव धावतु।।१०/१४५/६

हे आत्मन्! मैं ब्रह्मविद्या तेरे लिये अविद्या का नाश करने वाली शक्ति को धारण करती हूँ और बड़ी भारी शक्ति को धारण करती हूँ। मेरा मन मेरे अनुकूल हो और वह बछड़े के प्रति गाय के समान और निम्न मार्ग से जल के समान उत्सुक होकर वेग से दौड़-दौड़ कर आवे।

१४२. वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतप्यतः।

यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमया तमः।। १०/१५२/४

हे परमैश्वर्यवन! परमेश्वर! राक्षसी भावना को आप नष्ट कीजिए। काम, क्रोध आदि का नाश कीजिए। विघ्न हनू को तोड़ दीजिए और वैर-अज्ञान आदि शत्रुओं के बल का, हे आपदाहारक! नाश कर दीजिए।।४।।

१४३. यः परस्याः परावतस्तिरो धन्वातिरोचते। स नः पर्षदति द्विषः।। १०/१८७/२

जो परमेश्वर दूर से दूर स्थान से अन्तरिक्ष को भी पार कर अति प्रकाशित हो रहा है, वह हमें बाह्य और आभ्यन्तर शत्रुओं से पार करता है।।२।।

१४४. संसमिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।

इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।। १०/१९१/१

हे समस्त सुखों के बरसाने वाले प्रकाशस्वरूप प्रभो! तू समस्त प्राणियों और तत्वों को मिलाता

है। वाणी के परमपद के रूप में जो प्रकाशमान होता है, वह धन तू हमें प्रदान कर।।१।।

१४५. सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजानाना उपासते।। १०/१९१/२

हे मनुष्यों! मिलकर चलो, परस्पर मिलकर बात करो, तुम्हारे चित्त एक समान होकर ज्ञान प्राप्त करें। जिस प्रकार पूर्व विद्वान् ज्ञानीजन सेवनीय प्रभु को जानते हुए उपासना करते आये हैं, वैसे ही तुम भी किया करो।

१४६. समानं मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभि मन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।। १०/१९१/३

सबका विचार समान हो, समिति सभा समान हो। मन समान हो, चित्त एक साथ भासमान उद्देश्य वाला हो। हे मनुष्यो! मैं परमेश्वर तुम्हें समान विचार वाला बनाता हूं। तुम्हें समान खान-पान से युक्त करता हूं अथवा समान हवि और भावनाओं से यज्ञ करने की प्रेरणा देता हूँ।।३।।

१४७. समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। १०/१९१/४

हे मनुष्यो! तुम्हारे संकल्प समान हो, तुम्हारे हृदय परस्पर मिले हुए हों, तुम्हारे मन समान हों जिससे तुम लोग परस्पर मिलकर रहो।।४।।

१४८. वात आ वातु भेषजं शुम्भु मयोभु नो हृदे।
प्रण आयूँषि तारिषत्।।१०/१८६/१

वायु के समान बलवान् प्रभु सब दुःखों की परम औषधि, शान्तिदायक और सुखकार के होकर हमें प्राप्त हो। हमें दीर्घ जीवन प्रदान करे।

१४९. उत वात पितासि न उत भ्रातोत नः सखा।
स नो जीवातवे कृधि।।१०/१८६/२

हे वायुवत् बलवान्, जीवनप्रद परमात्मा! तू पिता के तुल्य हमारा पालक है, और भाई के समान हमारा भरण-पोषण करने वाला है, और मित्र के समान हमसे प्रेम करने वाला है। हमारी जीवन वृद्धि के लिये कृपा कर।

१५०. यददो वात ते गृहे अमृतस्य निधिर्हितः।
ततो नो देहि जीवसे।।१०/१८६/३

हे व्यापक प्रभो! जो तेरे वश में अमृत का खजाना धरा है, उसमें से हमें दीर्घ जीवन के लिये प्रदान कर।

१५१ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः।।१०/१९०/१

सब ओर से प्रकाशमान 'तप' से ऋत और सत्य प्रकट हुआ। उसीसे रात्रि उत्पन्न होती है। उस तप से ही यह जल से युक्त महान् समुद्र और सूक्ष्म जलों से व्याप्त आकाश प्रकट हुआ।

१५२. समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी।।१०/१९०/२

अर्णव समुद्र से संवत्सर प्रकट हुआ। जगत् का स्वामी दिन और रात्रियों को भी बनाता है।

१५३. सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः।।१०/१६०/३

जगत् कर्ता ने जिस प्रकार पहले बनाया था ठीक उसी प्रकार उसने अब भी सूर्य, चन्द्रमा, आकाश, पृथिवी, अन्तरिक्ष और प्रकाश वा समस्त पदार्थ बनाया है।

।। इति ।।

यजुर्वेद सूक्ति सुधा

१. इषे त्वोर्जे त्वा।-१/१ हे अनन्त पराक्रमयुक्त आनन्दघन परमेश्वर! हम अन्न आदि उत्तम-उत्तम पदार्थों, विज्ञान, बल, पराक्रम और उत्तम रसों की प्राप्ति के लिए सब प्रकार से आपका आश्रय लेते हैं।

२. देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणे।- १/१ सर्वजगदुत्पादक, सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त, सर्वसुखदाता और सब विद्याओं को प्रसिद्ध करनेवाला परमेश्वर तुम्हें और हम सबको अत्युत्तम, सर्वोपकारक, शुभ यज्ञादि कर्मों में संयुक्त करे।

३.आत्यायध्वमघ्न्याः।- १/१ हे गाओं! तुम खूब बढ़ो, हृष्ट-पुष्ट बनो।

४.यजमानस्य पशून् पाहि।-१/१ हे सर्वसुखदाता परमेश्वर! आप आस्तिक और सर्वोपकारक धर्म का सेवन करने वाले मनुष्य के गौ, घोड़े, हाथी आदि पशु तथा लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) और प्रजा की निरन्तर रक्षा कीजिए। अथवा, हे प्रभो! आत्मारूपी यजमान के इन्द्रियरूपी पशुओं की रक्ष कीजिए।

५.वसोः पवित्रमसि।- १/२ हे परमेश्वर! तू मानव-जीवनों का शोधक है, सुप्रेरणा द्वारा मानवों को सुमार्ग पर चलाकर उनके जीवनों को पवित्र करने वाला है।

६. विश्वधा असि।- १/२ हे सर्वाधार! तू अखिल ब्रह्माण्ड का धारक है।

७. मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।।- १/२
हे परमेश्वर! तू हमें मत त्याग और हम यजमान भी कभी तुझसे वियुक्त न हों, कभी तेरा त्याग न करें।

८. देवस्य त्वा सविता पुनातु।- १/३ हे मानव! स्वयं प्रकाश स्वरूप, सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर तुझे यवित्र करे।

९. सा विश्वकर्मा।-१/४ वह परमेश्वरी शक्ति विश्व का निर्माण करने वाली है।

१०. सा विश्वधायाः।- १/४ वह परमेश्वरी शक्ति विश्व का धारण और पोषण करने वाली है। अथवा वेदवाणी सब जगत् को विद्या और गुणों से धारण करने वाली है।

११. अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि।- १/५ हे सत्योपदेशक परमेश्वर! मैं व्रत=दुर्गुण-त्याग और सद्गुण-ग्रहण का अनुष्ठान, पालन और आचरण करूंगा।

१२. अहमनृतात्सत्यमुपैमि।-१/५ मैं असत्य को त्यागकर वेदविद्या, प्रत्यक्षादि प्रमाण, सृष्टिक्रम, विद्वानों के सत्संग, श्रेष्ठ विचार और आत्मा की शुद्धि आदि प्रकारों से जो निर्भ्रम, सर्वहित, सुपरीक्षित सत्य बोलने, सत्य मानने और सत्य करने-रूप व्रत को अपने जीवन में ६

ारण करता हूँ।

१३. कस्त्वा युनक्ति।- १/६ हे जीव! तुझे कर्मों के अनुष्ठान में कौन नियुक्त करता है? तुझ आत्मा को शरीर के साथ कौन संयुक्त करता हैं? उत्तर-प्रजापति परमेश्वर।

१४. स त्वा युनक्ति।-१/६ ज्ञानप्रकाशस्वरूप परमेश्वर मनुष्य को शुभ कर्मों में प्रेरित करता है और वही जगदीश्वर आत्मा को शरीर के साथ संयुक्त करता है।

१५. कस्मै त्वा युनक्ति।- १/६ वह परमात्मा मुझे और तुझको-सब जीवों को किस प्रयोजन के लिए नियुक्त करता है?

१६. तस्मै त्वा युनक्ति। १/६ वह परमेश्वर यज्ञ के अनुष्ठान, सत्यव्रत के आचरण और आनन्दस्वरूप परमेश्वर की प्राप्ति के लिए मुझे और तुझे-सब जीवों को शरीर के साथ संयुक्त करता है।

१७. अह्रु तमसि।- १/८ हे शिष्य! तु कुटिलतारहित है। तू शुद्ध और विकार रहित है।

१८. स्वरभिविख्येषम्।-१/११ मैं सब ओर परमात्मा के तेज और आनन्द को निरन्तर देखूँ, प्राप्त करूँ।

१६. पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयामि।- १/११ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! मैं आापको पृथिवी-शरीर के नाभौ-बीच में अर्थात् हृदय में स्थापित करता हूँ।

२०. यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्ये।-१/१३ हे विद्वान् मनुष्यों! तुम सब जीवन-संग्राम में परमैश्वर्यशाली परमेश्वर का वरण करो।

२१. ग्रावासि।-१/१४ हे मानव! अपनी शक्ति को पहचान! तू शिला के समान दृढ़ और विकार रूपी शत्रुओं को चकनाचूर करनेवाला है।

२२. अग्नेस्तनूरसि।-१/१५ हे मानव! तू आत्मा ज्योति का विस्तार करने वाला है।

२३. अग्ने अग्निमामादं जहि।-१/१७ हे तेजस्विन्! तू कच्चा मांस खाने वाली चिन्तारूपी अग्नि को अपने जीवन से मार भगा।

२४. अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व।-१/१८ हे गतिशील जीव! तू वेद-ज्ञान को प्राप्त कर, उसे जीवन में धारण कर अथवा हे ज्ञान स्वरूप परमेश्वर!आप वेद-मन्त्रों से की हुई मेरी स्तुति को स्वीकार कीजिए। अथवा हे ज्ञनिन्! तू परमात्मा को प्राप्त कर।

२५. चित्त स्थोर्ध्वचितः।-१/१८ हे मनुष्यों! तुम सब चेतनायुक्त हो, महान् चेतनावान् हो। तुम ज्ञान सम्पन्न हो, सर्वश्रेष्ठ ज्ञान-सम्पन्न हो।
(अपनी आत्म-चेतना को जगाओ)

२६. तपसा तप्यध्वम्।-१/१८ हे मनुष्यों! धर्म तथा विद्यानुष्ठानरूपी तप और तेज द्वारा तपो और तपाओ। स्वयं तपस्वी और तेजस्वी बनो, दूसरों को भी तपस्वी और तेजस्वी बनाओ। स्वयं चमको और अन्यों को भी चमकाओ।

२७. मा भेर्मा संविक्थाः।-१/२३ हे पुरूष! तू मत डर, मत घबरा, उद्विग्न मत हो। साहसी और निर्भय बन।

२८. वायुरसि तिग्मतेजाः।- १/२४ हे मनुष्य! तू गतिशील है और तू है सूर्य के समान

तेजस्वी। तू प्राण के समान प्रचण्ड है और इतना तेजस्वी कि तेरे तेज को संसार की कोई शक्ति ढांप नहीं सकती, इतना तेजस्वी कि तेरे तेज से सारा संसार जगमगा उठे।

२६. सत्या न सन्त्वाशिषः।- २/१० हे प्रभो! हमारे आशीर्वचन सत्य हों।

३०. ओ३म् प्रतिष्ठ।-२/१३ हे सर्वरक्षक जगदीश्वर! आप हमारे हृदय-मन्दिरों में प्रतिष्ठित होओ अथवा, हे मनुष्यों! सर्वरक्षक परमेश्वर को अपने हृदय-मन्दिरों में प्रतिष्ठित करो। अथवा, सदा-सर्वदा, सर्वरक्षक परमात्मा में स्थित रहो।

३१. चक्षुष्पा अग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि।-२/१६ हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप नेत्र-ज्योति के रक्षक हैं, मेरी नेत्र-ज्योति की रक्षा कीजिए।मुझे गृध्र-जैसी दृष्टि प्रदान कीजिए।

३२. अग्नेः प्रियं पाथोपीतम्।-२/१७ मैंने प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का आनन्दपद संरक्षण प्राप्त कर लिया है।

३३. यज्ञस्य शिवे सन्तिष्ठस्व।-२/१६ हे साधक! तू पूजनीय परमात्मा के कल्याणकारी स्वरूप में सम्यक् प्रकार स्थित रह। अथवा, तू जीवनयज्ञ के शुभ अनुष्ठान में निरन्तर लगा रह।

३४. वेदोऽसि।- २/२१ हे मानव! तू ज्ञानस्वरूप है, ज्ञान का पुतला है।

३५. कस्त्वा विमुंचति।-२/२१ हे मुमुक्षों!(मोक्ष की इच्छावाले) मुझे कर्मबन्धनरूपी दुःख से कौन छुड़ाता है?

३६. स त्वा विमुंचति।-२/२३ वह सर्वोत्तम परमेश्वर तुझे कर्मबन्धनरूपी दुःख से छुड़ाता है।

३७. अगन्महि मनसा सँ शिवेन।- २/२४, ८/१४,१६ हम कल्याणकारी मन से युक्त हो गये हैं। हमारा मन शिवसंकल्पमय बन गया है।

३८. अगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम।- २/२५ हमने आत्मज्ञान, आनन्दस्वरूप परमात्मा को अथवा आनन्दमय लोक (मोक्ष) को प्राप्त कर लिया है तथा विद्या और धर्म के प्रकाश से हम अच्छी प्रकार युक्त हो गये हैं।

३६. स्वयम्भूरसि श्रेष्ठो रश्मिः।-२/२६ हे परमेश्वर! आप स्वयंसिद्ध, सबसे प्रशंसनीय और परम ज्योति हैं। अथवा, हे मानव! तू स्वयंभू, श्रेष्ठ एवं ज्योतिर्मय है।

४०. सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते।- २/२६,२७ मैं सूर्य के वृत्त का आवर्तन करना हूँ अर्थात् सूर्य के गुणों को अपने जीवन में धारण करता हूँ। अथवा, सूर्य के समान चराचर जगत् के प्रेरक परमेश्वर द्वारा उपदिष्ट वैदिक आचार का पालन करता हूँ।

४१. अग्निर्मूर्द्धा दिवः ककुत्पतिः।- ३/१२ ज्ञानस्वरूप परमेश्वर सबसे बड़ा, सबसे ऊपर विराजमान और सूर्यादि लोकों का पालक है।

४२. तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे पाहि।- ३/१७ हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप शरीरों की रक्षा करने वाले हैं, अतः आप मेरे शरीर की रक्षा कीजिए।

४३. चित्रावसो स्वस्ति ते पारमशीय।- ३/१७ हे आश्चर्यरूप धनवाले परमेश्वर! आपकी कृपा से मैं सब दुःखों से पार होकर सुख को प्राप्त करूँ।

४४. इहैव स्त मापगात।- ३/२१ यहीं डटे रहो, अपने स्थान से विचलित मत होओ।

४५. नमो भरन्त एमसि।-३/२२ हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर! हम नमस्कार की भेंट करते हुए तेरे समीप आ रहे हैं।

४६. अग्ने सूपायनो भव।- ३/२४ हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप हमें सरलता से प्राप्त होने वाले होइए अथवा, आप हमें श्रेष्ठ ज्ञान देने वाले होइए।

४७. सचस्वा नः स्वस्तये।-३/२४ हे दयानिधे! आप हमें लौकिक और पारलौकिक सुख के साथ संयुक्त कीजिए।

४८. अग्ने त्वन्नोऽन्तम उत त्राता।-३/२५ हे सर्वरक्षक! आप हम लोगों के जीवन-आध ार और रक्षक हैं।

४६. स नो बोधि श्रुधी हवम्।- ३/२६ प्रभो! हमारी पुकार सुनिए और हमें बोध और विज्ञान प्राप्त कराइए।

५०. सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते।-३/२८ हे वेदपालकेश्वर! आप मुझे सौम्य, निष्पाप, विनम्र तथा वेद और सब विद्याओं का उपदेष्टा बनाइए।

५१. रक्षा णो ब्रह्मणस्पते।- ३/३० हे वेदपते! हम लोगों की वेद-विद्या द्वारा निरन्तर रक्षा कीजिए।

५२. इन्द्र सश्चसि दाशुषे।-३/३४ हे सुखदाता परमेश्वर! आप आत्म-समर्पक को प्राप्त होते हैं।

५३. र्श स्य पशून्मे पाहि।- ३/३७ हे स्तुति के योग्य परमेश्वर! आप मेरे गौ, घोड़े आदि पशुओं की रक्षा कीजिए।

५४. आगन्म विश्ववेदसम्।-३/३८ हम साधक लोग अपनी उत्कट श्रद्धा-भक्ति और शम-दम आदि के पालन से सर्वज्ञ और सबको सुखप्रदान करनेवाले परमेश्वर को प्राप्त हो गये हैं।

५५. त्वा वयं मघवन् वन्दिषीमहि।- ३/५२ हे विद्यादि ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर! हम लोग आपकी स्तुति करते हैं।

५६.मनो न्वाह्वामहे।-३/५३ हम संकल्प-विकल्पात्मक मन को सब ओर से हटाकर दृढ़ करते हैं।

५७.आखुस्ते पशुः।-३/५७ हे प्रभो! मेरा मन तेरा दृष्टा और तेरा अन्वेषण करनेवाला हो।

५८. मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।-३/६० हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर! हम मृत्यु के बन्धन से मुक्त हो जाएँ परन्तु अविनाशी अमृतत्व-मोक्ष की अभिलाषा से कभी पृथक् न हों।

५६. नो अस्तु त्र्यायुषम्।- ३/६२ हे जगदीश्वर!आप हमें शरीर, आत्मा और समाज को आनन्द देनेवाला तीन सौ वर्ष की आयु का जीवन प्रदान कीजिए।

६०. आपो अस्मान्मातरः शुन्धयन्तु।-४/२ निर्मल, शीतल, शान्त और शोधक माताएँ हमें शुद्ध और पवित्र करें। अथवा माता के समान रक्षा करनेवाले जल हम लोगों के बाह्य देश को, शरीर को पवित्र करें।

६१.विश्वं हि रिप्रं प्रवहन्ति देवीः।-४/२ दिव्य माताएँ अपनी सन्तान के समस्त दोषों को

धो डालती हैं।

६२. चक्षुर्दा असि चक्षुर्मे देहि।-४/३ हे सर्वद्रष्टा परमेश्वर! तू चक्षु-प्रदाता है, मुझे भी ज्ञान-चक्षु प्रदान कर अथवा है सूर्य! तू नेत्र के व्यवहार को सिद्ध, करनेवाला है, मुझे नेत्रों के व्यवहार की सिद्धि, नेत्र-ज्योति प्रदान कर।

६३. चित्पतिर्मा पुनातु।-४/४ विज्ञान का स्वामी परमेश्वर मुझे और मेरे चित्त को पवित्र करे

६४. वाक्पतिर्मा पुनातु।-४/४ वाणी का स्वामी परमेश्वर मुझे और मेरी वाणी को पवित्र करे

६५. देवो मा सविता पुनातु।-४/४ सब जगत् को उत्पन्न करनेवाला और अपने प्रकार से देदीप्यमान परमेश्वर मुझे और मेरे नेत्रों को पवित्र करे।

६६.बृहस्पतये हविषा विधेम।-४/७ हम वाणी और आकाश आदि के स्वामी परमेश्वर के लिए सत्य और प्रेम भाव से आत्म-समर्पण करें।

६७. द्युम्नं वृणीत पुष्यसे।-४/८ हे मानव! तू आत्म-कल्याण के लिए, पुष्टि के लिए दिव्य धन आत्मिक गुणों का वरण कर।

६८. उच्छ्रयस्व वनस्पते।-४/१० भक्तशिरोमणे! ऊँचा उठ, उन्नति कर।

६९. मा पाह्यँ हसः।- ४/१० हे परमेश्वर! विद्वन्! आप मुझे पाप से, दुष्कर्मों से बचाइए।

७०. व्रतं कृणुत।- ४/११ हे मनुष्यों! व्रती बनो! व्रत-नियमपूर्वक धर्माचरण, सत्य का अनुष्ठान, दुर्गुणों का त्याग और सदगुण ग्रहण कीजिए।

७१. दैवीं धियं मनामहे।- ४/११ हम दिव्य गुण सम्पन्न बुद्धि की याचना करते हैं।

७२. इयं ते यज्ञया तनूः।- ४/१३ हे मनुष्य! तेरा यह शरीर यज्ञीय है, तुझे यह शरीर परोपकार, सत्कर्म करने और प्रभु-प्राप्ति के लिए मिला है।

७३.अग्ने त्वँ सु जागृहि।-४/१४ हे तेजस्विन्! ज्ञानिन्! अग्रणे! तू सदा जागरूक, सावधान रह।

७४. पुनश्चक्षुः पुनः श्रोत्रं म आगन्।-४/१५ ईश्वर की दया से पुनर्जन्म में मुझे देखने के लिए नेत्र और सुनने के लिए कान पुनः-पुनः प्राप्त हों।

७५.अग्निर्नः पातु दुरितादवद्यात्।- ४/१५ ज्ञानस्वरूप परमेश्वर हमें दुर्गति से, निन्दनीय-पाप, दुःख और दुष्टकर्मो से निरन्तर बचाए।

७६. त्वं यज्ञेष्वीड्यः।-४/१६ हे परमेश्वर! आप उपासना-यज्ञों में स्तुत्य हैं।

७७.अमृतमसि।-४/१८ दिव्य देव! तू अखण्ड-एकरस और आनन्द का सागर है। अथवा प्रियात्मन्! तू अविनाशी है।

७८.वैश्वदेवमसि।-४/१८ देव! तू अखिल ब्रह्माण्ड को अपने प्रकाश से प्रकाशित करने वाला है।

७९. अदितिरसि।-४/२१ हे मानव! तू दीन-हीन नहीं है अपितु तू अदीन है, अदम्य शक्तियों का पुंज है।

८०. तव देवि सन्दृशी।-४/२३ हे आनन्दप्रद परमेश्वर! में सदा तेरे सन्दर्शन में, तेरी सन्दृप्टि में रहूँ। तू मुझे कभी मत भूल।

८१. अस्माकोऽसि।- ४/२४ हे प्रभो! तू हमारा है, तू ही हमारा आधार और आश्रय है।

८२. विचितस्त्वा विचन्वन्तु।- ४/२४ हे परमेश्वर! चयन करनेवाले तेरा ही चयन करें, तेरा ही वरण करें। अथवा हे मानव! विद्यादि शुभ गुण और
धन-धान्य से युक्त विद्वान् तुझे बुद्धि युक्त करें।

८३. शुक्रं त्वा शुक्रेण क्रीणामि।- ४/२६ प्रभो! मैं तुझ परम पावन देव को यम-नियम और तप से पवित्र जीवन से खरीदता हूँ, तुझे प्राप्त करता हूँ।

८४. मित्रो न ऐहि।-४/२७ हे परमेश्वर! सबके मित्र आप हम लोगों को अच्छी प्रकार प्राप्त होइए, हमारे हृदय-मन्दिर में दर्शन दीजिए।

८५. आ मा सुचरिते भज।-४/२८ प्रभो! मुझे सुचरित्र, सदाचार, श्रेष्ठ-व्यवहार में स्थापित कीजिए।

८६. प्रति पन्थामपद्महि स्वस्तिगामनेहसम्।- ४/२६ हे परमेश्वर! आपकी कृपा से हम लोग निष्पाप और सुख पूर्वक जाने योग्य मार्ग पर चलें।

८७. भद्रो मेऽसि।-३/३४ हे देव! तू मेरा कल्याणकर्त्ता बन्धु है।

८८. अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः।- ५/४ ज्ञानस्वरूप परमात्मा जीवात्मा में प्रविष्ट होकर विचरता है।

८९. स्वस्ति ते देव सोम सुत्यामशीय।- ५/७ हे देवे! सोम! मैं सुखपूर्वक तेरे आनन्दरस का भोग करूँ।

९०. उग्रं वचो अपावधीत्।-५/८ कठोर वचन को मार भगा, त्याग दे।

९१. युजंते धियो विप्राः।-५/१४ मेधावी, योगीजन, विद्वान् लोग अपनी धारणाओं को परमेश्वर मे स्थिर करते हैं।

९२. विष्णु स्तवते वीर्येण।-५/२० पराक्रम के कारण, पराक्रमी होने के कारण परमेश्वर की स्तुति की जाती हे।

९३. वैश्वदेवमसि।-५/३० हे मानव! अपनी शक्तियों को पहचान, तू अपनी साधना द्वारा विश्व का दिव्यीकरण करनेवाला है।

९४. उशिगसि कविरङ्घारिरसि।-५/३२ हे परमेश्वर! आप कान्तिमान् हैं, कान्तप्रज्ञ हैं और कुटिलता रूपी शत्रु का निवारण करनेवाले हैं।

९५. मित्रस्य मा चक्षुषेक्षध्वम्।-५/३४ हे विद्वानों! आप मुझे मित्र की दृष्टि से देखिए।

९६. ज्योतिरसि विश्वरूपम्।-५/३५ हे परमेश्वर! आप सब रूपों से युक्त सूर्य-चन्द्रमा आदि सबको प्रकाशित करनेवाली ज्योति हैं।

९७. अग्ने नय सुपथा राये।-५/३६ सबको उत्तम मार्ग से ले चलनेवाले परमेश्वर! मोक्ष-रूपी धन की प्राप्ति के लिए हम धार्मिक जनों को शम-दम आदि युक्त योगमार्ग पर चलाइए।हे प्रभो! तू हमें ऐश्वर्य प्राप्ति के लिए सुपथ से चला।

९८. विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।-५/३६ हे आनन्दप्रद परमेश्वर! आप हमारे अच्छे और बुरे सभी कर्मों को जानते हैं।

९९. युयोध्यस्मज्जुहुराण्मेनः।-५/३६ हे परमेश्वर! हम बारम्बार आपको नमस्कार करते हैं।

१००. भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम।-५/३६ हे परमेश्वर! हम बारम्बार आपको नमस्कार करते हैं।

१०१. द्यां मा लेखीरन्तरिक्षं मा हिंसीः पृथिव्या सम्भवः।-५/४३ हे विद्वन्! आकाश की ओर मत देख, अन्तरिक्ष की ओर मत जा, पृथिवी के साथ जुट जा, पृथिवी पर पराक्रम कर, पृथिवी-वासियों की समस्याओं को सुलझा।

१०२. सहस्रवल्शा वि वयरुहेम।-५/४३ हम सहस्रों अंकुरवाले वृक्ष की भाँति बढ़ें, फूलें और फलें।

१०३. देवस्त्वा सविता मध्वानक्तु।-६/२ हे मानव! आनन्दप्रद और सर्वोत्पादक परमात्मा तुझे अपने आनन्द रस से सींचे।

१०४. इन्द्रस्य युज्यः सखा।-६/४ हे जीवात्मन्! तू ऐश्वर्यशाली परमेश्वर का सदाचार युक्त योग्यतम सखा है।

१०५. विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।६/५ ज्ञानी लोग परमेश्वर के परमपद को निरन्तर देखते रहते हैं।

१०६. परावीरसि।- ६/६ हे परमेश्वर! तू सर्वव्यापक और सर्वप्रकाशक है। हे मानव! तू सब विद्याओं में व्याप्त होनेवाला है।

१०७. उपावीरसि।-६/७ हे परमेश्वर! तू शरणागत प्रतिपालक है।

१०८. पाशेन प्रति मुचांमि धर्षा मानुषः।-६/८ हे शिष्य ! ।शास्त्रों का मनन करनेवाला मैं तुझे अविद्या के बन्धन से छुड़ाता हूँ। तू विद्या और अच्छी शिक्षाओं में प्रगल्भ, दृढ़ हो।

१०९. माहिर्भूर्मा पृदाकुः।-६/१२ हे मानव! तू सर्प के समान कुटिलमार्ग-गामी और भेड़िये के समान हिंसक अथवा अजगर के समान आलसी मत बन।

११०. ऋतस्य पथ्या अनु।-६/१२ हे मानव! तू सत्य के मार्गों का अनुसरण कर।

१११. वाक्त आप्यायताम्।-६/१५ हे शिष्य! तेरी वाणी माधुर्य आदि गुणों से युक्त हो।

११२. घृतं घृतपावानः पिबत।- ६/१९

हे घृतपान करनेवालों! तुम घी, दूध, दही आदि पदार्थों का सेवन तथ अमृतात्मक जल का पान करो।

११३. समुद्रं गच्छ स्वाहा।-६/२१ हे मनुष्य! तू जलयान आदि के द्वारा समुद्र में जा, समुद्र यात्रा कर, देश विदेश में भ्रमण कर। तू आत्मसाधना द्वारा समुद्र के समान गहन व गम्भीर बन।

११४. अन्तरिक्षं गच्छ स्वाहा।-६/२१ हे मनुष्य! तू विमान आदि के द्वारा अन्तरिक्ष लोक लोकान्तरों में गमन कर।

११५. देवं सवितारं गच्छ स्वाहा।-६/२१ हे मनुष्य! तू वेदवाणी और सत्संग के द्वारा सर्वप्रकाशक, आनन्दप्रद और सकल जगदुत्पादक परमेश्वर को जान।

११६. मनो मे हार्दि यच्छ।-६/२१ हे परमेश्वर! मेरे मन को प्रीतियुक्त सत्यधर्म में स्थिर कर ।

११७. दिवं ते धूमो गच्छतु।- ६/२१ हे मनुष्य! तेरा यश द्युलोक तक फैल जाए।

११८. स्वर्ज्योतिः पृथिवीं भस्मनापृण।-६/२१ हे मानव ! तू आनन्द और ज्योति से युक्त होकर पृथिवी को, पृथिवी निवासी जन-जन को आनन्द और ज्योति से आपूर कर दे, भर दे।

११९. श्रृणोतु देवः सविता हबं मे।-६/२५ सर्वोत्पादक, दिव्यगुणयुक्त परमात्मा मेरी पुकार को सुने।

१२०. सर्वास्त्वा दिश आ धावन्तु।- ६/३६ हे मानव! इतना महान् बन कि सभी दिशाओं में रहने वाले तेरे प्रति दौड़कर आएँ, तेरी ओर आकृष्ट हों।

१२१. अम्ब निष्पर।-६/३६ प्रातः! प्रभो! मुझे प्यार कर।

१२२. मधुमतीर्न इषस्कृधि।-७/२ हे प्रभो! हमारी इच्छाओं को मधुमय बना दे। हे विद्वन्! राजन्! आप हम लोगों के लिए मधुर, स्वादिष्ट अन्न आदि प्रदार्थ प्रदान कीजिए, अथवा उत्पादन कराइए।

१२३. स्वाहोर्वन्तरिक्षमन्वेमि।-७/२ मैं सत्य वाणी और विशाल हृदय-अन्तरिक्ष को प्राप्त होता हूँ।

१२४. स्वाङ् कृतोऽसि।-७/३ तू स्वयंकृत, स्वयं अपने जीवन का निर्माता है।

१२५. उरूष्य रायः।-७/४ हे योगिन! तू आत्मैश्वर्यों की वृद्धि कर।

१२६. सा प्रथमा संस्कृतिर्विश्ववारा।-७/१६ वैदिक संस्कृति सर्वप्रथम और विश्व के सभी मानवों से वरणीय है।

१२७. कोऽसि।-७/२९ तू कौन है? तू कः आनन्द है।

१२८. कस्यासि।-७/२९ हे मानव! तू आनन्दस्वरूप प्रभु का अमृत पुत्र है।

१२९. एष ते योनिरिन्द्राग्निभ्यां त्वा।-७/३१ हे मानव! यह जीवन तुझे आत्मजागरण और ज्ञानप्रसार के लिए मिला है।

१३०. इह ते हुवेम्।-७/३६ हम इसी जीवन में उस प्रभु को पुकारें, उसी की स्तुति और प्रार्थना करें।

१३१. ऋतस्य पथा प्रेत।-७/४५ हे मनुष्यों! सत्य, न्याय, धर्म, संयम और सदाचार के मार्ग पर चलो।

१३२. स्वः पश्य।- ७/४५ अपने आप को देखो, अपने-आपको जानो, आत्मनिरीक्षण करो

१३३. यतस्व सदस्यैः।-७/४५ साथियों के साथ हिल-मिलकर साधना करो।

१३४. सोऽमृतत्त्वमशीय।-७/४७ वह मैं मुक्ति के साधनों को प्राप्त करूँ। मैं मुक्ति के आनन्द को भोगूँ।

१३५. कामोऽदात्कामा यादात्।-७/४८ जिसकी सब कामना करते हैं, वही परमेश्वर कर्मफल प्रदाता है और कामना करनेवाले जीव के लिए कर्मफल प्रदान करता है।

१३६. कदाचन स्तरीरसि नेन्द्र।-८/२ इन्द्र! तू कभी भी छिपनेवाला नहीं है, सर्वत्र तेरा

प्रकाश व्याप रहा है।

१३७. इन्द्र सश्चसि दाशुषे।-८/२ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! तू दानशील आत्मसमर्पक को प्राप्त होता है।

१३८. मघवन् भूय इन्नु ते दानम्।-८/२ हे परमपूजित परमेश्वर! आपके दान असंख्य हैं।

१३६. कदाचन प्रयुच्छसि।-८/३ मानव! तू कैसे प्रमाद कर रहा है?

१४०.आदित्यासो भवता मृडयन्तः।-८/४ हे सूर्य के समान विद्या आदि शुभ गुणों से प्रकाशमान् विद्वानों!आप मानव-समाज को सदा सुखी करते रहो।

१४१. वामभाजः स्याम।-८/६ हे देव! हम प्रशंसनीय कर्म करनेवाले बनें। हम दिव्यगुणें से समलंकृत होकर आत्मसौन्दर्य से सुभूषित रहें।

१४२. चनोधा असि चनो मयि धेहि।-८/७ देव! तू अन्तः प्रेरक, सर्वद्रष्टा और सत्यध ारक है, अतः मुझ में भी अन्तः-प्रेरणा कर, मुझे ज्ञानज्योति प्रदान कर, मुझमें सत्य की स्थापना कर।

१४३. सोमं पिब स्वाहा।-७/१० हे साधकः तू प्रभु को समर्पित होकर उसके आनन्दरस का पान कर।

१४४. देवकृतस्यैनसोऽवयजनमसि।-८/१३ हे परमेश्वर! आप दानशील के अपराध का विनाश करनेवाले हैं।

१४५. आत्मकृतस्यैनसोऽवयजनमसि।-८/१३ हे सर्वव्यापकेश्वर! आप आत्मकृत पाप, मल के शोधक हैं।

१४६. एनस एनसोऽवयजनमसि।-८/१३ प्रभो! आप पाप-पाप के, प्रत्येक कुसंस्कार, कुवासना और बुराई के शोधक हैं।

१४७. गातुं वित्त्वा गातुमित।-८/२१ अनन्त पथ के पथिकों! तुम मार्ग को जानकर गमनीय-जाने योग्य मार्ग पर चलो, श्रेयमार्ग के पथिक बनो।

१४८. स्वां योनिं गच्छ।-८/२२ हे साधक! अपने स्वरूप में, आत्मस्वरूप में अवस्थित रह।

१४६.प्रति ते जिह्वाघृतमुच्चरण्यत्।-८/२४ हे साधक! तेरी जिहवा जन जन के प्रति प्रत्येक मनुष्य के प्रति स्नेह उड़ेले।

१५०. यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति।- ८/३६ उस परमात्मा से बढ़कर दूसरा कोई पैदा नहीं हुआ है।

१५१. नीचा यच्छ पृतन्यतः।- हे सेनापते! तू फिसाद करनेवाले नीचों को अपने वश में कर। आत्मन्! तू वासनाओं की सेनाओं का दमन कर।

१५२. अधरं गमया तमः।-८/४४ आत्मज्योते! तू पाप, अधर्म, अविद्या-अन्धकार को परे धकेल दे।

१५३.स नो विश्वानि हवनानि जोषत्।-८/४५ वह सर्वव्यापक परमेश्वर! हमारे समस्त समर्पणों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करे।

१५४. अगन्म ज्योतिरमृता अभूम।-८/५२ हम ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को प्राप्त हो गये हैं और मोक्ष के अधिकारी बन गये हैं। हमने परमात्मा का प्रकाश प्राप्त कर लिया है और अमर हो गये हैं।

१५५. दिवं पृथिव्या अध्यारुहाम।-८/५२ हम पार्थिव भोगों, काम-किलोलों से ऊपर उठकर मोक्ष में स्थित हो गये हैं।

१५६. केतपूः नः केतं पुनातु।-९/१ ज्ञान-शोधक धर्मात्मा लोग हमारे ज्ञान को पवित्र करें। विज्ञान के द्वारा पवित्र करनेवाला परमेश्वर हमारे ज्ञान को पवित्र करें।

१५७.नो देवः सावता धर्म साविषत्।-९/५ सबका प्रकाशक, सब जगत् का उत्पादक परमात्मा हमारा धारण करें, हमें धर्म का सेवन कराए।

१५८.अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्।-९/६ जलों में अमृत=जीवन तत्त्व और रोग-निवारक औषधि है।

१५९.बृहस्पतेरुत्तमं नाकं रुहेयम्।-९/१० मैं प्रकृति आदि पदार्थों के रक्षक जगदीश्वर के सबसे उत्तम, दुःखों से रहित सच्चिदानन्दस्वरूप को प्राप्त होऊँ।

१६०.नमो मात्रे पृथिव्यै।-९/२२ मान्य की हेतु, विस्तारयुक्त भूमि से हमें अन्न आदि पदार्थ प्राप्त हों, अथवा मातृभूमि के लिए हमारे हृदय में आदर-सत्कार और श्रद्धा की भावना हो।

१६१. ध्रुवोऽसि धरुणः।-९/२२ हे मानव! तू दृढ़ और धर्म को धारण करनेवाला है।

१६२.वयं राष्ट्रे जागृयाम पुरोहिताः।-९/२३ सबके हितकारी, सबके अगुआ हम लोग राष्ट्र में आलस्य छोड़कर सदा जागते रहें सावधान रहें।

१६३.हतं रक्षः स्वाहा।-९/३८ मैंने आत्मसाधना के द्वारा काम क्रोधादि शत्रुओं को मार भगाया है,

१६४.ओजोऽसि सहोस्यमृतमसि।-१०/१३ हे मानव! तू पराक्रमशाली, बलवान् और अमृत-नाशरहित है।

१६५. वयं स्याम पतयो रयीणाम्।-१०/२० प्रभो! हम विद्या, धन-धान्य, राज्यादि ऐश्वर्य, लौकिक और पारलौकिक सम्पदा के स्वामी हों।

१६६. इन्द्र ते वयम्।-१०/२२ परमैश्वर्यशाली प्रभो! हम तेरे हैं।

१६७.अब्रह्मता विदसाम।-१०/२२ हम राष्ट्र से नास्तिकता, अधार्मिकता, मूर्खता को नष्ट करें।

१६८.वर्चोऽसि वर्चो मयि धेहि।-१०/२५ प्रभो! आप स्वयं प्रकाशस्वरूप हैं, मुझमें भी विद्या, सुशिक्षा, न्याय और धर्म का बल दीजिए।

१६९. श्रृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्राः।-११/५ अविनाशी परमात्मा के सब पुत्र वेदोपदेश सुनें।

१७०. द्यौस्ते पृष्ठं पृथिवी सधस्थम्।-११/२० हे विद्वन्! द्युलोक तेरी पीठ पर है, ज्ञान-ज्योति तेरी रक्षिका है और विनयशीलता तेरी सहायक है।

१७१. कस्मै देव वषडस्तु तुभ्यम्।-११/१९ हे आनन्दप्रद! तुझ आनन्दमय के लिए हमारा

सर्वस्व स्मर्पित है।

१७२. आशुर्भव वाज्यर्वन्।-११/४४ हे गतिशील! तू शीघ्रकारी बन, आलसी मत बन,।तू ऐश्वर्यशाली बन, दरिद्र मत बन।

१७३. मा पाद्यायुषः पुरा।-११/४६ हे विद्वन्! तू नियत वर्षो की अवस्था से पूर्व मत मर।

१७४.अग्न आ याहि वीतये।-११/४६ हे परमात्मन्! हमारे अज्ञान-अन्धकार का नाश करने और ज्ञान-प्रकाश करने के लिए हमारे-हृदय-मन्दिरों मे प्रकट होइए। अथवा हे विद्वन्!सुखों की व्याप्ति के लिए हमें अच्छे प्रकार प्राप्त होईए।

१७५. आपो हि ष्ठा मयोभुवः।-११/५० जलधाराओं! तुम निश्चय ही सुखकारिणी हो।

१७६.उत्थाय बृहती भव।-११/६४ हे नारि! तू आलस्य को छोड़कर महापुरुषार्थयुक्त हो।

१७७. अग्ने मा ते प्रतिवेशा रिषाम।-११/७५ हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तेरे साक्षात्कार के लिए अन्तर्मुख रहने वाले हम कभी हिंसित, पीड़ित और दुःखी न हों।

१७८. द्यावाक्षामा रूक्मो अन्तर्विभाति।-१२/२ द्युलोक और भूलोक में (इनके मध्य में होने से अन्तरिक्ष लोक में भी) परम तेजस्वी परमेश्वर जगमगा रहा है।

१७६.सुपर्णोऽसि गरूत्मान् दिवं गच्छ स्वः पत।-१२/४ मानव! तू ज्ञान और प्रेमरूपी पंखों से उड़ने वाला पक्षी है, अतःसुन्दर विज्ञान और सुख को प्राप्त कर, ज्योति प्राप्त कर और आनन्द में विचर।

१८०. विद्मा ते नामं परमं गुहा यत्।-१२/१७ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! हम परमगुहा में स्थित आपके स्वरूप को जानते हैं।

१८१. अप्स्वग्ने सधिष्टव।-१२/३६ प्रिय आत्मन्! तेरी स्थिति कर्मों में है अर्थात् आत्मा कर्मानुसार विविध योनियों में जाता है।

१८२. युयोध्यस्मद् द्वेषाँ सि।-१२/४३ हे विद्वन्! हमसे द्वेष और द्वेषयुक्त कर्मों को पृथक् कीजिए।

१८३. धृतेन त्वं तन्वं वर्धयस्व।-१२/४४ हे मानव! तू घृत आदि शक्ति प्रदान करनेवाले पदार्थो से अपने शरीर को बढ़ा, हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ बना।

१८४. सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।-१२/४४ यज्ञ, सत्सडग और विद्वानों का सत्कार करने वाले पुरुष की कामनाएँ पूर्ण हों।

१८५. ऊर्ध्वचितः श्रयध्वम्।-१२/४६ तुम श्रेष्ठ ज्ञानी हो, अतः देवाधिदेव परमात्मा का आश्रय लो। अथवा,तु श्रेष्ठ ज्ञानी हो, अतः बेसहारों के सहारे बनो। अथवा, हे मनुष्यों! तुम उत्कृष्ट गुणों के संचयकर्त्ता पुरुष का सेवन करो।

१८६. सीद ध्रुवा त्वम्।-१२/५४ शारीरिक, आत्मिक, मानसिक और बौद्धिक शक्तियों से सम्पन्न होकर संसार में निश्चल एवं निद्वन्द होकर विराज, स्थित हो।

१८७. नमो देवि निऋते तुभ्यमस्तु।-१२/६२ जीवन को चमकाकर कुन्दन बनाने वाली भीषण आपत्ते! तुझे नमस्कार है, तेरा सुस्वागत है।

१८८. अयस्मयं विचृता बन्धमेतम्।-१२/६३ हे परमेश्वर! आप हमारे लोहे के समान दृढ़

जन्म-मरणरूपी बन्धन को काट दीजिए

१८६. नमो भूत्यै येनेदं चकार।-१२/६५ जिसने इस अखिल ब्रह्माण्ड की रचना की है, उस सर्वोत्पादक देव को नमस्कार हो।

१६०. अगन्म तमसस्पारम्।-१२/७३? मोक्ष-प्राप्ति के लिए हम अविद्या-अन्धकार के पार पहुचँ गये हैं।

१६१. ज्योतिरापाम।-१२/७३ हमने ज्ञान-ज्योति, आत्म-जयोति, परमात्म-ज्योति को प्राप्त कर लिया हैं

१६२. कस्मै देवाय हविषा विधेम।-१२/१०२ हम आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिए श्रद्धा और प्रेम से विशेष भक्ति करें।

१६३. सम्राडेको विराजति।-१२/११७ विश्व ब्रह्माण्ड का एकमात्र सम्राट्, अद्वितीय परमेश्वर सर्वत्र प्रकाशित हो रहा है।

१६४. हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे।-१३/४ प्रकाशस्वरूप परमात्मा सृष्टि-निर्माण से पूर्व भी विद्यमान था।

१६५. स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमाम्।-१३/४ वह प्रकाशस्वरूप परमात्मा ही इस पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है

१६६. नमोऽस्तु सर्पेभ्यः।-१३/६ प्राणियों के लिए अन्न प्राप्त हो। अथवा, प्राणिमात्र का कल्याण हो।

१६७. ऊर्ध्वो भव।-१३/१३ ऊँचे उठो, महान् बनो।

१६८. ध्रुवासि धरुणा।-१३/१६ हे नारि! तू निश्चला है तथा विद्या और अर्थ को को ध ारण करनेवाली है।

१६६. अव्यथमाना पृथिवीं दृँह।-१३/१६ हे नारि! तू व्यथित न होती हुई, आनन्दमयी रहती हुई पृथिवीवासियों को धन-धान्य, ऐश्वर्य और धर्मधन से समृद्ध बना।

२००. सम्राडसि स्वराडसि।-१३/३५ हे महामानव! तू शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्तियों से दीप्त और आत्म प्रकाश से प्रकाशित है।

२०१. माभि मंस्थाः।-१३/४१ हे मानव! अभिमान मत कर।

२०२. शतायुषं कृणुहि चीयमानः।-१३/४१ हे मानव! श्रेष्ठ गुणों से युक्त होकर तू सौ वर्ष की अवस्था को प्राप्त कर। अथवा, स्वयं बुद्धि को प्राप्त होकर तू सौ वर्ष की अवस्थावाली सन्तानों को उत्पन्न कर।

२०३. हरिमद्रिबुध्नमग्ने मा हिँ सीः।-१३/४२ ज्ञानिन्! आनन्दरूपी बादलों के मूलस्रोत, अज्ञान के नाशक, अति मनोहर परमात्मा का त्याग मत कर।

२०४. गां मा हिँ सीः।-१३/४७ हे विद्वन्! गाय को मत मार! पृथिवी को नष्ट मत कर।

२०५. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।-१३/४७ सर्वान्तर्यामी परमात्मा चेतन और जड़ जगत् का प्रकाशक है।

२०६. इमं मा हिँ सीद्विपादं पशुम्।-१३/४७ हे राजन्! विद्वन्! तू दो पैर वाले मनुष्य और

पक्षी आदि तथा चार पैर वाले पशुओं को मत मार।

२०७. इमं मा हिँ सीरेकशफं पशुम्।-१३/४८ हे विद्वन्! तू एक(बिना चिरे) खुर वाले घोड़े, गधे आदि पशुओं को न मार।

२०८. अदितिं जनायाग्ने मा हिँ सीः।-१३/४६ हे राजन्! तू जन-कल्याण के लिए गौ को मत मार।

२०६. त्वामग्ने अङ्गिरसो गुहा हितमन्वविन्दन्।-१५/२८ हे प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! तप से देदीप्यमान योगी हृदय-गुहा में स्थित तुझे आत्म-साधना से प्राप्त करते हैं।

२१०.स जायसे मथ्यमानः।-१५/२८ वह परमात्मा सतत मन्थन, उत्कट साधना से प्रकट होता है।

२११.भवा नो अर्वाङ्।-१५/५६ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! हमारे समक्ष आ, हमारे हृदय-मन्दिर में प्रकट हो।

२१३. उद्बुध्यस्वाग्ने प्रति जागृहि।-१५/५४ हे मेरे आत्माग्ने! तू जाग! प्रतिक्षण जाग्रत् रह। अथवा, हे विद्या से प्रकाशित स्त्री वा पुरूष! तू जाग! अविद्यारूपी निद्रा को छोड़कर विद्या से चेतन हो जा।

२१४. आ रोहाथा नो वर्धया रयिम्।-१५/५४ हे प्रभो! तू हमारे हृदय-मन्दिर में उदित हो और हमारे आत्मैश्वर्य को बढ़ा

२१५. विश्वं ज्योतिर्यच्छ।-१५/५८ प्रभो! तू समस्त मानव-प्रजाओं को ज्योति-विवेक प्रदान कर।

२१६. नमः शम्भवाय च मयोभवाय च।-१६/४१ स्वयं सुखस्वरूप और दूसरों को सुख देनेवाले परमेश्वर को नमस्कार हो

२१७. नमः शंकराय च मयस्कराय च।-१६/४१ स्वयं धर्म-कर्ता और अपने भक्तों को धर्म-कर्म में प्रवृत्त करने वाले प्रभु को नमस्कार हो।

२१८. नमः शिवाय च शिवतराय च।-१६/४१ स्वयं मोक्षस्वरूप और अपने उपासकों को मोक्ष देनेवाले प्रभु को नमस्कार हो।

२१६. मा भेर्मा रोक्।-१६/४७ मत डर और मत रोगी बन।

२२०. विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्नातुरम्।-१६/४८ इस ब्रह्माण्ड में सभी प्राणी दुःख एवं रोग रहित होकर हृष्ट- पुष्ट बलवान् हों।

२२१. नो मृड जीवसे।-१६/४६ हे वैद्य! जीने के लिए हमें सुखी कर।

२२२. अग्ने देवाँ इहा वह।-१७/६ हे राजन्! तृ विद्वानों को अपने राष्ट्र में ला।

२२३.स्वयं यजस्व पृथिवीमुत द्याम्।-१७/२२ तू स्वयं जमीन-आसमान एक कर, प्रबल पुरुषार्थ कर।

२२४. न तं विदाथ य इमा जजान।-१७/३१ हे मनुष्यों! तुम उसे नहीं जानते जिसने इन लोकों, अखिल ब्रह्माण्डों का निर्माण किया है।

२२५.स्वर्ज्योतिरगामहम्।-१७/६७ मैंने आनन्दमयी ज्योति-परमेश्वर को प्राप्त कर लिया है।

अथवा, मैने आनन्द और ज्योति को प्राप्त कर लिया है।

२२६.सुपर्णोऽसि।-१७/७२ हे योगिन्! तू ज्ञान और प्रेमरूपी पंखों से मोक्ष की ओर गमन करने वाला सुपर्ण है।

२२७.आत्मा यज्ञेन कल्पताम्।-१८/२६ मेरी आत्मा योग-साधनरूप यज्ञ के द्वारा सिद्ध और फलप्रद हो।

२२८.सोऽहं वाजं सनेयमग्ने।-१८/३४ हे रसविद्या के ज्ञाता! मैं अन्न का सेवन करूँ(मांस का नहीं)।

२२९.रुचे जनाय नस्कृधि।-१८/४६ हे परमेश्वर! आप हमें प्रेम करने वाले मनुष्यों के प्रति नियत करो।

२३०.उरुशंस मा न आयुः प्रमोषीः।-१८/४६ हे बहुतों द्वारा प्रशंसनीय परमेश्वर! आप हमारी आयु को मध्य में न काटें।

२३१.तँ स्म जानीत परमे व्योमन्।-१८/५६ हे मनुष्यों! तुम परम उत्तम हृदयाकाश में व्याप्त उस परमात्मा को ही प्राप्त करो।

२३२.एतं जानाथ परमे व्योमन् देवाः।-१८/६० हे विद्वानों! आप परम उत्तम हृदयाकाश में व्याप्त सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा को जानो। अपने हृदय-मन्दिर में उस परमदेव के दर्शन करो।

२३३. घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्।-१८/६६ मेरे नेत्रों में स्नेह और वाणी में माधुर्य है।

२३४.सोमो य उत्तमं हविः-१९/२ जो प्रेम है, वही सर्वश्रेष्ठ हवि है।

२३५.एष ते योनिर्मोदाय त्वा।-१९/८ हे मानव! तुझे यह जीवन मिला है, सदा प्रसन्न और प्रफुल्लित रहने के लिए।

२३६.तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।-१९/९ हे जगदीश्वर! आप तेजस्वरूप हैं। मेरे जीवन में भी तेज का आधान कीजिए।

२३७.वीर्यमसि वीर्यमयि धेहि।-१९/९ हे जगदीश्वर! आप पराक्रमशाली हैं, मेरे जीवन में भी पराकम फूंकिए।

२३८.बलमसि बलं मयि धेहि।-१९/९ हे परमेश्वर! आप बलस्वरूप हैं, मुझे भी बल प्रदान कीजिए।

२३९.ओजोऽस्योजो मयि धेहि।-१९/९ हे प्रभो! आप ओजस्वी हैं, मुझे भी ओज दीजिए।

२४० मन्युरसि मन्युं मयि धेहि.।-१९/९ हे जगदीश्वर! आप मन्यु-दुष्टों पर क्रोध करनेवाले हैं, मुझे भी दुष्टों पर क्रोध (प्रतिकार) करने की सामर्थ्य दीजिए।

२४१.सहोऽसि सहो मयि धेहि।-१९/९ हे प्रभो! आप सहनशील हैं, मुझे भी सहनशीलता प्रदान कीजिए।

२४२.अग्ने अनृणो भवामि।-१९/९ हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! मैं ऋण से उऋण होता हूँ।

२४३. मध्वः पिबत मादयध्वम्। ९/१८ हे ब्रह्मज्ञानियों! ब्रह्मरस का पान करो और तृप्त होकर आनन्दित होओ।

२४४. अग्ने अच्छा वदेह नः। ६/२८ हे विद्वन्! आप हमें इस संसार सागर से पार होने के लिये उत्तम सत्योपदेश कीजिए।

२४५. दिद्यून पाहि। १०/१७ हे राजन्! आप विद्या और धर्म का प्रकाश करने वाले व्यवहारों की निरन्तर रक्षा कीजिए।

२४६. प्रजापतये मनवे स्वाहा।११/६६ हम प्रजापालक मानव के लिए अपना सर्वस्व समर्पित करते हैं।

२४७. स नो भव शिवः। १२/३१ हे आत्माग्ने! तू हमारे लिए कल्याणकारी हो।

२४८. अतिथि शिवो नः। १२/३४ अतिथि हमारे लिए कल्याण करने वाला हो।

२४६. सोम दिवि श्रवा स्तुत्तमानि धिष्व। १२/१३३ हे शान्तियुक्त पुरुष! तू अपने मस्तिष्क में उत्तम ज्ञान सम्पदाओं, श्रेष्ठ विचारों को धारण कर।

२५०. ब्रह्म पीपिहि सौभगाय। १४/२ हे नारि! तू सौभाग्य-वृद्धि के लिए वेद मन्त्रों में निहित विज्ञान को प्राप्त कर। अथवा, सौभाग्य के लिए तू ब्रह्म आनन्द रस का पान कर।

२५१. नमोऽस्तु नीलग्रीवाय। १६/८ मधुर कष्ठ और शुद्ध स्वरवाले सेनापति के लिए अन्न प्राप्त हो, अथवा नमस्कार हो।

२५२. अहतौ पितरौ मया।१६/११ मेरे द्वारा माता-पिता पीड़ित एवं दुःखी न हों, सुखी हो।

२५३. यूयेन यूप आप्यते।-१६/१७ खम्भे से खम्भा बांधा जाता है। व्यक्ति से व्यक्ति को, परिवार से परिवार को और समाज से समाज को बाँधा जाता है।

२५४. आप्नोति सूक्तवाकेनाशिषः।-१६/२६ मीठा और मधुर बोलने से मनुष्य को आशीर्वाद मिलता है।

२५५. व्रतेन दीक्षामाप्नोति!।-१६/३० मनुष्य ब्रह्मचर्यादि व्रतों के अनुष्ठान से दीक्षा को प्राप्त होता है।अथवा सत्कर्म के अनुष्ठान से दीक्षा-योग्यता प्राप्त करता है।

२५६. दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम्।-१६/३० मनुष्य दक्षिणा से प्रतिष्ठा और धन को प्राप्त करता है।

२५७. दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति।-१६/३० मनुष्य दक्षिणा-प्रतिष्ठा से श्रद्धा को प्राप्त होता है।

२५८.श्रद्धया सत्यमाप्यते।-१६/३० श्रद्धा से सत्यस्वरूप परमेश्वर अथवा धर्म की प्राप्ति होती है।

२५६.जातवेदः पुनीहि मा।-१६/३६ परमेश्वर मुझे पवित्र करे।

२६०.यः योता स पुनातु मा।-१६/४२ पवित्रस्वरूप परमेश्वर मुझे पवित्र करे।

२६१. माँ पुनीहिं विश्वतः।-१६/४३ हे प्रभो! आप मुझे अन्तः बाह्य सब ओर से पवित्र कीजिए।

२६२. आ यन्तु नः पितारः सोम्यासः।-१६/५८ चन्द्रमा के समान शान्त, शम, दम आदि गुणयुक्त पितर गण हमारे पास आएँ।

२६३.जिह्वा मे भद्रम्।-२०/६ हे मनुष्यो! मेरी जिह्वा कल्याणकारक अन्नादि का सेवन

करनेवाली और मधुर वचन बोलनेवाली है।

२६४.मित्रं मे सहः।-२०/६ सहनशक्ति-धैर्य मेरा मित्र है।

२६५.**सूर्यमगन्म ज्यातिरुत्तमम्।-२०/२१** हमने सर्वोत्कृष्ट, ज्योतिस्वरूप चराचर की आत्मा परमेश्वर को प्राप्त कर लिया है।

२६६.मे वरुण श्रुधि हवम्।-२१/१ हे वरणीय परमेश्वर! मेरी पुकार को सुनो।

२६७. त्वामवस्युराचके।-२१/१ हे परमेश्वर! अपनी रक्षा का अभिलाषी मैं तुझे चाहता हूँ, तुझसे प्रेम करता हूँ।

२६८. वरुणेह बोधि।-२१/२ हे वरणीय, सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! आप इस संसार के भोग-विलास में डूबे हुए हम मनुष्यों को बोध प्रदान की-जिए

२६९. त्वं नो अग्नेऽवमो भव।-२१/४ हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! तेजस्वी विद्वन्! तू हमारी रक्षा करने वाला हो।

२७०. सुनावमा रुहेयमस्रवन्तीम्।-२१/७ हे मनुष्यों! मैं छिद्र-रहित, दोष-रहित जीवनरूपी नौका पर चढूँ अर्थात् मैं दोषरहित दिव्य-जीवन व्यतीत करूँ।

२७१. सूक्तवाकाय सूक्ता ब्रूहि।-२१/६१ हे मनुष्य! तू मधुरभाषी के प्रति मधुर बोला कर। अथवा, तू कथन करने योग्य सूक्तों सुभाषित वचनों का ही कथन किया कर।

२७२.त्वमग्नि वैश्वानरँ सप्रथ संगच्छ।-२२/३ हे मानव! तू विश्वविख्यात, समस्त पदार्थों के नायक परमेश्वर को जान।

२७३.अग्नि दूतं पुरो दधे।-२२/१७ मैं दुःखविनाशक, ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को सदा अपने सम्मुख रखता हूँ।

२७४. आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम्।-२२/२२ हे महतो महान् परमेश्वर! हमारे राज्य में वेदाविद्या में निष्णात, वेद और ईश्वर को जाननेवाले ब्राह्मण उत्पन्न हों।

२७५.पुरन्धिर्योषा।-२२/२२ हमारे राष्ट्र में नारियाँ नगर की रक्षा करने में समर्थ हों।

२७६.अग्निर्हिमस्य भेषजम्।-२३/१० अग्नि शीत की दवा है, ज्ञान अज्ञान की औषधि है।

२७७.महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।-२३/१५ हे शक्तिशालिन्! तेरी महिमा दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं कराई जा सकती और न दूसरे के द्वारा मिटाई जा सकती है।

२७८. अध्वर्यो मा नस्त्वमभि भाषथाः।-२३/२३ हे निश्छल! निष्पाप! तू हम लोगों के प्रति झूठ मत बोला कर, अथवा व्यर्थ की बातें मत किया कर।

२७९. ब्रह्मन् मा त्वं वदो बहु।-२३/२५ हे वेदों के ज्ञाता सज्जन! ज्ञानिन्! तू बहुत मत बोला कर।

२८०.सुरभि नो मुखा करत्।-२३/३२ हे परमेश्वर! हमारे मुखों को सुगन्धियुक्त, सत्यप्रिय और मधुर-भाषण से युक्त कर।

२८१. ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः।-२३/४८ हे जिज्ञासो! परमेश्वर सूर्य के समान स्वप्रकाशस्वरूप ज्योति है।

२८२. द्यौः समुद्रसम सरः।-२३/४७ हे जिज्ञासो! अन्तरिक्ष और हृदय समुद्र के समान बड़ा

तालाब है।

२८३. गोस्तु मात्रा न विद्यते।-२३/४८ हे जिज्ञासो! गौ-वाणी और गाय की तुलना नहीं है।

२८४. पचस्वन्तः पुरुष आ विवेश।-२३/५२ हे जिज्ञासु! परमात्मा पचंभूत और उसकी तन्मात्राओं में सत्ता से व्याप्त है।

२८५. भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः।-२५/२० हे विद्वानों! आप लोगों की कृपा से हम कानों से सदा भद्र वचनों को सुनें।

२८६. भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।-२५/२१ हे यज्ञमय जीवन वाले विद्वानो! हम आँखों से कल्याणकारी, भद्र दृश्यों को ही देखें।

२८७. यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः।-२६/२ मैं कल्याणी वेद वाणी को मनुष्यमात्र के लिए यथावत् उपदेश करूँ।

२८८. अजस्रं धर्ममीमहे।-२६/६ हम देदीप्यमान तेज को निरन्तर चाहते हैं।

२८९. वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम।-२६/७ हम ब्रह्माण्ड के संचालक परमेश्वर की वेदरूपी दोषरहित सुमति में सदा विद्यमान रहें अर्थात् वेद के अनुसार चलें।

२९०. षोडशी शर्म यच्छतु।-२६/१० सोलह कला पूर्ण परमात्मा हमें सुख प्रदान करे।

२९१. विद्वनः ह्यग्ने दुरिता सहस्व।-२७/६ हे विद्वन! आप सब दुष्टाचरणों और बुराइयों को मसल दीजिए।

२९२. न त्वावाँ अन्यो दिव्यो न पार्थिवः।-२७/३६ हे परमेश्वर! तेरे जैसा तेजस्वी न द्युलोक में है और न ही पृथिवी पर।

२९३. ईड्यश्चासि वन्द्यश्च वाजिन्।-२९/३ हे शक्तिशालिन्! आप स्तुति योग्य और नमस्करणीय हैं।

२९४. सूरादश्वं वसवो निरतष्ट।-२९/१३ हे विद्वानों! सूर्य से शक्ति का निर्माण करो।

२९५. विश्वाहा वयँ सुमनस्यमानाः।-२९/४५ हम सदा हँसते-मुस्कराते और सुन्दर विचारोंवाले हों।

२९६. पूषा नः पातु दूरितात्।-२९/४७ पुष्टि करनेवाला परमात्मा हमें दुष्ट अन्यायाचरण से बचाए।

२९७. माकिर्नो अघशँ स ईशत।-२९/४७ पाप का प्रशंसक चोर हम पर शासन करने में समर्थ न हो।

२९८. अश्मा भवतु नस्तनूः।-२९/४९ हमारे शरीर पत्थर के समान दृढ़ हों।

२९९. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परसुव।-३०/३ हे सर्वजगदुत्पादक, सर्वसुखदाता परमेश्वर! आप हमारे सारे दुर्गुण, दुष्टाचरण और दुःखों को दूर कर दीजिए।

३००. यद् भद्रं तन्न आ सुव।-३०/३ हे सकल सुखदाता परमेश्वर! जो कल्याणकारी ध र्मयुक्त आचरण अथवा सुख है, उसे हमें प्राप्त कराइए।

३०१. भूत्यै जागरणम्।-३०/१७ जागना, प्रबोध ऐश्वर्य का कारण है, ऐश्वर्य के लिए है।

३०२. अभूत्यै स्वप्नम्।-३०/१७ सोना विनाश के लिये, दरिद्रता के लिये है।

३०३. अन्तकाय गोघातम्।-३०/१८ गोघातक को मृत्युदण्ड के लिए सौंपिए, उसे मृत्युदण्ड हो।

३०४. सहस्रशीर्षा पुरुषः।-३१/१ सर्वत्र परिपूर्ण सर्वव्यापक विराट् पुरुष जगदीश्वर हजारों सिरवाला-सर्वज्ञ है।

३०५. ततो विराडजायत।-३१/५ उस सनातन पूर्ण परमात्मा से विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार उत्पन्न होता है।

३०६. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः।-३१/१६ विद्वान् लोग ज्ञानयज्ञ से, मानसयज्ञ से, सर्वरक्षक पूजनीय परमेश्वर की पूजा करते हैं।

३०७. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम्।-३१/१८ मैं बड़े-बड़े गुणों से युक्त, महतो महान् सर्वत्र परिपूर्ण परमात्मा को जानूं।

३०८. तमेव विदित्वाति मृत्युमेति।-३१/१८ उस परमात्मा को जानकार ही मनुष्य मृत्यु को लाँघता है।

३०६. तस्य योनिं परिपश्यन्ति धीराः।-३१/१६ उस सर्वव्यापक परमेश्वर के स्वरूप को ध्यानशील योगिजन सब ओर से देखते हैं।

३१०. तस्मिन् ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा।-३१/१६ समस्त लोक-लोकान्तर, सारे ब्रह्माण्ड उसी परमेश्वर में स्थित हैं।

३११. नमो रुचाय ब्राह्मये।-३१/२० सर्वत्र प्रकाशमान ब्रह्म के लिए नमस्कार हो।

३१२.न तस्य प्रतिमा अस्ति।-३२/३ उस परमेश्वर का कोई नाप, तोल, परिमाण, प्रतिमा नहीं है।

३१३.वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सत्।-३२/८ पण्डित, विद्वान् जन परमगुहा में स्थित नित्य, चेतन ब्रह्म को ज्ञानदृष्टि देखते हैं

३१४.स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।-३२/८ वह महान् परमात्मा प्रजाओं में ताने-बाने के समान ओत-प्रोत है।

३१५. स नो बन्धुर्जनिता स विधाता।-३२/१० वह परमात्मा हमारा बन्धु-भाई के समान सहायक, उत्पन्न करनेवाला पिता और कर्मफल-विधाता है।

३१६. आत्मनात्मानमभि सं विवेश।-३२/११ अपने शुद्धस्वरूप अथवा अन्त-करण से परमात्मा में सम्यक् प्रवेश करना चाहिए।

३१७. सनिं मेधामयासिषम्।-३२/१३ मैं सत्यासत्य का विवेक करनेवाली उत्तम बुद्धि को प्राप्त होऊँ।

३१८. अग्ने मेधाविनं कुरू।-३२/१४ हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! आप मुझे प्रशंसित मेधावी-ध ारणवती बुद्धि और धन-धान्य से सम्पन्न कीजिए।

३१६. मेधां धाता ददातु मे।-३२/१४ समस्त संसार का धारण करने वाला परमात्मा मुझे श्रेष्ठ बुद्धि और धन प्रदान करे।

३२०.प्रियसः सन्तु सूरयः।-३३/१४ ज्ञानी जन हम सबके प्रीति-पात्र हों।

३२१. त्वं वरूण पश्यसि।-३३/३२ हे वरणीय परमेश्वर! आप सब प्राणियों के कर्मो देखते हैं।

३२२. सवँ तदिन्द्र ते वशे।-३३/३५ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! इस संसार में निकट और दूर जो कुछ भी है, वह सब आपके वश में हैं।

३२३. बण्महाँ असि सूर्य-३३/३६ हे चराचर के अन्तर्यामिन् परमेश्वर! आप सचमुच महान् हैं।

३२४. नमोऽग्नये।२३/१३ ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के लिए नमस्कार हो। विद्या से प्रकाशमान, चारों वेदों के पढ़े हुए विद्वान् के लिए अन्न देना चाहिए।

३२५. महिमा तेऽन्येन न सन्नशे।२३/१५ हे शक्तिशालिनू! तेरी महिमा दूसरे के द्वारा प्राप्त नहीं कराई जा सकती है और न दूसरे के द्वारा मिटाई जा सकती है।

३२६. अहिः पन्थां वि सर्पति।२३/५६ सर्पवत् कुटिल पुरुष मार्ग में रेंग-रेंगकर चलता है।

३२७. अयं यज्ञो भुवनस्य नाभिः।२३/६२ यह यज्ञ संसार की नाभि है, केन्द्र है, बन्धन स्थान है।

३२८. होतर्यज। हे होतः! यज्ञ कर। परमात्मा की उपासना कर, विद्वानों की संगति कर, दान दे।

३२९. गोस्तु मात्रा न विद्यते।२३/४८ हे जिज्ञासु! गौ, वाणी और गाय की तुलना नहीं है।

३३०. संज्ञानमस्तु मे। मुझे उत्तम ज्ञान प्राप्त हो।

३३१. इन्द्रं गीभिर्नवामहे।२६/११ हम उपासक परमैश्वर्यशाली परमेश्वर की वेदवाणियों द्वारा खूब स्तुति करते हैं।

३३२. त्व हि रत्नधा असि।२६/२१ हे मानव! तू ही सद्गुणरूपी रत्नों का धारण करने वाला है।

३३३. सं दिव्येन दीदिहि रोचनेन।२७/१ हे विद्वनू! तू दिव्य तेज से सूर्य के समान खूब चमक।

३३४. वर्धयैनं महते सौभगाय। हे आचार्य! आप महान् सौभाग्य, उत्तम लक्षण, चरित्र और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए अपने शिष्य को बढ़ाइए।

३३५. बृहस्पते अभिशस्तेरमुंच। २७/९ हे ज्ञानिनू! आप अपने को सब प्रकार के अपराध ा से मुक्त कीजिए।

३३६. शिवे नो द्यावापृथिवी अनेहसा।२६/४७ निष्पाप माता-पिता हमारे लिए कल्याणकारी हों।

३३७. पुमान् पुमा सं परि पातु विश्वतः।२६/५१ मनुष्य मनुष्य की सब प्रकार से रक्षा करे।

३३८. मयि देवा दधतु श्रियमुत्तमाम्।३२/१६ विद्वान् लोग मुझे अति श्रेष्ठ शोभा वा लक्ष्मी प्रदान करें।

३३९. श्रुधि श्रुत्कर्ण।३३/१५ हे प्रार्थियों के वचनों को सुनने वाले राजन्! हमारी पुकार सुन।

३४०. वृत्र हनति वृत्रहा।३३/९६ शत्रुनाशक सेनापति शत्रुओं का संहार करता है। शूरवीर अन्तःशत्रुओं का नाश करता है।

३४१. मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।३४/१ मेरा संकल्प-विकल्पात्मक मन कल्याणकारी धर्म विषयक इच्छावाला हो। मेरा मन कल्याणकारी संकल्प करने वाला हो।

३४२. बडादित्य महाँ आसि।-३३/३९ हे अविनाशी प्रभो! आप निश्चय ही अनन्त ज्ञानवान् हैं।

३४३. देव महाँ असि।-३३/३९ हे दिव्य गुणकर्मस्वभाव युक्त परमेश्वर! आप महान् हैं।

३४४. अँ हसः पिपृता निरवद्यात्।-३३/४२ हे विद्वान् लोगों! आप हमें पाप, अपराध, निन्दनीय वचनों और दुःखों से निरन्तर बचाओ।

३४५. त्राध्वं नो देवा निजुरो वृकस्य।-३३/५१ हे विद्वानों! आप हमें हिंसक चोर और व्याघ्र-भेड़िये (क्रोधी, छिपकर आक्रमण करनेवाले मनुष्य) से बचाओ।

३४६. न त्वावाँ अस्ति देवता विदानः।-३३/७९ हे परमेश्वर! तेरे जैसा ज्ञानवान् कोई भी देव नहीं है।

३४७. शेवधिपा अरिः।-३३/८२ धन से चिपटा रहने वाला अदानशील मनुष्य समाज का शत्रु है।

३४८. ज्योतिषा बाधते तमः।-३३/९२ आध्यात्मिक प्रकाश से अविद्यारूपी अन्धकार हो हटाया जाया है।

३४९. देवास्त इन्द्र सख्याय येमिरे।-३३/९५ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! विद्वन्! ध्यानशील योगी लोग आपकी मित्रता के लिए यम-नियम आदि का संयम करते हैं।

३५०. मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।-३४/१ मेरा संकल्प-विकल्पात्मक मन कल्याणकारी धर्म-विषयक इच्छावाला हो।मेरा मन कल्याणकारी संकल्प करनेवाला हो।

३५१. रक्ष तन्वश्च वन्द्य।-३४/१३ हे स्तुति के योग्य परमेश्वर! आप हमारे शरीर, मन और बुद्धि की रक्षा कीजिए।

३५२. प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे।-३४/३४ हम प्रातःकाल की शुभवेला में प्रकाशस्वरूप परमेश्वर और उत्तम ऐश्वर्य का आह्वान करते हैं।

३५३. प्रातः सोमसुत रुद्रँ हुवेम।-३४/३४ हम प्रातःकाल अपने कार्यों से प्रथम सबके अन्तर्यामी, प्रेरक और पापियों को रुलानेवाले, सर्वरोगनाशक परमात्मा का चिन्तन करते हैं।

३५४. प्रातर्जितं भगमुग्रँ हुवेम।-३४/३५ हम प्रातःकाल अपने पुरुषार्थ से प्राप्त उत्कृष्ट ऐश्वर्य को चाहते हैं।

३५५. वयं भगवन्तः स्याम।-३४/३७ हम लोग समग्र शोभायुक्त ऐश्वर्य से सम्पन्न हों। हम सौभाग्यशाली हों।

३५६. जागृवाँ सः समिन्धते।-३४/४४ सदा सावधान, जागरूक साधक ही अपनी आत्मा में उस परमात्म-ज्योति को प्रकट करते हैं।

३५७. सप्त ऋषयः प्रतिहिताः शरीरे।-३४/५५ परमात्मा ने हमारे शरीर में शब्दादि विषयों को प्राप्त कराने वाले, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, मन और बुद्धि-ये सात ऋषि प्रस्थापित किया हैं।

३५८. उतिष्ठ ब्रह्मणस्पते।-३४/५६ हे वेद के रक्षक! उठ, सावधान हो(वेद प्रचार में लग)!

३५९. उत्तिष्ठत प्र तरता सखायः।-३५/११ हे मित्रों! कटिबद्ध हो जाओ, पुरुषार्थी बनो और संसाररूपी नदी से पार हो जाओ, दुःखों को लाँघ जाओ।

५६०. अन्तर्मृत्युं दधतां पर्वतेन।-३५/११ हे मनुष्यों! अकाल मृत्यु को ज्ञान, पुरुषार्थ वा ब्रह्मचर्य आदि से दूर मार भगाओ।

३६१. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरम्।-३५/२५ मैं कच्चा मांस खानेवाली चिन्ता रूपी अग्नि को दूर करता हूँ।

३६२. इन्द्रो विश्वस्य राजति।-३६/८ परमैश्वर्यशाली परमात्मा सारे संसार का शासक है।

३६३. शन्नस्तपतु सूर्यः।-३६/१० हे प्रभो! सूर्य हमारे लिए कल्याणकारी होकर तपे।

३६४. शंयोरभि स्रवन्तु नः।-३६/१२ परमात्मा हम पर चारों ओर से सुख की वृष्टि करे।

३६५. द्यौः शान्तिः।-३६/१७ द्युलोक, मस्तिष्क शान्ति देनेवाला हो।

३६६. अन्तरिक्षँ शान्तिः।-३६/१७ अन्तरिक्ष लोक में-हृदय-मन्दिर में शान्ति हो।

३६७. पृथिवी शान्तिः।-३६/१७ पृथिवी पर शान्ति हो, पृथिवी शान्ति देनेवाली हो।

३६८. मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।-३६/१८ हे जगदीश्वर! संसार के सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से सम्यक् देखें।

३६९. मित्रस्याऽहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे।-३६/१८ मैं संसार के सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से सम्यक् देखूँ।

३७०. मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।-३६/१८ हम सब परस्पर एक दूसरे को मित्र की दृष्टि से देखें।

३७१. दृते दृ हँ मा।-३६/१९ हे अविद्यारूपी अन्धकारक के निवारक जगदीश्वर! आप मुझे शुभ-कर्मो और धर्मयुक्त व्यवहार में दृढ़ता प्रदान कीजिए।

३७२. ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्।-३६/१९ हे अविद्यारूपी अन्धकारक के निवारक जगदीश्वर! आप मुझे शुभ-कर्मों और धर्मयुक्त व्यवहार में दृढ़ता प्रदान कीजिए।

३७३. ज्योक्ते संदृशि जीव्यासम्।-३६/१९ हे प्रभो! मैं आपके ज्ञानरूप संदर्शन में दीर्घ जीवन व्यतीत करूँ।

३७४. नमस्ते भगवन्नस्तु।-३६/२१ हे अनन्त ऐश्वर्यमुक्त परमेश्वर! आपको प्रणाम हो।

३७५. नो अभयं कुरु।-३६/२२ हे परमेश्वर! तूं हमें भयरहित कर।

३७६. पश्येम शरदः शतम्।-३६/२४ हम सौ वर्ष तक परमात्मा का दर्शन करते रहें।

३७७. श्रृणुयाम शरदः शतम्।-३६/२४ हम सौ वर्षो तक शास्त्रों और मंगल वचनों को सुनते रहें।

३७८. प्र ब्रवाम शरदः शतम्।-३६/२४ हम सौ वर्ष तक पढ़ाएँ और उपदेश करते रहें।

३७६. अदीनाः स्याम शरदः शतम्।-३६/२४ हम सौ वर्ष तक स्वतन्त्र, निर्भय और दीनता-रहित होकर जीएँ।

३८०. अपश्यं गोपाम्।-३७/१७ मैने इन्द्रियों के रक्षक जीवात्मा का और जगद्रक्षक परमेश्वर का दर्शन कर लिया है।

३८१. पिता नोऽसि।-३७/२० हे जगदीश्वर! आप हमारे पालक और रक्षक पिता हैं।

३८२. इहैव रातयः सन्तु।-३८/१३ इस गृहस्थाश्रम में दान के प्रवाह निरन्तर चलते रहें।

३८३. महाँ असि रोचस्व।-३८/१७ हे विद्वन्! आप महात्मा हैं, जीवन में खूब चमकिए, सदा प्रसन्न रहिए।

३८४. धर्मणा वयमनु क्रामाम सुविताय नव्यसे।-३८/१६ हम लोग स्तुत्य ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए धर्म के अनुकूल चलें।

३८५. अप द्वेषो अप ह्वरोऽन्यव्रतस्य सश्चिम।-३८/२० हम लोग द्वेषी शत्रुओं, कुटिल जनों और दया-धर्म आदि व्रत रहित मनुष्यो को अपने से पृथक् कर दूर पहुँचाएँ।

३८६. वाचः सत्यमशीय।-३६/४ मैं वाणी के सत्य को प्राप्त होऊँ।

३८७. ईशा वास्यमिदँ सर्वम्।-४०/१ सर्वशक्तिमान् परमात्मा सारे ब्रह्माण्ड में ओत-प्रोत है।

३८८. तेन त्यक्तेन भुंजीथाः।-४०/१ हे मनुष्यों! परमेश्वर द्वारा प्रदत्त पदार्थों को त्यागपूर्वक, त्यागभाव से भोगो।

२८६. मा गृधः।-४०/१ हे मनुष्यों! लालच मत करो।

२६०. कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेत्।-४०/२ मनुष्य इस संसार में कर्म करते हुए ही जीने की इच्छा करे।

३६१. न कर्म लिप्यते नरे।-४०/२ नर में, नर बनकर कर्म करनेवाले मनुष्य में अवैदिक, अधर्मयुक्त कर्मों का लेप नहीं होता ।

३६२. अनेजदेकं मनसो जवीयः।-४०/२ वह परमात्मा अपरिणामी, अद्वितीय और मन से भी अधिक वेगवान् है।

३६३. तदेजति तन्नैजति।-४०/५ वह परमात्मा स्वयं गतिशून्य है परन्तु सारे संसार को गति दे रहा है।

३६४. तद्दूरे तद्वन्तिके।-४०/५ वह परमात्मा अधर्मात्माओं से दूर और धर्मात्माओं के अत्यन्त समीप है।

३६५. तदन्तरस्य सर्वस्य।-४०/५ वह परमात्मा सब जगत् और जीवों के भीतर भी विद्यमान है।

३६६. तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।-४०/५ वह परमात्मा सब जगत् के बाहर भी विद्यमान है।

३६७. स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणम्।-४०/८ वह परमात्मा सर्वव्यापक, शीघ्रकारी शरीर और व्रण-घाव आदि से रहित है।

३६८. विद्ययामृतमश्नुते।-४०/१४ विद्या-यथार्थ ज्ञान से मोक्ष की प्राप्ति होती है।

३६६. वायुरनिलममृतम्।-४०/१५ आत्मा अभौतिक अतएव नाशरहित है।

४००. इदं भस्मान्तं शरीरम्।-४०/१५ यह शरीर नश्वर, भस्म होनेवाला है।
४०१. ओ३म् कृतो स्मर।-४०/१५ हे कर्मशील जीव! तू 'ओ३म् का स्मरण कर।
४०२. क्लिबे स्मर।-४०/१५ हे जीव! अपनी कमजोरियों, त्रुटियों का स्मरण कर।
४०३. कृतँ स्मर।-४०/१७ हे जीव! अपने किये हुए अच्छे-बुरे कर्मों का स्मरण कर।

।। इति ।।

,,,

यजुर्वेद मन्त्र

१. अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ।
युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नमऽउक्तिं विधेम ।। ५/३६

सबको अच्छे मार्ग में पहुंचाने और सब आनन्दों को देने वाले, समस्त विद्याओं के स्वामी जगदीश्वर! जिस प्रकार धार्मिक जन उत्तम मार्ग से समस्त विज्ञान को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार आप अपनी कृपादृष्टि से हमें मोक्ष रूप धन प्राप्त कराइये एवं कुटिल दुःख फल रूपी पाप को हमसे दूर कीजिए। हम आपकी नमस्कार युक्त स्तुति बहुत अधिक किया करें।

२. इदमापः प्रवहतावद्यं च मलं च यत् ।
यच्चाभिदुद्रोहानृतं यच्च शेपेऽअभीरुणम् ।
आपो मा तस्मादेनसः पवमानश्च मुंचतु ।।६/१७

जलों के समान शान्त स्वभाव वाले आप्त पुरुषों! जो निन्दनीय कर्म और जो मलिन कार्य हैं और जो कुछ मैं दूसरे के प्रति द्रोह कार्य करूं और जो असत्य भाषण करूं और जो निर्भय होकर मैं दूसरे को कोसूं, उस सब मल को आप लोग बहुत शीघ्र जलों के समान बहाकर दूर करें और पवित्र करने वाला या न्यायकारी पुरुष मुझको उस पाप से छुड़ावें।

३. प्रागपागुदगधराक्सर्वतस्त्वा दिशऽआधावन्तु । अम्ब निष्पर समरीर्विदाम् ।। ६/३६

तेरी शरण में पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर इन सब दिशाओं के प्रजाजन आवें और कहे हे हमारे प्रेमी! हमें सब प्रकार से पालन कर। समस्त प्रजाएं तुझे अपना स्वामी, माता

के समान पालक भली प्रकार जानें।

४. अन्तस्ते द्यावापृथिवी दधाम्यन्तर्दधाम्युर्वन्तरिक्षम् ।
सजूर्देवेभिरवरैः परैश्चान्तर्य्यामे मघवन् मादयस्व ।।७/५

हे योगी! मैं। परमेश्वर तेरे हृदयाकाश में सूर्य और भूमि के समान विज्ञान आदि पदार्थों को स्थापित करता हूँ तथा विस्तृत आकाश को शरीर के भीतर धारण करता हूँ। तूं मित्र के समान विद्वानों से विद्या को प्राप्त कर योग्य व्यवहारों से सबको प्रसन्न किया कर।

५. आत्मने मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वौजसे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्वायुषे मे वर्चोदा वर्चसे पवस्व विश्वाभ्यो मे प्रजाभ्यो वर्चोदसौ वर्चसे पवेथाम् ।। ७/२८

हे ब्रह्म विद्या देने वाले विद्वन! आप मेरे लिये अपनी आत्मा के ज्ञानमयी प्रकाश को प्रदान कीजिये। मेरे अन्दर आत्मबल होने के लिये योगबल का बोध कराइये। मेरे जीवन के लिये औषधि प्रदान कीजिए। आप दोनों मेरी समस्त प्रजाओं के लिये ज्ञान का प्रकाश कीजिए ।

६. चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः ।
आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्ष सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ।। ७/४२

परमात्मा का साक्षात्कार करने वाला उपासक कहता है कि वह ब्रह्म मेरे हृदय में प्रकाशित हो गया है, जो सम्पूर्ण ज्ञान को देने वाला है। वह सब देवों का का बल है तथा सूर्य, चन्द्रमा एवं अग्नि को भी प्रकाशित करने वाला है

स्थावर जंगम सभी प्राणियों की आत्मा रूप उस परमात्मा की सत्ता पृथ्वी, अन्तरिक्ष एवं द्युलोक तक विद्यमान है।

७. हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोता वेदिषदतिथिर्दुरोणसत् ।
नृषद्वरसहृतसद्वयोमसदब्जा गोजा?ऽऋतजाऽअद्रिजाऽऋतं बृहत्।। १०/२४

हे मनुष्यों! जो परमात्मा पदार्थों को स्थूल करने वाला है, पवित्र पदार्थों एवं आकाश में भी स्थित है, अतिथि के समान सम्माननीय है, घरों में स्थित मनुष्यों, उत्तम पदार्थों, कारण प्रकृति रूप महाकाश में भी विद्यमान है, जल, पृथ्वी, मेघ आदि को उत्पन्न करने वाला है, परम सत्य रूप वैदिक ज्ञान को प्रकट करने वाला है, सत्यस्वरूप एवं सर्वोपरि है, एकमात्र उसी की उपासना करो।

८. युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्वि श्लोकऽएतु पथ्येव सूरेः ।
श्रृणवन्तु विश्वेऽअमृतस्य पुत्राऽआ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।। ११/५

हे स्त्री पुरुषों! और हे गुरूशिष्यों! हे राजा प्रजाजनों! आप दोनों के हित के लिये मैं विद्वान् पुरुष आत्मा को विनय सिखाने वाले उपायों द्वारा, पूर्ण योगिजनों, ऋषियों द्वारा साक्षात् किये गये परमेश्वर को अपने चित में एकाग्र होकर साक्षात् करूं। सत्यवाणी से युक्त, वेद ज्ञान अथवा सत्य ज्ञान से युक्त, सूर्य के समान विद्वान् का वह श्लोक अर्थात् ज्ञानोपदेश आप दोनों

के लिये उत्तम मार्ग के समान विविध उद्देश्यों तक पहुंचे। ज्ञानमय तेजों, प्रकाशों या उच्च स्थानों को प्राप्त करने वाले उन लोगों से हे समस्त पुत्रजनों! आप लोग उस अमृत स्वरूप परमेश्वर विषयक ज्ञान का श्रवण करें।

९. अन्वग्निरुषसामग्रमख्यदन्वहानि प्रथमो जातवेदाः ।
अनु सूर्यस्य पुरुत्रा च रश्मीननु द्यावापृथिवीऽआततन्थ ।। ११/१७

सबसे प्रथम विद्यमान, ज्ञानवान् परमेश्वर ही उषाओं के मुख्य भाग सूर्य को भी प्रकाशित करता है। उसके पश्चात् स्वयं सूर्य संसार को प्रकाशित करता है। तदनुसार अन्य उत्कृष्ट विद्वान् पुरुष भी व्यवहारों को प्रकाशित करें। वही परमेश्वर दिनों को प्रकाशित करता है। वही सूर्य की बहुत सी किरणों को भी प्रकाशित करता है वही आकाश और पृथिवी को भी विस्तृत करता है। उसी प्रकार राष्ट्र में सबसे श्रेष्ठ विद्वान् पुरुष भी अपने ज्ञान से प्राप्त दिनों को प्रकाशित करे। सूर्य के समान तेजस्वी राजा की नाना प्रबन्ध-व्यवस्थाओं और कार्यों को प्रकाशित करे। वह राजा-प्रजा दोनों की वृद्धि करे।

१०. सह रय्या निवर्त्तस्वाग्ने पिन्वस्व धारया ।
विश्वप्स्न्या विश्वतस्परि ।। १२/१०

हे ज्ञानवन् ! राजन्! तेजस्विन्! तू ऐश्वर्य के साथ समस्त योग्य पदार्थों का भोग प्राप्त कराने वाली और धारण कराने वाली विद्या और शक्ति से सब देशों से ऐश्वर्य को लाकर अपने देश को समृद्ध कर और पुनः अपने देश में आ ।

११. अप्स्वग्ने सधिष्टव सौषधीरनु रुध्यसे।
गर्भे सन् जायसे पुनः।।१२/३६

हे अग्नि के तुल्य विद्वान् जीव! जो सहनशील तू जलों में सोमलता आदि ओषधियों को प्राप्त होता है वह गर्भ में स्थित होकर फिर-फिर जन्म-मरण तेरे हैं, ऐसा जान।

१२. समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्।
आस्मिन् हव्या जुहोतन ।। १२/३०

हे गृहस्थों! तुम लोग जैसे अच्छे प्रकार इन्धनों से अग्नि को प्रकाशित करते हैं वैसे उपदेश करने वाले विद्वान् पुरुष की सेवा करो और जैसे सुसंस्कृत अन्न तथा घी आदि पदार्थों से अग्नि में होम करके जगदुपकार करते हैं वैसे जिसके आने-जाने के समय का नियम न हो उस उपदेशक पुरुष को स्वागत उत्साहादि से चैतन्य करो और इस जगत् में देने योग्य पदार्थों को अच्छे प्रकार दिया करो।

१३. मा मा हि सीज्जनिता यः पृथिव्या यो वा दिवँ सत्यधर्मा व्यानट्।
यश्चापश्चन्द्राः प्रथमो जजान कस्मै देवाय हविषा विधेम।।१२/१०२

जो सत्यधर्म वाला जगदीश्वर पृथिवी, सूर्य आदि जगत् जल और वायु को उत्पन्न करके व्याप्त होता है और जो चन्द्रमा आदि लोकों को उत्पन्न करता है, जिस सुखस्वरूप सुख करने वाले दिव्य सुखों के दाता विज्ञानस्वरूप ईश्वर का ग्रहण भक्तियोग से हम लोग करें। वह जगदीश्वर मुझको कुसंग से ताड़ित न होने देवे।

१४. ब्रह्म जज्ञानं प्रथमं पुरस्ताद्वि सीमतः सुरुचो वेनऽआवः।
स बुध्न्याऽउपमाऽअस्य विष्ठाः सतश्च योनिमसतश्च वि वः।। १३/३

ब्रह्म सृष्टि के आदि में सबका उत्पादक और ज्ञाता है, विस्तारयुक्त और विस्तारकर्ता है सबसे बड़ा सुन्दर प्रकाशयुक्त और सुन्दर रुचि का विषय है, जल (मोह) सम्बन्धी आकाश में वर्तमान सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी और नक्षत्र आदि विविध लोक हैं उन सबको वह अपनी व्याप्ति से आच्छादित करता है। वह ईश्वर मर्यादा से विद्यमान, देखने योग्य और अव्यक्त और कारण के आकाशरूप स्थान को ग्रहण करता है। उसी ब्रह्म की उपासना सब लोगों को नित्य अवश्य करनी चाहिये।

१५. हिरणयगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकऽआसीत् ।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। १३/४

जो सृष्टि के आदि में स्वर्ण के समान दीप्त सूर्यों को अपने गर्भ में धारण करने वाला, सबको वश में रखने वाला इस उत्पन्न होने वाले विश्व का एकमात्र उत्पादक, पालक और उसमें व्याप्त होकर सदा रहता भी है और वही इस सर्वाश्रय पृथिवी, आकाश या तेजोदायी सूर्यादि को भी धारण करता है। उस सुखस्वरूप प्रजापति की हम भक्तिपूर्वक उपासना करें।

१६. विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे।
इन्द्रस्य युज्यः सखा।।१३/३३

हे मनुष्यों! जो परमैश्वर्य की इच्छा करने वाले जीव का उपासना करने योग्य मित्र के समान वर्तमान है, जिस के प्रताप से यह जीव व्यापक ईश्वर के जगत् की रचना, पालन, प्रलय करने और न्याय आदि कर्मों और सत्यभाषणादि नियमों को स्पर्श करता है, उस परमात्मा के इन कर्मों और व्रतों को तुम लोग भी देखो धारण करो।

१७. ताऽअस्य सूददोहसः सोम श्रीणन्ति पृश्नयः।
जन्मन्देवानां विशस्त्रिष्वारोचने दिवः ।।१५/६०

जो विद्या और अच्छी शिक्षा से युक्त विद्वानों के जन्म विषय में पूछने वाली रसोइया और कार्यों के पूर्ण करने वाले पुरुषों से युक्त वेदरीति से कर्म, उपासना और ज्ञानों तथा सबके अन्ततःप्रकाशक परमात्मा के प्रकाश में वर्तमान प्रजा हैं वे इस सभाध्यक्ष राजा के सोमवल्ली आदि औषधियों के रसों से युक्त भोजनीय पदार्थों को सब ओर से पकाती हैं।

१८. यो नः पिता जनिता यो विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा।
यो देवानां नामधाऽएकऽएव त सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या।।। १७/२७

हे मनुष्यों! जो हमारा पालन और सब पदार्थों का उत्पादन करने वाला कर्मों के अनुसार फल देने वाला जगत् का निर्माण करने वाला, समस्त लोकों और जन्मस्थान वा नाम को जानने वाला, विद्वानों वा पृथिवी आदि पदार्थों का अपनी विद्या से नाम धरने वाला एक ही है जिसको और लोकस्थ पदार्थ प्राप्त होते हैं, जिसके निमित्त अच्छे प्रकार पूछना हो उस परमात्मा को तुम लोग जानो।

१९. न तं विदाथ यऽइमा जजानान्यद्युष्माकमन्तरं बभूव ।

नीहारेण प्रावृता जल्प्या चासुतृपऽउक्थशासश्चरन्ति ।। १७/३१

हे मनुष्यों! जैसे ब्रह्म के न जानने वाले पुरुष धूम के आकार कुहर के समान अज्ञान रूप अन्धकार से अच्छे प्रकार ढके हुए थोड़े सत्य असत्य वादानुवाद में स्थिर रहने वाले, प्राणपोषक और योगाभ्यास को छोड़ शब्द अर्थ सम्बन्ध के खण्डन मण्डन में रमण करते हुए विचरते हैं वैसे हुए तुम लोग उस परमात्मा को नहीं जानते हो जो इन प्रजाओं को उत्पन्न करता है और जो ब्रह्म तुम अधर्मी अज्ञानियों के सकाश से अर्थात् कार्यकारणरूप जगत् और जीवों से भिन्न तथा सबों में स्थित भी दूरस्थ होता है उस अतिसूक्ष्म आत्मा के आत्मा अर्थात् परमात्मा को नहीं जानते हो।

२०. इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः ।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ।। १७/६१

हे मनुष्यों! तुम जिस अन्तरिक्ष की व्याप्ति के समान व्याप्ति वाले प्रशंसायुक्त सुख के हेतु पदार्थ वालों में अत्यन्त प्रशंसित सुख के हेतु पदार्थों से युक्त ज्ञानी आदि गुणी जनों के स्वामी, विनाशरहित वा विनाशरहित कारण और जीवों के पालन करने वाले परमात्मा को समस्त वाणी बढ़ाती है अर्थात् विस्तार से कहती हैं, उस परमात्मा की निरन्तर उपासना करो।

२१. व्रतेन दीक्षामाप्नोति दीक्षयाप्नोति दक्षिणाम् ।
दक्षिणा श्रद्धामाप्नोति श्रद्धया सत्यमाप्यते ।। १९/३०

सत्य भाषण, ब्रह्मचर्य आदि नियमपालन से पुरुष दीक्षा को प्राप्त करता है। दीक्षा से प्रतिष्ठा और राज्यलक्ष्मी को प्राप्त होता है। प्रतिष्ठा या शक्ति से सत्य धारण करने की श्रद्धा को प्राप्त होता है। श्रद्धा से सत्य प्राप्त किया जाता है।

२२. उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम् ।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ।। २०/२१

हम इस लोक से उस सुखमय लोक को और सबसे उत्तम उत्कृष्ट, परमज्योति स्वरूप, प्रकाशमान पदार्थों में भी सबसे अधिक प्रकाशमान सूर्य के समान तेजस्वी परमेश्वर को देखते हुए अन्धकार से दूर ऊपर उठें।

२३. अभ्यादधामि समिधमग्ने व्रतपते त्वयि।
व्रतं च श्रद्धा चोपैमीन्धे त्वा दीक्षितोऽअहम् ।। २०/२४

हे सत्यभाषणादि कर्मों के पालन करने वाले स्वप्रकाशस्वरूप जगदीश्वर! तुझमें स्थिर होकर मैं अग्नि में समिधा के समान ध्यान को धारण करता हूं, जिससे सत्यभाषणादि व्यवहार और सत्य के धारण करने वाले नियम को भी प्राप्त होता हूँ, ब्रह्मचर्यादि दीक्षा को प्राप्त होकर विद्या को प्राप्त हुआ मैं तुझे प्रकाशित करता हूँ।

२४. यत्र ब्रह्म च क्षत्रं च सम्यंचौ चरतः सह।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र देवाः सहाग्निना ।।२०/२५

हे मनुष्यों! जिस परमात्मा में ब्राह्मण अर्थात् विद्वानों का कुल और विद्या शौर्यादि गुणयुक्त क्षत्रियकुल ये दोनों साथ अच्छे प्रकार प्रीतियुक्त तथा वैश्य आदि के कुल मिलकर

व्यवहार करते हैं और जिस ब्रह्म में दिव्यगुण वाले पृथिव्यादि लोक वा विद्वान् जन बिजली रूप अग्नि के साथ वर्तते हैं। उस देखने के योग्य सुखस्वरूप निष्पाप परमात्मा को मैं जानूं वैसे तुम लोग भी इसको जानो।

२५. यत्रेन्द्रश्च वायुश्च सम्यंचौ चरतः सह ।
तं लोकं पुण्यं प्रज्ञेषं यत्र सेदिर्न विद्यते ।। २०/२६

हे मनुष्यों! जिस ईश्वर में सर्वत्र व्याप्त बिजली और धनंजय आदि वायु साथ में अच्छे प्रकार मिले हुए विचरते हैं और जिस ब्रह्म में नाश वा उत्पत्ति विद्यमान नहीं है उस पुण्य से उत्पन्न हुए ज्ञान से जानने योग्य सबको देखने वाले परमात्मा को जानूं मैं वैसे इसको तुम लोग भी जानो।

२६. अंशुना ते अंशुः पृच्यतां परुषा परुः ।
गन्धस्ते सोममवतु मदाय रसोऽअच्युतः ।।२०/२७

हे विद्वान! तेरे भाग से भाग और मर्म से मर्म मिले तथा तेरा नाशरहित गंध और रस पदार्थ सार आनन्द के लिये ऐश्वर्य की रक्षा करे।

२७. यो भूतानामधिपतिर्यसिल्लोकाऽअधिश्रिताः ।
यऽईशे महतो महाँस्तेन गृह्णामि त्वामहं मयि गृह्णामि त्वामहम् ।।२०/३२

हे राजन्! जो परमेश्वर प्राणियों का स्वामी है। जिसमें सब लोक, आश्रित है जो महान् होकर बड़े-बड़े आकाशादि पदार्थो को अपने वश कर रहा है, उसके ऐश्वर्य से तुझको मैं राज्य पद के लिये स्वीकार करता हूं। तुझको मैं राज्य कार्य का मुख्य प्रवर्तक अध्वर्यु अपने ही उत्तरदायित्व पर स्वीकार करता हूँ।

२८. तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि।
धियो यो नः प्रचोदयात्।।२२/९

हे मनुष्यों! समस्त संसार उत्पन्न करने वाले आप से आप ही प्रकाशरूप सबके चाहने योग्य समस्त सुखों के देने वाले परमेश्वर के जिस स्वीकार करने योग्य उत्तम समस्त दोषों के दाह करने वाले, तेजोमय शुद्धस्वरूप को हम लोग धारण करते हैं, उसको तुम लोग धारण करो। जो हम सब लोगों की बुद्धियों को प्रेरे अर्थात् उनको अच्छे-अच्छे कामों में लगावे, वह अन्तर्यामी परमात्मा सबके लिये उपासना करने के योग्य है।

२९. हिरण्यपाणिमूतये सवितारमुपह्वये।
स चेत्ता देवता पदम्।।२२/१०

हे मनुष्यों! मैं जिस रक्षा आदि के लिये जिसकी स्तुति करने में सूर्य आदि तेज हैं, उस पाने योग्य समस्त ऐश्वर्य की प्राप्ति कराने वाले जगदीश्वर को ध्यान के योग से बुलाता हूँ। वह अच्छे ज्ञानस्वरूप होने से सत्य और मिथ्या का जनाने वाला उपासना करने योग्य इष्टदेव ही है, यह जानो।

३०. देवस्य चेततो महींप्र सवितुर्हवामहे ।
सुमतिं सत्यराधसम् ।। २२/११

हे मनुष्यों! जैसे हम लोग समस्त संसार के उत्पन्न करने वाले चेतनस्वरूप स्तुति करने

योग्य ईश्वर की उपासना कर जिससे जीव सत्य को सिद्ध करता है, उस बड़ी सुन्दर बुद्धि को ग्रहण करते हैं, वैसे उस परमेश्वर की उपासना कर उस बुद्धि को तुम लोग प्राप्त होओ।

३१. यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव ।
यऽईशे अस्य द्विपद्श्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम।। २३/३

परमेश्वर अपने सामर्थ्य से प्राण लेने वाले और नेत्रादि की चेष्टा करने वाले, चर-अचर जगत् का एकमात्र राजा है। वह दो पैरों तथा चार पैरों वाली समस्त प्रजा का स्वामी है। ऐसे परमेश्वर की सभी लोग भक्ति से स्तुति सेवा प्रार्थना करें।

३२. युजंन्ति ब्रध्नमरूषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ।। २३/५

जो योगाभ्यासी जन सूर्य के समान सबके मध्य स्थित होकर, सबको अपनी आकर्षण शक्ति से बांधने वाले अपने चारों ओर स्थिर पांच भूत आदि प्रकृति के भीतर बाहर सब प्रकार से व्यापक शरीर के सब मर्मों में विराजमान परमात्मा का योग द्वारा साक्षात् करते हैं, वे ज्ञानमय मोक्ष में स्वतः दीप्तिमान् एवं यथाकाम, यथारूचि होकर प्रकाशित होते हैं।

३३. गणानां त्वा गणपतिं हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिं हवामहे
निधीनां त्वा निधिपतिं हवामहे वसो मम आहमजानि गर्भधमात्वमजासि गर्भधम्।।२३/१९

हे जगदीश्वर! हम लोग गणों के बीच, गणों के पालने वाले आपको स्वीकार करते हैं अति प्रिय सुन्दरों के बीच अतिप्रिय सुन्दरों के पालने वाले आपकी प्रशंसा करते हैं विद्या आदि पदार्थों की पुष्टि करने वालों के बीच विद्या आदि पदार्थों की रक्षा करने वाले आपको स्वीकार करते हैं। हे परमात्मन्! जिस आपमें सब प्राणी वसते हैं, सो आप मेरे न्यायाधीश होइये जिस गर्भ के समान संसार को धारण करने वाली प्रकृति को धारण करने वाले आप जन्मादि दोषरहित भली भांति प्राप्त होते हैं, उस प्रकृति के धर्त्ता आपको मैं अच्छे प्रकार जानूं।

३४. अपि तेषु त्रिषु पदेष्वस्मि येषु विश्वं भुवनमाविवेश।
सद्यः पर्येमि पृथिवीमुत द्यामेकेनांङ्गेन दिवोऽअस्य पृष्ठम् ।। २३/५०

सृष्टि, स्थिति और सहांरया द्यौ, अन्तरिक्ष और पृथिवी इन तीनों जानने योग्य स्वरूपों वा लोकों में भी मैं ही हूं जिनमें समस्त उत्पन्न जगत् आविष्ट है। मैं पृथिवी को सदा व्याप्त हूं। द्यौ सूर्य आदि से व्याप्त आकाश में भी व्याप्त हूं और एक अंग या एक अंश से इस तेजोमय सूर्य के भी ऊपर के भाग का सेचन करने वाले सामर्थ्य में भी व्याप्त हूं।

३५. केष्वन्तः पुरुषऽ आ विवेश कान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि।
एतद् ब्रह्मन्नुप वल्हामसि त्वा किं स्विन्नः प्रति वोचास्यत्र ।।२३/५१

परमेश्वर किन पदार्थों के बीच प्रविष्ट है और कौन-कौन से और कितने तत्व पुरुष के आश्रय पर विद्यमान है? हे ब्रह्मन्! विद्वन्! यह बात हम तुझसे पूछते हैं ? तू इस विषय में हमें क्या प्रत्युत्तर कहता है ?

३६. पंचस्वन्तः पुरुषऽआविवेश तान्यन्तः पुरुषेऽअर्पितानि ।

एतच्चात्र प्रतिमन्वानोऽस्मि न मायया भवस्युत्तरो मत् ।। २३/५२

पांचों भूत और उन पांचों सूक्ष्म रूप पंचतन्मात्राओं के भीतर पुरुष, परमेश्वर आविष्ट है और वे पांचो भूत और तन्मात्राएं पूर्ण परमेश्वर में ओत प्रोत हैं। यह तुझे मैं बतला रहा हूं। वे प्रश्न करने वाले! मुझसे बढ़ कर उत्कृष्ट समाधान करने वाला नहीं है।

३७. का स्विदासीत्पूर्वचितिः किं स्विदासीद् बृहद्वयः ।
का स्विदासीत्पिलिप्पिला का स्विदासीत्पिशङ्गिला ।। २३/५३

हे विद्वन्! इस जगत् में कौन पूर्व अनादि समय में संचित होने वाली है? क्या बड़ा उत्पन्न स्वरूप है? कौन पिलपिली चिकनी है और कौन अवयवों को भीतर करने वाली है यह आपको पूछता हूँ।

३८. द्यौरासीत्पूर्वचितिरश्वऽआसीद् बृहद्वयः ।
अविरासीत्पिलिप्पिला रात्रिरासीत्पिशङ्गिला।। २३/५४

हे जिज्ञासु मनुष्य! विद्युत पहला संचय है। महतत्व बड़ा उत्पत्ति स्वरूप हैं रक्षा करने वाली प्रकृति पिलपिली चिकनी हैं और रात्रि के समान वर्तमान प्रलय सब अवयवों को निगलने वाला है, यह तू जान।

३९. काऽईमरे पिशङ्गिला काऽ ई कुरुपिशङ्गिला।
कऽ ईमास्कन्दमर्षति कऽई पन्था विसर्पति ।।२३/५५

हे विद्वन्! बतला पिशगिंला क्या है ? कुरुपिशंगिला क्या है ? उछल-उछल के कौन चलता है? मार्ग में कौन सरकता है?

४०. अजारे पिशङ्गिला श्वावित्कुरुपिशङ्गिला ।
शशऽआस्कन्दमर्षत्यहिः पन्थां वि सर्पति ।। २३/५६

हे प्रश्न कर्ता सुन ! समस्त रूपों को अपने भीतर निगल जाने वाली अजा प्रकृति है। जैसे सेही अन्न को खा जाती है, वैसे ही कुते के समान योग्य पदार्थों को प्राप्त करने वाला जीव, अपने कर्मों से उत्पादित रूपों को धारण करता है इसलिये वह कुरूपिशंगिला है। सबको क्षीण करने वाला काल शशक हैं। वह सब पदार्थो पर आक्रमण करता हुआ सा जाता है। सर्प जैसे सरकता जाता है, वैसे ही मेघ आकाश मार्ग में जाता है।

४१. कत्यस्य विष्ठाः कत्यक्षराणि कति होमासः कतिधा समिद्धः ।
यज्ञस्य त्वा विदधा पृच्छमत्र कति होतारऋतुशो यजन्ति ।। २३/५७

इस जगत के कितने आश्रय स्थान है कितने अविनाशी पदार्थ है जो कभी नष्ट नहीं होते? कितने होम अर्थात् कारण पदार्थों के संयोग विभाग है ? यह कितने प्रकारों से प्रकाशित है, अथवा इसमें कितने प्रकाशक तत्व हैं ? हे विद्वन् ! इन यज्ञ विषयक विज्ञानों को मैं तुझसे पूछता हूं और यह भी बतला कि कितने होता ऋतुओं के अनुकूल यज्ञ कर रहे हैं?

४२. पडस्य विष्ठाः शतमक्षराण्यशीतिर्होमाः समिधो ह तिस्त्रः।
यज्ञस्य ते विदथा प्र ब्रवीमि सप्त होतारऽऋतुशो यजन्ति।।२३/५८

इस अध्यात्म यज्ञ के छः आश्रय है। ५ प्राण, छठा मन या आत्मा। जीवन के सौ वर्ष,

सौ अक्षर है। इस पुरूष यज्ञ में अन्न का अशन अर्थात् भोजन करना ही होम है। तीन समिध ा है बाल्य, तारूण्य और वार्धक्य। यज्ञ-विषयक ज्ञानों को मैं बतलाता हूं कि सात होता, शिर में स्थित सात प्राण ऋतुओं वा प्राणों के बल पर यज्ञ करते हैं। वे ग्राह्य विषयों से ज्ञान प्राप्त करते हैं।

४३. कोऽअस्य वेद भुवनस्य नाभिं को द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।
कः सूर्यस्य वेद बृहतो जनित्रं को वेद चन्द्रमसं यतोजाः ।।२३/५९

इस उत्पन्न जगत् की नाभि आश्रय को कौन जानता है ? आकाश भूमि और अन्तरिक्ष को कौन जानता है कि वे कहां से पैदा हुए है? महान् सूर्य के मूल कारण को कौन जानता है ? चन्द्रमा के विषय में कौन जानता है कि वह कहां से पैदा हुआ है ?

४४. वेदाहमस्य भुवनस्य नाभिं वेद द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षम् ।
वेद सूर्यस्य बृहतो जनित्रमथो वेद चन्द्रमसं यतोजाः।। २३/६०

मैं इस जगत् के आश्रय को जानता हूँ और मैं आकाश, पृथिवी और वायु स्थान अन्तरिक्ष के विषय में जानता हूं कि ये कहां से उत्पन्न हैं। महान् सूर्य के उत्पतिस्थान को भी जानता हूं और चन्द्रमा के विषय में भी जानता हूं कि वह जहां से उत्पन्न होता है। ये सब परमात्मा से उत्पन्न होते हैं। वह सबका निमित्त कारण हैं।

४५. प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा रूपाणि परि ता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।२३/६५

प्रजा के रक्षक हे परमात्मा! आपके अतिरिक्त अन्य कोई भी इन पृथ्वी आदि भूतों तथा अन्य रूपवान पदार्थों से अधिक शक्तिशाली नहीं है। जिस-जिस पदार्थ की कामना से हम आपकी स्तुति करें, वह वस्तु हमें प्राप्त हो तथा आपकी कृपा से हम धनों के स्वामी बनें।

४६. यऽआत्मदा बलदा यस्य विश्वऽउपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।
यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। २५/१३

जो परमेश्वर प्राणियों के शरीर में चेतन जीव प्रदान करता है और जो जीवों को जीने में बाधक कारणों को दूर करने का बल प्रदान करता है, जिसके उत्कृष्ट शासन को समस्त सामान्य जन और विद्वान् गण एवं छोटे बड़े सूर्य आदि लोक भी शरण प्राप्त करते हैं और उसके शासनकारी स्वरूप की उपासना का ध्यान करते हैं। जिसका आश्रय लेना अमृत स्वरूप, अभय और मृत्यु पर विजय है और जिसके शासन का भंग करना ही मृत्यु है, उस सुखस्वरूप परमेश्वर की हम स्तुति द्वारा उपासना करें।

४७. देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानांरातिरभि नो निवर्त्तताम् ।
देवानांसख्यमुपसेदिमा वयं देवा नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे ।। २५/१५

ज्ञानप्रकाशक पुरुषों की सुखप्रद शुभ मति, हमें सब प्रकार से प्राप्त हो और सबकी वृद्धि की कामना करने वाले, दानशील विद्वान् पुरुषों के ज्ञान और धन के दान हमें सब ओर से प्राप्त हों। हम विद्वानों के मित्रभाव को प्राप्त हों। विद्वान् पुरुष दीर्घ जीवन के लिये आयु की वृद्धि करें।

४८. तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियंजिन्वमवसे हूमहे वयम् ।
पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ।।२५/१८

हे मनुष्यों! हम लोग रक्षा आदि के लिये चर और अचर जगत् के रक्षक, बुद्धि को तृप्त प्रसन्न वा शुद्ध करने वाले, उस अखण्ड, सबको वश में रखने वाले सब के स्वामी परमात्मा की स्तुति करते हैं। वह जैसे हमारे धनों की वृद्धि के लिये पुष्टिकर्ता तथा रक्षा करनेवाला, सुख के लिये सबका रक्षक नहीं मारने वाला होवे, वैसे तुम लोग भी उसकी स्तुति करो और वह तुम्हारे लिये भी रक्षा आदि का करने वाला होवे।

४६. स्वति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः।
स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ।।२५/१६

हे मनुष्यों! जो बहुत सुनने वाला है तथा हमारे लिये उत्तम सुख जो समस्त जगत् में हैं, तथा वेद ही जिसका धन है वह सबकी पुष्टि करने वाला, परम ऐश्वर्यवान् ईश्वर हैं वह घोड़े के समान सुखों की प्राप्ति कराता है। महतत्व आदि का स्वामी वह परमेश्वर हमारे लिये उत्तम सुख को धारण करे। वह तुम्हारे लिये भी सुख को धारण करे।

५०. भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ।
स्थिरैरंगैस्तुष्टुवासस्तनूभिर्व्यशेमहि देवहितं यदायुः ।।२५/२१

हे संग करने वाले विद्वानों! आप लोगों के साथ से हम कानों से जिससे सत्यता जानी जावे उस वचन को सुनों। आंखों से कल्याण को देखें। दृढ़ अवयवों से स्तुति करते हुए शरीरों से जो विद्वानों के लिये सुख करने हारी अवस्था है उसको अच्छे प्रकार प्राप्त हों।

५१. न त्वावां अन्यो दिव्यो न पार्थिवो न जातो न जनिष्यते।
अश्वायन्तो मघवन्निन्द्र वाजिनो गव्यन्तस्त्वा हवामहे ।।२७/३६

हे पूजित! उत्तम ऐश्वर्य से युक्त सब दुःखों के विनाशक परमेश्वर! वेग वाले उत्तम वाणी बोलते हुए, अपनी शीघ्रता चाहते हुए हम लोग आपकी स्तुति करते हैं, क्योंकि जिस कारण कोई अन्य पदार्थ आपके तुल्य शुद्ध न कोई पृथिवी पर प्रसिद्ध है न कोई उत्पन्न हुआ और न होगा। इससे आप ही हमारे उपास्य देव हैं।

५२. विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव।
यदभद्रं तन्नऽआ सुव ।। ३०/३

हे सर्वप्रकाशक! परमेश्वर! सब प्रकार के दुष्ट आचरणों और बुरे व्यसनों को दूर कीजिए। जो सुखदायक, कल्याणकारी द्रव्य, गुण कर्म और स्वभाव है, उसे हमें प्राप्त कराइये।

५३. सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमिं सर्वत स्पृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ।।३१/१

असंख्य शिरो वाला, अनन्त आंखों वाला, अनन्त पैरों वाला पुरूष सर्वत्र पूर्ण जगदीश्वर है। वह सबको उत्पन्न करने वाली भूमि के समान सर्वाश्रय प्रकृति को सब प्रकार व्याप कर और दश अंगुल अर्थात् दश अंगों अर्थात् महत् आदि विकारों या पृथिवी आदि स्थूल और सूक्ष्म भूतों का अतिक्रमण करके, उनमें भी व्याप्त होकर विराजता है।

५४. पुरुषऽएवेदसर्व यद्भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनातिरोहति ।। ३१/२

हे मनुष्यों! जो उत्पन्न हुआ है और जो उत्पन्न होने वाला है और जो पृथिवी आदि के सम्बन्ध से अत्यन्त बढ़ता है, उस इस प्रत्यक्ष-परोक्ष रूप समस्त जगत् को अविनाशी मोक्षसुख वा कारण का अधिष्ठाता सत्य गुण कर्म स्वभावों से परिपूर्ण परमात्मा ही रचता है।

५५. एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ।
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ।। ३१/३

हे मनुष्यों! इस जगदीश्वर का यह दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्ड महत्वसूचक है। इस ब्रह्माण्ड से यह परिपूर्ण परमात्मा अति प्रशंसित और बड़ा है और इस ईश्वर के सब पृथिव्यादि चराचर जगत् एक अंश है तथा इस जगत्स्रष्टा का तीन अंश नाशरहित महिमा द्योतनात्मक अपने स्वरूप में हैं।

५६. त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोऽस्येहाभवत्पुनः।
ततो विष्वङ् व्यक्रामत्साशनानशनेऽअभि ।।३१/४

तीन अंशों वाला पुरुष सबसे ऊँचा, संसार में पृथक, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त रूप होकर रहता है और उसको एक अंश का सांकल्पिक रुप जगत के रुप में बार-बार प्रकट होता है। उस एक अंश से ही वह परमेश्वर खाने वाले चेतन और न खाने वाले जड़ दोनों चराचर को सब प्रकार से व्याप्त होकर विविध प्रकारों से उनको उत्पन्न करता है।

५७. ततो विराडजायत विराजोऽअधि पुरुषः ।
स जातोऽ अत्यरिच्यत पश्चाद्भूमिमथो पुरः ।। ३१/५

हे मनुष्यों! उस सनातन पूर्ण परमात्मा से विविध प्रकार के पदार्थों से प्रकाशमान विराट् ब्रह्माण्डरूप संसार उत्पन्न होता है। विराट् संसार के ऊपर अधिष्ठाता रुप से परिपूर्ण परमात्मा होता है। इसके अनन्तर वह पुरुष पहले से प्रसिद्ध हुआ जगत् से अतिरिक्त होता है। पीछे पृथ्वी को उत्पन्न करता है, उसको जानो।

५८. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः सम्भृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।३१/६

उस सर्वपूज्य, सर्वोपास्य, सबको प्राण आदि सब कुछ देने वाले परमेश्वर प्रजापति से दधि, घृत आदि भोग्य पदार्थ उत्पन्न हुए और वह ही उन वायु के समान गुण वाले, तीव्र वेगवान् अथवा वायु से जीने वाले पशुओं ,वन के सिंह, आदि और ग्राम में गौ, अश्व आदि सबको उत्पन्न करता है।

५९. तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऽऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादजायत ।। ३१/७

उस पूजनीय एवं सबके दाता, सर्वसम्मत अथवा समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लेने वाले उस परमात्मा से ही ऋग्वेद ऋचाएं, साम के समस्त गायनों के ज्ञान उत्पन्न होते हैं। उससे ही छन्द अर्थात् अथर्ववेद के मन्त्र उत्पन्न होते हैं। उससे ही यजुर्वेद उत्पन्न होता है।

६०. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः ।
ऊरू तदस्य यद्वैश्यः पद्भयां शूद्रोऽअजायत ।।३१/११

इस परमेश्वर की बनाई सृष्टि में ब्राह्मण, देव और वेदज्ञ और ईश्वरोपासक जन मुख रूप है। राजन्य, क्षत्रिय लोग शरीर में विद्यमान बाहु के समान बने हैं। जो वैश्य हैं, वह उसकी जंघा के समान हैं और पैरों से शूद्र को प्रकट किया जाता है।

६१. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णः तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।३१/१८

मैं उस सर्वोपरि परमेश्वर को सूर्य के समान तेजस्वी और अन्धकार (प्रकृति) से दूर, भिन्न जानता हूं। उसको ही जानकर जीव मृत्यु को पार कर जाता है। दूसरा कोई मार्ग अभीष्ट मोक्ष प्राप्ति के लिये नहीं है।

६२. प्रजापतिश्चरति गर्भेऽअन्तरजायमानो बहुधा वि जायते ।
तस्य योनिं परि पश्यन्ति धीरास्तस्मिन्ह तस्थुर्भुवनानि विश्वा ।। ३१/१६

वह समस्त प्रजा का पालक गर्भ, गर्भस्थ जीवात्मा वा हिरण्यगर्भ के भीतर विचरता है। वह स्वयं कभी उत्पन्न न होता हुआ भी बहुत प्रकारों से प्रकट होता है। उसके कारणस्वरूप को ध्याननिष्ठ योगीजन ही साक्षात् करते हैं। उस मूलकारण परमेश्वर में ही समस्त भुवन स्थित हैं।

६३. रुचं ब्राह्मं जनयन्तो देवाऽअग्रे तदब्रुवन्।
यस्त्वैवं ब्राह्मणो विद्यात्तस्य देवाऽअसन्वशे।।३१/२१

हे ब्रह्मनिष्ठ पुरुष! जो रुचिकारक ब्रह्म के उपासक आपको सम्पन्न करते हुए विद्वान् लोग पहले ब्रह्म जीव और प्रकृति के स्वरूप को कहें जो ब्राह्मण ऐसे जाने उसके वे विद्वानवश में हो।

६४. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म ताऽआपः स प्रजापतिः ।।३२/१

वह परमेश्वर ही स्वयं प्रकाश, सर्वप्रकाशक, सबसे पूर्व विद्यमान है। वह ही समस्त संसार को प्रलय काल में अपने भीतर लय कर लेने वाला और सूर्य के समान तेजस्वी आदित्य है। वह ही आह्लादजनक है। वह ही शुद्ध स्वरूप और जगत् के सब कार्यों को अति शीघ्रता से यथाविधि करने वाला और सबसे महान्, सबको बढ़ाने वाला ब्रह्म है। वही सबमें व्यापक है। वही समस्त प्रजाओं का पालक होने से प्रजापति है।

६५. सर्वे निमेषा जज्ञिरे विद्युतः पुरुषादधि।
नैनमूर्ध्व न तिर्यंचं न मध्ये परि जग्रभत् ।। ३२/२

हे मनुष्यों! जिस विशेषकर प्रकाशमान पूर्ण परमात्मान से सब निमेष कलाकाष्ठ आदिकाल के अवयव उत्पन्न होते हैं ,उस परमात्मा को कोई भी न ऊपर, न तिरछा, सब दिशाओं में वा नीचे और न बीच में और न सब ओर से ग्रहण कर सकता है, उसको तुम सेवो।

६६. न तस्या प्रतिमाऽअस्ति यस्य नाम महद्यशः।
हिरणयगर्भऽइत्येष मा मा हिं सीदित्येषा यस्मान्न जातऽइत्येषः ।। ३२/३

हे मनुष्यों! धर्मयुक्त कर्म का आचरण ही जीसका नामस्मरण है, जो सूर्य बिजुली आदि पदार्थों का आधार है इस प्रकार अन्तर्यामी होने से वह प्रत्यक्ष मुझको मत ताड़ना दे अर्थात वह अपने से मुझ को विमुख मत करे। इस प्रकार यह प्रार्थना वा बुद्धि और जिस कारण नहीं उत्पन्न हुआ इस प्रकार यह परमात्मा उपासना के योग्य है। उस परमेश्वर की प्रतिमा, परिमाण, उसके तुल्य अवधि का साधन, प्रतिकृति, मूर्ति वा आकृति नहीं है।

अथवा जिस परमेश्वर की प्रसिद्ध महती कीर्ति है उसका प्रतिबिम्ब नहीं है।

६७. एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः सऽऊ गर्भे अन्तः।
सऽएव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।।३२/४

हे विद्वानों! यह प्रसिद्ध परमात्मा उत्तम स्वरूप, सब दिशा और विदिशाओं को अनुकूलता से व्याप्त होकर, वहीं अन्तःकरण के बीच प्रथम कल्प के आदि में प्रकटता को प्राप्त हुआ। वहीं प्रसिद्ध हुआ वह आगामी कल्पों में प्रथम प्रसिद्धि को प्राप्त होगा। सब ओर से मुखादि अवयवों वाला अर्थात् मुखादि इन्द्रियों के काम सर्वत्र करता वह प्रत्येक पदार्थ को प्राप्त हुआ अचल सर्वत्र स्थिर है। वही तुम लोगों को उपासना करने और जानने योग्य है।

६८. यस्माज्जातं न पुरा किंचनैव यऽआबभूव भुवनानि विश्वा।
प्रजापतिः प्रजया सँरराणस्त्रीणि ज्योतीषि सचते स षोडशी।। ३२/५

हे मनुष्यों! जिस परमेश्वर से पहले कुछ भी नहीं उत्पन्न हुआ, जो सब ओर अच्छे प्रकार से वर्तमान है जिसमें सब वस्तुओं के आधार सब लोक वर्तमान हैं, वही सोलह कला वाला प्रजा के साथ सम्यक् रमण करता हुआ, प्रजा का रक्षक, अधिष्ठाता, तीन तेजोमय बिजुली सूर्य, चन्द्रमारूप प्रकाशक ज्योतियों को संयुक्त करता है।

६९. येन द्यौरूग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वास्तभितं येन नाकः ।
योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।। ३२/६

जिस परमेश्वर ने द्युलोक को विशेष बलशाली आनन्दमय, सर्वदुःखरहित मोक्ष को ध ारण किया है। जो अन्तरिक्ष में विद्यमान समस्त लोकों को विशेष रूप से बनाने और जानने वाला है। उस आनन्दमय परमेश्वर की भक्ति से स्तुति करें।

७०. वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वं भवत्येकनीडम् ।
तस्मिन्निदँसं च वि चैति सर्वंसऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ।।३२/८

ज्ञानवान् पुरुष उस ब्रह्म को परमगुहा (एकादश द्वार) में स्थित सत् रूप से देखता है। समस्त विश्व उसके ही आश्रय में स्थित है। यह दृश्य जगत् प्रलयकाल में लीन हो जाता है और पुनः सृष्टि के अवसर में विविध रूप में प्रकट हो जाता है। वह परमेश्वर समस्त सृष्टियों और प्राणियों में व्यापक ओत-प्रोत है, उरोया पिरोया हुआ है।

७१. यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते।
तया मामद्य मेधयाग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ।। ३२/१४

जिस आत्मज्ञान को धारण करने वाली परम बुद्धि की देव, विद्वान् गण पालक जन, पूर्व के विद्वान् भी उपासना करते हैं। उस परम प्रज्ञा से हे ज्ञानस्वरूप परमेश्वर या गुरो! मुझको

उत्तम उपदेश वाणी और योगाभ्यास द्वारा मेधावान्, प्रज्ञावान् कीजिये।

७२. तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सम्भरन्ति ।।३३/३८

हे मनुष्यों! प्रकाश के निकट वर्तमान अर्थात् अन्धकार से पृथक् चराचर का आत्मा प्राण और उदान के उस रूप को रचता है जिससे मनुष्य देखता जानता है। इस परमात्मा का शुद्धस्वरूप और बल अपरिमित भिन्न है और दूसरे अविद्यादि मलीन गुण वाले भिन्न जगत् को दिशा धारण करती हैं।

७३. यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति ।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।३४/१

हे जगदीश्वर! आपकी कृपा से जो आत्मा में रहने वा जीवात्मा का साधन दूर जाने, मनुष्य को दूर तक ले जाने वा अनेक पदार्थों का ग्रहण करने वाला, शब्द आदि विषयों के प्रकाशक श्रोत्र आदि इन्द्रियों को प्रवृत्त करनेवाला जागृत अवस्था में दूर दूर भागता है और जो सोते हुए का उसी प्रकार भीतर अन्तःकरण में जाताहै वह मेरा संकल्प विकल्पात्मक मन कल्याणकारी ध ार्म विषयक इच्छा वाला हो।

७४. येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः ।
यदपूर्व यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। ३४/२

जिस मन से कर्म करने वाले पुरुष और मनस्वी, ज्ञानी और ध्याननिष्ठ योगी जन यज्ञादि अवसरों में या परम उपासनीय पूज्य परमेश्वर के निमित नाना उत्तम कर्म करते हैं और जो समस्त प्रजाओं के भीतर अद्भुत गुण वाला है वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

७५. यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु ।
यस्मान्नऽऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। ३४/३

जो मन, यथार्थ ज्ञान और स्मरण करने का साधन है और जो धारण अर्थात् चिरकाल तक स्मरण रखने का साधन है और जो प्राणियों के भीतर कभी नष्ट न होने वाला भीतर ही सब पदार्थों का प्रकाशक ज्योति भी है, जिसके बिना कुछ भी कर्म नहीं किया जाता, वह मेरा मन उत्तम विचारशील हो।

७६. येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत्परिगृहीतममृतेन सर्वम् ।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। ३४/४

जिसके द्वारा अतीत, (भूतकाल) वर्तमान काल ओर भविष्यत्काल के समस्त पदार्थ अमृत स्वरूप नित्य आत्मा के साथ मिलकर जाने जाते हैं, और जैसे ब्रह्मा आदि सात ऋत्विजों से यज्ञ किया जता है, उसी प्रकार जिस अन्तःकरण द्वारा सात इन्द्रियों अथवा शरीर को धारण और जीवन देने वाले सात धातुओं से युक्त आत्मा, देहरूप यज्ञ का सम्पादन किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

७७. यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिँश्चित्तँसर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।।३४/५

रथ के चक्र की नाभि में जैसे अरे लगे होते हैं वैसे ही जिस मन में ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्ववेद के मन्त्र स्थित हैं, जिसमें प्रजाओं, (प्राणियों) का समस्त पदार्थों का ज्ञान भी सूत्र में मणियों के समान ओतप्रोत हैं, वह मेरा मन कल्याणकारी संकल्प वाला हो।

७८. सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वजिनंऽइव।

हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ।। ३४/६

उत्तम सारथि वेगवान् अश्वों को लगाम से जैसे ले जाता है वैसे ही जो मन, शीघ्र गतियों और प्रेरक वृत्तियों से ज्ञान ओर बल से युक्त मननशील प्राणियों को ले जाता है ओर जो हृदय स्थान में स्थित है और जरा आदि दशाओं से रहित, सदा बलवान्, अथवा विषयों के प्रति इन्द्रियों को ले जाने और स्वयं संकल्प द्वारा जाने में समर्थ है और जो सबसे अधिक वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

७९. भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्यं धीमहि।

धियो यो नः प्रचोदयात् ।।३६/३

हे मनुष्यों! जैसे हम लोग कर्मकाण्ड की विद्या उपासना काण्ड की विद्या और ज्ञानकाण्ड की विद्या को संग्रहपूर्वक पढ़कर जो हमारी धारणवती बुद्धियों को प्रेरणा करे उस कामना के योग्य समस्त ऐश्वर्य के देने वाले परमेश्वर के उस इन्द्रियों से न ग्रहण करने योग्य परोक्ष सब दुःखों के नाश करने वाले तेजस्वरूप का ध्यान करें वैसे तुम लोग भी इसका ध्यान करो।

८०. कया नश्चित्र ऽ आ भुवदूती सदावृधः सखा।

कया शचिष्ठया वृता ।।३६/४

वह सदा बढ़ने वाला अर्थात् कभी न्यूनता को नहीं प्राप्त होने वाला आश्चर्यरूप गुण कर्म स्वभावों से युक्त परमेश्वर हम लोगों का किस रक्षण आदि क्रिया से मित्र होवे तथा अत्यन्त उत्तम बुद्धि से हमको शुभ गुण कर्म स्वभावों में प्रेरणा करे।

८१. कस्त्वा सत्यो मदानां मँ हिष्ठो मत्सदन्धसः ।

दृढा चिदारूजे वसु ।।३६/५

हे मनुष्यों! आनन्दों के बीच अत्यन्त बढ़ा हुआ सुखस्वरूप विद्यमान पदार्थों में श्रेष्ठतम, प्रजा का रक्षक परमेश्वर अन्नादि पदार्थों से तुझको आनन्दित करता और दुःखनाशक तेरे लिये भी दृढ़ धनों को देता है।

८२. अभी षुणः सखीनामविता जरितृणाम् ।

शतं भवास्यूतिभिः ।।३६/६

हे जगदीश्वर! आप असंख्य ऐश्वर्य देते हुए सब ओर से प्रवृत्त रक्षादि क्रियाओं से हमारे मित्रों और सत्य स्तुति करने वालों के रक्षा करने वाले सुन्दर प्रकार होइये। इससे आप हमसे सत्कार करने योग्य हैं।

८३. कया त्वं न ऊत्याभि प्र मन्दसे वृषन्।

कया स्तोतृभ्य ऽ आ भर ।।३६/७

हे सुखों के वर्षक परमेश्वर! तू किस प्रकार की रक्षाविधि से प्रजाओं को प्रसन्न करता

है और स्तुतिशील विद्वानों की किस पालन क्रिया से सब प्रकार से समृद्ध करता है ? उससे हमें भी समृद्ध कर ।

८४. इन्द्रो विश्वस्य राजति।
शं नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे।।३६/८

ऐश्वर्यवान् परमेश्वर समस्त संसार में प्रकाशमान है। वह हमारे दोपाये आदि और चौपाये पशुओं का कल्याण करें।

८५. शन्नो मित्रः शं वरुणः शन्नो भवत्वर्यमा।
शन्न ऽ इन्द्रो बृहस्पतिः शन्नो विष्णुरुरुक्रमः।।३६/६

प्राण के समान सबका स्नेही ईश्वर हमें सुखकारी हो। वह जल के समान हमें शान्तिप्रद हो। न्यायकारी परमेश्वर हमें शान्तिदायक हो। बृहती वेदवाणी का पालक, परमेश्वर हमें सुखदायी हो। संसार की रचना में बहुत प्रकार से चेष्टा करने वाला महान् ईश्वर हमें सुखदायक हो।

८६. शन्नो वातः पवतां शन्नस्तपतु सूर्यः।
शन्नः कनिक्रदद्देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु।। ३६/१०

वायु हमारे लिये सुखकारी होकर बहे। वह व्याधिजनक न हो। हमारे लिये सूर्य शान्तिदायक होकर तपे-रोगों को नष्ट करे। गरजता हुआ जलप्रद मेघ और धर्म-मेघमय प्रभु हम पर सुखशान्ति की वर्षा करें।

८७. शं नो देवीरभिष्टय ऽ आपो भवन्तु पीतये।
शं योरभि स्रवन्तु नः ।। ३६/१२

हे परमेश्वर! हे राजन्! दिव्य गुणों से युक्त जल, विद्वान् आप्त पुरुष, उत्तम कर्म और ज्ञान हमारे इष्ट कार्यों को सिद्ध करने के लिये हमें शान्तिदायक हों और वे पान और पालन करने के लिये भी हों। वे ही हमें शान्ति सुख वर्षण करने और बढ़ाने वाले हों।

८८. आपो हि ष्ठा मयोभुवस्ता न ऊर्जे दधातन।
महे रणाय चक्षसे ।।३६/१४

हे जलों के तुल्य शान्तिशील विदुषी श्रेष्ठ स्त्रियों! जैसे सुख उत्पन्न करनेवाले जल जिस कारण हमको बड़े प्रसिद्ध संग्राम के लिये बल पराक्रम के अर्थ धारण वा पोषण करें वैसे इनको तुम लोग धारण करो और प्यारी होवो।

८६. दृते दृंह मा मित्रस्य मा चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षन्ताम्।
मित्रस्याहं चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे। मित्रस्य चक्षुषा समीक्षामहे।। ३६/१८

हे समस्त दुःखों ओर अज्ञानों के विदारक परमेश्वर! मुझे दृढ़ कर। मुझको समस्त प्राणी गण मित्र की दृष्टि से देखें ओर मैं भी सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूं। हम सब मित्र की दृष्टि से एक दूसरे को देखा करें।

६०. यतोयतः समीहसे ततो नो अभयंकुरु।
शंनः कुरु प्रजाभ्योऽभयं नः पशुभ्यः ।।३६/२२

हे परमात्मा! आप हमें अपनी कृपा दृष्टि से अभय कीजिए। आप हमारी प्रजाओं एवं पशुओं को भी अभय और सुखी कीजिए।

६१. तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतंशृणुयाम शरदः शतं प्र ब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात् ।। ३६/२४

हे परमेश्वर! आप जो विद्वानों के लिये हितकारी, शुद्ध नेत्र के तुल्य सबको दिखाने वाले, पूर्वकाल अर्थात् अनादिकाल से उत्कृष्टता के साथ सब के ज्ञाता हैं, उस चेतन ब्रह्म आपको सौ वर्ष तक देखें। सौ वर्ष तक प्राणों को धारण करें जीवें। सौ वर्ष पर्यन्त शास्त्रों वा मंगल वचनों को सुनें। सौ वर्ष पर्यन्त पढ़ावें वा उपदेश करें। सौ वर्ष पर्यन्त दीनता रहित हों और सौ वर्ष से अधिक भी देखें, जीवें, सुने, पढ़ें उपदेश करें ओर अदीन रहें।

६२. ईशावास्यमिद सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम् ।।४०/१

इस सृष्टि में जो कुछ भी है, वह सब सर्वशक्तिमान् परमेश्वर से व्याप्त है। परमेश्वर से दिए हुए पदार्थ से भोग, सुख का अनुभव कर। किसी के भी धन लेने की चाह मत कर।

६३. कुर्वन्नेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समाः ।
एवं त्वयि नान्यथेतोऽस्ति न कर्म लिप्यते नरे।। ४०/२

इस संसार में मनुष्य वेद में बतलाये निष्काम कर्मों को करता हुआ ही सौ वर्षों तक जीना चाहे। हे मनुष्य! इस प्रकार तुझे कार्य करने में कर्म का लेप नहीं होगा।

६४. असूर्या नाम ते लोका ऽ अन्धेन तमसावृताः ।
ताँस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ।।४०/३

वे लोक अर्थात् मनुष्य असुर कहलाने योग्य हैं, जो आत्मा को ढक लेने वाले अन्ध ाकार रूप तमोगुण से ढके है। जो लोग अपनी आत्मा के विरुद्ध आचरण करते हैं, वे मर कर और जीवनकाल में भी उक्त प्रकार के दुःखमयी लोकों को ही प्राप्त होते हैं।

६५. अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवाऽआप्नुवन् पूर्वमर्षत्।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्तस्मिन्नपो मातरिश्वा दधाति।।४०/४

अपनी अवस्था से कभी च्युत न होने वाला, परिणाम रहित, अद्वितीय, मन से भी अध‍ि ाक वेगवान् ब्रह्म है। सबके पूर्व, सबसे आगे गति करते हुए उसको पृथिवी आदि तत्व और चक्षु आदि इन्द्रियगण नहीं प्राप्त होते। वह परब्रह्म अपने स्वरूप में स्थित, कूटस्थ स्थिर होकर भी विषयों के प्रति जाते हुए अपने से भिन्न मन आदि इन्द्रियों को लाँघ जाता है। उस सर्वव्यापक में ही अन्तरिक्ष में गति करने वाला वायु उसके समान और भी कर्म करता है।

६६. तदेजति तन्नेजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ।।४०/५

वह क्रिया करता है, वह क्रिया नहीं करता। वह स्वयं कूटस्थ, निष्क्रिय होकर समस्त ब्रह्माण्ड को गति दे रहा है। वह अविद्वान् पुरुषों से दूर है। वह भी धर्मात्मा और विद्वानों के

समीप है। वह इस समस्त जगत् और जीवों के भीतर वह ही है और इस समस्त जगत् के बाहर भी वर्तमान है।

९७. यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न वि चिकित्सति।। ४०/६

जो पुरुष सब प्राणियों और प्राणरहित पदार्थों को भी परमात्मा पर ही आश्रित विद्याभ्यास, धर्माचरण और योगाभ्यास कर साक्षात् कर लेता है और समस्त प्रकृति आदि पदार्थों में परमेश्वर को व्यापक जानता है, वह तब संदेह में नही पड़ता।

९८. यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को कोहः कः शोकंऽएकत्वमनुपश्यतः ।।४०/७

जिस ब्रह्मज्ञान की दशा में समस्त जीव अपने आत्मा के समान ही हो जाते हैं, अर्थात् समस्त जीव अपने समान दीखने लगते हैं, उस एकता या समानता को देखने वाले आत्मज्ञानी पुरुष को उस दशा में फिर कौनसा मोह कौनसा शोक रह सकता है ?

९९. स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविर शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधाच्छाभ्व तीभ्यः समाभ्यः ।।४०/८

वह परमेश्वर सर्वत्र व्यापक है। वह कान्तिमय अथवा तीव्र शक्तिमय स्थूल, सूक्ष्म और कारण नामक तीनों शरीरों से रहित, घाव आदि से रहित स्नायु आदि बन्धनों से रहित, शुद्ध अविद्यादि दोषों से रहित, पापों से सदा दूर, क्रान्तदर्शी, मेधावी, सबके मनों को प्रेरणा करने वाला, व्यापक, सबका वशयिता, स्वयं अपनी सत्ता से सदा विद्यमान, माता पिता द्वारा जन्म न लेने वाला है, वह यथोचितरूप से सनातन से चली आयी प्रजाओं के लिये समस्त पदार्थों को रचता है और उनका ज्ञान देता है।

१००. अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽसंभूतिमुपासते।
ततो भूय ऽ इव ते तमो यऽउ सम्भूत्यारताः ।। ४०/९

जो सत्व, रजस्, तमस् तीन गुणों वाली अव्यक्त प्रकृति की उपासना करते हैं वे गहरे अन्धकार में चले जाते हैं। और जो मरुत् आदि विकारमय सृष्टि में रमण करते हैं, उसी में मग्न हो जाते हैं वे उससे भी अधिक गहरे अन्धकार में प्रविष्ट होते हैं अर्थात् केवल प्रकृति के उपासक परमानन्द परमेश्वर की आनन्दमय परम ज्योति को प्राप्त नहीं होते, वे जड़ोपासना में मग्न रहते हैं और जो प्रकृतिके विकारों की ही उपासना करते हैं, वे भी सुख नहीं पाते।

१०१. अन्यदेवाहुः सम्भवादन्यदाहुरसम्भावात् ।
इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।। ४०/१०

उत्पन्न होने अर्थात् कार्यजगत् से अन्य ही फल कहते हैं। नहीं उत्पन्न होने अर्थात् कारणरूप प्रकृति के ज्ञान से अन्य ही फल कहते हैं जो विद्वान् पुरुष हमें इस तत्व को विशेष रूप से बतलाते हैं, उन बुद्धिमान् पुरुषों से इस विषय का श्रवण करें।

१०२. सम्भूतिं च विनाशं च यस्तद्वेदोभयं सह ।

विनाशेन मृत्युं तीर्त्वा सम्भूत्यामृतमश्नुते।।४०/११

जिसमें नाना पदार्थ उत्पन्न होते हैं इस कार्य सृष्टि और जिसमें विनाश अर्थात् कारण में लीन होते हैं देनों को जो एक साथ जान लेता है। वह सबके अदृश्य होने के परम कारण को जान कर देह को छोड़ने के धर्म के भय को पार करके, उसको सर्वथा त्याग कर कारण से कार्यों के उत्पन्न होने के तत्व को जानकर उस अमर अविनाशी मोक्ष को प्राप्त करता है।

१०३. अन्धं तमः प्र विशन्ति येऽविद्यामुपासते।

ततो भूय ऽ इव ते तमो य ऽ उ विद्यायांरताः ।।४०/१२

जो लोग अविद्या अर्थात् नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा से भिन्न पदार्थों को नित्य, पवित्र, सुख और आत्मा करते जानते हैं, उसी प्रकार मिथ्या ज्ञान में मग्न रहते हैं वे गहरे अन्ध ाकार में प्रवेश करते हैं। वे बड़े अज्ञान में रहते हैं और जो भी विद्या अर्थात् केवल शास्त्राभ्यास में ही लगे रहते हैं वे उससे भी अधिक अज्ञानान्धकार में कष्ट पाते हैं।

१०४. अन्यदेवाहुर्विद्याया ऽ अन्यदाहुरविद्यायाः ।

इति शुश्रुम धीराणां ये नस्तद्विचचक्षिरे।।४०/१३

विद्या का फल और कार्य दूसरा ही बतलाते हैं और अविद्या का फल और ही बतलाते हैं। जो हमें विद्या और अविद्या के स्वरूप का उपदेश करते हैं, हम उन बुद्धिमान् पुरुषों के मुखों से इस तत्व का श्रवण किया करें।

१०५. विद्यां चाविद्यां च यस्तद्वेदोभय सह।

अविद्यया मृत्युं तीर्त्वा विद्ययामृऽतमश्नुते।। ४०/१४

विद्या और अविद्या जो इन दोनों के स्वरूप को जान लेता है वह अविद्या से मृत्यु को पार करके विद्या से मोक्ष को प्राप्त करता है। अविद्यया-शरीरादि जड़ पदार्थ द्वारा पुरुषार्थ करके, विद्यया-शुद्ध चित्त से सम्यग् तत्वदर्शन करके।

१०६. वायुरनिलममृतमथेदं भस्मान्त शरीरम् ।

ओ ३ म् क्रतो स्मर। क्लिबे स्मर। कृत स्मर।। ४०/१५

वायु, प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान, नाग, कूर्म, कृकल, धनंजय आदि उक्त प्राणों के मूलकारण, वायु तत्व और अमृत आत्मा यह एक दूसरे के आश्रित है। वायु के आश्रय प्राण, प्राणों के आश्रय आत्मा जीवन धारण करता है और पश्चात् यह शरीर राख हो जाने तक ही है। इसलिये हे कर्म के कर्ता जीव! ओ३म परमेश्वर का सर्वश्रेष्ठ नाम है और अपने भरसक सामर्थ्य और प्रयत्न से साध ो हुए लोक की प्राप्ति के लिये अपने अभीष्ट का स्मरण कर। अपने किये हुए कर्मों का स्मरण कर।

१०७. अग्ने नय सुपथा राये ऽ अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि

विद्वान् ।

युयोध्युस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठां ते नम ऽ उक्तिं विधेम ।। ४०/१६

हे प्रकाशस्वरूप! करुणामय प्रभो! तू हमें धर्म के उपदेश मार्ग से विज्ञान, धन और सुख प्राप्त करने के लिये सन्मार्ग से ले चल। सब उतम ज्ञानों को और मार्गों लोकों को जानता हुआ हमसे कुटिल व्यवहार को दूर कर। तेरे प्रति हम बहुत स्तुतिवचन करें।

१०८. हिरणमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।
योऽसावादित्ये पुरुषः सोऽसावहम् ।। ओ३म् खं ब्रह्म।। ४०/१७

हित और रमणीय ज्योतिर्मय पालक द्वारा आत्मा और परमात्मा तत्व का ढका हुआ मुख खोला जाता है। जो वह प्राण में शक्तिमान् प्रकाशकर्ता है वह ही मैं हूं। सब संसार का रक्षा करने वाला वह आकाश के समान व्यापक, अनन्त ओर आनन्दमय है और वही गुण, कर्म, स्वभाव में सबसे बड़ा है।

।। इति ।।

,,,

सामवेद सूक्ति सुधा

०१. अग्ने आ याहि वीतये। सा.१ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! हमारे हृदय के अन्धकार को दूर करने के लिए, हमारे पापों और दुरितों को दग्ध करने के लिए हमारे हृदय-मन्दिरों में आइए, प्रकट होइये।

०२. नि होता सत्सि बर्हिषि। सा.१ हे महान् उपदेशक प्रभो! आप जीवन-यज्ञों के संचालक और सम्पादक हैं, आप हमारे शुद्ध, पवित्र, वासना-शून्य निर्मल हृदय मन्दिरों में निरन्तर विराजिए।

०३. अग्निं दूतं वृणीमहे। सा.३ हम राग-द्वेष और मिथ्या ज्ञान के मल को भस्मीभूत करने वाले ज्ञानस्वरूप, मोक्ष-प्रदाता, श्रेयमार्ग-प्रापक परमेश्वर का वरण करते हैं।

०४. अग्निर्वृत्राणि जङ्घनद्। सा.४ ज्ञानस्वरूप परमात्मा उपासक की आत्मा पर घेरा डालने वाले काम-क्रोध आदि वृत्रों को नष्ट करता है।

०५. अग्ने त्वां कामये गिरा। सा.८ हे प्रकाश स्वरूप परमेश्वर! मैं स्तुति प्रार्थना द्वारा केवल आपको चाहता हूँ, आपके दर्शन की कामना करता हूँ

०६. अग्ने विवस्वदा भरास्मभ्यम्। ६सा.१० हे ज्ञान प्रकाशस्वरूप परमेश्वर! आप हम उपासकों के लिए अपने सूर्य के समान ज्योतिर्मय स्वरूप को प्रकट कीजिए।

०७. देवो ह्यसि। सा.१० प्रभो! सचमुच आप देव हैं। आप सब कुछ देने वाले हैं। आप स्वयं ज्योतिर्मय हैं और अपने भक्तों को ज्ञान ज्योति प्रदान करते हैं।

०८. अग्ने रक्षा णो अँ् हसः। सा. २४ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! हमें पास से बचाइए।

०६. पावक श्रुधी हवम्। सा. २६ हे पवित्र करने वाले प्रभो! आप उपासक की पुकार को सुनिए।

१०. दधद्रत्नानि दाशुषे। सा. ३० परमेश्वर आत्म-समर्पक के लिए उत्तमोत्तम रत्न, पदार्थ और मोक्ष को प्राप्त कराते हैं।

११. पाहि नो अग्न एकया। सा. ३६ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप ऋग्वेदरूपी प्रथम वेदवाणी के द्वारा हमारी रक्षा कीजिए।

१२. अतन्द्रो हव्यं वहसि। सा. ४६ आलस्य रहित मनुष्य देने योग्य पदार्थों को प्राप्त करता है।

१३. अग्निमीडिष्वावसे गाथाभिः। सा. ४६ हे उपासक! तू आत्मरक्षा के लिए प्रकाशस्वरूप प्रभु की स्तुति किया कर।

१४. श्रुधि श्रुत्कर्ण। सा.५० हे टेर सुनने वाले प्रभो! मेरी पुकार सुन।

१५. आ सीदतु बर्हिषि मित्रः। सा.५० स्नेहार्द्र, करूणा सागर परमात्मा मेरे हृदय मन्दिर में आकर विराजमान हो।

१६. न तत्ते अग्ने प्रमृषे निवर्त्तनम्। सा.५३ प्रभो! अब आपका बिछोहा सहा नहीं जाता।

१७. त्वमग्ने गृहपतिः। सा.६१ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप हमारे शरीरों और विश्वब्रह्माण्ड के पालक तथा रक्षक हैं।

१८. सखायस्त्वा ववृमहे देवम्। सा.६२ प्रभो! हम सखा बनकर सर्वप्रकाश स्वरूप और आनन्दप्रद आपका वरण करते हैं।

१६. अग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव। सा.६६ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आपकी मित्रता में हम नष्ट न हो।

२०. पुरा तनयित्नोरचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम्। सा.६६ हे उपासकों! अपनी रक्षा के लिए हितकर और रमणीय ज्योतिर्मय प्रभु को, विद्युत की चमक के समान

अकस्मात् आ जाने वाली मृत्यु से पूर्व ही, अपना बना लो। मृत्यु से पूर्व ही उसे साक्षात् करने, जानने का प्रयत्न करो।

२१. दिवेदिव ईड्यो जागृवद्भिः। सा.७६ जागरूक, विवेकी उपासकों को प्रतिदिन प्रभु की उपासना करनी चाहिए।

२२. सनादग्ने मृणसि यातुधानान्। सा.८० अग्नि के सदृश पापों को भस्म करने वाले प्रभो! आप सदा पीड़ा देने वाले काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कुचलते हैं।

२३. अनु दह सहमूरान् कयादः। सा. ८० प्रभो! शरीर के मांस को खा जाने वाली चिन्ता, ईर्ष्या, द्वेष आदि राक्षसी वृत्तियों को जड़ समेत निरन्तर दग्ध करते रहिए।

२४. द्युता त्वं कृपा पावक रोचसे। सा. ८३ हे पवित्र करने वाले प्रभो! आप अपनी दीप्ति और कृपा से उपासक में चमकते हैं।

२५. प्रातरग्निा पुरुप्रियो विश स्तवेत। सा.८५ सबका पालक और पूर्ण करने वाला, सबको तृप्त करने वाला, अत्यन्त प्रिय, ज्ञानस्वरूप परमात्मा प्रातःकाल की उपासना में उपासकों को सन्मार्ग का उपदेश करता है। अथवा हे उपासकों! ब्राह्ममूहूर्त्त में सबके प्रिय और सबको आगे ले जाने वाले प्रभु की उपासना करो।

२६. बृहद्वयो हि भानवेऽर्चा। सा.८८ हे उपासक! सूर्य के समान देदीप्यमान परमात्मा के लिए अपनी आयु का बहुत बड़ा भाग उपासना रूप में अर्पित कर।

२७. द्यामङ्गिरसो ययुः। सा.६२ विषय वासनाओं से शून्य, जिनके अंग-अंग में ज्ञान और प्रेम रस भरा है, वे योगी मोक्षपद को प्राप्त करते हैं।

२८. अरिरग्ने तव स्विदा। सा. ६७ ज्ञानस्वरूप परमेश्वर! मैं सब प्रकार से तेरा ही भक्त बनता हूँ।

२६. यजस्व जातवेदसम्। सा.१०३ हे उपासक! तू सर्वज्ञ प्रभु की पूजा और उपासना किया कर, उसी के प्रति आत्मसमर्पण कर दे।

३०. श्रुष्ट्यग्ने नवस्य मे स्तोमस्य। सा.१०६ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! मेरी क्रियामय स्तुति को श्रवण कीजिए।

३१. देवासो देवमरतिं दधन्विरे। सा. १०६ दिव्य कोटि के साधक, मुमुक्षुजन जगत्स्वामी परमात्मा देव को अपनी हृदय गुहा में धारण करते हैं।

३२. मा नो हृणीथा अतिथिम्। सा.११० हममें से कोई भी मनुष्य अतिथिवत् पूजनीय प्रभु के प्रति नास्तिकता और अनादर के भाव प्रदर्शित न करे।

३३. विश्वेदग्निः प्रति रक्षाँसि सेधति। सा.११४ ज्ञानस्वरूप परमेश्वर उपासक के सभी राक्षसी भावों और कर्मों का निवारण कर देता है।

३४. गाव उप वदावटे। सा.११७ हे प्रभो! मुझ उपासक के शुद्ध पवित्र हृदय मन्दिर में वेद-वाणियों का उपदेश दीजिए। अथवा हे उपासकों! हृदय-गुहा में परमेश्वर के समीप होकर उसकी स्तुति किया करो।

३५. अस्तारमेषि सूर्य। सा.१२५ हे अविद्या अन्धकार को नष्ट करने वाले ज्ञानरूपी

सूर्य! प्रभो! आप काम-क्रोधादि पाप-वृत्तियों को दग्ध करके परे फेंकनेवाले उपासकों के हृदय में उदित होते हैं।

३६. उदगा अभि सूर्य। सा.१२६ हे सहस्त्रों सूर्यों की दीप्ति के समान चमकने वाले प्रभो! आप मेरे हृदय आकाश में शीघ्र उदित होइए, शीघ्र दर्शन दीजिए।

३७. इन्द्रः स नो युवा सखा। सा.१२७ वह अखण्ड एकरस, जीवों को पाप से पृथक् और भद्र से संयुक्त करने वाला काम-क्रोधादि असुरों का संहारक इन्द्र हमारा मित्र है।

३८. वयमिन्द्र त्वायवः। सा. १३२ हे ऐश्वर्यशाली प्रभो! हम उपासक लोग आपको ही चाहते हैं।

३६. परि बाधो जही मृधः। सा. १३४ प्रभो! हमारी उन्नति के मार्ग में बाधारूप, संग्रामकारी काम आदि शत्रुओं को और मृत्यु के कारण भूत रोगों को पूर्णरूप से ध्वंस कर दीजिए।

४०.वसु स्पार्हँ तदा भर। सा. १३४ प्रभो! जो हमारा स्पृहणीय, अभिलषित आध यात्कि धन मोक्ष है, उसे हमें प्राप्त कराइए।

४१. स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते। सा. १३६ हे वेदज्ञान के स्वामी परमेश्वर! आप मुझे वेदविद्या से प्रकाशित कीजिए।

४२. परा दुःष्वप्न्यँ सुव। सा.१४१ हे प्रभो! दुष्ट संकल्पों और कुसंकल्पों के कारण होने वाले हमारे पापों और दुःखों को दूर कीजिए।

४३. क्वस्य वृषभः। सा. १४२ वह सुख-शान्ति एवं आनन्द की वर्षा करने वाला परमेश्वर कहां है, उसे कहां प्राप्त किया जा सकता है?

४४. कस्तं सपर्यति। सा.१४२ उस आनन्दस्वरूप परमेश्वर की उपासना कौन करता है?

४५. अहं सूर्य इवाजनि।सा.१५२ मैं सूर्य के समान तेजस्वी हो गया हूँ।

४६. सोमः पूषा च चेततुः। सा. १५४ प्रभो! कृपा करो कि मेरे जीवन में सौम्य और पुष्टि व शक्ति जाग उठे अर्थात् मैं विनीत और शक्तिसम्पन्न बन जाऊँ

४७. एहीमस्य द्रवा पिब। सा.१५६ प्रभो! आप आइए, दर्शन दीजिए। अपने भक्त के प्रति अनुकम्पा कृपा कीजिए और अपने उपासक भक्त की रक्षा कीजिए।

४८. अभि त्वा वृषभा सुते। सा. १६१ हे सुखों के वर्षक प्रभो! मैं इस संसार में आपका स्मरण करके ही कार्य आरम्भ करता हूँ।

४६. इन्द्रमर्च यथा विदे। सा. १६८, २३५ यथार्थ ज्ञान, तत्वज्ञान की प्राप्ति के लिए तू ज्ञान-निधि परमेश्वर की उपासना कर।

५०. सनिं मेधामयासिषम्। सा. १७१ मैं परमेश्वर से सत्य और असत्य में विवेक कर सकने वाली मेधा (बुद्धि) मांगता हूँ।

५१. दोषो आगाद् बृहद् गाय। सा.१७७ हे उपासक! रात्रि आ गई। अब तू प्रभु का खूब गुणगान कर।

५२. आ तू न इन्द्र वृत्रहन्। सा. १८१ हे पाप-वृत्रों का हनन करने वाले परमेश्वर!

तू निश्चय ही हमारा है। हम प्रकृति की ओर न चलकर तुझे अपनाते हैं।

५३. प्र न आयूँषि तारिषत्। सा. १८४ परमेश्वर हमारे जीवनों को सब व्यसनों से दूर रखकर दीर्घ कर दे।

५४. स नो वसून्या भरात्। सा. १६० वह परमेश्वर हमें नाना प्रकार की लौकिक और आध्यात्मिक सम्पत्तियों से भर देता है।

५५. उत्त्वा मन्दन्तु सोमाः। सा. १६४ हे परमेश्वर! हमारे भक्तिरस के बिन्दु आपको सुप्रसन्न करें। अथवा हे जीव! तेरे शरीर में सुरक्षित सोम-वीर्य के बिन्दु तुझे अत्यन्त आनन्द प्रदान करने वाले हों।

५६. अव ब्रह्मद्विषो जहि। सा. १६४ हे उपासक! तूं ब्रह्मद्वेषी, ज्ञान के साथ द्वेष करने वाली भावनाओं को नष्ट कर दे।

५७. सदा व इन्द्रश्चर्कृषत्। सा. १६६ हे उपासकों! वह परमात्मा आप सबको अपनी ओर आकृष्ट कर रहा है।

५८. न देवो वृतः शूर इन्द्रः। सा. १६६? हमारा कितना दुर्भाग्य है कि हमने कष्टों की इतिश्री कर डालने वाले परमैश्वर्यशाली आनन्दप्रद प्रभु का वरण नहीं किया।

५६. न त्वामिन्द्राति रिच्यते। सा. १६७ हे परमेश्वर! आपसे बढ़कर संसार में कोई शक्ति नहीं है। अथवा परमैश्वर्य को प्राप्त जीव! आज तुझे कोई नहीं लांघ सकता, तू सबसे आगे निकल गया है।

६०. न कि इन्द्र त्वदुत्तरम्। सा. २०३ हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आपसे उत्कृष्ट कुछ भी और कोई भी नहीं है।

६१. न ज्यायो अस्ति वृत्रहन्। सा. २०३ हे पापों और वासनाओं का हनन करने वाले प्रभो! आपसे अधिक बढ़ा हुआ भी कोई नहीं है।

६२. न क्येवं यथा त्वम्। सा. २०३ प्रभो! इस संसार में आप जैसा भी कोई नहीं है।

६३. इन्द्र प्रातर्जुषस्व नः। सा. २१० हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! हमें प्रातःकाल की उपासना में प्रेम से प्राप्त होइए, अपने दिव्यदर्शन दीजिए।

६४. स्तीर्णं बर्हिर्विभावसो। सा. २१३ हे ज्ञानधन प्रभो! मैंने आपके स्वागत के लिए हृदयरूपी आसन बिछाया है।

६५. इन्द्र न उपा याहि। सा.२१५ हे परमेश्वर! हमारे समीप आइए, हमें दर्शन दीजिए।

६६. सुषुवासमुपेरय। सा. २२३ हे साधक! तू सदा उत्तम प्रेरणा देनेवाले मनुष्यों की संगति कर। अथवा हे परमेश्वर! आप शान्तस्वरूप उपासक को प्राप्त होते हैं और उसे प्रेरणाएं देते हैं।

६७. मा हृणीयथाः। सा.२२७ हे उपासक! जीवन में क्रोध न करना।

६८. कदा वसो स्तोत्रँ हर्यत। सा. २२८ हे शरीर में बसनेवाले जीव! उपासक!

तेरे जीवन में तेरे काम्य प्रभु के लिए प्रभु का स्तवन कब होगा?

६६. तवेदुँ सख्यमस्तृतम्। सा. २२६ हे उपासक! तेरा परमात्मा के साथ यह सख्यभाव (मित्रता) अविच्छिन्न हो, अटूट हो।

७०. त्वं नो जिन्व सोमपाः। सा. २३० हे भक्तिरस को स्वीकार करने वाले प्रभो! आप हमें तृप्त कीजिए।

७१. ईशानमस्य जगतः। सा. २३३ हे परमेश्वर! आप जंगम-चेतन जगत् के स्वामी हैं।

७२. अस्माँ अवन्तु ते धियः। सा. २३६ हे परममित्र परमेश्वर! आपके द्वारा प्रदत्त धारणाएं एवं प्रेरणाएं हमें संसार सागर में डूबने से बचाएं।

७३. त्वूँ ह्येहि चेरवे। सा. २४० हे प्रभो! अपने भक्त, उपासक के प्रति उसके हृदय और जीवन में विचरण करने के लिए आप ही आइए।

७४. मा चिदन्यद्वि शूँ सत सखायः। सा. २४२ हे उपासक मित्रों! तू परमेश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी की स्तुति-प्रार्थना-उपासना मत किया करो।

७५. नकिष्टं कर्मणा नशद्। सा. २४३ उस प्रभु को कोई भी उपासक भिन्न-भिन्न काम्य कर्मों द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता।

७६. इन्द्रं न यज्ञैर्विश्वगूर्तम्। सा. २४३ विश्व ब्रह्माण्ड को धारण करने वाले परमात्मा को याज्ञिक कर्मो द्वारा भी नहीं पाया जा सकता।

७७. न त्वदन्यो मघवन्नस्ति मर्डिता। सा. २४७ हे ऐश्वर्यसम्पन्न प्रभो! तेरे अतिरिक्त और कोई सुख और आनन्द देने वाला नहीं है।

७८. मधुमत्तमा गिर स्तोमास ईरते। सा. २५१ भक्त लोग अत्यन्त मधुर वाणियों का ही उच्चारण करते हैं।

७६. मरुतो ब्रह्मार्चत। सा. २५७ हे मितभाषी तथा प्राणयाम के अभ्यासी उपासकों! वेद मन्त्रों द्वारा परमात्मा की खूब उपासना करो।

८०. जीवा ज्योतिरशीमहि। सा. २५६ प्रभो! आपकी कृपा से हम वर्तमान जीवन में ही ज्योति स्वरूप आपको प्राप्त करें।

८१. मा न इन्द्र परा वृणक्। सा. २६० हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप हमें अपने से पृथक् मत कीजिए, हमारा परित्याग मत कीजिए।

८२. भवा नः सधमाद्ये। सा. २६० प्रभो! आप हमारे साथ हर्ष सदन-हृदय मन्दिर में विराजमान होइए।

८३. त्वमिन्न आप्यम्। सा. २६० हे प्रभो! आप ही हमारे प्रायणीय बन्धु हैं, हमारे जीवन के अन्तिम लक्ष्य हैं।

८४. वृत्रहन् परि स्तोतार आसते। सा. २६१ हे वृत्रहन्! काम-क्रोधादि वासनाओं के संहारक! स्तोता लोग निश्चय ही आपके चारों ओर आपके अत्यन्त समीप रहते हैं।

८५. नकिष्ट्वा गोषु वृण्वते। सा. २७० हे परमेश्वर! इन्द्रियों के विषयों में रमने

वाला कोई भी व्यक्ति आपको नहीं वर सकता।

८६. इन्द्रो मुनीनाँ् सखा। सा. २७५ परमेश्वर मौनव्रती, ज्ञानी, ध्यानी मुनियों का सखा है।

८७. वण्महाँ् असि सूर्य। सा. २७६. हे सूर्यों के सूर्य परमदेव परमात्मन्! सचमुच तू महान् है।

८८. इन्द्र नेदीय एदिहि। सा. २८२ हे इन्द्र! परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप हमारे अत्यन्त निकट, हमारे हृदय मन्दिर में आइए, प्रकट होइए, अपने दर्शन दीजिए।

८६. इह वा सन्नुप श्रुधि। सा. २८४ हे परमेश्वर! यहां हमारे हृदय मन्दिर में विराजमान होते हुए हमारी प्रार्थनाओं को सुनिए।

पृणन्नित् पृणते मयः। सा. २८५ वह परमेश्वर सबको देने वाले हैं, सबकी पालना करने वाले हैं, अतः दान देने वाले और दूसरों का पालन करने वालों को सुख और आनन्द की प्राप्ति होती है।

६०. मा वाँ रातिरुप दसत् कदाचन। सा. २८७ हे दम्पती! तुम दोनों की दान देने की प्रक्रिया कभी भी नष्ट न हो तुम सदा दान देते रहो।

६१. इन्द्रो वज्री हिरण्ययः। सा. २८६ परमैश्वर्यशाली परमात्मा ज्योतिर्मय है, ज्ञान का भण्डार है और दुष्टों के लिए दण्डकारी है।

६२. हरिभ्यां याह्योक आ। सा. २६३ प्रभो! ऋक् और साम की स्तुतियों और सामगानों द्वारा आप मेरे हृदय मन्दिर में आइए। अथवा हे उपासक! ज्ञान और कर्मेन्द्रियरूपी घोड़ों से अपने शरीर रूपी घर में आ, प्रत्याहार द्वारा अपनी इन्द्रियों का संयम कर, उन्हें बाहर विषयों में मत भटकने दे।

६३. इन्द्र सश्चसि दाशुषे। सा. ३०० हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप आत्मसमर्पण करने वाले उपासक को प्राप्त हो।

६४. न सवनेषु चुक्रुधम्। सा. ३०७ हे प्रभो! जीवन के प्रातः, माध्यन्दिन, और सायन्तन (संध्याकाल) सभी सवनों में मैंने क्रोध नहीं किया।

६५. क ईशानं न याचिषत् सा. ३०७ कौन ईश्वर से याचना नहीं करता? अथवा कौन ईश्वर को प्राप्त नहीं करना चाहता।

६६. इन्द्र ज्यायः कनीयसः। सा. ३०६ परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप बड़े है और मैं छोटा हूँ।

६७. अशस्तिहा जनिता वृत्रतूरसि। सा. ३११ हे जीव! अपनी शक्तियों को पहचान। तू अशुभ कर्मों और भावनाओं को नष्ट करने वाला है, अपने जीवन में सद्गुणों का विकास करने वाला है, मार्ग में आने वाली विघ्न-बाधाओं का नाशक है।

६८. योनिष्ट इन्द्र सदने अकारि। सा. ३१४ हे परमेश्वर! आप द्वारा प्रदत्त इस मिट्टी के घर में आपके बैठने के लिए हृदयरूप स्थान बनाया गया है।

६६. अस्मभ्यं चित्रं वृषणं रयिं दाः। सा. ३१७ हे प्रभो! हम उपासकों को आप

अद्‌भुत, आनन्दवर्षी आध्यात्मिक धन प्रदान कीजिए।

१००. अप ध्वान्तमूर्णुहि। सा. ३१६ हे प्रभो! आप अविद्या-अन्धकार के पर्दे को हटा दीजिए।

१०१. पूर्द्धि चक्षुः। सा. ३१६ प्रभो! पक्षियों की भांति संसार जल में वृद्ध हम लोगों को मुक्त कर दीजिए।

१०२. देवस्य पश्य काव्यम्। सा. ३२५ परमेश्वर के वेदरूपी काव्य को देखो। वेद का स्वाध्याय करो।

१०३. गायन्ति त्वा गायत्रिणः। सा. ३४२ हे प्रभो! साम मन्त्रों का गान करने वाले आपके ही गीत गाते हैं।

श्रुधी हवं तिरश्च्या इन्द्र। सा. ३४६ हे ब्रह्म! जो उपासक अन्तर्मुखी होकर उपासना करता है, तूं उसकी पुकार को सुन।

१०४. उग्रं वचो अपावधीः। सा. ३५३? हे उपासक! तू कठोर वचनों को त्याग दे।

१०५. स पूर्व्यो महोनाम्। सा. ३५५ वह परमेश्वर संसार की महाशक्तियों में प्रथम महाशक्ति है।

१०६. य एक इद् भूरतिथिर्जनानाम्। सा. ३७२ वह परमात्मा ही लोगों के लिए सतत जानने योग्य है, वही हमारा चरम और परम लक्ष्य है।

१०७. स पूर्व्यः। सा. ३७२ वह परमेश्वर पूर्वकाल से विद्यमान है। वह पूर्ण करनेवालों में सर्वश्रेष्ठ है।

१०८. नूतनमाजिगीषम्। सा. ३७२ हे उपासक! तू निश्चय कर कि मैं स्तुति के योग्य प्रभु को अवश्य प्राप्त करूंगा।

१०९. एक इत्। सा. ३७२ वह परमेश्वर एक ही है।

११०. इमे त इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत। सा. ३७३ हे बहुतों से स्तुति करने योग्य परमेश्वर! हम उपासकगण आपके हैं, केवल आपके ही है।

१११. त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो। सा. ३७३ हे प्रभूत सम्पत्तिशाली! हम तेरा आश्रय लेकर संसार में विचरण करते हैं।

११२. न हि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्। सा. ३७३ हे वेदवाणियों द्वारा आराध ाने योग्य! आपसे भिन्न अन्य कोई भी शक्ति वेद-वाणियों का मुख्य विषय नहीं है।

११३. अभि त्यं मेषम्। सा. ३७६ हे उपासक! तू उस प्रभु की ओर अभिमुख हो, चल, जो आनन्द की वर्षा करने वाला है।

११४. मरुत्वन्तँ सख्याय हुवेमहि। सा. ३८० हम उपासकों के एकमात्र स्वामी परमात्मा को मित्रता के लिए पुकारते हैं।

११५. तमु अभि प्र गायत पुरुहूतम्। सा. ३८२ जो परमात्मा अनेक नामों से स्मरणीय है, उसी प्रभु को लक्ष्य करके खूब गान किया करो।

११६. एन्द्र नो गधि। सा. ३६३ हे परमेश्वर! आप हमें प्राप्त होइए।

११७. आदित्यासो युयोतना नो अँहसः। सा. ३६७ हे उच्चकोटि के विद्वानों! आप हमें कुटिलता और पापों से पृथक कीजिए।

११८. पिबा सोममिन्द्र मदन्तु त्वा। सा. ३६८ हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! तू आध्यात्मिक भक्तिरस का, प्रभु के आनन्दामृत का पान कर। पान किया गया यह अमृत तुझे मस्त और उल्लासमय बना दे।

११६. आ गन्ता मा रिषण्यत। सा. ४०१ हे मनुष्यो! उपासना मार्ग की ओर आओ। उपासना मार्ग से विमुख होकर तुम नष्ट मत होओ।

सोमँ सोमपते पिब। सा.४०२. हे भक्ति रस के स्वामिन! आप भक्तिरस को स्वीकार कीजिए।

१२०. वयं प्रतिश्वसन्तं वृषभ ब्रुवीमहि। सा. ४०३ हे सुखवर्षी प्रभो! आपकी सहायता से हम फुंकार मारते हुए काम, क्रोध, अहंकार आदि आसुरी सर्पों को युद्ध के लिए ललकार दें।

१२१. इत्था हि सोम इन्मदः। सा. ४१० वास्तव में भक्तिरस ही ऐसा रस है जो आनन्द देने वाला, हर्षित करने वाला और तृप्ति देने वाला है।

१२२. प्रेह्यभीहि धृष्णुहि। सा. ४१३ हे साधक आगे बढ़। तू शत्रुओं पर आक्रमण करने के लिए आगे बढ़ और अपने काम-क्रोध आदि शत्रुओं को कुचल डाल।

१२३. कदा नः सूनृतावतः कर। सा. ४१६ हे प्रभो! आप हमारी वाणियों को सत्य, प्रिय और माधुर्ययुक्त कब बनाएंगे?

१२४. सुपर्णो धावते दिवि। सा. ४१७ जीवात्मा सदा ज्ञानरूपी नदीं में स्नान करता हुआ अपने को पवित्र बनाता रहे।

१२५. न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतः। सा. ४१७ हे जीवों! धन के चक्र में फंसे, ६६ के चक्र में फंसे लोग परमात्मा के पद मोक्ष, स्थान को नहीं पा सकते।

१२६. पर्यू षु प्र धन्व वाजसातये। सा. ४२८ हे भक्ति रस! तू सांसारिक बन्धनों को त्यागकर आध्यात्मिक शक्तियों की प्राप्ति के लिए शीघ्र प्रवाहित हो जा।

१२७. पवस्व सोम महान्त्समुद्रः। सा. ४२६ हे सोम्यस्वरूप परमात्मन्! तू मुझे पवित्र बना दे जिससे मैं उदार बनूं और आनन्द से युक्त हो जाऊँ।

१२८. न काममव्रतो हिनोति। सा. ४४१ अव्रती-दानव्रत से शून्य व्यक्ति कितना ही हाथ पैर मारे, उस शान्ति के धाम प्रभु को प्राप्त नहीं कर सकता।

१२६. श्रुतो युवा स इन्द्रः। सा. ४४५ वह परमैश्वर्यशाली प्रभु सदा युवा, अजर, अमर, अशुभ को दूर करने वाला और शुभ को प्राप्त कराने वाला प्रसिद्ध है।

१३०. उषा अप स्वसुष्टमः सं वर्तयति। सा. ४५१ जैसे प्रातःकाल की उषा अपनी बहन रात्रि के अन्धकार को दूर कर देती है, वैसे ही हृदयाकाश में प्रकट होने वाली आध्यात्मिक ज्योति साधक के अविद्या अन्धकार को हटा देती है।

१३१. इमा नु कं भुवना सीषधेम। सा. ४५२ अब हम उपासक इन भुवनों (लौकिक वस्तुओं) को सुख-प्राप्ति के लिए साधन बनाएं। लौकिक वस्तुएं हमारे साध रहें, साध्य न बन जाएं।

१३२. इन्द्रो विश्वस्य राजति। सा. ४५६ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर सारे संसार का शासक है।

१३३. अर्चामि सत्यसवम्। सा. ४६४ मैं हृदयस्थ होकर सदा सत्य की प्रेरणा देनेवाले परमेश्वर की अर्चना करता हूँ।

१३४. पवस्व देव आयुषक्। सा. ४८३ देव-दिव्य भक्तिरस! तू आजीवन मुझमें प्रवाहित हो और मुझे पवित्र बना।

१३५. नुदस्वादेवयुं जनम्। सा. ४६२ हे ज्ञानिन्! परमात्मा की उपासना न करने वाले मनुष्य को ऐसी प्रेरणा कर कि वह भोग की वृत्ति छोड़कर आत्मा-परमात्मा की ओर झुकाव वाला बने, अथवा प्रभु की उपासना न करने वाले का संग छोड़ दे।

१३६. तवाहँ सोम रारण सख्ये। सा. ५१६ हे चन्द्रमा के समान आनन्दप्रद प्रभो! मैं तेरी मित्रता के निमित्त तेरे नामों को जपता हूँ, तेरे गुणों का गान करता हूँ।

१३७. वराहो अभ्येति रेभन्। सा. ५२४ सात्विक आहार करने वाला स्तुति करता हुआ परमात्मा की ओर चलता है।

१३८. मधुमाँ इन्द्र सोमः। सा. ५३१ हे इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीव! सोमस्वरूप वह प्रभु आनन्दमय है, रस का स्रोत है।

१३६. स्वादुः पवतामति वारमव्यम्। सा. ५३५ माधुर्यमय जीवनवाले हम ज्ञान के विनीभूत काम को लांघ जाएं अथवा पार्थिव भोगों के घेरे को लांघ जाएं।

१४०. इन्द्राय सोम सुषुतः परि स्रव। सा. ५६१ हे आनन्दप्रद प्रभो! तू साक्षात् होकर आत्मा के लिए आनन्दरस की धारा के रूप में प्रवाहित हो।

१४१. मा ते रसस्य मत्सत द्वयाविनः। सा. ५६१ दो वृत्तिवाले, छली-कपटी, संशय वृत्तिवाले, द्विविधा में पड़े हुए जन प्रभु के आनन्दरस की मस्ती को प्राप्त नहीं होते।

१४२. पवित्रं ते विततं ब्रह्मणस्पते। सा. ५६५ हे ब्रह्माण्ड और वेद के स्वामी! तेरा पवित्र करने वाला स्वरूप, आनन्दरस वैदिक ज्ञान चारों ओर फैला हुआ है।

१४३. अतप्ततनूर्न तदामो अश्नुते। सा. ५६५ जिसने अपने जीवन को तप की भट्टी में नहीं पकाया, वह अपरिपक्व पवित्र प्रभु के आनन्दामृत को प्राप्त नहीं कर सकता।

१४४. श्रृतास इद्वहन्त सं तदाशत। सा. ५६५ तपस्वी योगीजन ही अपनी जीवन-यात्रा को उत्तम प्रकार से चलाते हुए उस प्रभु को प्राप्त करते हैं।

१४५. इन्द्रायेन्दो परि श्रव। सा. ५६७ हे भक्तिरस! जीवात्मा के लिए प्रवाहित हो। हे आनन्दप्रद परमात्मन्! आप परमैश्वर्य के लिए हम पर आनन्दरस की वर्षा कीजिए। प्रभो! जीवात्मा पर कृपा-दृष्टि, करुणा वृष्टि कीजिए।

१४६. पवस्व देववीतय इन्दो। सा. ५७१ हे आनन्दप्रद परमात्मन्! दिव्य गुणों की

प्राप्ति के लिए हमारे जीवन में प्रवाहित हो और उन्हे पवित्र कर।

१४७. आ कलशं मधुमान्त्सोम नः सदः। सा. ५७१ हे आनन्दस्वरूप परमात्मन्! आप मधुमान् हैं, माधूर्यरूप है। आप हमारे हृदय कलश में आ विराजिए।

१४८. दिदीहि दे देवयुम्। सा. ५७६ हे प्रकाशस्वरूप प्रभो! आप देव को अपने साथ जोड़ने की कामनावाले, देव को चाहने वाले मुझ उपासक को बन्धनों से मुक्त कीजिए।

१४६. ओम् वर्मीव धृष्णवा रुज। सा. ५८५ हे सर्वरक्षक! पाप को कुचल डालने वाले परमात्मान! जैसे कवचधारी सेनापति शत्रुओं का विनाश करता है, ऐसे ही आप हमारे काम, क्रोध आदि विकारों को नष्ट कीजिए।

१५०. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम्। सा. ५८७ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर जड़ और चेतन सारे संसार का शासक है।

१५१. सोम भरे कृतं वि चिनुयाम शश्वत्। सा. ५६० हे आनन्दप्रद परमात्मन्! जीवन-संघर्ष में, देवासुर-संग्राम में हम सदा सफलता को प्राप्त करें।

१५२. यो मा ददाति स इदेवमावत्। सा. ५६४ जो भी अपने आपको सर्वव्यापक परमात्मा के प्रति समर्पित कर देता है, वह समर्पण द्वारा अपनी रक्षा करता है और प्रभु को प्राप्त होता है।

१५३. मायाविनो ममिरे अस्य मायया। सा. ५६६ ज्ञान प्रचारक के ज्ञान-प्रचार द्वारा बड़े-बड़े ठग भी श्रेष्ठ और महान् बन जाते हैं।

१५४. विश्वे देवा मम श्रृण्वन्तु यज्ञम्। सा. ६१० सब भद्र-पुरुष, विद्वान् लोग मेरे यज्ञ को, श्रेष्ठ कर्मों को ही सुनें। विद्वानों को कभी ऐसा सुनने को न मिले कि मैंने कोई अयज्ञीय-अशुभ कर्म किया है।

१५५. घृतं मे चक्षुरमृतं म आसन्। सा. ६१३ मेरी आंखों में स्नेह, प्रेम और मेरे मुख में अमृत, मधुर वचन हैं।

१५६. हविरस्मि सर्वम्। सा. ६१३ मैं पूर्णरूपेण हवि हूँ, अपने आपको लोकहित, जन-कल्याण के लिए समर्पित करने वाला हूँ।

१५७. अग्न आयूँषि पवस। सा. ६२७ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप हमारे जीवनों को पवित्र करने वाले हैं।

१५८. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च। सा. ६२६ वह परमात्मा जड़ और चेतन सारे संसार का आत्मा है।

१५६. ज्योतिष्कृदसि सूर्य। सा. ६३५ ज्ञान ज्योति से प्रकाशमान जीव! तू ज्ञान-ज्योति का प्रसार करने वाला, फैलाने वाला है।

१६०. आ याहि पिब मत्स्व। सा. ६४३ हे मानव! इधर-उधर मत भटक। आध यात्मिक मार्ग की ओर चल।

१६१. ईशे हि शक्रः। सा. ६४६ जो जितेन्द्रिय होता है, वही शक्तिशाली बनता है।

१६२. इन्द्रं धनस्य सातये हवामहे। सा. ६४७ मोक्षरूपी ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए

हम परमैश्वर्यशाली प्रभु को पुकारते हैं।

१६३. अच्छा समुद्रमिन्दवः। सा. ६५६ ज्ञानरूप ऐश्वर्य से पूर्ण शान्त योगिजन परमात्मा की ओर दौड़ते हैं।

१६४. इन्दवः स्वर्विदः। सा. ६६४ शान्त, सौम्य योगिजन सुख, आनन्द प्राप्त करते हैं।

१६५. ऋतस्य जिह्वा पवते मधु। सा. ७०१ सत्यवादी की जिह्वा से मधु टपकता है।

१६६. शंसेदुक्थं सुदानवे। सा. ७१७ हे मनुष्यों! सदा सोते-जागते, उठते-बैठते, खाते-पीते दानशील और बन्धनों को काटनेवाले परमेश्वर का ध्यान करो।

१६७. यन्ति प्रमादमतन्द्राः। सा. ७२१ आलस्यरहित कर्मशील व्यक्ति अत्यधिक आनन्द को प्राप्त करते हैं।

१६८. तमिद्वर्धन्तु नो गिरः। सा. ७२४ हमारी वाणियां सदा परमेश्वर का ही गुणगान करें।

१६६. मोपहस्वान आ दभन्। सा.७३२ हे उपासक! तू ब्रह्मज्ञान के द्वेषियों, ज्ञान के विरोधियों का संग मत किया कर।

१७०. स त्वा ममत्तु सोम्य। सा. ७३८ हे सोम्य! वह भक्तिरस तुझे मदमस्त बना दे।

१७१. अयं सूर्य इवोपदृक्। सा. ७५६ परमेश्वर उपासना में सूर्य के समान दृष्टिगोचर होता है अथवा उपासना करते हुए यह उपासक सूर्य के समान दिखाई देने लगता है।

१७२. हरिः पवित्रे अर्षति। सा. ७५८ कष्टहर्ता प्रभु पवित्र हृदय में प्रकट होता है। इन्द्रियों को विषयों की ओर से खींचनेवाला संयमी उपासक शुद्धस्वरूप परमेश्वर की ओर बढ़ता है।

१७३. मधोर्धारा असृक्षत। सा. ७७२ हे उपासक! तू माधुर्य की धाराएं बहा दे।

१७४. पवस्वेन्दो वृषासुतः। सा. ७७८ हे आनन्दप्रद, परमशान्त परमेश्वर! आप ध्यान द्वारा हमारे हृदय मन्दिर में उपस्थित होकर हमें आनन्दरस से तृप्त करें।

१७५. अधा चिदिन्द्र नः सचा। सा. ८२५ हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! अब आप मेरे सहायक और साथी बनें।

१७६. मो षु ब्रह्मेव तन्द्रयुर्भवः। सा. ८२६ उत्तम इन्द्रियों वाले जीव! तू यज्ञ कर, शुभ कर्मों का आनन्द ले, अथवा हे विद्या-विचारशील! तू ज्ञानगोष्ठियों में जाकर प्रसन्नता प्राप्त कर।

१७७. सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम। सा. ८२८ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! सर्वशक्तिमन्! आपकी मित्रता में हम भयभीत न हों।

१७८. तरत् समुद्रं पवमान ऊर्मिणा। सा. ८५७ अपने जीवन को पवित्र बनाने वाला व्यक्ति भक्ति की तरंगों से संसार सागर को तैर जाता है अथवा वीर्य की ऊर्ध्व गति द्वारा

कामरूपी समुद्र को तैर जाता है।

१७९. कदा सुतं तृषाण ओक आगम इन्द्र। सा. ८६५ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! आपकी प्राप्ति का प्यासा, यम-नियम आदि उत्तम कर्मों के अनुष्ठान में रत उपासक हृदय में प्रकट हुए आपको कब प्राप्त होगा?

१८०. चरन्ति विद्युतो दिवि। सा. ८६४ उपासकों के मस्तिष्क में विशेष दीप्तियां विचरण करती हैं। उपासक के मस्तिष्क रूपी आकाश में ज्ञान रूपी विद्युत का प्रकाश होता है।

१८१. आशुरर्ष बृहन्मते। सा. ८९८ हे महामते! विद्वन्! तू शीघ्रकारी बन, उद्योगी बन। आलसी और प्रमादी मत बन।

१८२. इन्द्राय नूनमर्चत। सा. ९५१ हे मनुष्यों! परमैश्वर्यसम्पन्न परमेश्वर की अवश्य अर्चना करो।

१८३. इन्द्र जठरं नव्यं न पृणस्व। सा. ९५३ हे जीव! तू अपने अन्तर को, हृदय को स्तुत्य ढंग से पूरित कर ले। अपने हृदय को माधुर्य और प्रभु-प्रकाश से आलोकित कर ले।

१८४. समुद्रः सोम पिन्वसे। सा. ९५६ हे सर्वप्रेरक प्रभो! आप ज्ञान के समुद्र हैं, सब प्राणियों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं, सबको मनोवांछित पदार्थ देने वाले हैं।

१८५. सोमश्चमूषु सीदति। सा. ९७३ आनन्दप्रद परमात्मा पवित्र अन्तःकरण में निवास करता है।

१८६. त्वं सोम परि स्रव। सा. ९८१ हे आनन्दघन प्रभो! आप आनन्दरस की ध ारा के रूप में हमारे अंग प्रत्यंग में प्रवाहित होओ।

१८७. वयं वां मित्रा स्याम। सा. ९८६ हे प्रभो! हम आपके मित्र और कृपा-पात्र बने रहें।

१८८. हरिः सन् योनिमासदः। सा. १००० हे आनन्दप्रद प्रभो! आप अपने उपासकों के जीवनों को पवित्र करते हुए उन पर नानाविध सुखों का वर्षण करते हैं।

१८९. त्वमिन्द्राभिभूरसि। सा. १०२६ हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप सब अज्ञान-अन्ध ाकार और बुराइयों के नाशक हैं।

१९०. त्वं सूर्यमरोचयः। सा. १०२६ प्रभो! आप वेद-ज्ञानरूपी सूर्य को प्रकाशित करने वाले हैं।

१९१. आ तिष्ठ वृत्रहन् रथम्। सा. १०२९ हे काम क्रोध आदि वासनाओं के नाशक प्रभो! आप मेरे रमणीय हृदय में निरन्तर विराजमान होइए अथवा पापवासनाओं को कुचल डालने वाले जीवात्मन्! तू अपने शरीररूपी रथ का अधिष्ठाता बन।

१९२. हरिर्मित्रस्य सदनेषु सीदति। सा. १०३२ आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक त्रिविध तापों का हरण करने वाला दयालु परमेश्वर उपासकों के हृदय मन्दिरों में निवास करता है।

१९३. ज्योक् पश्येम सूर्यम्। सा. १०५२ हम दीर्घकाल तक सूर्य का दर्शन करते रहें, अर्थात् हम दीर्घजीवी बनें।

१६४. मा नो अति ख्य आ गहि। सा. १०८६ प्रभो! हमारा परित्याग मत कीजिए, अपने दर्शनों से वंचित मत कीजिए, अवश्य प्राप्त होइए।

१६५. सद्माभि सत्यो अध्वरः। सा. ११३० सत्य का उपासक, हिंसा-रहित यज्ञीय जीवनवाला अपने घर-ब्रह्मलोक की ओर बढ़ता जाता है।

१६६. इन्द्रा याहि चित्रभानो। सा. ११४६ हे अद्भुत प्रभावाले! परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! हमारे हृदय मन्दिर में प्रकट होइए।

१६७. सोमो विराजमनु राजति। सा. ११७६ विनीत उपासक विशेष दीप्तिवाले परमेश्वर की दीप्ति से देदीप्यमान होता है। उसके जीवन में प्रभु का प्रकाश होता है।

१६८. मघोन आ पवस्व नः। सा. ११८४ प्रभो! हमारे अन्दर प्रवेश करने वाली काम-क्रोध आदि वासनाओं और ईर्ष्या-द्वेष आदि शत्रुओं को नष्ट कीजिए।

१६६. इन्दो सखायमा विश। सा. ११८४ हे आनन्दप्रद परमेश्वर! आप अपने मित्र जीवात्मा में प्रवेश कीजिए- दर्शन दीजिए।

२००. योनावृतस्य सीदत। सा. ११६५ हे जीवों! तु सत्यस्वरूप परमात्मा की गोद में बैठो, सदा परमात्मा के आश्रय में रहो।

२०१. अर्कस्य योनिमासदम्। सा. १२०८ उपासनीय परमात्मा की गोद-आश्रय में आ बैठा हूँ।

२०२. एन्द्रस्य जठरं विश। सा. १२०६ हे उपासक! तू परमैश्वर्यशाली प्रभु के उदर में प्रवेश कर जा, तूं सदा प्रभु की गोद में, उसकी छत्र-छाया में निवास कर।

२०३. ते व्रजनं कृष्णमस्ति। सा. १२२० हे उपासक! तेरा गमन, तेरी चाल-ढाल आकर्षक हो। तूं दिव्य जीवन जी।

२०४. इन्दो समुद्रमाविश। सा. १२३६ आत्मसम्पत्ति को प्राप्त करने वाले ज्ञानी! तू आनन्दस्वरूप प्रभु में प्रवेश कर।

२०५. त्वं यविष्ठ दाशुषो नृः पाहि। सा. १२४६ हे युवतम! सदा अखण्ड एकरस प्रभो! आप आत्मसमर्पण करने वाले उपासकों की रक्षा कीजिए।

२०६. श्रृणुही गिरः। सा. १२४६ प्रभो! हमारी प्रार्थनाओं को सुनिए।

२०७. इन्दुर्वारमाविशत्। सा. १२७७ चन्द्रमा के समान शान्त उपासक अज्ञानवारक, वरणीय परमेश्वर में प्रवेश कर जाता है-उठते-बैठते, सोते-जागते सदा परमेश्वर का स्तवन करता है।

२०८. एष वृषा कनिक्रदत्। सा. १२८३ उपासक वासनाओं का नाश करके शक्तिशाली बनता है और वासनाओं से सदा बचे रहने के लिए परमेश्वर का बारम्बार आह्वान करता है।

२०६. एष सूर्येण हासते। सा. १२८५ मस्तिष्क में ज्ञानरूपी सूर्य का उदय होने पर उपासक द्युलोक के सूर्य से भी स्पर्धा करता है।

२१०. अगन्म महा नमसा यविष्ठम्। सा. १३०४ हम अत्यन्त श्रद्धा-भक्ति और

नम्रता द्वारा अखण्ड, एकरस परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

२११. अर्षा नः सोम। सा. १३३७ हे आनन्दप्रद प्रभो! हमें प्राप्त होइए।

२१२. कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्। सा. १३४३ हे मानव! तू सदा स्मरण रख कि सुखदाता परमेश्वर आराधनाहीन, अयज्ञशील मनुष्य को ऐसे नष्ट कर देता है, जैसे पांव से खुम्ब को नष्ट कर दिया जाता है।

२१३. न हि त्वा कश्च न प्रति। सा. १३५५ हे मानव! तू अपनी शक्तियों को पहचान। संसार में कोई भी तेरा साम्मुख्य-मुकाबला नहीं कर सकता।

२१४. अजीजनो हि पवमान सूर्यम्। सा. १३६५ हे जीवन को पवित्र बनाने वाले साधक! तूने अपने मस्तकरूपी द्युलोक में ज्ञानरूप सूर्य को प्रकट किया है।

२१५. अग्ने दीदिहि पुरो नोऽजस्रया सूर्म्या। सा. १३७५ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप कभी क्षीण न होने वाली सुन्दर ज्वालाओं के रूप में हमारे सम्मुख चमकिए।

२१६. न की रेवन्तं सख्याय विन्दसे। सा. १३९० हे परमेश्वर! आप धन-लोलुप के साथ किसी प्रकार की मित्रता नहीं करते हो।

२१७. इन्द्र शुद्धो न आ गहि। सा. १४०३ हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! आप पूर्ण शुद्ध हैं, आप हमें प्राप्त होइए।

२१८. हरिवो मत्सरो मदः। सा. १४३२ हे त्रिविध तापों के हरण करने वाले प्रभो! आप आनन्दमय हैं, मेरे जीवन को भी आनन्दमय बनाइए।

२१९. त्वं हि शूरः। सा. १४३४ हे उपासक! तू काम-क्रोध आदि शत्रुओं का नाशक है।

२२०. इन्दविन्द्रेण नो युजा। सा. १४४९ चन्द्रसम शान्तिदायक भक्तिरस हमें परमैश्वर्यशाली परमात्मा के साथ त्यागयुक्त कर दे।

२२१. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरुत्तमम्। सा. १४५५ ज्योतियों की ज्योति वह परमेश्वर सर्वश्रेष्ठ और सर्वोत्तम है।

२२२. अङ्घि खं वर्तया पविम्। सा. १५२६ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप हमें स्थिर रहने वाली महासम्पत्ति-यौगिक विभूतियां प्रदान कीजिए।

२२३. अग्ने मित्रो असि प्रियः। सा.१५३६ हे ज्ञानस्वरूप प्रभो! आप ही सब आवश्यक वस्तुएं प्राप्त कराकर मुझे तृप्त करने वाले हैं।

२२४. सखा सखिभ्य इड्यः। सा. १५३६ प्रभो! आप ही सब मित्रों से स्तुति के योग्य सखा हैं अर्थात् आप ही सबके उपासनीय और सबके आश्रय हैं।

२२५. समग्निरिध्यते वृषा। सा. १५३८ हम ज्ञानस्वरूप और सुखवर्षी परमात्मा को अपने हृदय-मन्दिरों में प्रदीप्त करते हैं।

२२६. अग्निमीडे स उ श्रवत्। सा. १५४३ मैं जीवन के पथ-प्रदर्शक प्रभु की स्तुति करता हूँ। वह प्रभु निश्चय ही सुनता है।

२२७. पाहि विश्वस्माद्रक्षसो अराव्णः। सा. १५४५ हे प्रभो! आप सभी राक्षसी

भावों, राक्षसी वृत्तियों और सभी अदान भावनाओं से हमारी रक्षा कीजिए।

२२८. भद्रं मनः कृणुष्व वृत्रतूर्ये। सा. १५६० हे साधक! पाप-वृत्रों का संहार करने योग्य संग्राम में तू अपने मन को शिवसंकल्पमय बना। अपने मन में वासना-संहार का दृढ़ निश्चय कर।

२२६. वनेमा ते अभिष्टये। सा. १५६० प्रभो! काम-क्रोधादि वृत्रों पर विजय पाने के लिए हम आपकी उपासना करते हैं।

२३०. तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति। सा. १५६३ हे पापविनाशक! तू राक्षसी वृत्तियों को एक-एक करके जला दे।

२३१. स्वयं यजस्व तन्वम्। सा. १५८६ हे मानव! तू अपने इस शरीर में, इस मानव योनि में अपने आपको लोकहित के लिए समर्पित कर दे। अथवा तू स्वयं अपने शरीर को यज्ञमय बना।

२३२. मा भेम। सा. १६०५ हम अभय हो।

२३३. अहिर्न जूर्णामति सर्पति त्वचम्। सा. १६१५ जैसे सांप जीर्ण त्वचा कांचली को उतार कर फेंक देता है, उसी प्रकार प्रभुभक्त पिछले अशुभ जीवन को समाप्त कर नव-जीवन से चमक उठता है।

२३४. अस्माकमस्तु केवलः। सा. १६२० हमारा तो एकमात्र वह प्रभु ही उपास्य और सेवनीय हो।

२३५. किमित्ते विष्णो परिचक्षि नाम। सा. १६२५ हे सर्वव्यापक परमेश्वर! मैं आपको किस नाम से सम्बोधित करूं?

२३६. मां वर्पो अस्मदप गूह। सा. १६२५ हे प्रभो! आप अपने तेजोमय रूप को हमसे ओझल मत कीजिए।

२२७. मे जुषस्व शिपिविष्ट हव्यम्। सा. १६२७ हे ज्योतिर्मय परमेश्वर! आप मेरी श्रद्धा, प्रेम और भक्ति की भेंट को प्रीतिपूर्वक स्वीकार कीजिए।

२२८. उरुकृदुरु णस्कृधि। सा. १६४६ हे महान् कर्म करने वाले प्रभो! आप हमें महान कर्मकारी और विशाल उदार हृदय बनाइए।

२२६. विष्णोः कर्माणि पश्यत। सा. १६७१ हे मनुष्यो! सर्वव्यापक परमात्मा के आश्चर्यकारक कर्मों और सामर्थ्यों को देखो, विचारो।

२३०. कस्तमिन्द्र त्वा वसवा मर्त्यो दधर्षति। सा. १६८२ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! जिसे आप बसाने वाले हैं, जिसके आप रक्षक हैं, उसे कौन मरणधर्मा मनुष्य नष्ट कर सकता है?

२३१. न स्तोमं जुजुषाण आ गहीन्द्र। सा. १६६२ हे परमैश्वर्यशाली परमेश्वर! हमारे स्तुति वचनों को प्रेमपूर्वक स्वीकार करते हुए आप हमारे हृदय मन्दिरों में प्रकट होइए।

२३२. नुदस्व याः परिस्पृधाः। सा.१७१४ हे दृढ़ संकल्प उपासक! जो तेरी उन्नति से स्पर्धा करने वाली काम-क्रोध, ईर्ष्या-द्वेष आदि दुर्भावनाएं हैं, उन्हें परे धकेल।

२३३. इदं श्रेष्ठं ज्योतिषां ज्योतिरागात्। सा. १७४६ अहो! मेरे जीवन में यह ज्योतियों की ज्योति परमज्योति, ब्रह्मज्योति प्रकट हो गई है।

२३४. त्वामिच्छवसस्पते यन्ति गिरो न संयतः। सा.१७६६ हे बलों के भण्डार प्रभो! विषयों में बद्ध पुरुष की वाणियां कभी आपका स्मरण नहीं करती।

२३५. तस्य व्रतानि न मिनन्ति धीराः। सा.१७६४ परमात्मा के नियमों को विद्वान् भी नहीं तोड़ सकते। अथवा प्रभु के कर्मों का विद्वान् भी पार नहीं सकते।

२३६. श्रुधी हवं वि पिपानस्य। सा. १७६८ हे प्रभो! आपके आनन्दरस के पिपासु की टेर-प्यार को सुनिए।

२३७. सदा ते नाम स्वयशो विवक्मि। सा. १७६६ हे प्रभो! मैं सदा आपके यशस्वी 'ओ३म् नाम का विशेष रूप से जप करता हूँ।

२३८. मारे अस्मन्मघवन् ज्योक्कः। सा. १८०० हे ऐश्वर्यों के स्वामिन्! आप देर तक हमसे दूर निवास मत कीजिए, शीघ्र दर्शन दीजिए।

२३६. तं त्वा परि ष्वजामहे। सा. १८०२ हे प्रभो! हम उपासक आपका आलिंगन करते हैं।

२४०. हृदा वेनन्तो अभ्यचक्षत त्वा। सा. १८४६ हे परमेश्वर! हृदय से आपकी प्राप्ति की प्रबल कामना करते हुए उपासक आपका दर्शन करते हैं।

२४१. वि रक्षो वि मृधो जहि। सा. १८६७ हे उपासक! तू राक्षसी वृत्तियों और हिंसक भावनाओं को पूर्णरूपेण नष्ट कर डाल।

२४२. वि न इन्द्र मृधो जहि। सा. १८/६८ हे प्रभो! आप हमारे ईर्ष्या-द्वेष आदि भावों को पूर्ण रुपेण नष्ट कर दी जिए।

२४३. नीचा यच्छ पृतन्यतः। सा. १८/६८ हे परमात्मन! हमारे काम क्रोध आदि आसुर भावों को परास्त कर दीजिए

२४४. मर्माणि ते वर्मणा छादयामि। सा. १८/७० मैं (सद्रगुरू) तेरे मर्ग स्थलों को जहां काम आदि के प्रहार हो सकते हैं उन्हें ब्रह्म कवच द्वारा आच्छादित करता हूँ।

२४५. जयन्तं त्वानु देवा मदन्तु। सा. १८/७० मनो विकारों पर विजच पाते हुए तुझे देखकर उपासक जन प्रसन्न हो जांए और तुझे उत्साहित करें।

२४६. अन्धा अमित्रा भवत। सा. १८/७१ कटुता का व्यवहार करने वालों! क्या तुम अन्धे हो गये हो? क्या तुम्हें कटुता का पिरणाम दिखायी नहीं देता?

२४७. ब्रह्म वर्म ममान्तरम्। सा. १८७२ परमेश्वर, वेद-ज्ञान मेरा (मुझ उपासक का) आन्तरिक कवच हो।

२४८. भदं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः। सा. १८७४ हे विद्वानों! आपकी उपदेश-वाणियों से प्रेरित होकर हम कानों से सदा कल्याणकारक एवं सुखकर वचनों को सुनें।

२४६. भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः। सा. १८७४ अपने सत्संग और ज्ञान-दान से हमारा त्राण रक्षा करने वाले विद्वानो! हम आँखों से सदा भद्र ही देखें।

२५०. स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु। सा. १८७५ ब्रह्माण्ड एवं ज्ञान का पति परमेश्वर हममें कल्याण की भावना स्थापित करे।

।। इति ।।

,,,

सामवेद मन्त्र

१. इत एत उदारुहन्दिवः पृष्ठान्या रुहन्।
प्र भूर्जयो यथा पथोद्यामङ्गिरसो ययुः।। पू. आग्नेय काण्ड प्र. १ द. १० म. २ (६२)

जैसे प्राणाभ्यासी योगी मूलाधार चक्र से ऊपर के पथों पर क्रमशः ऊपर-ऊपर आरोहण कर मस्तिष्क के भिन्न भिन्न स्तरों पर आरोहण करते लेते हैं, और वहां दिव्य प्रकाश को प्राप्त कर लेते हैं, वैसे ही हे उपासक! तू भी इस निमित्त सामर्थ्य वाला बन, और अभ्यास मार्गों पर विजय प्राप्त कर।

२. इम उत्वा विचक्षते सखाय इन्द्र सोमिनः।
पुष्टावन्तो यथा पशुम्।। ऐ .का. प्र. २ द. ५ म. २ (१३६)

हे परमेश्वर! ये उपासक जो कि आपके सखा हैं, निश्चय से भक्तिरस को लिये हुए आपकी वैसे ही विशेष प्रतीक्षा कर रहे हैं, जैसे कि पुष्टि देने वाले घास चारे को तैयार किये हुए पशुपालक गौ आदि पशु के आने की प्रतीक्षा किया करते हैं।

३. क्व२स्य वृषभो युवा तुविग्रीवो अनानतः।
ब्रह्मा कस्त सपर्यति।।८।। (१४२) ऐ. का. प्र.१

जो परमेश्वर समग्र पापों को निगले हुए है, सदा युवा-शक्ति वाला, कभी न झुकने वाला, तथा जिसे ब्रह्मा कहते हैं, वह सुख शान्ति की वर्षा करने वाला परमेश्वर कहां प्राप्त किया जा सकता है? तथा किन गुणों वाला उपासक उस परमेश्वर की पूजा और भक्ति कर सकता है?

४. उपह्वरे गिरीणा सङ्गमे च नदीनाम्।

धिया विप्रो अजायत।।६।। ऐन्द्र काण्ड प्र. १ द. २ म. ६ (१४३)

पर्वतों की गुफाओं और घाटियों में तथा नदियों के संगमों पर, उपासक धारणा, ध्यान सात्विक बुद्धि और सात्विक कर्मों द्वारा, परमेश्वर सम्बन्धी विषयों में मेधावी बन जाता है।

५.न हि वश्चरमं च न वसिष्ठः परिमँ सते।

अस्माकमद्य मरुतः सुते सचा विश्वे पिबन्तु कामिनः।। आ.का. प्र. ३ द. ५ म. (२४१)

हे उपासकों! तुममें से निचली कोटि के भी उपासक को, वह विश्ववासी तथा सबको बसाने वाला परमेश्वर त्यागता नहीं। हे सर्वसाधारण उपासक जनों! तुम सब आज हमारे इस सोम-यज्ञ में, भक्ति यज्ञ में सम्मिलित होओ, और चाहनापूर्वक उस भक्ति रस का पान करो।

६.यद्द्याव इन्द्र ते शतँ शतं भूमीरुत स्युः।

न त्वा वज्रिन्त्सहस्त्रँ सूर्या अनु न जातमष्ट रोदसी।। ऐ. का. प्र.३ द.६ म.२ (२७८)

हे परमेश्वर! यदि सैकड़ों द्युलोक हों और सैकड़ों पृथिवियां हों और साथ ही चाहे हजारों सूर्य हो, वे आपकी व्याप्ति की समीपता तक नहीं पहुंच सकते। उत्पन्न हुआ सम्पूर्ण जगत्, द्युलोक तथा भूलोक मिल कर भी आपकी व्याप्ति की समीपता तक नहीं पहुंच सकते। आप इन सबके प्रति वज्रधारी हैं, इन सबके नियामक हैं।

७. इन्द्राग्नी अपादियं पूर्वागात्पद्वतीभ्यः।

हित्वा शिरो जिह्वया रारपच्चरित्त्रँशत्पदा न्यक्रमीत्।। ऐ. का. प्र.३ द.६ म.६(२८१)

हे परम ऐश्वर्यवान् तथा जगत् के नेता प्रभो! यह श्रद्धा पैरों से रहित है, तब भी उपासक के हृदय में पहले ही आ विराजती है, जबकि पैरों वाले सर्वसाधारण जन ब्रह्ममूहूर्त में अभी सो रहे होते हैं। इस श्रद्धा का सिर नहीं है, तब भी यह श्रद्धा उपासक की जिह्वा द्वारा आपका नाम रटाती है, आपके स्तोत्रों का पाठ कराती है, आपके गान गवाती है, और उपासक के जीवन में दिन रात के ३० मुहूर्तों में निरन्तर विराजमान रहती है।

८. इन्द्र नेदीय एदिहि मितमेधाभिरूतिभिः।

आ शंतम शंतमाभिरभिष्टिभिरा स्वापे स्वापिभिः।।

ऐ. का. प्र.३ द.६ म.१० (२८२)

हे परमेश्वर! आप हमारे अत्यन्त निकट अर्थात् इस हृदयस्थल में अवश्य आइये, प्रकट होइये। आप रक्षा के ऐसे विधि विधानों के संग आइये कि हमें आत्मरक्षार्थ अपनी परिमित बुद्धि ही लगानी पड़े। हमें आत्मरक्षार्थ बहुत चिन्ता न करनी पड़े। हे अत्यन्त शान्त! आप अपनी अत्यन्त

शान्त इच्छाओं के संग आइये। हे उत्तमबन्धु! उत्तमबन्धुत्व को निभाने वाली अपनी अत्यन्त शान्त इच्छाओं के संग आइये।

९. क ई व्यक्ता नरः सनीडा रुद्रस्य मर्या अथा स्वश्वाः।।७।। ऐ का.प्र.३ द.५ म.७(४३३)

कौन ऐसे नर नारियां हैं जो कि छल कपट से रहित स्पष्ट अर्थात् सत्य व्यवहारों वाले हों? जैसे पक्षी एक घोंसले में प्रेमपूर्वक रहते हैं, वैसे जो पृथिवी रूपी घर में प्रेमपूर्वक रहते हो, जो सबको पापहारी ईश्वर की सन्तानें समझते हों, तथा जिनके मन और इन्द्रियां स्वच्छ हों?

१०.उप प्रक्षे मधुमति क्षियन्तः पुष्येम रयिं धीमहे त इन्द्र।।८।। ऐ का. प्र.२ द.६ म.८ (४४४)

मधुमती चित्त वृत्ति वाले चित्त में, जिसमें कि व्युत्थान वृत्तियों का प्रकर्षरूप में क्षय हो चुका है, निवास करते हुए हम योगीजन, परमेश्वर रूपी महाधन को परिपुष्ट करते हैं,

११.स पवस्व य आविथेन्द्र वृत्राय हन्तवे।
वव्रिवाँ सं महीरपः।।७।। ऐ का. प्र.६ द.१ म.८ (४६४)

हे भक्तिरस! वह तू मुझमें प्रवाहित हो जा, और मुझे पवित्र कर, तूंने जीवात्मा को घेर कर उसकी रक्षा की है, जिस जीवात्मा ने कि पापवृत्रों की हत्या के लिये, महाव्रतों का वरण किया है।

१२. एष प्र कोशे मधुमाँ अचिक्रददिन्द्रस्य वज्रो वपुषो वपुष्टमः।
अभ्यु२तस्य सदुधा धृतश्चुतो वाश्रा अर्षन्ति पयसा च धेनवः।।२।।
उत्तरार्चिक पावमान काण्ड
प्र.६ द.६ म.३ ५५६

यह मधुर आनन्दरस वाला प्रभु हृदयकोश में स्थित हुआ, उपासक का बार-बार आह्वान करता है। इन्द्रियों के अधिष्ठाता जीवात्मा का यह प्रभु वज्ररूप है। जीवात्मा परमानन्दरूपी वज्र द्वारा पापवृत्ति का विनाश करता है। यह प्रभु अविद्याग्रन्थि के छेदन करने वालों में सर्वश्रेष्ठ छेदन करने वाला है। सत्य स्वरूप परमात्मा के ज्ञानदुग्ध को उत्तम प्रकार से दोहने वाली, ज्ञानघृत के श्रौतरूप वैदिक वाणियां परमात्मा का ही वर्णन करती हुई इस तक पहुंचती है, जैसे कि दूधभरी दुधार गौएं रम्भारती हुई गोस्वामी को पहुंचती हैं, या बछड़ों की ओर पहुंचती हैं।

१३.आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम्।।२।। उ. प्र.२ सूक्त ६ म. २ (८५१)

इसके पश्चात् अर्थात् मोक्ष प्राप्त करने के पश्चात् स्वात्मनिहित संचितसंस्कारों के अनुसार मुक्तात्मा फिर मातृ गर्भ को प्राप्त होते हैं, और नामकरण यज्ञ से प्राप्त नये नामों को धारण करते हैं। यह निश्चित है।

१४.पवस्व विश्वचर्षण आ मही रोदसी पृण।
उषाः सूर्यो न रश्मिभिः।।५।। उ. प्र. ३ सूक्त ४ म. ५ (८६६)

हे विश्वद्रष्टा परमेश्वर! आप सबको पवित्र कीजिये, महान् द्युलोक और भूलोक को पूर्णरूप

में सुख-सामग्री से भर दीजिए, जैसे कि उषाओं को सूर्य अपनी रश्मियों द्वारा भर देता है।

१५.विश्वाः पृतना अभिभूतरं नरः सजूस्ततक्षुरिन्द्रं जजनुश्च राजसे।

क्त्वे वरे स्थेमन्यामुरीमुतोग्रमोजिष्ठं तरसं तरस्विनम्।।१।। उ. प्र. ३ सूक्त १४ म. १ (६३०)

काम-क्रोध आदि की सब सेनाओं का सर्वथा पराभव करने वाले, सदा उपासक के साथ रहने वाले, श्रेष्ठ स्थान हृदय में बसे हुए, काम-क्रोध आदि को पूर्णतया मार देने वाले, और उग्ररूप, अत्यन्त ओजस्वी, बलशाली तथा बलस्वरूप परमेश्वर को उपासना के नेता उपासना यज्ञ की सफलता के लिये पहले मनोगत करते हैं, मानसिक ध्यान करते हैं, तत्पश्चात् उसे प्रत्यक्ष रूप में जन्म देते हैं, प्रकट करते हैं।

१६.आ ते अग्न ऋचा हविः शुक्रस्य ज्योतिषस्पते।

सुश्चन्द्र दस्म विश्पते हव्यवाट् तुभ्यँ हूयत इषँ स्तोतृभ्य आभर।।२।। उ . प्र.३ सूक्त २१ म. २ (१०२३)

ज्योतियों के पति हे प्रकाशमय जगन्ननेता! पवित्र हुए उपासक की आत्मसमर्पणरूपी हवि, ऋचाओं में कथित विधि द्वारा आप के प्रति पूर्णतया समर्पित की गई है। हे सम्यक् आल्हाद देने वाले! हे प्रजाओं के पति! हे अविद्या विनाशक! हे समर्पित आत्म-हवि को स्वीकार करने वाले! आप अभीष्ट मोक्ष स्तोताओं को प्रदान कीजिये।

१७.आ ययोस्त्रिं शतं तना सहस्राणि च दद्महे।

तरत्स मन्दी धावति।।४।। उ. प्र. ४ सूक्त ५ म. ४ (१०६०)

जिन शारीरिक और मानसिक भोगों के विस्तार तीन सौ वर्षों की आयु तक चलते हैं, और जो भोग हजारों की संख्या में विद्यमान हैं, हम उपासक उन सबका तिरस्कार करते हैं। ऐसा उपासक आनन्द से विभोर होता हुआ मोक्ष की ओर दौड़ लगाता है, और भवसागर को तैर जाता है।

१८.द्विर्यं पंच स्वयशसँ सखायो अद्रिसँ हतम्।

प्रियमिन्द्रस्य काम्यं प्रस्नापयन्त ऊर्मयः।।२।। उ. प्र. ५ सूक्त१६ म. २ (१३३०)

द्विगुणित पांच अर्थात् ५ यम और ५ नियम, मानो सखा बन कर, जिस उपासक को व्रतपालन में पर्वत के सदृश सुदृढ़ और अटल बना देते हैं, उसे निज यश से यशस्वी कर देते है, परमेश्वर के प्यारे बना देते है, तथा प्रजाजन के प्रिय बना देते हैं, उसे ही भक्तिरस की लहरें मानो स्नान करा देती हैं।

१९.युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा।

अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर।।३।। उ. प्र. ५ सूक्त २३ म. ३(१३४६)

हे परमेश्वर! ज्ञानप्रकाशक, और आनन्दवर्षक चित्तहारी ''ऋक् और साम' से मिश्रित भक्तिगानों को हमारे साथ सदा जोते रखिये, ऋक् और साम मिल कर, दो कोखों के मध्यवर्ती

हृदय और छाती को आनन्द से पूरित कर दें, भर दें। तदन्तर हे परमेश्वर! हमारे भक्तिरसों का पान करते हुए आप, हमारी स्तुति और प्रार्थना की वाणियों का, समीपवर्ती होकर, श्रवण कीजिये।

२०.अभि प्रयाँसि वाहसा दाश्वाँअश्नोति मर्त्यः।

क्षयं पावकशोचिषः।।२।। उ. प्र.७ सूक्त ६ म. २ (१५५७)

आत्मसमर्पक उपासक, शक्तियां प्राप्त कराने वाले परमेश्वर की सहायता द्वारा, योगाभ्यास में प्रयास पर प्रयास करता है, और पवित्र ज्योति स्वरूप परमेश्वर रूपी घर का आश्रय पा लेता है।

२१.समिद्धमग्निं समिधा गिरा गृणे शुचिं पावकं पुरो अध्वरे ध्रुवम्।

विप्रँ होतारं पुरुवारमद्रुहं कविँ सुम्नैरीमहे जातवेदसम्।।१।। उ. प्र.७ सूक्त १३ म. १ (१५६७)

आत्मसमर्पणरूपी समिधा द्वारा सम्यक् प्रदीप्त हुए, प्रकट हुए प्रकाशस्वरूप जगन्नेता की स्तुति मैं वेदवाणियों द्वारा करता हूं, जो जगन्नेता कि स्वयं शुद्ध है, और अन्यों को पवित्र करता है, जो हिंसा रहित उपासना यज्ञ में सदा सम्मुख रहता है और कूटस्थ तथा निश्चल है, जो मेध ावी तथा सर्वत्र परिपूर्ण सबका दाता, सबके द्वारा वरणीय, किसी से भी द्रोह न करने वाला, वेदकाव्यों का कवि प्रत्येक पदार्थ में विद्यमान और वेदोपदेष्टा है, उसे सुखोत्पादक श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा हम प्राप्त करते हैं।

मा भेम मा श्रमिष्मोग्रस्य सख्ये तव।

२२.महत्ते वृष्णो अभिचक्ष्यं कृतं पश्येम तुर्वशं यदुम्।। उ. प्र. ७ सूक्त १७ म.१ (१६०५)

हे परमेश्वर! न्याय-नियमों मे उग्र आपके सखिभाव में हम भयरहित हो जाते हैं, और सन्ताप तथा खेद से रहित हो जाते हैं। सुख शान्ति की वर्षा करने वाले आप का महाकर्म सर्वत्र विख्यात है, वह यह कि हम इन्द्रियों को शीघ्र वश में करने वाले, प्रयत्नशील उपासक को सफल होते देखते हैं।

२३.कुवित्सस्य प्रहि वज्रं गोमन्तं दस्युहा गमत्।

शचीभिरप नो वरत्।।३।। उ. प्र. ८ सूक्त ४ म. ४ (१६६८)

अपने पापों के विनाश में बहुत प्रयास करने वाले उपासक के ऐन्द्रियिक पाप समूह के प्रति क्षयकारी पापों का हनन करने वाला परमेश्वर, अवश्य उपासक की सहायतार्थ शीघ्र आ प्रकट होता है और अपनी शक्तियों द्वारा पाप दस्युओं को हटा कर हम उपासकों का वरण कर लेता है, हमें अपना लेता है।

२४.अमित्रसेना मघवन्नस्मांछत्रुयतीमभि ।

उभौ तामिन्द्र वृत्रहन्नग्निश्च दहतं प्रति ।। उ०प्र०.६ सू०.६ मं०.२(१८६५)

ज्ञानौश्वर्य से सम्पन्न, वृत्रों के विनाश करने बाले हे जीव, तुम और यह परमात्मा दोंनों ही मिलकर काम आदि शत्रुओं की उस सेना को एक-एक करके जला दो, जो हमारी शक्तियों को नष्ट-भ्रष्ट कर रही है।

२५.वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ प्रतन्यतः ।
यो अस्माँ अभिदासत्यधरं गमयातमः ।। उ०प्र०.६ सू०.७ मं०.२(१८६८)

हे परमैश्वर्यशाली परमात्मान्! हमारी हत्या करने वाले इन काम क्रोधादि भावों को आप पूर्ण रुप से नष्ट कर दीजिए। इन असुरी भावों को हरा दीजिए जो अवगुण रुप अज्ञान हमें अपना दासबना लेता है, उसे आप पराजित कर दीजिए। आप जैसे मित्र की कृपा से मैं इन्हें जीत लूं।

।। इति ।।

अथर्ववेद सूक्ति-सुधा

१. वसोष्पते नि रमय। १/१/२ हे ऐश्वर्य के स्वामिन्! मुझे पूर्ण सुख प्रदान करो।

२. मय्येवास्तु मयि श्रुतम्। १/१/३ मेरे द्वारा श्रुत और पठित वेदज्ञान मुझ में ही स्थिर रहे। अथवा, मैं जो कुछ स्मरण करूं, वह मुझे स्मरण रहे।

३. सं श्रुतेन गमेमहि। १/१/४ हम सुने एवं पढ़े हुए वेदज्ञान, वेदोपदेश के अनुसार आचरण करें। अथवा, हम वेदज्ञान से सदा संगत रहें।

४. मा श्रुतेन वि राधिषि। १/१/४ हम सुने एवं पढ़े हुए वेदज्ञान, वेदोपदेश के अनुसार आचरण करें। अथवा, हम वेदविद्या से कभी विमुख न हों।

५. अश्मानं तन्वं कृधि। १/२/२ हे ईश्वर! हमारे शरीर को पत्थर के समान दृढ़ बना दे।

६. अरातीरप द्वेषांस्या कृधि। १/२/२ हे ईश्वर! अदानशीलता और द्वेष भावनाओं को हमसे दूर कर दे।

७. अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजम्। १/४/४ जलों में अमृत है, अमरत्वदायिनी शक्ति है और जलों में रोगनाशक सामर्थ्य भी है।

८. अश्वा भवथ वाजिनो गावो भवथ वाजिनीः। १/४/४ हमारे घोड़े बलशाली हों, हमारी गौएं भी बलशालिनी हों।

९. अपो याचामि भेषजम्। १/५/४ मैं जलों से रोगों को दूर करनेवाली औषधि की याचना करता हूँ। अथवा, मैं परमेश्वर से जलरूप औषध की याचना करता हूँ।

१०. शं नो देवीरभिष्टये। १/६/१ आनन्दप्रद और सर्वप्रकाशक परमात्मा मनोवांछित फल-प्राप्ति के लिए हमारे लिए कल्याणकारी हो।

११. आपो भवन्तु पीतये। १/६/१ सर्वव्यापक परमात्मा परमानन्द-मोक्षप्राप्ति के लिए, हमारे लिए कल्याणकारी हो।

१२. अग्ने तौलस्य प्राशान। १/७/२ हे ज्ञानिन्! तेजस्विन्! तू तुला हुआ, मित भोजन किया कर।

१३. यदुक्थानृतं जिह्वया वृजिनं बहु। हे मनुष्य! तू वाणी से जो झूठ बोलता है, वह बहुत बड़ा पाप है।

१४. इहैतु सर्वो यः पशुरस्मिन् तिष्ठतु या रयिः। १/१५/२ हे देवों! जितने भी पशु हैं, वे सब इस यजमान के यहां आ जाएं और जितना भी धन है, वह सब इसके अधिकार में ठहरे अर्थात् वैदिक गृहस्थ अनेक प्रकार के पशुओं से सम्पन्न और धन-धान्य से भरपूर हों।

१५. ब्रह्म वर्म ममान्तरम्। १/१६/४ परमेश्वर और वेद मेरा आन्तरिक कवच है।

१६. मा नो विददभिभा मो अशस्तिः। १/२०/१ पराजय, तिरस्कार और अकीर्ति हमें सुखी करे।

१७. न यस्य हन्यते सखा न जीयते कदाचन। १/२०/४ परमेश्वर के मित्र को न कोई मार सकता है, न जीत सकता है।

१८. नीचा यच्छ पृतन्यतः। १/२१/२ सेना लेकर धावा करनेवाले फ़िसादियों को, शत्रुओं को कुचल डाल।

१६. वि वृत्रस्य हनू रुज।१/२१/३ हे राजन्! तू घेरा डालने वाले, शुभकार्य में रुकावट डालनेवाले के दोनों जबड़ों को तोड़ डाल।

२०. असमृद्धा अघायवः।१/२७/२ पापी लोग समृद्ध नहीं होते, फलते-फूलते नहीं।

२१. प्रेतं पादौ प्र स्फुरतम्।१/२७/४ मेरे दोनों पैरों! आगे बढ़ो, जल्दी-जल्दी उठो।

२२. प्रति दह यातुधानन्।१/२८/२ हे यज्ञाग्ने! तू पीड़ादायक रोगकृमियों को भस्म कर दे। अथवा हे राजन! तू पीड़क शत्रुओं को आग्नेय अस्त्रों से भस्म कर डाल।

२३. अहं शत्रुहोऽसानि।१/२६/५ मैं शत्रुओं का नाश करनेवाला होऊं।

२४. वसवो रक्षतेमम्।१/३०/१ हे नागरिकों! इस राष्ट्र की रक्षा करो।

२५. आदित्या जागृत यूयमस्मिन्।१/३०/१ हे नागरिकों! इस राष्ट्र में सदा जागृत सावधान रहो।

२६. स्वस्ति गोभ्यो जगते पुरुषेभ्यः।१/३१/४ गौओं का, मनुष्यों का और सारे संसार का कल्याण हो।

२७. विश्व सुभूतं सुविदत्रं नो अस्तु।१/३१/४ हमारा विश्व ऐश्वर्य से सम्पन्न और सुमति से युक्त अथवा ज्ञान से भरपूर हो।

२८. ज्योगेव दृशेम सूर्यम्।१/३१/४ हम चिरकाल तक सर्वप्रकाशक परमेश्वर का दर्शन करें। अथवा, हम चिरकाल तक सूर्य का दर्शन करते रहें अर्थात् हम दीर्घ जीवी हों।

२६. शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः।१/३३/४ हे विद्वानों! आप मुझे स्नेहयुक्त नेत्र से, मंगलमय दृष्टि से देखें।

३०. सा नो मधुमतस्कृधि।१/३४/१ वह तू मुलहठी नामक लते! हमें माधुर्यपूर्ण कर दे।

३१. जिह्वाया अग्रे मधु मे।१/३४/२ मेरी जिह्वा के अग्रभाग में माधुर्य-ब्रह्मज्ञान हो।

३२. जिह्वा मूले मधूलकम्।१/३४/२ मेरी जिह्वा के मूलभाग (हृदय अथवा मानस) में माधुर्य एवं ब्रह्मज्ञान विद्यमान रहे।

३३. मधुमन्मे निक्रमणम्।१/३४/३ मेरी कर्मप्रवृत्ति मिठासभरी हो। मेरा किसी स्थान पर जाना माधुर्य से ओत-प्रोत एवं सुखकर हो।

३४. मधुमन्मे परायणम्।१/३४/३ मेरा लौटना, किसी स्थान से विदाई माधुर्ययुक्त हो।

३५. वाचा वदामि मधुमत्।१/३४/३ मैं वाणी से सदा मधु सदृश मीठे वचन बोलूं।

३६. भूयासं मधु सन्दृशः।१/३४/३ मैं मधुमत् प्रिय बनूं, मधु जैसा मीठा हो जाऊं।

३७. मधोरस्मि मधुतरः।१/३४/४ मैं मधु से भी अधिक माधुर्ययुक्त होऊं।

३८. मधुधान्मधुमत्तरः।१/३४/४ मैं मधु चुआने-टपकाने वाले पौधे से भी अधिक माधुर्ययुक्त होऊं।

३६. वेनस्तत्पश्यत्परमं गुहा यत्।२/१/१ योगी लोग हृदयरूपी गुहा-गुफा में सर्वोत्कृष्ट ब्रह्म का दर्शन करते हैं।

४०. स नः पिता जनिता स उत बन्धुः।२/१/३ वह परमेश्वर हमारा पिता-पालन-पोषण करनेवाला है, वही हमारा जन्मदाता है, वही हमारा बन्धु है।

४१. एक एव नमस्यो विक्ष्वीड्यः।२/१/१ सम्पूर्ण भूतों-प्राणियों में केवल एक परब्रह्म परमेश्वर ही वन्दनीय और स्तुत्य है।

४२. एक एव नमस्यः सुशेवाः।२/२/२ एक परब्रह्म परमात्म ही वन्दनीय तथा सेवनीय है।

४३. इन्द्र जुषस्व प्र वह।२/५/१ हे परमैश्वर्यशाली प्रभो! हमारी श्रद्धा और प्रेमरूपी आत्मसमर्पण का प्रेमपूर्वक सेवन करो तथा हमे अभीष्ट फल प्राप्त कराओ।

४४. सं चेध्यस्वाग्ने प्र च वर्धयेमम्।२/६/२ हे परमात्मन्! तू इस जीव के हृदय मन्दिर में प्रकाशित हो और इस जीव के शक्ति, बल और विज्ञान को बढ़ा।

४५. स्वे गये जागृह्यप्रयुच्छन्।२/६/३ हे जीव! तू अपने शरीररूपी राष्ट्र में आलस्य और प्रमाद रहित होकर सदा सावधान रह।

४६. चक्षुर्मन्त्रस्य दुर्हार्दः पृष्टीरपि शृणीमसि।२/७/५ हमसे दुर्भाव और दुर्मन्त्रणा रखनेवाले पुरुष के विकारी नेत्र और पसलियों को हम छिन्न-भिन्न करते हैं।

४७. लांगलेभ्यो नमः।२/८/४ खेत जोतने वाले हलवाहों, किसानों को नमस्कार हो।

४८. अनागसं ब्रह्मणा त्वा कृणोमि।२/१०/१ हे रोगी! मैं (मनोविज्ञान चिकित्सक) तुझे वेदमन्त्रों के बल से निष्पाप एवं नीरोग बनाता हूँ।

४६. मेन्या मेनिरसि।२/११/१ हे मानव! तू वज्र का वज्र है।

५०. आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम।२/११/१ हे मनुष्य! तू अपने बराबर वालों

को लांघ जा और कल्याण प्राप्त कर।

५१. स्रक्त्योऽसि।२/११/२ तू प्रगतिशील है।

५२. प्रतिसरोऽसि।२/११/२ तू विरोध में भी आगे बढ़ने वाला है।

५३. प्रत्यभिचरणोऽसि।२/११/२ तू प्रत्याक्रमण करने वाला है।

५४. सूरिरसि।२/११/४ तू ज्ञानी है।

५५. वर्चोधा असि।२/११/४ तू तेजधारी है, वर्चस्वी है।

५६. तनूपानोऽसि।२/११/४ तू शरीर रक्षक है।

५७. शुक्रोऽसि।२/११/५ तू वीर्यवान् है, शीघ्रकारी है, शत्रुओं का शोषक है।

५८. भ्राजोऽसि।२/११/५ तू तेजस्वी है।

५६. स्वरसि।२/११/५ तू दिव्यप्रकाश है, आनन्दमय है।

६०. ज्योतिरसि।२/११/५ तू ज्योतिष्मान् है, प्रकाश रूप है।

६१. पापमार्छत्वपकामस्य कर्ता।२/१२/५ निन्दनीय इच्छा अथवा कार्य करनेवाला मनुष्य पापफल को प्राप्त होता है।

६२. ब्रह्मद्विषं द्योरभिसंतपाति।२/१२/६ ब्रह्मद्वेषी-ज्ञाननिन्दक, शुभकर्मों में विघ्नकर्ता को द्युलोक-सूर्य भी चारों ओर से पीड़ित करता है, अर्थात् ब्रह्मद्वेषी सर्वदा कष्ट उठाता है।

६३. शतं च जीव शरदः पुरूचीः।२/१३/३ हे मनुष्य! तू सौ वर्ष तक और उससे भी अधिक जीवित रह।

६४. अश्मा भवतु ते तनू।२/१३/४ हे बालक! तेरा शरीर, पत्थर जैसा दृढ़ हो।

६५. कृण्वन्तु विश्वे देवा आयुष्टे शरदः शतम्।२/१३/४ हे बालक! सूर्य, जल, पृथ्वी, वायु आदि सम्पूर्ण जड़ देवता और माता, पिता, आचार्य आदि चेतन देवता तेरी आयु को सौ वर्ष की बनाएं।

६६. ओजोऽस्योजो मे दाः।२/१७/१ हे प्रभो! तू ओजस्वरूप है, मुझे भी ओज प्रदान कर।

६७. बलमसि बलं मे दाः।२/१७/३ हे परमेश्वर! आप बलस्वरूप हैं, मुझे भी बल प्रदान कीजिए।

६८. आयुरस्यायुर्मे दाः।२/१७/४ हे प्रभो! आप आयुरूप हैं, मुझे भी दीर्घायु प्रदान कीजिए।

६६. चक्षुरसि चक्षुर्मे दाः।२/१७/६ हे परमेश्वर! आप चक्षुष्मान् हैं, मुझे भी नेत्र-ज्योति प्रदान कीजिए।

७०. परिपाणमसि परिपाणं मे दाः।२/१७/७ प्रभो! तू प्राणिमात्र का परिपालन करने वाला है, मुझे भी दूसरों का पालन करने की शक्ति प्रदान करो।

७१. सं सिंचामि गवां क्षीरम्।२/२६/४ मैं चुस्कियां ले लेकर (घूंट-घूंट करके, धीरे-धीरे) गोदुग्ध का पान करता हूँ।

७२. ध्रुवा गावो मयि गोपतौ।२/२६/४ मुझ गोपति-गोपाल के घर में गौएं सदा विद्यमान रहें।

७३. आ हरामि गवां क्षीरम्।२/२६/५ मैं गौओं का दूध और इन्द्रियों से ज्ञान प्राप्त करता हूँ।

७४. प्राशं प्रतिपाशो जहि।२/२७/१ हे दोषों को दग्ध करने वाले आचार्य! तू प्रतिपक्षी के प्रश्नों-सन्देहों को काट दे, निर्मूल कर दे।

७५. प्राशि मामुत्तरं कृषि।२/२७/७ हे आचार्य! तू वादविवाद में मुझे श्रेष्ठतर बना।

७६. मेमं मित्रा वधिषुर्मो अमित्राः।२/२८/३ हे परमेश्वर! इस बालक को मित्र और अमित्र कोई भी न मारे।

७७. मा क्षुधन्मा तृषत्।२/२६/४ संसार का कोई भी प्राणी भूखा-प्यासा न रहे।

७८. शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयामि।२/२६/६ हे बालक मैं आचार्य तेरे हृदय को कल्याणकारी शिक्षाओं से तृप्त करता हूँ।

७९. अनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः।२/२६/६ हे कुमार! तू नीरोग और ब्रह्मचर्य के तेज से सम्पन्न होकर प्रसन्न रह।

८०. त्वं जीव शरदः सुवर्चाः।२/२६/७ हे बालक! तू तेजस्वी बनकर शरद् ऋतुओं में सुख से जी अथवा वर्षों जीवित रह।

८१. यदन्तरं तद् बाह्यम्।२/३०/४ जो हृदय में है, वही बाह्य व्यवहार में होना चाहिए।

८२. यद्बाह्यं तदन्तरम्।२/३०/४ जो बाहर प्रदर्शन में है, वही हृदय में होना चाहिए।

८३. दिवं गच्छ।२/३४/५ हे मुमुक्षु पुरुष! ब्रह्मपद मोक्ष को प्राप्त कर।

८४. विश्वकर्मन् नमस्ते पाह्यस्मान्।२/३४/५ हे विश्वस्रष्टा! आपको नमस्कार हो। आप हमारी रक्षा करो।

८५. सुवाना पुत्रान् महिषी भवति।२/३६/३ अनेक पुत्रों को जन्म देती हुई नारी अपने घर की पटरानी बनती है।

८६. भगस्य नावमा रोह।२/३६/५ हे कन्ये! तू सौभाग्य की नौका पर आरोहण कर।

८७. अभि प्रेत मृणत सहध्वम्।३/१/२ हे सैनिकों! आगे बढ़ो, हिंसा करते हुए सैनिकों को मारो और विजयी बनो।

८८. प्र ते वज्रः प्रमृणन्नेतु शत्रून्।३/१/४ हे राजन! तेरा शस्त्र-शत्रुओं का विनाश करता हुआ आगे-आगे बढ़ता जाए।

८९. विष्वक् सत्यं कृणुहि चित्रमेषाम्।३/१/४ हे राजन्! तू शत्रुसेना के चित्त को निश्चय ही अव्यवस्थित कर दे। अथवा शत्रुसेना के चित्त को सतपथगामी बना दे।

९०. इन्द्र सेनां मोहयामित्राणाम्।३/१/५ हे राजन! सेनापते! तू शत्रुओं की सेना को अपनी माया के द्वारा कूटयुद्ध के द्वारा मोहित कर भ्रम में डाल दे।

९१. आपो विश्वस्य भेषजीः।य३/२/३ जल समस्त रोगों की औषधि है।

९२. तमसा विध्य शत्रून्।३/२/५ हे सेनापते! शत्रुओं को तमस् अन्धकार फैलानेवाले अस्त्रों से मार गिरा।

९३. श्येनो भूत्वा विश आ पतेमाः।३/३/३ हे राजन्! इन प्रजाओं की रक्षा करने के लिए बाज बनकर बाज के समान बलवान बनकर आ।

९४. उपसद्यो नमस्यो भवेह।३/४/१ हे राजन! तू अपने राज्य में सभी के द्वारा सेवनीय और नमस्कार के योग्य बन।

९५. न उग्रो वि भजा वसूनि।३/४/२ हे राजन्! तू दुष्टों के लिए उग्र होकर हम प्रजाओं मे धनों का न्यायपूर्वक विभाग कर।

९६. जायाः पुत्राः सुमनसो भवन्तु।३/४/३ स्त्री और पुत्र शुभ मन वाले, आज्ञानुसार चलने वाले हों।

९७. मनो वसुदेयाय कृणुष्व।३/४/४ अपने मन को याचकों को धन देने में लगाओ।

९८. आप इद्धा उ भेषजीः।३/७/५ जल निश्चय ही स्नान, पान आदि रूप में रोगों को नष्ट करने वाली औषधि है।

९९. अपास्मत् सर्व दुर्भूतम्।३/७/७ सब रोग, दुर्गुण और दुर्भाव हमसे दूर हो जाएं।

१००. अयमग्निर्दीदायद् दीर्घमेव।३/८/३ यह आत्माग्नि खूब प्रदीप्त हो।

१०१. सा नो अस्तु सुमंगली।३/१०/२ वह नव वधू हमारे लिए मंगलकारिणी हो।

१०२. वयं स्याम पतयो रयीणाम्।३/१०/५ हम विविध प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी हों।

१०३. देवानां सुमतौ स्याम।३/१०/७ हम विद्वानों की कल्याणकारिणी सुमति में रहें।

१०४. कामानस्माकं पूरय।३/१०/१३ प्रभो! हमारी कामनाओं को पूर्ण कर।

१०५. शतं जीव शरदो वर्धमानः।३/११/४ हे कुमार! तू वृद्धि को प्राप्त करता हुआ, सर्वविध फलता और फूलता हुआ सौ शरद् ऋतुओं तक जीवित रह।

१०६. जरा त्वा भद्रा नेष्ट।३/११/७ हे कुमार! वृद्धावस्था भी तुझे सुखों को प्राप्त कराए अर्थात् वृद्धावस्था में भी शरीर के वातादि रोग तुझे न सताएं।

१०७. शतं जीवेम् शरदः सर्ववीराः।३/१२/६ हम वीर पुत्रादि सहित सौ शरद् ऋतु पर्यन्त जीवित रहें।

१०८. आपो भद्राः।३/१३/५ जल सबका कल्याण करने वाले हैं।

१०९. घृतमिदाप आसन्।३/१३/५ जल निश्चय ही कान्ति देने वाले और पौष्टिक

हैं।

११०. शिवो वो गोष्ठो भवतु।३/१४/५ गौओं! यह गोष्ठ (गौएं बांधने का स्थान) तुम्हारे लिए मंगलकारी हो।

१११. भग प्र णो जनय गोभिरश्वैः।३/१६ /३ हे परमैश्वर्यसम्पन्न प्रभो! हमें गौओं (ज्ञानेन्द्रियों) और अश्वों (कर्मेन्द्रियों) से और भी अधिक उन्नत कीजिए।

११२. वयं भगवन्तः स्याम।३/१६/५ प्रभु कृपा से हम सौभाग्यशाली बनें।

११३. कृते योनौ वपतेह बीजम्।३/१७/२ यम नियम आदि के अनुष्ठान से तैयार की गई इस मानव योनि में शुभ कर्मरूपी बीज बोओ। अथवा भूमि तैयार करके बीज बोओ।

११४. शुनं कीनाशा अनु यन्तु वाहान्।३/१७/५ किसान लोग बैलों को सुखपूर्वक हांकें।

११५. उत्तराहमुत्तर।३/१६/४ हे उत्कृष्टतर औषधि- ब्रह्मविद्या! तुझे सेवन करके मैं भी उत्कृष्ट बनूं।

११६. तं जानन्नग्न आ रोह।३/२०/१ हे ज्ञानिन्! उस परमात्मा को जानते हुए तू आगे बढ़।

११७. अग्ने अच्छा वदेह नः।३/२०/२ हे राजन! तू हमारे प्रति उत्तम मनवाला, शुभ संकल्प वाला और कल्याणकारी बन। अथवा, हे प्रभो! हम पर कृपालु बनो।

११८. गोसनिं वाचमुदेयम्। मैं दूध जैसी श्वेत- सत्य और मीठी वाणी बोलूं।

११६. वर्चसा माभ्युदिहि।३/२०/१० हे परमात्मन्! मुझे ब्रह्मतेज से और भी उन्नत कर।

१२०. आ वीरोऽत्र जायतां पुत्रः।३/२३/२ हे स्त्रि! तेरे गर्भ से वीर पुत्र जन्म ले।

१२१. पुमांसं पुत्रं जनय।३/२३/२ हे नारि! तू पुरूष सन्तान को अथवा पौरुष सम्पन्न पुत्र को जन्म दे।

१२२. पयस्वतीरोषधयः।३/२४/१ जौ, चावल आदि ओषधियां सारयुक्त हों।

१२३. पयस्वन्मामकं वचः।३/२४/१ मेरा वचन सारयुक्त और रसीला हो।

१२४. शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर।३/२४/५ हे मनुष्य! तू सैकड़ों हाथों से ज्ञान को ग्रहण कर और हजारों हाथों से लूटा, दान कर।

१२५. इषुः कामस्य या भीमा।३/२५/१ काम का बाण बड़ा भयंकर होता है।

१२६. इह पुष्टिरिह रसः।३/२८/४ इस घर में पुष्टि रहे, इस घर में रस-घी, दूधादि पदार्थों का प्राचुर्य हो

१२७. पशून् यमिनि पोषय।३/२८/४ हे यमिनि! गृहस्वामिनि! तू पशुओं का पालन-पोषण किया कर।

१२८. कामः समुद्रमाविवेश।३/२६/७ काम हृदयरूपी समुद्र में प्रविष्ट होता है।

१२६. अन्यो अन्यमभि हर्यत।३/३०/१ हे मनुष्यों! एक-दूसरे से दौड़कर मिलो,

परस्पर एक-दूसरे से प्रेम करो।

१३०. अनुव्रतः पितु पुत्रो मात्रा भवतु संमनाः।३/३०/२ पुत्र पिता के व्रतों-उत्तम गुणों को जीवन में धारण करनेवाला और माता के साथ प्रेम करने वाला हो।

१३१. जाया पत्ये मधुमतीं वाचं वदतु शन्तिवाम्।३/३०/२ पत्नी पति के प्रति मीठी और शान्ति देनेवाली ही वाणी बोले।

१३२. मा भ्राता भ्रातरं द्विक्षन्मा स्वसारमुत स्वसा।३/३०/३ भाई भाई से द्वेष न करे, बहन बहन से द्वेष न करे और भाई-बहन भी परस्पर द्वेष न करें।

१३३. अन्यो अन्यस्मै वल्गुवदन्त एत।३/३०/५ एक-दूसरे के प्रति माधुर्ययुक्त वाणी का प्रयोग करते हुए आगे बढ़ो।

१३४. समानी प्रपा सह वोऽन्नभागः।३/३०/६ तुम्हारी प्याऊ-पानी का स्थान और भोजनशाला एक ही हो।

१३५. अमृता वयम्।३/३१/११ हम अमर हैं।

१३६. सतश्च योनिमसतश्च वि वः।४/४/१ वह परमेश्वर सत्-व्यक्त जगत् के मूल कारण और असत्-अव्यक्त जगत् के अप्रकट, मूलकारण को प्रकट करता है।

१३७. ब्रह्म ब्रह्मण उज्जभार।४/१/३ निमित्त कारण ब्रह्म से ब्रह्म-प्रकृति उभर कर ऊपर आई अर्थात् ब्रह्म ने प्रकृति से निर्माण कार्य किया अथवा जगदुत्पादक ब्रह्म से ज्ञानमय वेद प्रादुर्भूत होता है।

१३८. कस्मै देवाय हविषा विधेम।४/२/२ हम आनन्दस्वरूप परमेश्वर के लिए श्रद्धा और प्रेम से आत्मसमर्पण करें।

१३९. एको राजा जगतो बभूव।४/२/२ परमेश्वर संसार के समस्त जीवों का एकमात्र राजा है।

१४०. यस्य छाया अमृतं यस्य मृत्युः।४/२/७ उस परमेश्वर का आश्रय मोक्ष सुखदायक है और उससे विमुख होना मृत्यु है।

१४१. स दाधार पृथिवीमुत द्याम्।४/२/७ वह परब्रह्म पृथिवी और द्युलोक को धारण करता है।

१४२. अभि प्रेहि माप वेनः।४/८/२ सामने की ओर-आगे बढ़, पीछे मत हट, अपनी तुच्छ कामना से अपनी शोभा कम मत कर, अपनी शान मत बिगाड़।

१४३. सत्यं वक्ष्यामि नानृतम्।४/९/६ मैं सत्य बोलूं, झूठ नहीं।

१४४. अनड्वान् विश्वं भुवनमाविवेश।४/११/१ परमात्मारूपी वृषभ सारे संसार में व्यापक हो रहा है।

१४५. त्रयान्छक्रो वि मिमीते अध्वनः।४/११/२ सर्वशक्तिमान् परमेश्वर तीनों लोकों अथवा जीवों के कर्मफल भोगने के लिए सात्विक, राजस और तामस-तीन प्रकार के मार्गों का निर्माण करता है।

१४६. दुहे सायं दुहे प्रातः।४/११/१२ मैं सायंकाल और प्रातःकाल वेदरूपी गौर

का दोहन करता हूँ।

१४७. उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव।४/१२/६ हे मानव! तू उठ, आगे बढ़, वेग से दौड़।

१४८. अवहितं देव उन्नयथा पुनः।४/१३/१ हे दिव्यगुणयुक्त पुरुषों! जो अवनत हैं, नीचे गिरे हुए हैं, उन्हें बार-बार उन्नत करो, ऊपर उठाओ।

१४९. अयं मे हस्तो भगवान्।४/१३/६ मेरा यह दक्षिण हाथ भाग्य - ऐश्वर्यशाली है।

१५०. उतेयं भूमिर्वरुणस्य राज्ञः।४/१६/३ यह सारी भूमि विश्वसम्राट् वरणीय परमेश्वर की ही है।

१५१. उतास्मिन्नल्प उदके निलीनः।४/१६/३ महान् आश्चर्य! वह परमेश्वर पानी की एक छोटी-सी बूंद में भी (अणु अणु और कण-कण में) छिपा हुआ है।

१५२. छिनन्तु सर्वे अनृतं वदन्तम्।४/१६/६ झूठ बोलनेवाले को सब धिक्कारें।

१५३. कृणोमि सत्यमूतये।४/१८/१ मैं सत्य को अपनी रक्षा के लिए ढाल बनाता हूं।

१५४. गावो भगो गाव इन्द्र म इच्छाद्।४/२४/५ गौएं ऐश्वर्य हैं। परमेश्वर मुझे गोएं प्रदान करे।

१५५. स नो मुंचत्वंहसः।४/२३/१ वह परमात्मा अथवा विद्वान् हमें पाप से, पाप की भावनाओं और संकल्पों से मुक्त करे।

१५६. इन्द्रस्य मन्महे।४/२१/१ हम परमेश्वर का मनन और चिन्तन करते हैं।

१५७. ब्राह्मणा व्रतचारिणः।४/२५/१३ ब्राह्मण व्रतों का आचरण करने वाले होते हैं। अथवा व्रतों की साधना करने वालों को ब्राह्मण कहते हैं।

१५८. यं कामये तं तमुग्रं कृणोमि।४/३०/३ मैं परमेश्वर जिसे चाहता हूं, उसे बल-वीर्य सम्पन्न बना देता हूं।

१५९. अमन्तवो मां त उप क्षियन्ति।४/३०/४ मुझे (ईश्वर को) न जानने, न मानने वाले नष्ट हो जाते हैं।

१६०. अभागः सन्नप परेतो अस्मि।४/३०/४ प्रभो! तुझसे दूर और अलग होकर मैं पराजित हो जाता हूं।

१६१. अयं ते अस्म्युप न एह्यर्वाङ्।४/३२/६ प्रभो! मैं तेरा हूं। तू हमें साक्षात् दर्शन दे।

१६२. त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि।४/३६/६ हे सर्वद्रष्टा! तू निश्चय ही चहुं ओर व्याप्त है, घट-घट में समाया हुआ है।

१६३. द्विषो नो विश्वतोमुखाति नावेव पारय।४/३३/७ हे सर्वद्रष्टा! जैसे नाव द्वारा समुद्र पार लगते हैं, ऐसे ही तू हमारी नैया बनकर हमें संसार से पार लगा दे।

१६४. ओदनेनाति तरानि मृत्युम्।४/३५/१ परमात्मारूपी ओदन् (भात) द्वारा मृत्यु के सागर को तरता हूं।

१६५. अग्नावग्निश्चरति प्रविष्टः।४/३६/६ प्रकाश स्वरूप परमात्मा जीवात्मा में व्यापक है।

१६६. सप्त मर्यादाः कवयस्ततक्षुः।५/१/६ विद्वानों ने सात मर्यादाएं (चोरी करना अगम्यागमन, ब्रह्महत्या, भ्र२णहत्या, मद्यपान, पुनः-पुनः पापकर्म में प्रवृत्ति और पापकर्म करके झुठ बोलना) बनाई है।

१६७. तदिदास भुवनेषु ज्येष्ठम्।५/२/१ वह परमेश्वर लोक-लोकान्तरों में सबसे महान् है।

१६८. मह्यं नमन्तां प्रदिशश्चतस्रः।५/३/१ हे प्रभो! आपकी कृपाकटाक्ष से चारों दिशाओं के लोग मेरे समक्ष झुक जाएं, नतमस्तक हो जाएं।

१६९. ममान्तरिक्षमुरुलोकमस्तु।५/३/३ मेरा हृदय विशाल प्रकाश से युक्त हो।

१७०. एनो मा नि गां कतमच्चनाहम्।५/३/४ मैं किसी भी पाप को प्राप्त न होऊँ अर्थात् जीवन में किसी भी प्रकार का पाप न करूं।

१७१. तिस्रो देवीर्महि नः शर्म यच्छत।५/३/७ मातृभाषा, मातृभूमि और संस्कृति- ये तीन देवियां हमें महान् सुख प्रदान करें।

१७२. सोमस्यासि सखा हितः।५/४/७ हे परमात्मन्! सौम्यगुण वाले योगी के लिए तू मित्र के समान हितकारी है।

१७३. यस्त्वा पिबति जीवति।५/५/२ हे प्रभो! जो तेरे आनन्दरस का पान करता है, वह आनन्दमय जीवन जीता है। अथवा लाक्षा ओषधि का सेवन करने वाला सुख जीवन जीता है।

१७४. तस्य स्पशो न नि मिषन्ति।५/६/३ उस परमेश्वर के गुप्तचर एक क्षण भी आंख नहीं झपकते हैं।

१७५. इन्द्रस्य शर्मासि।५/६/१२ हे परमेश्वर! तू जीवात्मा का आश्रय स्थान है।

१७६. इन्द्र मेद्यहं तव।५/८/६ हे परमेश्वर! मैं तुझसे स्नेह करता हूं, मैं तेरा मित्र हूं।

१७७. न त्वदन्यः कवितरः।५/११/४ हे परमेश्वर! संसार में तुझसे बढ़कर कोई कवि, क्रान्तप्रज्ञ, ज्ञानी नहीं है।

१७८. त्वं ता विश्वा भुवनानि वेत्थ।५/११/४ हे प्रभो! तू ब्रह्माण्ड के समस्त लोक-लोकान्तरों को जानता है, उनके कण-कण से परिचित है।

१७९. युज्यो मे सप्तपदः सखासि।५/११/६ हे परमेश्वर! आप मेरे साथ सात पग चलकर बने हुए अर्थात् सदा अंग-संग रहने वाले मित्र हो।

१८०. सखा नो असि परमं च बन्धुः।५/११/११ हे प्रभो! तू हमारा मित्र और परम स्नेही है।

१८१. शपथः शपथीयते।५/१४/५ गाली अथवा शाप आदि गाली और शाप देने वाले को ही प्राप्त हो।

१८२. मधु में मधुला करः।५/१५/१ हे सत्यवाणी! तू आनन्दरस को प्राप्त करानेवाली होकर मेरे लिए आनन्द उत्पन्न कर। अथवा हे ओषधे! तू माधुर्ययुक्त है, मेरे लिए सर्वत्र माधुर्य उत्पन्न कर।

१८३. अग्निर्वै नः पदवायः।५/१७/१४ ज्ञानस्वरूप प्रभु ही हमारा मार्गदर्शक है।

१८५. अग्नेर्जिह्वयाभि गृणत।५/२७/६ सच्चिदानन्द प्रभु की मनोहर वाणी से स्तुति करो।

१८६. अनक्तु पूषा पयसा घृतेन।५/२८/३ सर्वपोषक परमात्मा तुझे दूध और घी से सींच दे।

१८७. एकाक्षरमभिसंभूय शक्राः।५/२८/८ ओंकाररूप अक्षर ब्रह्म परमेश्वर से मेल करके हम शक्तिशाली हो गये हैं।

१८८. मा बिभेर्न मरिष्यसि।५/३०/८ हे मनुष्य! तू डर मत, तू मरेगा नहीं।

१८९. मा पुरा जरसो मृथाः।५/३०/१७ हे मनुष्य! तू बुढ़ापे से पूर्व मत मर।

१९०. पातु नो देवी सुभगा सरस्वती।६/३/२ सौभाग्यदात्री वेदमाता हमारी रक्षा करे।

१९१. अस्मान् पुनीहि चक्षसे।६/१९/३ प्रभो! हमें पवित्र कर, जिससे हम तेरे दर्शन के अधिकारी हो सकें।

१९२. आयं गौः पृश्निरक्रमीत्।६/३१/१ यह पृथिवी सूर्य्र की परिक्रमा करती है, सूर्य के गिर्द घूमती है।

१९३. व्यख्यन्महिषः स्वः।६/३१/२ यह महान् सूर्य अन्तरिक्ष और द्युलोक को प्रकाशित करता है।

१९४. सम्राडेको वि राजति।६/३६/३ परमेश्वर जगत् का अद्वितीय सम्राट् है।

१९५. अभयं सोमः सविता नः कृणोतु।६/४०/१ चन्द्रमा और सूर्य हमारे लिए निर्भयता प्रदान करें, हमें निर्भयता की शिक्षा दें।

१९६. परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।६/४५/१ हे मानसिक पाप! कुविचार! दूर हट, परे भाग। तू मुझे गन्दी सलाह क्यों दे रहा है, बुरी-बुरी बातें क्यों सिखा रहा है ?

१९७. परेहि न त्वा कामये।६/४५/१ ओ मेरे मन के पाप! दूर भाग जा, मैं तुझे नहीं चाहता।

१९८. गृहेषु गोषु मे मनः।६/४५/१ मेरा मन घर के कार्यों में और गौओं की देख-भाल में लगा हुआ है।

१९९. वयं देवानां सुमतौ स्याम।६/४७/२ हम विद्वानों की शुभ मति में रहें, उनके उपदेशों के अनुसार चलें।

२००. जालाषमुग्रं भेषजम्।६/५७/२ गोमूत्र कुष्ठ आदि रोग निवृत्ति की प्रचण्ड ओषधि है अथवा जल अचूक दवा है।

२०१. मह्यमापो मधुमदेरयन्ताम्।६/६१/१ आप्त पुरुष मुझे ब्रह्मज्ञान प्राप्त कराएं, ब्रह्मज्ञान का उपदेश करें।

२०२. शुद्धा भवन्तः शचयः पावकाः।६/६२/३ हम स्वयं शुद्ध होते हुए औरों को शुद्ध और पवित्र करने वाले बनें।

२०३. सं वो मनांसि जानताम्।६/६१/१ हे मनुष्यों! तुम सबके मन एक लक्ष्य को जानने वाले हो।

२०४. समानो मन्त्रः समितिः समानी।६/६४/२ तुम सबकी मंत्रणा एक प्रकार की हो और सबका चित्त भी एक समान हो।

२०५. समानि व आकूतिः।६/६४/३ तुम सबका संकल्प एक जैसा हो।

२०६. समाना हृदयानि वः।६/६४/३ तुम सबके हृदय एक समान हों।

२०७. समानमस्तु वो मनः।६/६४/३ तुम सबके मन एक समान हों।

२०८. सं वः पृच्यन्तां तन्वः।६/७४/१ तुम लोगों के शरीर आपस में प्रेम से मिला करें अर्थात् आप लोग प्रेम से एक-दूसरे का आलिंगन किया करें।

२०६. ते भक्तिवांसः स्याम।६/७६/३ हे परमेश्वर! हम तेरी भक्ति करने वाले हों।

२१०. ध्रुवं विश्वमिदं जगत्।६/८८/१ यह सम्पूर्ण संसार ध्रुव है, सत्य है, मिथ्या नहीं है।

२११. सर्वा दिशः संमनसः सध्रीचीः।६/८८/३ सब दिशावासी एक मन वाले और मिलकर रहने वाले हों।

२१२. न्यग्भवतु ते रपः।६/६१/२ तुम्हारे रोग का कारणभूत पाप शान्त हो जाए।

२१३.इदं मे अगदं कृधि।६/६५/३ हे प्रभो! मेरे इस शरीर को रोगरहित और मेरी आत्मा को जन्म-मरणरूप रोग से रहित कर दे।

२१४. सुमनसं मा कृणु स्वस्तये।६/६६/३ मुझे शुभ मनवाला बनाओ, जिससे मेरा कल्याण हो।

२१५. अग्ने मेधाविनं कृणु।६/१०८/४ हे प्रकाशस्वरूप परमात्मन्! मुझे मेधावी बनाओ।

२१६. सर्वेषां शिवो अस्तु मन्युः।६/११६/३ सबका क्रोध शान्त हो जाए।

२१७. सर्वान् पथो अनृणा आ क्षियेम्।६/११७/१ हम सब मार्गो पर ऋणरहित होकर ही विचरण करें।

२१८. अच्छिन्नं तन्तुमनु सं तरेम।६/१२२/१ हम अविनाशी आत्मा का अन्वेषण करते हुए भवसागर से तर जाएं।

२१६.वीरघ्नी भव मेखले।६/१३३/२ हे मेखले! मेखला धारी ब्रह्मचारिन्! तू शत्रु के वीरों का संहारक बन।

२२०. मृत्योरहं ब्रह्मचारी।६/१३३/३ मैं मृत्यु का ब्रह्मचारी हूं। मैं ज्ञान द्वारा मृत्यु

को भी मार भगाने वाला हूं।

२२१. यदश्नामि बलं कुर्वे।६/१३५/१ मैं जो कुछ खाऊं, वह मुझे बल प्रदान करे।

२२२. यद् गिरामि सं गिरामि।६/१३५/३ मैं जो कुछ निगलूं, उसे अच्छी प्रकार निगलूं, चबाऊं।

२२३. दृहं मूलम्।६/१३७/३ हे मनुष्य! अपने मूल, आधार, जड़ को दृढ़ कर।

२२४. उच्छ्रयस्व बहुर्भव स्वेन महसा यव।६/१४२/१ हे यव- आत्मन्! ऊँचे उठो और अपने तेज से अत्यन्त पराक्रमी बनो।

२२५. बृहस्पतिः पुरएता ते अस्तु।७/८/१ हे पथिक! सबसे महान् परमेश्वर तेरा मार्गदर्शक हो।

२२६. चारु वदानि पितरः संगतेषु।७/१२/१ हे विद्वानों! मैं सभाओं में सबको प्रिय लगनेवाली सुन्दर वाणी बोलूं।

२२७. एको विभूरतिथिर्जनानाम्।७/२१/१ सर्वतो महान् वह परमात्मा एक है। वह समस्त प्राणियों में व्यापक है और अतिथि के समान पूज्य है।

२२८. विष्णोर्नु कं प्रा वोचं वीर्याणि।७/२६/१ मैं सृष्टि के अणु-अणु और कण-कण में व्याप्त परमेश्वर के वीरतापूर्ण कर्मों का विस्तारपूर्वक वर्णन करता हूं।

२२९. इन्द्रस्य युज्यः सखा।७/२६/६ परमेश्वर जीवात्मा का श्रेष्ठ मित्र है।

२३०. अक्ष्यौ नौ मधुसंकाशे।७/३६/१ पति-पत्नी हम दोनों के मुखमण्डल प्रेमरूपी अंजन से अंजित हों।

२३१. अन्तः कृणुष्व मां हृदि।७/३६/१ हे पतिदेव! हे देवि! मुझे अपने हृदय मन्दिर में बैठा ले।

२३२. इन्द्रेण सख्या शिव आ जगम्यात्।७/४१/१ वह कल्याणकारी, आनन्दमय परमेश्वर अपने मित्र जीवात्मा के द्वारा प्राप्त होता है।

२३३. प्रदक्षिणं मरुतां स्तोममृध्याम्।७/५०/३ आत्मसाधना का पथिक मैं बलशाली इन्द्रियों को अपने वश में करूं।

२३४. अस्मभ्यमिन्द्र वरीयः सुगं कृधि।७/५०/४ हे परमात्मा! हमारे लिए इच्छित वस्तु को अथवा सर्वोत्कृष्ट मोक्षपद की भी सरलता से प्राप्त होने योग्य बना।

२३५. गोभिष्टरेमामतिं दुरेवाम्।७/५०/७ हम गौपालन से दरिद्रता को मार भगाएं अथवा वेदवाणी के स्वाध्याय से अविद्या को तर जाएं।

२३६. सखा सखिभ्योः वरीयः कृणोतु।७/५१/१ मित्र को मित्र की भलाई करनी चाहिए।

२३७. संज्ञानं नः स्वेभिः संज्ञानमरणेभिः।७/५२/१ हमारा अपनों के साथ भी मेल-जोल रहे और परायों के साथ भी।

२३८. सं जानामहै मनसा।७/५२/२ हम अपने मन से दूसरों के मन को मिलाएं, हम मन में दूसरों के प्रति प्रेम-भाव रखें।

२३९. मा युष्महि मनसा दैव्येन।७/५२/२ हम दिव्य गुणयुक्त मन से कभी वियुक्त न हों।

२४०. उद्वयं तमसस्परि।७/५३/७ हम पाप रूपी अन्धकार से पृथक होकर प्रकाश की ओर बढ़ें।

२४१. सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्।७/५३/७ हम सर्वोत्कृष्ट ज्योति, चराचर के प्रकाशक परमात्मा के समीप पहुंच गये हैं।

२४२. स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा।७/६३/१ वह परमात्मा हमें समस्त बुराइयों और कठिनाइयों से पार उतार देता है।

२४३. वयं मधुमन्तः स्याम।७/६८/३ हम सदा मधुर जीवन वाले, ज्ञानी और आनन्दमय बनें।

२४४. शं नो वातो वातु।७/६९/१ वायु हमारे लिए सुखप्रद होकर बहे।

२४५. शं नस्तपतु सूर्यः।७/६९/१ सूर्य हमारे लिए कल्याणकारी होकर तपे।

२४६. उत्तिष्ठाव पश्यत।७/७२/१ उठो, खड़े हो जाओ और अपने चारों ओर देखो।

२४७. दध्नः पिबेन्द्र।७/७२/३ हे इन्द्र! जीवात्मन्! तू दही का पान कर।

२४८. तप्तं धर्मं पिबतं रोचने दिवः।७/७३/४ हे अध्यापक और उपदेशकों! आप दोनों तप, स्वाध्याय, शम, दम, तितिक्षा आदि साधनों से तपे हुए, तेजोमय आत्मरस का पान करो, जो मूर्धा के प्रकाशमान भाग में स्थित है।

२४९. पातं पयस उस्रियायाः।७/७३/५ तुम लाल गौ के दुग्ध का पान करो।

२५०. आपः प्र वहतावद्यं च मलं च यत्।७/८९/३ हे पश्चाताप के आंसुओं! मैंने जो निन्दनीय पापकर्म किया है, उसे बहाकर ले जाओ। अथवा हे जलों! मेरे शरीर में जो दोष और मल हैं, उसे बहाकर ले जाओ।

२५१. एधोऽस्येधिषीय।७/८९/४ हे परमात्मा! आप प्रकाश स्वरूप हैं, आपके प्रकाश से मैं भी चमक उठूं।

२५२. तेजोऽसि तेजो मयि धेहि।७/८९/४ आप तेजस्वी हैं, मुझमें भी तेज का आधा न कीजिए।

२५३. मा जामिं मोषीः।७/९९/१ हे गृहस्थ! तू अपनी स्त्री को कभी मत छल।

२५४. ब्रह्माहमन्तरं कृण्वे।७/१००/१ मैं ब्रह्म-वेद अथवा ईश्वर को अपने हृदय में स्थापित करता हूं।

२५५. प्रणीतीरभ्या वर्तस्व विश्वेभिः सखिभिः सह।७/१००/२ हे मानव! सब साथियों के साथ प्रेम और माधुर्यता का व्यवहार कर।

२५६. घृतेनास्मां अभि क्षर।७/१०९/४ हे राजन्! हमें घृत-शक्तिप्रद द्रव्य से युक्त कर। हमें दीप्ति और स्नेह से युक्त कर।

२५७. रमन्तां पुण्या लक्ष्मीः।७/११५/४ जो पुण्यलक्ष्मी है, परिश्रम की कमाई है,

हम उसी में रमण करें, आनन्द भोगें।

२५८. उत्क्रामातः पुरुष माव पत्थाः।८/१/४ हे पुरुष! अपनी वर्तमान स्थिति से ऊपर उठ, आगे बढ़, उन्नति कर, नीचे मत गिर।

२५६. मा च्छित्या अस्माल्लोकात्।८/१/४ हे ज्ञानिन्! अपने शरीर से आत्मा के सम्बन्ध को मत तोड़, आत्महत्या मतकर, मर मत।

२६०. मृत्युर्दयतां मा प्र मेष्ठाः।८/१/५ मृत्यु तुझ पर दया करे, तू समय से पूर्व मत मर।

२६१. उद्यानं ते पुरुष नावयानम्।८/१/६ हे पुरुष! तेरा ऊर्ध्वगमन, उत्थान हो, पतन नहीं।

२६२. मा गतानामा दीधीथाः।८/१/८ हे पुरुष! जो संसार छोड़कर चले गये हैं, मर चुके हैं, उनके लिए शोक और विलाप मत कर।

२६३. आ रोह तमसो ज्योतिः।८/१/८ तू अज्ञान-अन्धकार से निकलकर प्रकाश के मार्ग पर आरोहण कर।

२६४. अर्वाङेहि मा वि दीध्यः।८/१/६ मानव! जीवन में आगे बढ़, पिछलों, मरे हुओं की चिन्ता में मत डूबा रह।

२६५. मा त्वा क्रव्यादभि मंस्त।८/१/१२ कच्चा मांस खाने वाली चिन्ता रूपी अग्नि तुझे अपना आहार न मान बैठे।

२६६. अच्छिद्यमाना जरदष्टिरस्तु ते।८/२/१ हे पुरुष! तेरी जीवन-यात्रा वृद्धावस्था तक निर्विघ्न चलती रहे।

२६७. रजस्तमो मोप गाः।८/२/१ हे पुरुष! तू राजस और तामस भोग-विलासों का सेवन मत कर। अथवा तू निराश और हताश मत हो।

२६८. मा प्र मेष्ठाः।८/२/१ हे पुरुष! तु शीघ्र-अल्पायु में मृत्यु को प्राप्त मत हो।

२६६. द्राघीय आयुः प्रतरं ते दधामि।८/२/२ हे पुरुष! मैं (ईश्वर) तुझे उत्कृष्ट एवं दीर्घायु प्रदान करता हूं।

२७०. वद जिह्वयालपन्।८/२/३ हे मनुष्य! तू जिह्वा से प्रलाप न करता हुआ उचित वाणी बोल। अथवा वाणी से स्पष्ट उच्चारण करता हुआ बोल।

२७१. तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु।८/२/७ हे प्रभो! यह मनुष्य तेरा होकर, तेरा भक्त बनकर सौ वर्ष तक जीवित रहे।

२७२. ब्रह्मास्मै वर्म कृण्मसि।८/२/१ इस जीव की रक्षा के लिए हम ब्रह्म-परमात्मा, वेद, ज्ञान, वीर्य को आवरणकारी कवच के समान बनाते हैं।

२७३. न मरिष्यसि मा बिभेः।८/२/२४ हे मनुष्य! तू मरेगा नहीं, भयभीत मत हो।

२७४. अमग्निर्भवामृतोऽतिजीवः।८/२/२६ तू कभी न मरने वाला बन, तू अमर बनकर चिरकाल तक जीवित रह।

२७५. सहमूराननु दह क्रव्यादः।८/३/१८ हे राजन! कच्चा मांस खानेवाले राक्षसों को अज्ञानी लोगों के साथ ही भस्म कर डाल।

२७६. असन्नस्त्वासत इन्द्र वक्ता।८/४/८ हे इन्द्र! असत्य कहनेवाला, मिथ्यावादी व्यक्ति नष्ट हो जाए।

२७७. न वा उ सोमो बृजिनं हिनोति।८/४/१३ सौम्य स्वरूप परमेश्वर कुटिल आचरणवाले व्यक्ति को न तो आगे बढ़ाता है और न दण्ड दिये बिना छोड़ता है।

२७८. हन्ति रक्षो हन्त्यसद्वदन्तम्।८/४/१३ परमेश्वर राक्षस और असत्यभाषी को मार देता है।

२७९. अद्या मुरीय यदि यातुधानो अस्मि।८/४/१५ यदि मैं परपीड़क, राक्षस होऊं तो आज ही मर जाऊं।

२८०. अयं लोको जालमासीच्छक्रस्य।८/८/८ यह विशाल संसार सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का विस्तृत प्रपंच है, जाल है।

२८१. ऋतस्य पन्थामनु।८/९/१३ सत्य के मार्ग पर चलो।

२८२. क्रतुरस्ति वः शिवः।८/९/२२ तुम्हारा यज्ञ, संकल्प, कर्म कल्याणकारी हो।

२८३. शिवः स वः सर्वाः संचरति प्रजानन्।८/९/२२ वह कल्याणकारी परमात्मा तुम्हारी समस्त क्रियाओं और चेष्टाओं को जानता हुआ विचारता है।

२८४. सूनृत एहि।८/१०/४ उत्तम शब्दमयी-मधुर वाणी! तू हमारे जीवन में आ।

२८५. कस्तं प्र वेद क उ तं चिकेत।९/१/६ उस परमात्मा को कौन भली प्रकार जान सकता है और कौन उसकी विवेचना कर सकता है ?

२८६. ब्रह्मा सुमेधाः सो अस्मिन् मदेत।९/१/६ जो उत्तम बुद्धि से सम्पन्न ब्रह्मज्ञानी है, वही उस प्रभु में डुबकी लगाकर, ज्ञानरस में स्नान कर आनन्द प्राप्त करता है।

२८७. मधु जनिवीय मधु वंशिषीय।९/१/१४ मैं जीवन में माधुर्य उत्पन्न करूं और माधुर्य की याचना करूं। अथवा हे प्रभो! मैं मधुर वचन बोलूं और मधुमय ब्रह्मरस की याचना करूं। अथवा हे आचार्य! मैं मधु-मधुविद्या (ब्रह्मविद्या) को प्राप्त करूं और मधुकर के समान विद्वानों से मधुर ज्ञान रस का संग्रह करूं।

२८८. जहि त्वं काम मम ये सपत्नाः।९/२/१० हे सत्संकल्प! मेरे जो काम-क्रोध ा आदि अन्तःशत्रु हैं, उन सबको नष्ट कर दे।

२८९. अस्मिन् गोष्ठ उप पृंच नः।९/४/२३ हे परमात्मा! इन्द्रियों के वास स्थान देह अथवा अन्तःकरण वा हृदय-गुहा में आप हमें सदा प्राप्त होओ।

२९०. माभि मंस्थाः। ९/५/४ हे मनुष्य! अभिमान मत कर।

२९१. माभि द्रुहः।९/५/४ हे मानव! किसी से भी द्रोह-वैर मत कर।

२९२. लोकं जयैतम्।९/५/६ इस संसार पर विजय प्राप्त करो। संसार में फंसो मत, संसार के भोग-विलासों से ऊपर उठकर प्रभु की ओर चलो।

२९३. अजो अग्निरजमु ज्योतिराहुः।९/५/७ आत्माग्नि तेजस्वी है। इस अजन्मा

आत्मा को ब्रह्मज्ञानी ज्योति नाम से पुकारते हैं।

२६४. अजस्तमांस्यप हन्ति दूरम्।६/५/७ यह अजन्मा आत्मा अज्ञान-अन्धकारों को दूर कर देती है।

२६५. शरभो न चत्तोऽति दुर्गाण्येषः।६/५/६ व्याघ्र के समान शक्तिशाली यह आत्मा आह्लादित होकर भव-बन्धनों को पार कर जाता है।

२६६. अजो ह्यग्नेरजनिष्ट शोकात्।६/५/१३ आत्मा प्रकाशस्वरूप परमात्मा के प्रकाश से प्रकाशित होता है।

२६७. अजोऽस्यज स्वर्गोऽसि।६/५/१६ हे प्रभो! तू अजन्मा है। हे जन्मरहित! तू सुखस्वरूप है।

२६८. सत्यं चर्तं च चक्षुषी।६/५/२१ सत्य और ऋत जीवनरूपी यज्ञ की दो आंखें है।

२६६. श्रद्धा प्राणः।६/५/२१ श्रद्धा जीवनरूपी यज्ञ का प्राण है।

३००. न द्विषन्नश्नीयान्न द्विषतोऽन्नमश्नीयात्।६/६/२४ अन्न की निन्दा करते हुए भोजन न करे और अपने से द्वेष रखनेवाले के यहां भी भोजन न करें।

३०१. अशितावत्यतिथावश्नीयात्।६/६/३८ अतिथि के भोजन कर लेने पर ही भोजन करना चाहिए अर्थात् गृहस्थ पहले अतिथि को खिलाकर फिर स्वयं भोजन करें।

३०२. एतद्वै विश्वरूपं सर्वरूपं गोरूपम्।६/७/२५ निश्चय ही गोधन सब धनों में श्रेष्ठ धन है।

३०३. य इत्तद्विदुस्ते अमृतत्वमानशुः।६/१०/१ जो मनुष्य परमतत्व को जानते हैं, वे मोक्षपद को प्राप्त करते हैं।

३०४. जीवो मृतस्य चरति स्वधाभिः।६/१०/८ जीवात्मा गत देह के कर्मफलों के साथ नाना योनियों में भटकता है, जन्म लेता है।

३०५. देवस्य पश्य काव्यम्।६/१०/६ परमेश्वर की लीला को देखो।

३०६. अपश्यं गोपामनिपद्यमानम्।६/१०/११ मैंने इन्द्रियों के रक्षक अविनाशी आत्मा का दर्शन कर लिया है।

३०७. अपाङ् प्राङेति स्वधया गृभीतोऽमर्त्यः।६/१०/१६ अविनाशी आत्मा अपने शुभ-अशुभ कर्मों से बन्धन में पड़कर नीच और उच्च योनियों में जाता है।

३०८. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्।६/१०/१८ वेदमन्त्र सर्वोच्च प्रभु की ही महिमा गा रही हैं।

३०६. यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति।६/१०/१८ जो उस अविनाशी परमात्मा को नहीं जानता, उसे वेद पढ़ने से भी क्या लाभ ?

३१०. ऋतं पिपर्त्यनृतं नि पाति।६/१०/२३ परमात्मा सत्य को पूर्ण करता है और असत्य को नष्ट करता है। अथवा परमात्मा सत्य का आचरण करने वाले की रक्षा करता है और मिथ्याचारी को नष्ट कर देता है।

३११.एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।६/१०/२८ विद्वान् लोग एक ही परमात्मा को अनेक नामों से पुकारते हैं।

३१२. शपथः शपथीयते।१०/१/५ श्राप/गाली देने वाले को ही लगती है।

३१३. पर्णाल्लघीयसी भव।१०/१/२६ हे मानव! तू पत्ते से भी हल्का अर्थात् विनम्र बन।

३१४. ब्रह्म श्रोत्रियमाप्नोति।१०/२/२१ मनुष्य ब्रह्म से श्रोत्रियत्व को प्राप्त होता है।

३१५. ब्रह्मणा भूमिर्विहिता।१०/२/२५ सर्वोच्च शक्ति ब्रह्म के द्वारा यह भूमि रची अथवा स्थापित की गई है।

३१६. मूर्धानमस्य संसीव्याथर्वा हृदयं च यत्।१०/२/२६ परमात्मा ने मनुष्य के तर्क प्रधान मस्तिष्क और भाव प्रधान हृदय का एकत्र सामंजस्य किया है।

३१७. घनेन हन्मि वृश्चिकमहिं दण्डेनागतम्।१०/४/९ मैं बिच्छू को घन/हथौड़ा, मोगरी से और आते हुए सांप को दण्डे से मारता हूं।

३१८. सिन्धोर्मध्यं परेत्य व्यग्निजमहेर्विषम्।१०/४/१६ नदी के मध्य में पहुंचकर हम सर्प के विष को दूर कर देते हैं।

३१९. मा च नः किं चनाममत्।१०/५/२३ कोई भी वस्तु हमें रोगी न बनाएं।

३२०. उद्भिन्नमस्माकम्।१०/५/३६ परिश्रम से कमाया धन हमारा है।

३२१. अपो दिव्या अचायिषम्।१०/५/४६ मैंने दिव्य जलों की पूजा की है, उनका सदुपयोग किया है।

३२२. गृहे वसतु नोऽतिथिः।१०/६/४ हमारे घर में अतिथि निवास करे।

३२३. स्कम्भ त्वा वेद प्रत्यक्षम्।१०/७/२६ हे सर्वाधार परमेश्वर! मैं तुझे प्रत्यक्ष रूप में जानता हूं।

३२४. इन्द्रे सर्वं समाहितम्।१०/७/२६ समस्त लोक-लोकान्तर परमैश्वर्यवान् परमेश्वर में स्थित है।

३२५. नाम नाम्ना जोहवीति।१०/७/३१ हे सर्वप्रसिद्ध परमेश्वर मैं तुझे 'ओम्' नाम द्वारा पुकारता हूं।

३२६. तस्मै ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः।१०/७/३१ उस ज्येष्ठ ब्रह्म को नमस्कार हो।

३२७. दूरे पूर्णेन वसति।१०/८/१५ पूर्ण, उत्तम जन के साथ रहने से मनुष्य सामान्य जनों से, कुसंग से दूर रहता है।

३२८. तदु नात्येति किं चन।१०/८/१६ उस ईश्वर को कोई अतिक्रान्त नहीं कर पाता, लांघ नहीं सकता, उससे बढ़कर कोई वस्तु नहीं।

३२९. सत्येनोर्ध्वस्तपति।१०/८/१९ सत्य से मनुष्य उन्नत होकर दीप्तिमान् होता है।

३३०. सनातनमेनमाहुरुताद्य स्यात् पुनर्णवः।१०/८/२३ सनातन उसे कहते हैं

जो आदिम होता हुआ भी नया ही होता है। अथवा उस परमात्मा को सनातन कहते हैं, जो आज भी नया है।

३३१. त्वं स्त्री त्वं पुमानसी।१०/८/२७ हे आत्मन्! तू स्त्री है और तू ही पुरुष भी है। (आत्मा जिस शरीर में जाता है, उसी नाम से पुकारा जाता है)।

३३२. देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।१०/८/३२ परमेश्वर के दिव्य काव्य अपौरुषेय वेद को देखो, जो न कभी नष्ट होता है और न पुराना होता है।

३३३. अपूर्वेणेषिता वाचस्ता वदन्ति यथायथम्।१०/८/३३ पदार्थों का वर्णन करनेवाली वेदवाणियां सर्वशक्तिमान् परमेश्वर द्वारा प्रेरित हैं।

३३४. अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भूः।१०/८/४४ वह परमात्मा कामना से रहित धीर, अमर और स्वयम्भू है।

३३५. रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।१०/८/४४ वह परमेश्वर रस से पूर्ण है, उसमें कोई न्यूनता नहीं है।

३३६. तमेव विद्वान न बिभाय मृत्योः।१०/८/४४ उस आनन्दमय प्रभु को जानकर मनुष्य मृत्यु से भयभीत नहीं होता, मृत्य के भय से छूट जाता है।

३३७. बालेभ्यः शफेभ्यो रूपायाघ्न्ये ते नमः।१०/१०/१ हे अहिंसनीय गौ! तेरे बाल, खुर और चमड़े के लिए हम नतमस्तक हैं।

३३८. गच्छेम सुकृतस्य लोकम्।११/१/८ हम पुण्यलोक को, श्रेष्ठ योनि को प्राप्त करें।

३३९. उत्तिष्ठ नारि तवसं रभस्व।११/१/८ हे नारि! तू बलवान् पुरुष को अपने पति के रूप में प्राप्त कर।

३४०. मा त्वा प्रापच्छपथो माभिचारः।११/१/२२ हे यजमान! तुझे न तो किसी का श्राप लगे और न तुझे मारने के लिए किया गया अनुष्ठान ही हानि पहुंचाए।

३४१. परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः।११/२/११ पाप के कारण रोने-चीखनेवाली, बाल खोलकर भयंकर रूप से विचरने वाली दुष्ट स्त्रियां हमसे दूर हो जाएं।

३४२. यावद्दाताभिमनस्येत तन्नाति वदेत्।११/३/२५ दानी जितने दान का संकल्प मन में लाए, उससे बढ़ा-चढ़ाकर न कहे। अथवा दाता जितने दान का संकल्प करे, याचक उससे अधिक न मांगे।

३४३. प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।११/४/१ यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड जिसके वश में है, उस प्राणस्वरूप परमेश्वर को नमस्कार हो।

३४४. प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्।११/४/१५ यह सारा संसार परमेश्वर में प्रतिष्ठित है। अथवा सभी प्राण के आश्रित हैं।

३४५. ऊर्ध्वः सुप्तेषु जागार।११/४/२५ सम्पूर्ण जगत् के निद्रामग्न हो जाने पर भी प्राणस्वरूप परमेश्वर जीवों की रक्षार्थ जागता रहता है। अथवा मनुष्य के सो जाने पर भी प्राण उसमें जागता रहता है।

३४६. प्राण मा मत् पर्यावृतः।११/४/२६ हे प्राणस्वरूप परमेश्वर! मुझसे मुख मत फिराओ। अथवा हे प्राण! मुझसे पृथक मत हो।

३४७. न मदन्यो भविष्यसि।११/४/२६ हे प्राणस्वरूप परमेश्वर! मुझसे अन्यत्र मत जाओ।

३४८. तं जातं द्रष्टुमभिसंयन्ति देवाः।११/५/३ सुशिक्षित और दीक्षित स्नातक ब्रह्मचारी के दर्शन के लिए देवगण भी आते हैं।

३४९. आचार्यो ब्रह्मचारी।११/५/१६ आचार्य ब्रह्मचारी- ईश्वर में विचरण करने वाला, ज्ञान का उपासक और सदाचारी हो।

३५०. ब्रह्मचारी प्रजापतिः।११/५/१६ गृहस्थाश्रमी भी ब्रह्मचारी (ऋतुगामी) हो।

३५१. ब्रह्मचर्येण तपसा राजा राष्ट्रं वि रक्षति।११/५/१७ ब्रह्मचर्य रूपी तप से सम्पन्न होकर ही राजा अपने राष्ट्र की विशेष रूप से रक्षा करता है।

३५२. ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत।११/५/१९ ब्रह्मचर्यरूपी तप से विद्वान् मौत को भी मार भगाते हैं।

३५३. ब्रह्मचारी ब्रह्म भ्राजद् बिभर्ति।११/५/२४ ब्रह्मचारी प्रकाशमान् ब्रह्म और वेदज्ञान को अपने अन्दर धारण करता है।

३५४. श्रीर्मयि।११/७/३ मुझमें श्री, शोभा, ऐश्वर्य और स्वास्थ्य है।

३५५. तपो ह जज्ञे कर्मणः।११/८/६ निश्चय ही तप कर्म से उत्पन्न हुआ है।

३५६. उत्तिष्ठ सं नह्यध्वं मित्राः।११/९/२ हे मित्रों! उठो, कमर कस लो।

३५७. मित्रा देवजना यूयम्।१२/१/४४ हे मित्रों! तुम सब दिव्यजन हो।

३५८. माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।१२/१/१२ भूमि मेरी माता है, और मैं उसका पुत्र हूं।

३५९. पर्जन्यः पिता स उ नः पिपर्तु।१२/१/१२ बादल हमारा पिता, पालक है, वह समयोचित वर्षण द्वारा हमारी पुष्टि करे।

३६०. वाचो मधु पृथिवि धेहि मह्यम्।१२/१/१६ हे पृथिवि! तू मुझे वाणी की मधुरता और मधुर अन्न, रस आदि प्रदान कर।

३६१. मा नो द्विक्षत् कश्चन।१२/१/१८ कोई भी हमसे द्वेष न करे।

३६२. पृथिव्या अकरं नमः।१२/१/२६ हम भूमिमाता की वन्दना करते हैं। वन्दे मातरम्।

३६३. शुद्धा न आपस्तन्वे क्षरन्तु।१२/१/३० हमारे शरीर को शोधने, पवित्र बनाने के लिए शुद्ध जल प्रवाहित होते रहें।

३६४. मा नि पप्तं भुवने शिश्रियाणः।१२/१/३१ संसार में रहता हुआ मैं कभी पतित न होऊं।

३६५. मे चक्षुर्मा मेष्टोत्तरामुत्तरां समाम्।१२/१/३३ मेरे नेत्र मन्ददृष्टि न हों। हम उत्तरोत्तर आने वाले समय में भी दृष्टि सम्पन्न बने रहें।

३६६. विमृग्वरि मा ते हृदयमर्पिपम्।१२/१/३५ हे भूमिमातः! मैं तेरे हृदय (पृथिवी निवासी मनुष्यों के हृदय) को न दुखाऊं।

३६७. वसु मणिं हिरण्यं पृथिवी ददातु मे।१२/१/४४ भूमिमाता मुझे धनैश्वर्य, रत्न और सुवर्ण प्रदान करे।

३६८. अहमस्मि सहमानः।१२/१/५४ मैं सहनशील हूं अथवा विजयशील हूं। मैं बलवान हूं।

३६९. अभीषाडस्मि विश्वाषाट्।१२/१/५४ मैं हूं सर्वजेता और विश्वविजेता। अथवा मैं सर्वविजयी और काम-क्रोध आदि शत्रुओं को वश में करने वाला हूं। अथवा मैं प्रतिपक्षी और विश्व को परास्त करने वाला हूं।

३७०. चारु वदेम ते।१२/१/५६ हे भूमिपातः। हम तेरा यशोगान गाते हैं।

३७१. यद् वदामि मधुमत्तद्वदामि।१२/१/५८ मैं जो कुछ बोलूं, मीठा बोलूं।

३७२. यदीक्षे तद्वनन्ति मा।१२/१/५८ जब मैं देखूं, लोग मुझे प्यार करें।

३७३. दीर्घं न आयुः।१२/१/६२ हमारी आयु दीर्घ हो।

३७४. वयं तुभ्यं बलिहृतः स्याम।१२/१/६३ हे भूमे! हम तेरे लिए अपने जीवनों का बलिदान चढ़ानेवाले हों।

३७५. क्रव्यादमग्निं प्र हिणोमि दूरम्।१२/२/८ मैं कच्चा मांस खाने वाली चिन्तारूपी अग्नि को दूर भगाता हूं।

३७६. प्र ण आयूंषि तारिषत्।१२/२/१३ हे परमात्मा! हमारे जीवनों को तराओ, सफल करो।

३७७. त्वमग्ने दिवं रुह।१२/२/१७ हे ज्ञानसम्पन्न जीव! तू प्रकाशमय मोक्षलोक में आरोहण कर।

३७८. परं मृत्यो अनु परेहि पन्थाम्।१२/२/२१ हे मृत्यो! परे हट, हमारे पास मत आ, तू दूसरे मार्ग से चला जा।

३७९. इहेमे वीरा बहवो भवन्तु।१२/२/२१ हमारे कुल में अनेक वीर पुरुष जन्म लें।

३८०. प्रांचो अगाम नृतये हसाय।१२/२/२२ नाच-गान और हंसी-खुशी का जीवन व्यतीत करने के लिए हम आगे बढ़ते चलें।

३८१. तिरो मृत्युं दधतां पर्वतेन।१२/२/२३ हम पर्वत (ब्रह्मचर्य), विद्या, पुरुषार्थ से अकाल मृत्यु को मार भगाएं।

३८२. उत्तिष्ठता प्र तरता सखायः।१२/२/२७ हे साथियों! उठो, और संसाररूपी नदी को पार करो।

३८३. शतं हिमाः सर्ववीरा मदेम।१२/२/२८ वीर पुत्रों सहित हम सौ वर्ष तक आनन्द मनाएं।

३८४. इमा नारीरविधवाः।१२/२/३१ ये नारियां विधवा न हों, सौभाग्यवती रहें।

३८५. अयज्ञियो हतवर्चा भवति।१२/२/३७ यज्ञ न करनेवाला निस्तेज हो जाता है।

३८६. जीवानामायुः प्र तिर त्वमग्ने।१२/२/४५ हे परमात्मा! तू जीवों को दीर्घायु प्रदान कर।

३८७. स वो निर्वक्षद्दुरितादवद्यात्।१२/२/४७ वह परमेश्वर तुम्हें समस्त पापों और निन्द्य दोषों से निकाल ले जाएगा।

३८८. अनड्वाहं प्लवमन्वारभध्वम्।१२/२/४८ ब्रह्माण्डरूप शकट को वहन करनेवाले और संसार रूपी समुद्र में नौका रूप परमात्मा को प्राप्त करो।

३८९. येऽश्रद्धा धनकाम्या क्रव्यादा समासते।१२/२/५१ जो श्रद्धा-भक्ति से हीन होकर केवल धन के पीछे पड़े हैं, वे चिता अथवा चिन्ता अग्नि का स्वागत कर रहे हैं।

३९०. पितेव पुत्रानभि सं स्वजस्व।१२/३/१२ हे प्रभो! जैसे पिता पुत्र का आलिंगन करता है, वैसे ही तू भी हमारा आलिंगन कर।

३९१. मा नस्तारीन्निर्ऋतिर्मो अरातिः।१२/३/१७ न हमें पाप की प्रवृत्ति कष्ट दे और न अदानशीलता (लोभ) की वृत्ति ही हमें सताए।

३९२. तमो व्यस्य प्र वदासि वल्गु।१२/३/१८ हे मानव! तमोगुण, मोहरूपी अन्ध ाकार को अपने अन्दर से निकाल फेंक और मीठी वाणी बोल।

३९३. ग्रावा शुम्भाति मलगइव वस्त्रा।१२/३/२१ इउपदेशक मनुष्य को ऐसे शुद्ध करता है, जैसे धोबी वस्त्रों को।

३९४. मा व्यथिष्ठाः।१२/३/२३ तू व्यथित मत हो।

३९५. अहिंसन्त ओषधीर्दान्तु पर्वन्।१२/३/३१ औषधियों को जड़मूल से नष्ट न करते हुए उन्हें पर्वों-जोड़ों पर से काटो।

३९६. न किल्बिषमत्र।१२/३/४८ कर्मफल के विषय में कोई त्रुटि नहीं है।

३९७. आयदेव पौरुषेयमप मृत्युं नुदन्तु।१२/३/४९ हम अपने समीप आते हुए मृत्यु को पुरुषार्थ के द्वारा परे खदेड़ दें।

३९८. जरा मृत्यवे परिणो ददातु।१२/३/५५ वृद्धावस्था हमें मृत्यु को सौंपे, अर्थात् हम बूढ़े होकर मरें, जवानी में न मरें।

३९९. बण्डया दन्ह्यते गृहाः।१२/३/५६ कटु और कठोर वाणी से घर दग्ध हो जाते हैं, जल जाते हैं।

४००. नमस्ते अस्तु नारद।१२/४/४५ हे विद्वान्! नरोपदेशक! आपको नमस्कार है।

४०१. उदेहि वाजिन्।१३/१/१ हे शक्ति के भण्डार! तु ऊपर उठ, अभ्युदय को प्राप्त हो।

४०२. तेन देवा अमृतमन्वविन्दन्।१३/१/७ उस परमात्मा के अनुग्रह से विद्वान् लोग मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

४०३. इहैव प्राणः सख्ये नो अस्तु।१४/१/१७ प्राणस्वरूप परमात्मा अथवा प्राण इस शरीर में हमारा मित्र होकर रहे।

४०४. देवः पृषतीमा विवेश।१३/१/२४ परमेश्वर प्रकृति में समाया हुआ है।

४०५. सर्वा रुरोह रोहितो रुहः।१३/१/२६ रोहित-उदीयमान युवक सारी चढ़ाइयों पर चढ़ गया है।

४०६. दिवं च रोह पृथिवीं च रोह।१३/१/३४ हे भद्र पुरुष! तु द्युलोक पर चढ़, पृथिवीलोक पर विजय प्राप्त कर। अथवा तू कीर्ति पर आरोहण कर और अपनी वाणी को उन्नत बना।

४०७. अहं भूयासं सवितेव चारुः।१३/१/३८ मैं सूर्य की भांति प्रकाशमान् और सुन्दर बनूं।

४०८. देवो देवान् मर्चयसि।१३/१/४० यह दिव्य देव खिलाड़ी बनकर सूर्य-चन्द्र आदि सभी देवों को, दिव्यशक्तियों को चला रहा है, उन्हें खेल खिला रहा है।

४०६. अध्वगतो हरयस्त्वा वहन्ति।१३/१/४३ मोक्षमार्ग में जाने वाले मुक्त जीव तुझे प्राप्त करते हैं।

४१०. मा प्र गाम पथो वयम्।१३/१/५६ हम लोग सन्मार्ग से कभी न भटकें।

४११. दुर्गां अति याहि।१३/२/५?, तुम दुर्गम स्थलों को लांघ जाओ। अथवा कठिनाइयों को लांघ जाओ।

४१२. तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्यः।१३/२/१६ हे ज्योतिस्वरूप् परमात्मन्! आप नौका के समान सबको भवसागर से तारनेवाले, सबको देखनेवाले, सबके लिए दर्शनीय और आध यात्मिक ज्योति प्रदाता हैं।

४१३. विश्वमा भासि रोचन।१३/२/१६ हे दीप्तिमान् परमात्मा! तुम सारे विश्व को प्रकाशित करते हो।

४१४. त्वं वरुण पश्यसि।१३/२/२१ हे वरणीय परमेश्वर! तुम सारे विश्व को प्रकाशित करते हो।

४१५. दिवमारुहत् तपसा तपस्वी।१३/२/२५ तपस्वीजन अपने तप के द्वारा परमेश्वर अथवा मोक्षधाम को प्राप्त होता है।

४१६. महांस्ते महतो महिमा।१३/२/२६ तुझ महान् परमेश्वर की महिमा महान् है।

४१७. त्वमादित्य महाँ असि।१३/२/२६ हे आदित्य! अखण्ड एकरस परमात्मा! तू महान् है, सर्वश्रेष्ठ है।

४१८. सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च।१३/२/३५ परमात्मा चर और अचर, चेतन और जड़ सबका आत्मा है।

४१६. सुमतौ ते स्याम।१३/२/३६ हे प्रभो! हम सदा तेरी शोभन मति में रहें, तेरी वेदवाणी के अनुकूल चलें।

४२०. एकं ज्योतिर्बहुधा विभाति।१३/३/१७ परमात्मा रूपी एक ही ज्योति सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र आदि में नाना रूपों में चमकती है।

४२३. कृष्णायाः पुत्रो अर्जुनः।१३/३/२६ काली का पुत्र गोरे रंग का (जानते हो कौन है यह ? यह है रात्रि का पुत्र सूर्य।)

४२४. रुहो रुरोह रोहितः।१३/१/२६ दीप्तिमान् मुक्त जीव समस्त लोकों में अबाध गति से विचरता है।

४२५. स धाता स विधर्ता स वायुः।१३/४/३ वह परमात्मा लोकों का धारक और उनके मर्यादाओं का संस्थापक है। वही महाशक्तिशाली है।

४२६. सोऽर्यमा स वरुणः।१३/४/४ वही परमेश्वर अर्यमा (न्यायकारी) और वरुण (वरणीय) है।

४२७. स रुद्रः स महादेवः।१३/४/४ वही परमेश्वर रुद्र है और वही महादेव है।

४२८. सो अग्निः स उ सूर्यः।१३/४/५ उस परमात्मा का नाम ही अग्नि है, वही सूर्य नामवाला है।

४२६. स उ एव महायमः।१३/४/५ वह परमात्मा ही महायम है।

४३०. स सर्वस्मै वि पश्यति यच्च प्राणति यच्च न।१३/४/१६ वह परमेश्वर जो श्वास लेता है और नहीं लेता अर्थात् चेतन और जड़ सबको देखता है।

४३१. स एष एक एकवृदेक एव।१३/४/२० वह एक है, एकमात्र अद्वितीय है, सच मानो वह एक ही है।

४३२. सर्वे अस्मिन् देवा एकवृतो भवन्ति।१३/४/२१ सारे देव (सूर्य चन्द्र आदि) उसी एक परमात्मा के अधिन हैं।

४३३. स एव मृत्युः सोमृतम्।१३/४/२५ वही परमात्मा मृत्यु और वही अमृत है।

४३४. तस्याम् सर्वा नक्षत्रा वशे चन्द्रमसा सह।१३/४/२८ चन्द्रमा सहित सब ग्रह और सारे नक्षत्र, तारे-सितारे उसी के वश में हैं।

४३५. यदि वासि न्यर्बुदम्।१३/४/२५ परमात्मा! तू अनन्त रूपों वाला है।

४३६. शच्याः पतिस्त्वमिन्द्रासि।१३/४/४७ हे इन्द्र! तू शक्ति का स्वामी है।

४३७. विभूः प्रभूरिति त्वोपस्महे वयम्।१३/४/४७ हे परमात्मा! तू सर्वव्यापक और शक्तिशाली है, ऐसा जानकर हम तेरी उपासना करते हैं। हम 'विभु' और 'प्रभु' नाम से तेरी उपासना करते हैं।

४३८. नमस्ते अस्तु पश्यत।१३/४/४८ हे दर्शनीय! तुझे नमस्कार हो।

४३६. पश्य मा पश्यत।१३/४/४८ हे चराचर को दखने वाले! मुझ पर अपनी कृपादृष्टि कर।

४४०. सत्येनोत्तभिता भूमिः।१४/१/१ भूमि सत्य के आधार पर ठहरी हुई है।

४४१. ऋतेनादित्यास्तिष्ठन्ति।१४/१/१ सत्य से ही देवों की स्थिति है।

४४२. गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासः।१४/१/२० हे नारि! तू पतिगृह को जा और

और घर की रानी बन।

४४३. ब्रह्मणस्पते पतिमस्यै रोचय।१४/१/३१ हे ब्रह्मणस्पते! ऐसी कृपा कर कि पत्नी में पति के लिए प्रेम उत्पन्न हो।

४४४. सं धाता सृजतु वर्चसा।१४/१/३४ परमेश्वर हमें तेज से सींच दे।

४४५. पत्युरनुव्रता भूत्वा सं नह्यस्वामृताय कम्।१४/१/४२ हे नारि! तू पति का अनुवर्तन करने वाली होकर मोक्षपद पाने के लिए कटिबद्ध रह।

४४६. त्वं सम्राज्ञयेधि पत्युरस्तं परेत्य।१४/१/४३ हे नारि! पति के घर में पहुँचकर तू महारानी बन।

४४७. सा नो अस्तु सुमंगली।१४/१/६० वह विवाहिता नारी हमारे लिए मंगलकारिणी हो।

४४८. आ रोह चर्मोप सीदाग्निम्।१४/२/२४ हे नारि! इस मृगचर्म पर बैठ और प्रभु उपासना अथवा यज्ञ कर।

४४९. अमुक्षि विश्वस्मादेनसस्परि।१४/२/४४ मैं सम्पूर्ण पापों, बुरी आदतों और दुर्व्यसनों से मुक्त रहूँ।

४५०. चक्रवाकेव दम्पती।१४/२/६४ दम्पती चकवा चकवी के समान एक-दूसरे से प्रेम करने वाले हों।

४५१.अमोऽहमस्मि सा त्वम्।१४/२/७१ हे देवि! जो मैं हूं, वही तू है। अथवा मैं विष्णु हूं और तू लक्ष्मी है।

४५२. शिवेन मा चक्षुषा पश्यतापः।१६/१/१२ हे आप्त पुरुषों! आप मुझे प्रेममयी दृष्टि से देखो।

४५३. निर्दुरर्मण्यः।१६/२/२१ दुष्ट भोजन और दुष्ट प्रवृत्ति हमसे दूर हो जाए।

४५४. मधुमतीं वाचमुदेयम्।१६/२/२१ मैं माधुर्ययुक्त और ज्ञान से पूर्ण वाणी बोलूं।

४५६. कर्णौ भद्रं श्लोकं श्रूयासम्।१६/२/४ मैं अपने कानों से भली बातें, उत्तमोत्तम् उपदेश ही सुनूँ।

४५७. सौपर्णं चक्षुरजस्रं ज्योतिः।१६/२/५ मेरी नेत्र-ज्योति गरुड़ के समान तीक्ष्ण हो और वह निरन्तर प्रकाशमान् रहे।

४५८. बृहस्पतिर्म आत्मा।१६/३/५ ज्ञान मेरी आत्मा है, अथवा मेरी आत्मा महान् है।

४५९. समुद्रो अस्मि विधर्मणा।१६/३/६ मैं अपनी विशेष धारणशक्ति से समुद्र के समान गम्भीर बनूं। अथवा मैं गुणों का समुद्र बनूं।

४६०. नाभिरहं रयीणाम्।१६/४/१ मैं समस्त ऐश्वर्यों का अथवा धनवानों का केन्द्र बनूं।

४६१. योस्मान् द्वेष्टि तमात्मा द्वेष्टुः।१६/७/५ जो हमसे द्वेष करता है, उसकी आत्मा ही उससे ग्लानि करने लगे। अथवा उसके पुत्र आदि उससे द्वेष करने लगें।

४६२. ऋतमस्माकं तेजोऽस्माकम्।१६/८/१ सत्य हमारे पक्ष में है, तेज हमारे पास है।

४६३. ब्रह्मास्माकं स्वरऽस्माकम्।१६/८/१ वेदज्ञान हमारे पास, सुख हमारे पास।

४६४. पूषा मा धात्सुकृतस्य लोके।१६/६/२ सर्वपोषक परमात्मा मुझे श्रेष्ठ योनियों में स्थापित करे।

४६५. सं सूर्यस्य ज्योतिषागन्म।१६/६/३ हम परमात्मा अथवा सूर्य के प्रकाश, तेज से युक्त हो गये हैं।

४६६. उदिह्यु दिहि सूर्य वर्चसा माभ्युदिहि।१७/१/६ हे सूर्य! तेजस्विन्! तू उदय हो, चमक, अपनी ज्योति फैला और अपने तेज से मुझे भी चमका दे। हे हृदयाकाश के परम सूर्य! सर्वप्रेरक परमात्मा! प्रकट हो, मुझे दर्शन दो, मुझे अपने आलोक से आलोकित कर दो।

४६७. सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्।१७/१/६ हे परमात्मा! मुझे सर्वोत्कृष्ट आनन्दामृत पिला, मोक्षपद दिला।

४६८. त्वमिन्द्रासि विश्वजित् सर्ववित्।१७/१/११ हे इन्द्र! तू सबको जीतने वाला और सर्वज्ञ है।

४६६. शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि।१७/१/२० तू निर्मल कान्तिवाला है, तू देदीप्यमान् है।

४७०. अहं भ्राजता भ्राज्यासम्।१७/१/२० मैं तेज, कान्ति और ओज से देदीप्यमान् होऊँ।

४७१. रुचिरसि रोचोऽसि।१७/१/२१ तू कान्तिस्वरूप और कान्तिमान् है।

४७२. सहस्रायुः सुकृतश्चरेयम्।१७/१/२७ मैं शुभकर्म करते हुए दीर्घ जीवन प्राप्त करूँ।

४७३. मा मा प्रापत् पाप्मा मोत मृत्युः।१७/१/२६ पाप मेरे पीछे न लगे और अकाल मृत्यु भी मेरे पास न फटके।

४७४. अन्तर्दधेऽहं सलिलेन वाचः।१७/१/२६ मैं वेदवाणी के अमृतजल में, अमृत सरोवर में डुबकी लगाता हूँ।

४७५. अग्निर्मा गोप्ता परि पातु विश्वतः।१७/१/३० संकटों से बचानेवाला सर्वरक्षक परमेश्वर मेरी सब ओर से रक्षा करे।

४७६. न यत्पुरा चकृमा कद्ध नूनम्।१८/१/४ जो कार्य (निषिद्ध कर्म/बुरा कर्म) पहले कभी नहीं किया है, उसे अब कैसे कर लें ?

४७७. नकिरस्य प्र मिनन्ति व्रतानि।१८/१/५ परमेश्वर के नियमों को कोई नहीं तोड़ सकता।

४७८. को अस्य वेद प्रथमस्याहः।१८/१/७ इस संसार के प्रथम दिन के विषय में कौन जानता है ?

४७६. मध्वा नो अत्र पितरा शिशीताम्।१८/१/३१ हे पितरों! तुम हमें मधु से

संस्कृत करो अर्थात् मधु के समान माधुर्ययुक्त बनाओ।

४८०. इह मादयस्व।१८/१/५६ हे मनुष्य! इस संसार में सुप्रसन्न रह।

४८१. ततः परं नाति पश्यामि किं चन।१८/२/३२ उस सर्वनियन्ता परमेश्वर से बढ़कर शक्तिशाली मैं किसी को भी नहीं देखता अथवा समझता।

४८२. तन्वा चारुरेधि।१८/३/७ तू शरीर से सुन्दर रह, अपने शरीर को सुन्दर बना।

४८३. उत्तिष्ठ प्रेहि प्र द्रव।१८/३/८ उठ खड़ा हो, आगे बढ़, तेजी से दौड़।

४८४. ओकः कृणुष्व सलिले सधस्थे।१८/३/८ हे जीव! तू जल के समान शान्त उस परमशरण परमात्मा में अपना निवास स्थान बना ले अथवा तू अन्तरिक्ष में या जल में अपना घर बना।

४८५. अंजन्तु देवा मधुना घृतेन।१८/३/१० विद्वान् लोग मुझे मधु और घृत से सींच दें, मुझे माधुर्ययुक्त और तेजस्वी बना दें।

४८६. वर्चसा मां समनक्त्वग्निः।१८/३/११ प्रकाश स्वरूप परमात्मा मुझे तेज से चमका दे।

४८७. अध स्याम सुरभयो गृहेषु।१८/३/१७ हम पुण्य कर्मों की सुगन्धि फैलाते हुए घरों में रहें।

४८८. सुकर्माणः सुरुचः।१८/३/२२ श्रेष्ठ कर्म करनेवाले ही कान्ति-सम्पन्न होते हैं, उन्हीं का यश फैलता है।

४८९. सदः सदः सदत सुप्रणीतयः।१८/३/४४ उत्तम नीति का उपदेश करनेवाले विद्वान् लोगों! आप घर-घर में प्राप्त होओ, घर-घर जाकर वेदोपदेश हो।

४९०. ऊर्णम्रादः पृथिवी दक्षिणावतः।१८/३/४९ दानशील के लिए पृथिवी, मातृभूमि नर्म ऊन की भांति सुखदायी होती है।

४९१. मा वि जिह्वरः।१८/३/५३ हे मानव! तू किसी के भी प्रति कुटिलता का बर्ताव मत कर।

४९२. हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि। १८/३१/५८ हे मनुष्य! तू निन्दित कर्मों को छोड़कर पाप का फल भोगकर पुनर्जन्म द्वारा पुनः इसी घर में आ, अथवा नया शरीररूपी घर प्राप्त कर अथवा निन्दनीय आचरण, खोटे कर्मों को छोड़कर घर में पैर रख।

४९३. परैतु मृत्युरमृतं न ऐतु।१८/३/६२ मृत्यु हमसे दूर चली जाए और अमरत्व हमें प्राप्त हो।

४९४. स नो यमः प्रतरं जीवसे धात्।१८/३/६३ सर्वनियन्ता परमेश्वर ने हमें उत्कृष्ट जीवन जीने के लिए, गौरव पूर्ण जीवन जीने के लिए पैदा किया है।

४९५. आ रोहत दिवमुत्तमाम्।१८/३/६४ हे मानव! तू उत्कृष्टतम मोक्ष पर आरोहण कर! अथवा उन्नति के सर्वोच्च शिखर पर चढ़ जा।

४९६. ऋषयो मा बिभीतन।१८/३/६४ हे ऋषियों! आप लोग डरो मत, भयरहित

हो जाओ।

४६७. ऋतस्य पन्थामनु पश्य साधु।१८/४/३ हे योगिन्! सत्य के मार्ग को भली-प्रकार देख।

४६८. तृतीये नाके अधि वि श्रयस्व।१८/४/३ हे योगिन्! तू सर्वोत्कृष्ट सुख-दुःखरहित मोक्षपद में अपने आपको प्रतिष्ठित कर।

४६९. तीर्थस्तरन्ति प्रवतो महीः।१८/४/७ तीर्थ (माता, पिता, आचार्य, ब्रह्मचर्य, सत्संग आदि) सेवन से मनुष्य बड़ी-बड़ी विपत्तियों को तर जाते हैं। अथवा भवसागर से पार उतरने के साधनभूत यज्ञ, दान, तप आदि द्वारा मनुष्य बड़ी-बड़ी विपत्तियों को तर जाते हैं। अथवा तैरने के साधन नौका आदि द्वारा मनुष्य बड़ी-बड़ी वेगवान् नदियों के भी पार उतर जाते हैं।

५००. मर्त्योऽयममृतत्वमेति।१८/४/३७ यह मरणधर्मा मनुष्य अपने कर्मों से मोक्षपद की भी प्राप्त कर लेता है। अथवा हे लोगों! यह मरणधर्मा पुरुष अमरत्व को प्राप्त हो (कुछ ऐसा प्रयत्न करो)।

५०१. सखा सख्युर्न प्र मिनाति संगिरः।१८/४/६० मित्र मित्र की बात को नहीं टालता।

५०२. श्रेष्ठा भूयास्म।१८/४/८७ हम सर्वश्रेष्ठ बनें।

५०३. सुपर्णो धावते दिवि।१८/४/८९ सुन्दर गतिशील चन्द्रमा आकाश में दौड़ता है।

५०४. भिषग्भ्यो भिषक्तरा आपः।१९/२/३ जल वैद्यों से भी बढ़कर वैद्य हैं।

५०५. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनाम्।१९/८/५ परमैश्वर्यशाली परमेश्वर सब जगत् का, सब मनुष्यों का राजा है।

५०५. पुण्यं भक्षीमहि क्षवम्।१९/५/१ हम पुण्य से प्राप्त अन्न का भोग करें।

५०६. इदमुच्छ्रेयोऽवसानमागाम्।१९/१४/१ मैं श्रेय-कल्याण, मोक्ष के स्थान पर पहुँचूँ।

५०७. असपत्नाः प्रदिशो में भवन्तु।१९/१४/१ दिशाएँ मेरे लिए शत्रुरहित हों, किसी भी दिशा में मेरा कोई शत्रु न हो।

५०८. यत इन्द्र भयामहे ततो नो अभयं कृधि।१९/१५/१ हे दुष्टविदारक प्रभो! जिधर से हम भय मानते हैं, उधर से ही हमें निर्भय बना दे।

५०९. सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु।१९/१५/६ समस्त दिशाएं (दिशाओं में रहने वाले) मेरे मित्र होकर रहें।

५१०. तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः।१९/२२/२१ उस महान् ब्रह्म की बराबरी कौन कर सकता है ?

५११. परि धत्स्व वासः।१९/२४/५ हे मनुष्य! तू वस्त्र धारण कर।

५१२. आयुष्मान् जीव मा मृथाः।१९/२७/८ हे मनुष्य! तू आयुष्मान् होकर

चिरकाल तक जी, मर मत।

५१३. तेजोऽसि तेजो मयि धारय।१६/३१/१२ प्रभो! तू तेजस्वरूप है, मुझमें भी तेज की स्थापना कर।

५१४. सूर्यइवा भाहि प्रदिशश्चतस्रः।१६/३३/५ हे मानव! तू सूर्य की भांति चारों दिशाओं को प्रकाशित कर दे, जगमगा दे।

५१५. सत्याः सन्तु यजमानस्य कामाः।१६/४२/३ यजमान की कामनाए पूर्ण और समृद्ध हों।

५१६. सर्वा दिशो अभयास्ते भवन्तु।१६/४५/४ समस्त दिशाएं तेरे लिए भयरहित हों।

५१७. मा नो दुःशंस ईशत।१६/४७/६ कोई दुष्ट या निन्दित व्यक्ति हम पर शासन न करे।

५१८. अयुतोऽहमयुतो म आत्मा।१६/५१/५ मैं दस सहस्र मनुष्यों की शक्ति से युक्त हूँ, मेरी आत्मा भी दस हजार मनुष्यों की शक्ति से युक्त हैं अथवा मैं निर्दोष हूँ, मेरी आत्मा भी निर्दोष है अथवा मैं पूर्ण हूँ, मेरा शरीर भी पूर्ण है।

५१६. अयुतोऽहं सर्वः।१६/५१/६ मैं सम्पूर्ण दस सहस्र की शक्ति से युक्त हूँ। मैं सम्पूर्ण रूप से निर्दोष हूँ।

५२०. कालो अश्वो वहति।१६/५३/१ समयरूपी घोड़ा दौड़ रहा है अथवा समयरूपी घोड़ा विश्व रथ को खींच रहा है।

५२१. काले तपति सूर्यः।१६/५३/२ सूर्य काल (परमात्मा) के अधीन रहकर तपता है।

५२२. श्रोत्रं चक्षुः प्राणोऽच्छिन्नो नो अस्तु।१६/५८/१ परमात्मा की कृपा से हमारे कान, आंख और प्राण कभी नष्ट न हों, ये पूर्ण स्वस्थ और शक्तियुक्त बने रहें।

५२३. उप वयं प्राणं हवामहे।१६/५८/२ हम प्राणशक्ति का अपने जीवन में आवाहन करते हैं, अर्थात् हम अपने आप की प्राणशक्ति से सम्पन्न बनाते हैं।

५२४. व्रजं कृणुध्वम्।१६/५८/४ हे मनुष्यों! गौशाला बनाओ अथवा संगठन बनाओ।

५२५. अपलिताः केशाः।१६/६०/१ मेरे बाल असमय में सफेद न हों।

५२६. अशोणा दन्ताः।१६/६०/१ मेरे दाँत लाल (पीले) न हों, दांतों से रक्त न निकले, दांत निर्मल हों।

५२७. आत्मा निभृष्टः।१६/६०/२ मेरी आत्मा पतित न हो।

५२८. उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते।१६/६३/१ हे वेदपते! उठो, क्रियाशील बनो! स्वयं जागो और दूसरों को जगाओ।

५२६. पश्येम शरदः शतम्।१६/६७/१ हम सौ वर्षों तक देखें।

५३०. बुध्येम शरदः शतम्।१६/६७/४ हम सौ वर्ष तक वृद्धि को प्राप्त हों, सौ

वर्ष तक समुन्नत होते रहें।

५३१. पूषेम शरदः शतम्।१९/६७/५ हम सौ वर्ष तक हृष्ट-पुष्ट रहें।

५३२. भूयसीः शरदः शतात्।१९/६७/८ हम सौ वर्ष से भी अधिक देखें, सुनें और जीएं।

५३४. उपजीवा स्थोप जीव्यासम्।१९/५८/२ हे आप्तजनों! आप दूसरों के लिए जीवन का आश्रय हो, मैं भी दूसरों के लिए जीवन का आश्रय बनूं।

५३५. स्तुता मया वरदा वेदमाता।१९/७१/१ मैं (परमेश्वर) ने तुम्हें इष्टफल प्रदान करनेवाली वेदमाता का उपदेश कर दिया। अथवा मैं (उपासक) ने इष्टफल प्रदान करनेवाली वेदमाता का स्तवन अध्ययन किया है।

५३६. एवं बर्हिः सदो मम।२०/३/१ प्रभो! यह मेरा हृदय तेरा आसन है, इस पर आ विराज।

५३७. गृभाय जिह्वया मधु।२०/४/२ हे उपासक! तू ब्रह्मरन्ध्र से स्रवित होने वाले अमृतरस को जिह्वा द्वारा ग्रहण कर।

५३८. सोमः शमस्तु ते हृदे।२०/४/३ आनन्दरस तेरे हृदय के लिए शान्तिदायक हो।

५३९. आपूर्णो अस्य कलशः।२०/८/३ उस परमेश्वर का भण्डार भरा हुआ है। अथवा ब्रह्माण्ड परमेश्वर की शक्ति से परिपूर्ण है।

५४०. अस्य महिमा न संनशे।२०/८/४ परमात्मा की महिमा का पार नहीं पाया जा सकता। अथवा उसकी महिमा मिटाई नहीं जा सकती।

५४१. इन्द्रः पूर्भिदातिरद् दासमर्कैः।२०/८/५ देहपुरी को तोड़ने वाला (मुक्तिप्रद) परमात्मा वेदमन्त्रों द्वारा अपने अज्ञान को नष्ट करने वाले जीव को संसार सागर से पार कर देता है।

५४२. एको देवत्रा दयसे हि मर्तान्।२०/१२/५ हे परमेश्वर! देवताओं में एक अकेला तू ही मनुष्यों पर दया करता है।

५४३. अस्मिञ्छूर सवने मादयस्व।२०/१२/५ हे जितेन्द्रिय वीर! तू संसार में सदा प्रसन्न रहा। तू जीवन यज्ञ में आनन्द प्राप्त कर, सदा मस्त और प्रफुल्लित रह।

५४४. तव स्मसि।२०/१५/५ हे प्रभो! हम तेरे हैं।

५४५. स्तोतुर्मघवन् काममा पृण।२०/१५/५ हे ऐश्वर्यशाली परमात्मा! तू अपने उपासक की कामनाओं, मनोरथों को पूर्ण कर।

५४६. न घा त्वद्रिगप वेति मे मनः।२०/१७/२ हे प्रभो! मेरा मन तो तुझमें ही लगा है, तुझसे हटता ही नहीं।

५४७. त्वे इत् कामं पुरुहूत शिश्रय।२०/१७/२ हे बहुतों द्वारा पुकारे जाने वाले इन्द्र! मैंने अपनी कामना (इच्छा) तुझमें ही केन्द्रित कर दिया है।

५४८. राजेव दस्म नि षदोऽधि बर्हिषि।२०/१७/२ हे दर्शनीय देव! जैसे राजा

अपने सिंहासन पर बैठता है, ऐसे ही आप राजा बनकर मेरे हृदय-आसन पर बैठिए।

५४९. विदत् स्वर्मनवे ज्योतिरार्यम्।२०/१७/४ वह परमेश्वर मननशील पुरुष को सुख और सर्वश्रेष्ठ ज्योति-ज्ञान प्रदान करता है।

५५०. विशंविशं मघवा पर्यशायत।२०/१७/६ वह ऐश्वर्यशाली प्रभु प्रत्येक मनुष्य अन्दर के निवास कर रहा है।

५५१. उज्जायतां परशुर्ज्योतिषा सह।२०/१७/६ ज्ञानरूप वज्र अपने आत्म-प्रकाश के साथ उदित हो।

५५२. इच्छन्ति देवाः सुन्वन्तम्।२०/१८/३ विद्वान् लोग पुरुषार्थी को चाहते हैं, पुरुषार्थी से प्रेम हैं।

५५३. यन्ति प्रमादमतन्द्राः।२०/१८/३ आलस्य रहित, उद्योगी पुरुष अत्यन्त आनन्द को प्राप्त होते हैं।

५५४. त्वे अपि क्रतुर्मम।२०/१८/५ मुझे तो केवल आपका ही भरोसा है।

५५५. भद्रः भवति नः पुरः। २०/२०/६ वह परमेश्वर कूटस्थ और विश्वद्रष्टा है।

५५६. स हि स्थिरो विचर्षणिः।२०/१८/३ वह परमेश्वर कूटस्थ और विश्वद्रष्टा है।

५५७. न नः पश्चादघं नशत्।२०/२०/६ हे परमात्मा! पाप हमारे पीछे न लगे।

५५८. इन्द्र आशाभ्यस्परि सर्वाभ्यो अभयं करत्।२०/२०/७ हे परमात्मा! हमें सब दिशाओं में निर्भय कर दे।

५५९. अहं गोपतिः स्याम्।२०/२७/२ मैं गौओं का स्वामी बनूं। अथवा मैं अपनी इन्द्रियों का विजेता बनूं।

५६०. अव दस्यूँरधूनुथाः।२०/२६/४ हे राजन्! आत्मन्! तू शत्रुओं, काम-क्रोध ा आदि को धुन डाल।

५६१. शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।२०/३४/१४ उस परमेश्वर के भय के समक्ष पर्वत भी कांपते हैं।

५६२. वयं त इन्द्र विश्वाह प्रियासः।२०/३४/१८ हे परमात्मा! हम लोग सदा तेरे प्रिय बनकर रहें।

५६३. वि वृश्चद् वज्रेण वृत्रमिन्द्र।२०/३५/१० हे ऐश्वर्यशाली परमात्मा! अपने ज्ञानरूपी वज्र से अज्ञानरूपी वृत्र (वृत्ति) को नष्ट कर।

५६४. एक इद्धव्यश्चर्षणीनाम्।२०/३६/१ एकमात्र परमेश्वर ही मनुष्यों की स्तुति का पात्र है।

५६५. प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्।२०/३६/१६ वह परमेश्वर प्रातःकाल ध ारणाओं के द्वारा उपासना करने योग्य है।

५६६. तव प्रियासः सूरिषु स्याम।२०/३७/७ हे परमात्मा! हम विद्वानों के मध

य में रहते हुए तेरे प्रिय हों।

५६७. अस्माकमस्तु केवलः।२०/३६/१ सुखस्वरूप परमेश्वर ही एकमात्र हमारा आश्रय हो।

५६८. भिन्धि विश्वा अप द्विषः।२०/४३/१ हे परमात्मा! हमारे सब द्वेषकारी शत्रुओं को काट डाल और हमारी द्वेष-वृत्तियों को छिन्न-भिन्न कर दे।

५६९. मा नो अति ख्य आ गहि।२०/५७/३ ईश्वर! तू हमसे ओझल न हो, हमें अपने दर्शनों से वंचित मत रख, अब तो हृदय मन्दिर में दर्शन दे।

५७०. महस्ते सतो महिमा पनस्यते।२०/५८/३ हे सत्यस्वरूप परमेश्वर! तुझ महान् की महिमा का सर्वत्र गान हो रहा है।

५७१. दक्षं दधाति सोमिनि।२०/५९/३ परमेश्वर ब्रह्मानन्दरस का पान करनेवाले योगी में बल प्रदान करता है।

५७२. विश्वकर्मा विश्वदेवो महाँ असि।२०/६५/६ प्रभो! तू जगत् के सारे कर्मों का करनेवाला है, तू सबका उपास्यदेव और सबसे महान है।

५७३. घृतात् स्वादीयो मधुनश्च वोचत।२०/६५/२ घी और मधु से भी अधिक स्वादिष्ट वाणी बोलो।

५७४. सुन्वान इत् सिषासति सहस्रा वाज्यवृतः।२०/६७/१ उपासना करनेवाला ज्ञानवान् होकर और विघ्न-बाधाओं से न घिरकर सहस्रों ऐश्वर्यों को निरन्तर प्राप्त करता है।

५७५. स्यामेदिन्द्रिस्य शर्मणि।२०/६८/६ हम परमात्मा की ही शरण में रहें।

५७६. आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत।२०/६८/११ हे मित्रों! टुक आओ, बैठो और प्रभु के गुण गाओ।

५७७. न विन्धे अस्य सुष्टुतिम्।२०/७०/१३ मैं परमात्मा की स्तुति का पार नहीं पाता हूँ।

५७८. महाँ इन्द्रः परश्च नु।२०/७१/१ इन्द्र महान है और सर्वोत्कृष्ट है।

५७९. समिन्द्र गर्दभं मृण।२०/७१/२ हे इन्द्र! तू गर्दभ के समान कठोरभाषी, लालची, तृष्णाजनित पापवृत्ति वाले मनुष्य को अच्छी प्रकार नष्ट कर।

५८०. नृतौ स्याम नृतमस्य नृणाम्।२०/७६/२ हमें सबसे बड़े नेता परमेश्वर का नेतृत्व प्राप्त हो।

५८१. गिर्वणस्तनूपा अन्तमो भव।२०/८३/२ हे स्तुत्य परमात्मा! तू हमारे शरीरों का रक्षक होकर हमारा अति समीपतम मित्र होकर रह।

५८२. इन्द्रा याहि चित्रभानो।२०/८४/१ आश्चर्यजनक दीप्तिवाले परमेश्वर! तू साक्षात् दर्शन दे।

५८३. गवामसि गोपतिरेक इन्द्र।२०/८७/६ हे परमात्मा! तू समस्त भूमियों (ब्रह्माण्डों) का एकमात्र पालक और शासक है।

५८४. नि रामय जरितः सोम इन्द्रम्।२०/८९/१ हे भक्त! तू अपनी आत्मा को

परमेश्वर में निमज्जित, निमग्न कर।

५८५. शिशीहि मा शिशयं त्वा श्रृणोमि।२०/८६/३ हे परमात्मा! मुझे तेजस्वी बना दे। तू अत्यन्त तीक्ष्ण करने वाला है, ऐसा मैं सुनता हूँ।

५८६. नासुन्वता सख्यं वष्टि शूरः।२०/८६/४ परमेश्वर यज्ञहीन, नास्तिक के साथ मित्रता नहीं करता।

५८७. नि सुन्वते वहति भूरि वामम्।२०/८६/८ परमेश्वर अपने उपासक को बहुत-सा सुन्दर ऐश्वर्य प्रदान करता है।

५८८. सुदेवो असि वरुण।२०/६२/६ हे सर्वश्रेष्ठ आत्मन्! तू सर्वश्रेष्ठ देव है। तू उत्तम सुख तथा कल्याण का देने वाला है।

५८६. अव ब्रह्म द्विषो जहि।२०/६३/१ ब्रह्मद्वेषी (नास्तिकों) को नष्ट कर दो, उनकी नास्तिकता दूर कर दो।

५६०. नहि त्वा कश्चन प्रति।२०/६३/२ हे परमात्मा! संसार में कोई भी ऐसा मनुष्य नहीं, जो तेरा मुकाबला कर सके।

५६१. त्वं वृषन् वृषेदसि।२०/६३/५ हे अभीष्ट फलों की वर्षा करने वाले प्रभो! तू वस्तुतः शक्तिशाली है और सुखों का वर्षक है है।

५६२. त्वमिन्द्रासि वृत्रहा।२०/६३/७ हे इन्द्र! तू वृत्रों (पापों) का नाशक है।

५६३. त्वं त्वा परि ष्वजामहे।२०/६५/३ हे परमात्मा! हम तेरा आलिंगन करते हैं, तुझे अपनाते हैं।

५६४. हवामहे त्वोपगन्तवा उ।२०/६६/५ हे परमात्मा! तेरे समीप पहुँचने के लिए हम पुकार मचा रहे हैं।

५६५. अपेहि मनसस्पतेऽप क्राम परश्चर।२०/६६/२४ हे मन पर अधिकार करनेवाले पाप! तू यहाँ से भाग जा, दूर चला जा, दूर होकर विचर।

५६६. असि सत्य ईशानकृत्।२०/१०४/४ हे परमेश्वर! तू सच्चा शासन करने वाला है।

५६७. त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता।२०/१०८/२ हे सबको बसाने वाले! ऐश्वर्यसम्पन्न परमात्मा! तू ही हमारा पिता है और तू ही हमारी माता है।

५६८. अर्कमर्चन्तु कारवः।२०/११०/१ भक्त लोग उस अर्चना करने योग्य परमेश्वर की स्तुती करें।

५६६. अहं सूर्य इवाजनि।२०/११५/१ मैं सूर्य के समान भ्राजमान् और दीप्तिमान् हो गया हूँ।

६००. ब्रह्मेन्द्राय वोचत।२०/११६/१ परमात्मा के लिए वेद-मन्त्रों का गान करो। अथवा उसका स्तुतिगान करो।

६०१. विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः।२०/१२६/१ परमेश्वर जगत् के सारे पदार्थों से, सभी शक्तियों से सर्वोत्कृष्ट है।

६०२. उत्तिष्ठ वि चरा जनम्।२०/१२७/१ विद्वान्! उठ, लोगों में विचरण कर।

६०३. नेमा इन्द्र गावो रिषन्।२०/१२७/१३ हे परमात्मा! ये गौएं किसी के द्वारा हिंसित न हों।

६०४. अजागार केविका।२०/१२६/१७ प्रकृति के वशीभूत आत्मन्! प्रकृति सांसारिक सुखों में बाँधने वाली है।

६०५. अश्वस्य वारो गोशपद्यके।२०/१२६/१८ आत्मन्! तू घुड़सवार (इन्द्रियों का स्वामी) होकर इन्द्रियों के खुरों में कट-फट रहा है।

६०६. अकुप्यन्त कुपायकुः।२०/१३०/८ हम क्रोध नहीं करते, क्योंकि क्रोध करने वाला कुत्सित होता है।

६०७. अथो श्वा अस्थिरो भवन्।२०/१३०/१६ अस्थिर व्यक्ति कुत्ते की भांति हो जाता है।

६०८. अश्वत्थः खदिरो धवः।२०/१३१/१४० वह परमात्मा 'अश्वत्थ' सनातन, व्याप्त होकर विराजने वाला है, वह 'खदिर' सदा स्थिरता से विद्यमान, नित्य है। वह 'धव' सब दुःखों और पाप-मलों का नाश करने वाला, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव है।

६०६. शयो हत इव।२०/१३१/१६ सोने वाला मनुष्य मरे हुए के समान होता है अथवा अहो! तू मुर्दे के समान सोया पड़ा है।

६१०. अत्यर्धर्च परस्वतः।२०/१३१/१६ परमेश्वर परम स्वरूपवान्, महान समृद्ध है, तू उसी की उपासना कर।

६११. दौव हस्तिनो दृती।२०/१३१/२० हाथी के दोनों दाँतों के समान ज्ञान और कर्म- दोनों आत्मा के बन्धन काटने वाले हैं।

।। इति ।।

अथर्ववेद मन्त्र

१. **तिष्ठावरे तिष्ठ पर उत त्वं तिष्ठ मध्यमे ।**
कनिष्ठिका च तिष्ठति तिष्ठादिद्धमनिर्मही ।। का.१ सू.१७ मं.२

शरीर के अधोभाग में वर्तमान हे धमनि ! तू यथा स्थान स्थित रह, ऊर्ध्वांग में वर्तमान हे धमनि ! तथा मध्यामांग में वर्तमान हे धमनि ! तू यथास्थान में स्थित रह। और सबसे छोटी अर्थात् सूक्ष्मतरा धमनि तो स्वस्थान में स्थित रहती ही है, सबसे बड़ी धमनि भी स्वस्थान में स्थित रहे।

२. **सखासावस्मभ्यमस्तु रातिः सखेन्द्रो भगः ।**
सविता चित्रराधाः ।। का.१ सू.२६ मं.२

वह दाता परमेश्वर हमारे लिये मित्र हो। परमेश्वर्यवान् भगनीय सर्वोत्पादक तथा चित्र-विचित्र धनवाला परमेश्वर हमारे लिये सखा हो।

३. **इदं जनासो विदथ महद् ब्रह्म वदिष्यति।**
न तत् पृथिव्यां नो दिवि येन प्राणन्ति वीरुधः ।। का. १ सू.३२ मं.१

हे जीवों! इस सबसे महान् ब्रह्म को तुम जानो, ज्ञानी उसके सम्बन्ध में बातयेगा। वह न केवल पृथिवी में न द्युलोक में और न केवल अन्तरिक्ष में है, अपितु सर्वत्र है, वह वह है, जिसके द्वारा वनस्पतियाँ प्राण धारण करती हैं।

४. जिह्वाया अग्रे मधु में जिह्वामूले मधूलकम् ।
ममेदह क्रतावसो मम् चित्तमुपायसि ।। का. १ सू.३४ मं.२

हे लतावत् ब्रह्मविद्याया प्रिये! जिह्वा के अग्रभाग में ब्रह्मज्ञान रहे और जिह्वा के मूलभाग मानस में भी मनोहर ज्ञानामृत हो। हे ब्रह्मविद्ये! मेरे कर्ता आत्मा में अवश्य ही तू विद्यमान रह और मेरे चित्त में भी व्याप्त रह।

५. मधुमन्मे निष्क्रमणं मधुमन्मे परायणम् ।
वाचा वदामि मधुमद् भूयासं मधुसंदृशः ।। का. १ सू.३४ मं.३

मेरा घर से निकलना मधुरूप हो, मेरा दूरगमन या अन्यों को मिलना मधुरूप हो। वाणी द्वारा मधुर मैं बोलता हूँ। मधु के सदृश सर्वतोभावेन मैं मधुर हो जाऊँ ।

६. मधोरस्मि मधुतरो मदुघान्मधुमत्तरः ।
मामित् किल त्वं वनाः शाखां मधुमतीमिव ।। का.१ सू.३४ मं.४

हे जनों ! मैं मधु से भी अधिक प्रिय, चित्तहारी हूँ, ज्ञानरूप मधुसंचयकारी विद्वान् से भी अधिक ज्ञान-मधु का संग्रह करने वाला हूँ। हे पुरुष! जैसे मधु से युक्त लता को रस का इच्छुक प्राणी सेवन करता है, वैसे ही मुझको ही निश्चय से तू सेवन कर।

७. नैनं रक्षांसि न पिशाचाः सहन्ते देवानामोजः प्रथमजं ह्येऽतत् ।
यो बिभर्ति दाक्षायणं हिरण्यं स जीवेषु कृणुते दीर्घमायुः ।।का. १ सू.३५ मं.२

वीर्य रक्षक ब्रह्मचारी को दुष्टभाव और ज्वरादि पीड़ाएँ, माँसभोजी पुरुष और रोग भी नहीं दबा सकते, क्योंकि यह वीर्यरूप मूल तत्व इन्द्रियों में और विद्वानों में सबसे पूर्व और श्रेष्ठ तेज है। जो ऊर्ध्वरेता पुरुष मुख्य प्राण में आश्रित इस हितकारी शुक्र को यत्नपूर्वक धारण करता है, वह जीवों में जीवन काल को बहुत लम्बा कर लेता है।

८. अपां तेजो ज्योतिरोजो बलं च वनस्पतीनामुत वीर्याऽणि ।
इन्द्र इवेन्द्रियाण्यधि धारयामो अस्मिन् तद् दक्षमाणो बिभरद्धिरण्यम् ।। का. १ सू.३५ मं.३

आत्मा जैसे इन्द्रियों को धारण करता है वैसे ही वीर्य की सामर्थ्य, कान्ति, ओज, बल और वनस्पतियों या प्राणों के भी सामर्थ्यों को हम इस ब्रह्मचारी में धारण करते हैं। यह ब्रह्मचारी शौर्य में वृद्धि करता हुआ उस वीर्य को धारण करें।

९. वेनस्तत् पश्यत् परमं गुहा यद् यत्र विश्वं भवत्येकरूपम् ।
इदं पृश्निरदुहज्जायमानाः स्वर्विदो अभ्यऽनूषत व्राः ।। का.२ सू.१ मं.१

जो ब्रह्म हृदय और ब्रह्माण्ड रूप गुहा में व्यापक तथा सर्वोत्कृष्ट है, उसका ज्योतिर्मय योगी साक्षात् करता है। उस ब्रह्म में समस्त संसार प्रलयकाल में एकाकार हो जाता है। नाना वर्णों

की प्रकृति ने इस ब्रह्म का दोहन किया है, अर्थात् ब्रह्म ज्ञान के दो प्रकार हैं। एक तो अन्तध यान और दूसरा प्रकृति के रहस्यों को खोजना। प्रकृति के नाना रूपों में छिपे हुए ब्रह्म के ज्ञान का यहाँ वर्णन है। उत्पन्न होते हुए सिद्ध जिन्होंने उस ब्रह्म को ध्येय रूप वरण किया है, इस प्रकार प्रकृति के रहस्यों द्वारा ब्रह्म को जानकर प्रकाशस्वरूप उस मोक्षसुख को लिये हुए हैं। वे ब्रह्म की साक्षात् स्तुति करते हैं।

१०. प्र तद् वोचेद् अमृतस्य विद्वान् गन्धर्वो धाम परमं गुहा यत् ।
त्रीणि पदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुष्पितासत् ।।का. २ सू. १ मं.२

उस अमृतस्वरूप ब्रह्म का ज्ञाता, वेदवाणियों का धारक विद्वान् जो ब्रह्म हृदय ब्रह्माण्ड या प्रकृति शक्ति में है जो सबसे श्रेष्ठ धारणशील है। इस परमेश्वर के तीन स्वरूप तीन चरण हृदय गुह्य में रखे हुए हैं। जो विद्वान् उक्त ब्रह्म के तीन स्वरूपों को जानता है, वह पालक का भी पालक हो जाता है।

११. स नः पिता जनिता स उत बन्धुधामानि वेद भुवनानि विश्वा ।
यो देवानां नामध एक एव तं सम्प्रश्नं भुवना यन्ति सर्वा ।। का.२ सू.१ मं.३

वह परमात्मा हमारा पालक और उत्पादक है और वह ही सबको प्रेम में बांधने वाला सहायक है। वह समस्त धारण सामर्थ्यों, मूलकारणों और लोकों में स्थित पदार्थों को जानता है। दिव्य गुण वाले पदार्थों के नामों को सर्वगुण सम्पन्न होने के कारण धारण करने वाला अद्वितीय है। गुरु के समीप शिष्य द्वारा प्रश्न कर उपदेश से जानने योग्य उस परमात्मा को ही समस्त लोक और भूतवर्ग प्राप्त होते हैं।

१२. दीर्घायुत्वाय बृहते रणायारिष्यन्तो दक्षमाणाः सदैव ।
मणिं विष्कन्धदूषणं जङ्गिडं विभृमो वयम् ।।का.२ सू.४ मं.१

हम दीर्घ आयु के लिये और बहुत बढ़ी आनन्द प्राप्ति या जीवन में विजय के लिये, सदा ही प्रयत्न करते हुए तथा नाश को प्राप्त न होते हुए, शरीर रस के सूखने को हटाने वाले सन्तानोत्पादक अंश को भीतर रखने वाले वीर्य रूप मणि को सुरक्षित रखें।

१३. जङ्गिडो जम्भाद् विशराद् विष्कन्धात् अभिशोचनात् ।
मणिः सहस्रवीर्यः परिणः पातु विश्वतः ।।का.२ सू.४ मं.२

सन्तानोत्पादक अंश को भीतर रखने वाला वीर्य उत्तम धन है। इससे अक्षय वीर्य प्राप्त होता है। यह हमारा सब प्रकार पूर्ण रक्षक है। यह नाश से, विविध आयुध से रक्तदोष से तथा हाथ पैर आदि जलन से बचाता है।

१४. दशवृक्ष मुञ्चेमं रक्षसो ग्राह्या अधि यैनं जग्राह पर्वसु ।
अथो एनं वनस्पते जीवानां लोकमुन्नय ।। का.२ सू.६ मं.१

हे दश प्राणों के बन्धनों को काटने वाले परमात्मन्! इस जीव को अज्ञान की पकड़ने वाली भोगतृष्णा से मुक्त कर। जो बांधने वाली रस्सी इस जीव को पोरु-पोरु पर जकड़े बैठी है। हे

वनस्पते! समस्त वनों, आत्माओं के पते! स्वामिन्! परमेश्वर! इस समस्त जीवों के लोक के आप उठाओ और इसे देह के दुःखबन्धन, जन्म मरण के पास से मुक्त करो।

१५. आगादुदगादयं जीवानां व्रातमप्यगात् ।

अभूदु पुत्राणां पिता नृणां च भगवत्तमः ।।का.२ सू.६ मं.२

यह परमात्मा संसार में प्राप्त है, और दुःख बन्धनों से ऊपर उठा हुआ है। जीवों के समूह को भी अन्तर्यामी रूप से प्राप्त होता है और वह सब पुत्रस्वरूप जीवों का पिता है तथा मनुष्यों में सबसे श्रेष्ठ है।

१६. अधीतीरध्यगादयमधि जीवपुरा अगन् ।

शतं ह्यस्य भिषजः सहस्रमुत वीरुधः ।।का.२ सू.६ मं.३

यह जीव नाना अवस्थाओं को प्राप्त होता है और नाना प्राणधारी पुर (देहों) को भी प्राप्त होता है। इस जीव के भव-बन्धन के चिकित्सक भी सैकड़ों गुरु हैं और जैसे दुःखी पुरुष के रोग को दूर करने के लिये सैकड़ों वन लताएं हैं, वैसे ही जन्म मृत्यु के रोग का नाश करने के लिये ब्रह्मोपदेश करने वाली वल्लियां भी सैकड़ों हैं।

१७. शुक्रोसिऽभ्राजोऽसि स्वरसि ज्योतिरसि ।

आप्नुहि श्रेयांसमति समं क्राम ।।का.२ सू.११ मं.५

हे जीवात्मन् ! काम, क्रोध आदि का तू शोषक है, दीप्तिस्वरूप तू है, आदित्यसदृश स्वप्रकाशमान तू है, ज्योतिस्वरूप तू है, श्रेष्ठ गुरु को तू प्राप्त कर, और स्वसमान व्यक्ति का अतिक्रमण कर, उनसे आगे बढ़।

१८. इदमिन्द्र श्रृणुहि सोमप यत् त्वा हृदा शोचता जोहवीमि ।

वृश्चामि तं कुलिशेनेव वृक्षं यो अस्माकं मन इदं हिनस्ति ।।का.२ सू.१२ मं.३

हे संसार रूप सोम के पालक और प्रलयकाल में आदान करने वाले परमेश्वर! पवित्र होते हुए हृदय से जब तुझे स्मरण करता हूं, तब तू मेरी यह बात सुन कि जो हमारे इस मननशील आत्मा का घात करता है, उसको वज्ररूप कुठार के पात से जैसे वृक्ष को काट दिया जाता है या फट जाता है, वैसे ही आत्मा के नाशक मोह रूप शत्रु को ज्ञान वज्र से काट डालूं।

१६. सप्त प्राणानष्टौ मन्यस्तांस्ते वृश्चामि ब्रह्मणा ।

अया यमस्य सादनमग्निदूतो अरंकृतः ।।का.२ सू.१२ मं.७

देहबन्धन का ब्रह्मयोग से विनाश। इस देह में सात प्राण और आठ धमनियां हैं, उन सब देहबन्धनकारी साधनों को ब्रह्मज्ञान से काटता हूँ। हे बद्धजीव! अब तू परमात्मा को अपना सहायक करके कृतकृत्य होकर संसार नियन्ता परमेश्वर के आश्रय मोक्षस्थान में चला जा और मोक्ष सुख भोग।

२०. आ दधामि ते पदं समिद्धे जातवेदसि ।

अग्निः शरीरं वेवेष्ट्वसुं वागपि गच्छतु ।।का.२ सू.१२ मं.८

हे आत्मन्! तेरे निजस्वरूप को तेजोमय सर्वोत्पादक, परम ब्रह्म में स्थापित करता हूँ। भौतिक शरीर को यह योगाग्नि व्याप्त करे। वाणी भी प्राण में लीन हो।

२१. निःसालां धृष्णुं धिषणमेकवाद्यां जिघृत्स्वम् ।
सर्वाश्चण्डस्य नप्त्योनाशयामः सदान्वाः ।।का.२ सू.१४ मं.१

आवारागर्दी, ढीठपन, हठ एक ही बात दोहराते जाना, और खाऊ होना आदि ये सब आदतें, क्रोधी और लोभी के साथ सम्बन्ध रखती हैं। इन कलह कराने वाली आदतों को हम समूल नष्ट करें।

२२. यथा द्यौश्च पृथिवी च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।का.२ सू.१५ मं.१

जैसे द्युलोक और पृथिवी लोक नहीं डरते, और नहीं दुःखी होते। इस प्रकार मेरे हे प्राण ! तू भय न कर।

२३. यथाहश्च रात्री च न बिभीतो न रिष्यतः ।
एवा मे प्राण मा बिभेः ।।का.२ सू.१५ मं.२

जैसे दिन और रात्री नहीं डरते और नहीं दुःखी होते है। इसी प्रकार, हे मेरे प्राण ! तू न डर।

२४. सूर्य चक्षुषा मा पाहि स्वाहा ।।का.२ सू.१६ मं.३

हे सबके प्रकाश सूर्य! एवं उसके समान सबके प्रकाश स्वरप प्रभो! मुझको दर्शन इन्द्रिय के द्वारा पालन कर, यह उत्तम प्रार्थना है।

२५. अग्ने वैश्वानर विश्वैर्मा देवैः पाहि स्वाहा ।।का.२ सू.१६ मं.४

सब नर नारियों के हितकारी, अग्निवत् प्रकाशमान हे परमेश्वर ! सब इन्द्रिय-देवों द्वारा मेरी रक्षा कर, यह मेरी उत्तम प्रार्थना है।

२६. विश्वम्भर विश्वेन मा भरसा पाहि स्वाहा ।।का.२ सू.१६ मं.५

विश्व का भरण पोषण करनेवाले हे परमेश्वर ! निज समग्र भरण पोषण द्वारा मेरी रक्षा कर, यह मेरी उत्तम प्रार्थना है।

२७. इमां खनाम्योषधिं वीरुधां बलवत्तमाम् ।
यया सपत्नीं बाधते यया संविन्दते पतिम् ।।का.३ सू.१८ मं.१

ब्रह्मविद्या की सपत्नी अविद्या है। व्यावहारिक सपत्नी के विरोध के दृष्टान्त से उसको बांधने, विनाश करने का उपदेश हैं। इस पापदहन करने के सामर्थ्य वाली नाना प्रकार से अज्ञान की विरोधिानी, स्वतः उत्पन्न होने हारी अति वीर्यवती औषधि के समान इस ऋतम्भरा प्रज्ञा को खोदता हूँ, योगसाधनों से प्राप्त करता हूँ, जिससे अपने पति, आत्मा पर अपना अधिकार जमाने वाली अविद्या का विनाश किया जाता है और जिसके बल पर पालक प्रभु परमेश्वर को प्राप्त किया जाता है। दृष्टान्त में सर्वांग साम्य आवश्यक नहीं है। केवल जैसे सौत को सौत परे हटाती है, उसी प्रकार अविद्या को विद्या परे हटावे, यही साम्य है।

२८. उत्तानपर्णे सुभगे देवजूते सहस्वति ।
सपत्नीं मे पराणुद पतिं मे केवलं कृधि ।।का.३ सू.१८ मं.२

हे उत्तानपर्णा नामक सौभाग्य देनेवाली विद्वानों से सेवित बलदायिके! मेरी ब्रह्मविद्या की सपत्नी अविद्या को दूर भगा दे और केवल स्वरूप ब्रह्म को ही मेरा पालक बना दे। उच्च हृदयों में

ब्रह्मविद्या के पर्ण-प्रज्ञान, रहस्य खुलते हैं, इसलिये उस ब्रह्मविद्या को उत्तान पर्ण कहा गया है। देवयान से जाने वाले मुमुक्षु उसका सेवन करते हैं इससे वह देवजूता है, बलस्व्यप प्रभु उसके आश्रय है, इसलिये वह सहस्वती है।

२९. उत्तराहमुत्तर उत्तरेदुत्तराभ्यः ।
अधः सपत्नी या ममाधरा साधराभ्यः ।।का.३ सू.१८ मं.४

हे उत्तरे! ऊर्ध्वलोक में तराने वाली कर्मविद्ये! मैं तुझसे भी अधिक उत्कृष्ट हूं और मेरी जो विरोधिनी अविद्या, अज्ञानरूपिणी मुझसे नीचे है, वह नीचे ले जाने वाली कर्मगतियों से भी नीचे गिराने वाली है।

३०. अहमस्मि सहमानाथो त्वमसि सासहिः ।
उभे सहस्वती भूत्वा सपत्नी मे सहावहै ।।का.३ सू.१८ मं.५

हे कर्मविद्ये! मैं ब्रह्मविद्या क्रोध आदि शत्रुओं पर विजय प्राप्त करती हूं और तू भी निरन्तर सब आलस्य आदि पर वश करती है। हम दोनों सहनशील और विजयशील होकर एक हो जाय तो मेरी विरोधिनी अविद्या को हम दोनों जीत लें।

३१. अभि तेऽधां सहमानामुप तेऽधां सहीयसीम् ।
मामनु प्र ते मनो वत्सं गौरिव धावतु पथा वारिव धावतु ।।का.३ सू.१८ मं.६

हे अविद्ये! तुझे दूर करने के लिये तुझ अविद्या की विनाशक इस ब्रह्मविद्या को सब प्रकार से धारण करूं और तुझे पराजित करनेवाली इस कर्मविद्या को गुरुओं के समीप जाकर अभ्यास करूं। हे शिष्य! तेरा मन अब अविचल भाव से गाय जैसे अपने बछड़े के पास आ जाती है और जैसे खोदकर बनाई गई नहर के मार्ग से जलधारा दौड़ती है, वैसे ही तेरा मन मुझ ब्रह्मवित् पुरुष के अधीन होकर खींचा आवे।

३२. अयं ते योनिर्ऋत्वियो यतो जातो अरोचथाः ।
तं जानन्नग्न आ रोहाधा नो वर्धया रयिम् ।।का.३ सू.२० मं.१

हे ज्ञानवन् आत्मन्! ऋतुकाल में जैसे उत्पादक अंग से शरीर देह को उत्पन्न करता है, वैसे ही तेरा यह परमात्मा वा आचार्य ही ऋतु अर्थात् काल और सत्य ज्ञान से उत्पन्न करने वाला उत्पत्ति स्थान है, जिससे विद्यादि गुणों सहित प्रकट होकर तू तेज से प्रदीप्त होता है। ज्ञानवन्! तू उस परमात्मा को जान कर ही आगे बढ़, और हमारे ऐश्वर्य की वृद्धि कर।

३३. उक्षान्नाय वशान्नाय सोमपृष्ठाय वेधसे ।
वैश्वानरज्येष्ठेभ्यस्तेभ्यो अग्निभ्यो हुतमस्त्वेतत् ।।का.३ सू.२१ मं.६

शरीर को एवं समष्टि रूप से ब्रह्माण्ड को वहन करने वाले आत्मा को अपना अन्न अर्थात् प्राप्य विषय बनाने वाले योगीजन, सब संसार को समष्टि व्यष्टि रूप से वश करने वाली चेतना शक्ति को अपना अन्न मानस भोजन बनाने वाली और संसार के पदार्थों की रचना करने वाले, आनन्द का आस्वादन करने वाले, समस्त लोकों में व्यापक ब्रह्म जिनमें सबसे श्रेष्ठ है, उन जीवनमुक्त आत्माओं के लिये मेरा यह समस्त त्याग-आहुति समर्पित हो।

३४. सहृदयं सांमनस्यमविद्वेषं कृणोमि वः ।

अन्यो अन्यमभि हर्यत वत्सं जातमिवाघ्नया ।।का.३ सू.३० मं.१

तुम्हारे लिये समानहृदय, समान मन, द्वेष का अभाव मैं परमेश्वर नियत करता हूँ। परस्पर एक-दूसरे की कामना किया करो, एक दूसरे को चाहा करो। गौ जैसे नवजात वत्स को चाहती है।

३५. येन देवाः न वियन्ति नो च विद्विषते मिथः ।

तत् कृण्मो ब्रह्म वो गृहे संज्ञानं पुरुषेभ्यः।।का.३ सू.३० मं.४

जिसके द्वारा माता-पिता आदि देव न विरुद्ध मार्ग पर चलते है, और न परस्पर विद्वेष करते हैं, उस वेद को तुम्हारे घर में हम नियत करते है, जोकि गृहस्थ पुरुषों के लिये यथार्थ ज्ञान देता है।

३६. वि देवा जरसावृतन् वि त्वमग्ने अरात्याः ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ।।का.३ सू.३१ मं.१

हे इन्द्रियगणों! और विद्वान् पुरुषों! आयुनाशक बुढ़ापे से दूर रहो। हे विद्वान् या परमेश्वर! तू कंजूस शत्रु से हमें दूर रख, और मैं सब प्रकार के पाप मानसिक बुराईयों से स्वयं दूर रहूं और हे शिष्य! तुझे भी दूर रखूं। रोग से भी तुझे दूर रखूं और स्वयं भी दूर रहूं और तुझे आयु से संयुक्त करू और स्वयं आयु से सम्पन्न होऊं।

३७. व्यार्त्या पवमानो वि शक्रः पापकृत्यया ।

व्यहं सर्वेण पाप्मना वि यक्ष्मेण समायुषा ।।का.३ सू.३१ मं.२

सबको पवित्र करने वाला सूर्य और उसके समान परमात्मा और वायु सब प्रकार की पीड़ा से दूर रखे और शक्तिमान परमात्मा सब पापकर्म, बुरे आवरणों से परे रखें।

३८. य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः ।

यो स्येशे द्विपदो यश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।का.४ सू.२ मं. १

जो आत्मा सब शरीरों में जीवों का प्राणदाता, और बलदाता है, जिसके सर्वोच्च शासन की समस्त लोक उपासना करते हैं और जिसके शासन का प्रकाशमान सूर्य आदि ३३ देव भी पालन करते हैं, जो इस दो चरण वाले मनुष्य संसार और जो इस पशु-संसार का भी प्रभु है, उस सुखस्वरूप परम देव के लिये हम नित्य की प्रार्थना उपासना से पूजा अर्चना करें।

३९. य प्राणतो निमिषतो महित्वैको राजा जगतो बभूव ।

यस्यच्छायामृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।का.४ सू.२ मं. २

जो प्राण लेने वाले अर्थात् स्थावर चेतन का और चक्षु आदि इन्द्रियों को खोलने तथा बन्द करने वाले जंगम चेतन का तथा समग्र जगत् का अपनी महिमा के कारण ही एकमात्र राजा है। जिसका

आश्रय ग्रहण करना ही मोक्ष है और जिससे परे होना विनाश है, उस सुख स्वरूप, आनन्दघन, प्रजापति को हम भक्ति भाव से स्मरण कर उपासना करें।

४०. यस्य द्यौरुर्वी पृथिवी च मही यस्याद उर्वन्तरिक्षम् ।
यस्यासौ सूरो विततो महित्वा कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।का.४ सू.२ मं.४

जिसकी महिमा से विशाल द्योलोक, आकाश और बड़ी भारी पृथिवी और जिसकी विशाल शक्ति से विशाल अन्तरिक्ष, द्यौ और पृथिवी का मध्य भाग, फैला हुआ है और जिसकी विशाल शक्ति से वह सूर्य भी विशेष रूप से व्यवस्थित है, उस परमानन्द रूप प्रजापति की हम उपासना करें।

४१. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेकं आसीत् ।
स दाधार पृथिवीमुत द्यां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।का.४ सू.२ मं.७

प्रकाशमान सूर्यों और आत्माओं को आश्रय देने वाला, इस उत्पन्न विश्व के आगे विद्यमान रहा। वही एकमात्र स्वामी था, रहा और रहेगा और वहीं इस पृथिवी को और द्यौलोक को भी धारण करता है, उस सुखरूप परमानन्द प्रभु की भक्ति से हम उपासना करें।

४२. वाताज्जातो अन्तरिक्षाद्विद्युतो ज्योतिषस्परि ।
स नो हिरण्यजाः शंखः कृशनः पात्वंहसः ।।का.४ सू.१० मं.१

प्राणवायु से शरीर में प्रकट हुआ, हृदयाकाश में प्रकट, विद्युत की ज्योति के स्वरूप में योगाभ्यास द्वारा साक्षात् किया गया, वह मुक्ता के समान अति सूक्ष्म, सबसे रमण करने योग्य आत्मरूप में प्रकट हुआ शान्तिमय कल्याण मार्ग को स्वयं खोजने और प्राप्त करने वाला आत्म ही हमें पापों से बचावे।

४३. हिरण्यानामेकोऽसि सोमात् त्वमधि जज्ञिषे ।
रथे त्वमसि दर्शत इषुधौ रोचनस्त्वं प्र ण आयूँषि तारिषत् ।।का.४ सू. १० मं.६

हे योग समाधि द्वारा प्रत्यक्ष करने योग्य दर्शनीय आत्मन्! तू कान्तिमान् या चेतनावान् इन्द्रियगणों में, ताराओं में सूर्य के समान उनका भी प्रकाशक एक है। सबके उत्पादक आनन्दमय परब्रह्म से आनन्द प्राप्त करके आनन्दमय हो जाता है। इस देहमय रथ में विराजमान होकर तू दर्शनीय है और मनकामनाओं के धारण करनेहारे मन पर भी वश करके उससे अधिक कान्तिमान होकर तू हमारे जीवनों को तरा देता है।

४४. देवानामस्थि कृशनं बभूव तदात्मन्वच्चरत्यप्सवन्तः ।
तत् ते बध्नाम्यायुषे वर्चसे बलाय दीर्घायुत्वाय शतशारदाय कार्शनस्त्वाभि रक्षतु।।का.४ सू.१०मं७

हे शिष्य! वह आत्मा अति सूक्ष्म होकर भी इन्द्रियगणों का प्रेरक है। वहीं आत्मा अपने अधीन इस देह में और सर्वविचारों में और क्रियाओं में विचरा करती है। उस आत्मरूप मणि को मैं आचार्य, हे शिष्य! तेरे दीर्घ जीवन ब्रह्मचर्य और बल सम्पादन के लिये और सौ वर्ष दीर्घ जीवन के लिये बांधता हूं। उपनयन के समय उसका तुझे उपदेश करता हूं। वह सब कष्टों का विनाशक

आत्मा तेरी सब प्रकार से रक्षा करे।

४५. **पंचौदनं पंचभिरङ्गुलिभिर्दर्व्योद्धर पंचधैतमोदनम् ।**

प्राच्यां दिशि शिरो अजस्य धेहि दक्षिणायां दिशि ।।दक्षिणं धेहि पार्श्वम् ।।का.४ सू.१४ मं.७

पांच प्रकार के विषयों का ज्ञान जिसके प्रकार के भोग हैं और जो पांच अंगुलियों के समान पांच कर्मेन्द्रियों से सम्पन्न है, उसके पांच प्रकार के इस ज्ञानमय भोग को अज्ञान-विदारक आत्म-विज्ञान रूप साधन द्वारा उस जीवात्मा से निकाल दे। मृत्यु होने पर तब पुनर्जन्म न लेने अर्थात् सुच्त होने वालों के सिर को पूर्व दिशा में रखना चाहिये, और दाहिने पार्श्व को दक्षिण दिशा में रखना चाहिये।

४६. **तां मे सहस्राक्षो देवो दक्षिणे हस्त आ दधत् ।**

तयाहं सर्व पश्यामि यश्च शूद्र उतार्यः ।।का.४ सू.२० मं.४

सहस्र चक्षुओं वाले परमात्मा, सर्वज्ञ, सर्वप्रकाशक, सर्वद्रष्टा उस दृक्-शक्ति चेतना को मेरे दायें हाथ में रखता है। उसके सामर्थ्य से मैं सबको देखता हूँ चाहे कोई शूद्र, भृत्य हो या उच्च्व कोटि का स्वामी, पुरुष हो।

४७. **उदभिन्दतीं संजयन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।**

ग्लहे कृतानि कृण्वानामप्सरां तामिह हुवे ।।का.४ सू.३८ मं.१

हमारी यह चितिशक्ति हृदय ग्रन्थियों को खोलती हुई, अर्थात् उत्तम रूप से प्रकाशमान प्रज्ञा सब अन्य मानस वृत्तियों पर वश करती हुई ज्ञानों और कर्मों में शक्ति रूप में व्यापक होकर इन्द्रियों के व्यापार में इन प्राण इन्द्रियों के द्वारा कर्म करती हुई प्रति कर्म और प्रति ज्ञान में शक्ति रूप से व्यापक उस चितिकला को इस योगसाधनमय कर्म के अवसर पर मैं स्मरण करता हूँ।

४८. **विचिन्वतीमाकिरन्तीमप्सरां साधुदेविनीम् ।**

ग्लहे कृतानि गृह्णानामप्सरां तामिह हुवे ।।का.४ सू.३८ मं.२

मैं साधक इस देह में अक्ष इन्द्रियों के संग क्रीड़ा करने वाली, इस ज्ञानों में व्यापक, उत्तम रूप से प्रकाश करने वाली, ज्योतिष्मती होकर इन्द्रियों को बार-बार चुन-चुन कर उठाती और पुनः बखेरती या बाहर विषयों पर फेंकती और इस इन्द्रिय व्यापार में अपने कर्मों को स्वयं वश करती हुई उस अलौकिक चेतना शक्ति का इस योग समाधि के अवसर में स्मरण करता हूँ।

४९. **एका च मे दश च मेऽपवक्तार ओषधे ।**

ऋतजात ऋतावरि मधु मे मधुला करः ।।का.५ सू.१५ मं.१

हे सत्य रूप में उत्पन्न हुई और हे सत्य में वर्तमान रहने वाली सत्व वाणि! तू आनन्दरस को प्राप्त कराने वाली होकर मेरी अकेली भी मेरे लिये आनन्द उत्पन्न कर जब कि मेरे अपवाद करने वाले, विरोधी, निन्दकगण दश भी हो। मेरी निन्दा करने वाले १० मुख भी हो तो भी मेरी एक सत्यवाणी मुझे पूरा बल और आनन्द दे।

५०. **युनक्तु देवः सविता प्रजानन्नस्मिन् यज्ञे महिषः स्वाहा।।का.५ सू.२६ मं.२**

प्रेरक परमात्मा महान् पदार्थों को जानता हुआ इस ब्रह्मयज्ञ में हमें समाहित करे, यही उत्तम आहुति

है।

५१. इन्द्र उक्थामदान्यस्मिन् यज्ञे प्रविद्वान् युनक्तु सुयुजः स्वाहा ।।का.५ सू. २६ मं.३

ज्ञानी पुरुष इस यज्ञमय परम आत्मा में ब्रह्म आनन्द का भली भांति लाभ करता हुआ उत्तम रूप से योग करने वाले योगियों को या इन्द्रियों को उसी प्रभु में लगा दे, यह सबसे उत्तम आहुति है।

५२. विष्णुर्युनक्तु बहुधा तपास्यस्मिन् यज्ञे सुयुजः स्वाहा ।।का.५ सू.२६ मं.७

हे योग के सम्पादक विद्वान् पुरुषों! इस अध्यात्म यज्ञ में वह प्रभु परमात्मा तपस्याओं को आपमें सफलतापूर्वक लगावे। यही श्रेष्ठ आहुति है।

५३. मध्वा यज्ञं नक्षति प्रैणानो नराशंसो अग्निः।
सुकृद देवः सविता विश्ववारः ।।का.५ सू.२७ मं.३

समस्त पुरुषों से प्रशंसा योग्य प्रकाश स्वरूप, प्रभु सबका प्रेरक और उत्पादक, समस्त पुरुषों को वरण करने योग्य है। वही सबको तृप्त करता हुआ यज्ञ रूप आत्मा को अमृत से व्याप्त करता है।

५४. त्रयः सुपर्णास्त्रिवृता यदायन्नेकाक्षरमभिसंभूय शक्राः ।
प्रत्यौहन्मृत्युममृतेन साकमन्तर्दधाना दुरितानि विश्वा ।।का.५ सू.२८ मं.८

जब शक्तिमान् ज्ञानवान् आत्मा में त्रिगुण प्राण के बल से एक मात्र अक्षर पद वाच्य परब्रह्म को प्राप्त करके मोक्ष को प्राप्त होते हैं तब वे अमृतमय आत्मा के स्वरुप से समस्त पापों को एक साथ ही भीतर रोक कर, नियमित करके मौत को वश कर लेते हैं।

५५. यथा भूमिर्मृतमना मृतान्मृतमनस्तरा ।
यथोत मम्रुषो मन एवेर्ष्योर्मृतं मनः ।।का.६ सू.१८ मं.२

जिस प्रकार यह भूमि, मिट्टी अचेतन है और यह मरे हुए मुर्दे से भी अधिक मानों मुर्दादिल है और जिस प्रकार मरे हुए मनुष्य का मन मर जाता है, उसी प्रकार ईष्यालु पुरुष का मन मर जाता है, अतः ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये।

५६. अदो यत् ते हृदि श्रितं मनस्कं पतयिष्णुकम् ।
ततस्त ईर्ष्यां मुञ्चामि निरूष्माणं दृतेरिव ।।का.६ सू.१८ मं.३

क्योंकि ईर्ष्यायुक्त यह तुच्छ मन तेरे हृदय में समाया है। वह तुझे सदा नीचे गिराने वाला है। इस कारण से तेरी ईर्ष्या को ऐसे छुड़ाता हूँ, जैसे चाम की बनी धौंकनी से गर्म वायु निकाल दी जाती है।

५७. पवमानः पुनातु मा क्रत्वे दक्षाय जीवसे ।
अथो अरिष्टतातये ।।का.६ सू.१९ मं.२

पवित्र करने वाला परमेश्वर मुझे पवित्र करे, पवित्र कर्म करने के लिये, पवित्र प्रज्ञा की प्राप्ति के लिये, वृद्धि के लिये, पवित्र जीवन के लिये, और अहिंसा के विस्तार के लिये।

५८. नव च या नवतिश्च सयन्ति स्कन्ध्या अभि ।

इतस्ताः सर्वां नश्यन्तु वाका अपचितामिव ।।का.६ सू.२६ मं.३

नौ और नब्बे जो कन्धे की ग्रन्थियां कन्धे के चारों ओर परस्पर साथ-साथ लगी हुई हैं, वे सब इस प्रयोग से नष्ट हो जायँ पूर्ववत्।

५९. **मनसे चेतसे धिय आकूतय उत चित्तये ।**
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम् ।।का.६ सू.४१ मं.१

मनशक्ति सम्यक् ज्ञान, धारणा शक्ति, प्रतिभा और चेतना शक्ति, तत्व विचार करने वाली मननशक्ति, वेद ज्ञान या श्रवण शक्ति और दर्शन शक्ति, इनके प्राप्त करने के लिए हम अन्न आदि पौष्टिक, सात्विक पदार्थों एवं अध्यात्म चिन्तन द्वारा सदा साधना करें।

६०. **अव ज्यामिव धन्वनो मन्यु तनोमि ते हृदः।**
यथा संमनसौ भूत्वा सखायाविव सचावहै ।।का.६ सू.४२ मं.१

हे पति ! धनुष से जैसे आरोपित डोर को उतार दिया जाता है, वैसे मैं तेरे हृदय से क्रोध को उतार देती हूं, पृथक् कर देती हूं ताकि हम दोनों एक चित्त होकर मित्रों की तरह परस्पर सुसंगत हो जाये, परस्पर मित्र हो जायें।

६१. **सखायाविव सचावहा अव मन्युं तनोमि ते ।**
अधस्ते अश्मनो मन्युमुपास्यामसि यो गुरूः ।।का.६ सू.४२ मं.२

दो मित्रों के सदृश हम दोनों मिल जायँ, इसलिये तेरे क्रोध को मैं उतार देती हूं। तेरे क्रोध को हम ऐसे फेक देते हैं, जैसे कि पत्थर के नीचे किसी वस्तु को फैक दिया जाता है, जो पत्थर भारी है।

६२. **अयं दर्भो विमन्युकः स्वाय चारणाय च ।**
मन्योर्विमन्युकस्यायं मन्युशमन उच्यते ।।का.६ सू.४३ मं.१

यह दाभ कुशा घास है यह अपने सम्बन्धियों और अपने शत्रु के लिये भी क्रोधरहित है। वन में खड़ा हुआ दर्भ नामक घास वायु के भीषण झोंकों में झुककर विनम्र हो जाता है, अतः वह अक्रोध ा का उत्तम दृष्टान्त है। इसी कारण यह दर्भ क्रोधी और क्रोध रहित पुरुष के लिये क्रोध-शान्ति का उत्तम दृष्टान्त कहा जाता है। यहां इसलिये कहा गया है कि क्रोधरहित पुरुष भी दर्भ के दृष्टान्त से सदा विनम्र बने रहने की शिक्ष लेते रहें। विनम्र क्रोध को शान्त करता है यह इसका मुख्य भाव है।

६३. **अयं यो भूरिमूलः समुद्रमवतिष्ठति ।**
दर्भः पृथिव्या उत्थितो मन्युशमन उच्यते ।।का.६ सू.४३ मं.२

दाभ जिस प्रकार बहुत गहरी जड़ वाला पृथिवी से निकलकर अपनी जड़ के सहारे आकाश के नीचे धीरता से खड़ा रहता है, इसी प्रकार वह पुरुष जो दाभ के समान सुदृढ़ मूल वाला और आकाश में ऊंचे मस्तक वाला अर्थात् भीतर धीर, गंभीर और बाहर उन्नत चरित्र है वही क्रोध ा को शान्त करने वाला और सब कलहों को मिटाने वाला कहा जाता है। विचारों की दृढ़ता और उज्ज्वलता क्रोध को शान्त कर देती है।

६४. **नि गावो गोष्ठे असदन् निमृगासो अविक्षत ।**

न्यू३र्मयो नदीनां न्य१दृष्टा अलिप्सत ।।का.६ सू.५२ मं.२

जब योगी का आत्मा आदित्य के समान समस्त तामस आवरणों के ऊपर उठ जाता है तब जिस प्रकार सायंकाल में गौएं विश्राम के लिये गौशाला में आ जाती हैं और विश्राम लेती हैं, उसी प्रकार प्राण भी अपने आश्रयभूत गोष्ठ आत्मा में विश्राम करते है और विषयों को खोजने वाली इन्द्रियां आत्मा के भीतर ही लीन रहती हैं। किस तरह से? जैसे वायुओं के शान्त हो जाने पर या वेग के शान्त हो जाने पर नदियों की विशाल तरंगें भी उसी में लीन हो जाती हैं, उसी प्रकार ये कर्मेन्द्रिय और ज्ञानेन्द्रिय भी सर्वथा प्रत्यक्ष न होकर, तल्लीन उसी आत्मा को प्राप्त करने में लग जाती हैं।

६५. सं वः पृच्यन्तां तन्वः सं मनांसि समु व्रता ।
सं वोऽयं ब्रह्मणस्पतिर्भगः सं वों अजीगमत् ।।का.६ सू.७४ मं.१

हे लोगों! तुम लोगों के शरीर आपस में प्रेम से मिला करें। आप लोग एक-दूसरे को प्रेम से आलिंगन किया करो और आपके मन भी मिला करें। आपके कर्म भी मिलकर एक हुआ करें। यह वेदवाणी का रक्षक विद्वान् ब्राह्मण आपको सदा जोड़े रखें और ऐश्वर्यवान् राजा भी तुमको सदा मिलाये रखें।

६६. शोचयामसि ते हार्दि शोचयामसि ते मनः ।
वातं धूम इव सध्र्य१ङ् मामेवान्वेतु ते मनः ।।का.६ सू.८९ मं.२

हे पुरुष! हम तेरे हृदय के भावों को उदीप्त करते हैं। तेरे मन को उदीप्त करते हैं। हे स्त्री! तेरा संकल्प विकल्प करने वाला मन, अन्तःकरण जिस प्रकार वायु के साथ धुआं उड़ता है, उसी प्रकार मेरे ही साथ-साथ पीछे-पीछे चले। स्त्री-पुरुषों की परस्पर यही भावना होनी चाहिये।

६७. अभिभूर्यज्ञो अभिभूरग्निरभिभूः सोमो अभिभूरिन्द्रः ।
अभ्य१हं विश्वाः पृतना यथासान्येवा विधेमाग्निहोत्रा इदं हविः ।।का.६ सू.९७ मं.१

मिलकर किया हुआ कार्य सब विरो धियों का पराजय करता है। आगे चलने और सेना को ठीक-ठीक मार्ग पर ले जाने वाला विद्वान् विजय दिलाता है। सबका प्रेरक और कार्य-सम्पादक पुरुष विजय प्राप्त करता है। ऐश्वर्य और शक्तिमान् राजा शत्रुओं पर विजय करता है। हे पुरुषों! आप लोग यज्ञ करने वाले अर्थात् मिलकर कार्य सम्पादन करने वाले हैं। इसलिये हम परस्पर मन्त्रणा करके कार्य करें जिससे मैं राजा समस्त सेनाओं को अपने वश में करूं।

६८. यथायं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ।।का.६ सू.१०२ मं.१

हे एक दूसरे के हृदय में व्याप्त स्त्री-पुरुषों! तुम दोनों एक-दूसरे से यह कहो कि जैसे यह सवारी सवार के साथ ही जाती है, और उसके साथ ही रहती है उसी प्रकार हे प्रियतम! हे प्रियतमे! मेरे प्रति तेरा चित्त आवे, और सदा साथ ही रहे। पति-पत्नी सदा एक-दूसरे प्रति समान चित्त होकर रहें।

६९. मेधामहं प्रथमां ब्रह्मण्वतीं ब्रह्मजूतामृषिष्टुताम् ।

प्रपीतां ब्रह्मचारिभिर्देवानामवसे हुवे ।।का.६ सू.१०८ मं.२

मैं मेधा चाहने वाला ब्रह्मचारी, श्रेष्ठ उत्तम गुण वाली, वेदज्ञान से युक्त, ब्रह्मज्ञानियों से सेवित, ऋषियों द्वारा प्रशंसित ब्रह्मचारियों द्वारा पान की गई, धारण की गई धारणावती बुद्धि का दिव्य गुणों की रक्षा के लिये ध्यान करता हूँ। मनुष्य के दिव्य गुण बुद्धि द्वारा सुरक्षित रहा करते हैं।

७०. व्याघ्रेऽह्नन्चजनिष्ट वीरो नक्षत्रजा जायमानः सुवीरः ।
स मा वधीत् पितरं वर्धमानो मा मातरं प्र मिनीज्जनित्रीम् ।।का.६ सू.११० मं.३

जिस दिन वीर लोग व्याघ्र के समान पराक्रम दिखाते हैं, उस दिन जो पुत्र उत्पन्न हो वह वीर होता है और उत्पन्न होता हुआ उत्तम बालक वही है जो अस्खलित वीर्यवान् गृहस्थ से उत्पन्न होता है। वह पुत्र बड़ा बलवान् हो जाता है। वह बड़ा होकर अपने पालक पिता को कभी न मारे और उत्पन्न करने वाली मान्य माता को कष्ट न दे।

७१. इमं मे अग्ने पुरुषं मुमुग्ध्ययं यो बद्धः सुयतो लालपीति।
अतोऽधि ते कृणवद् भागधेयं यदानुन्मदितोऽसति ।।का.६ सू.१११ मं.१

हे परमात्मा या विद्वन्! जो बन्धन में बंधा हुआ यह आत्मा कर्मों में फंसा हुआ होने के कारण बहुत बकता-झकता है, इस मेरे आत्मा को बन्धन से मुक्त कर। इसीलिये हे परमात्मन्! यह जीव जब अविवेक से रहित हो जाता है, तब तेरा भजन करता है। ज्ञानी मनुष्य सदा परमात्मा के भजन में लीन रहता है।

७२. यद् देवा देवहेडनं देवासश्चकृमा वयम् ।
आदित्यास्तस्मान्नो यूयमृतस्यर्तेन मुञ्चत ।।का.६ सू.११४ मं.१

पाप त्याग करने का मार्ग बतलाते हैं-हे विद्वान् पुरुषों! हम स्वतः विद्वान् इन्द्रियक्रीड़ा में लिप्त होकर जो देव, विद्वानों का तिरस्कार करें तो हे सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों! उस पाप से आप लोग हमें सत्यमय ईश्वर के ईश्वरीय न्याय के अनुसार मुक्त करो।

७३. ऋतस्यर्तेनादित्या यजत्रा मुंचतेह नः ।
यज्ञं यद् यज्ञवाहसः शिक्षन्तो नोपशेकिम ।।का.६ सू.११४ मं.२

हे विद्वान् पुरुषों! यज्ञशील विद्वानों! आप लोग हमें परब्रह्म के ज्ञान द्वारा इस लोक में मुक्त करो, पापों के बन्धन से मुक्त होने का उपदेश करो। हे यज्ञ स्वरूप परब्रह्म को हृदय में धारण करने वाले विद्वानों! हम लोग जब ब्रह्म को प्राप्त करने का यत्न करते हुए भी उसको प्राप्त न कर सकें तो आप उस ब्रह्म के ज्ञान द्वारा हमें मुक्त कराइये।

७४. मेदस्वता यजमानाः स्रुचाज्यानि जुह्वतः ।
अकामा विश्वे वो देवाः शिक्षन्तो नोप शेकिम ।।का.६ सू.११४ मं.३

ब्रह्म की उपासना करते हुए हम लोग यदि शरीर को धारण करने वाले अन्न से प्राण द्वारा अपने इन्द्रिय रूप प्राणों को आत्मा में लीन करते हुए निष्काम होकर ब्रह्म को प्राप्त करने का यत्न करके भी हम बन्धन से मुक्त न हो सकें तो हे समस्त विद्वान् पुरुषों! आप लोग हमें ब्रह्मज्ञान द्वारा मुक्त करो।

७५. यद् दारुणि बध्यसे यच्च रंज्ज्वां यद् भूम्या बध्यसे यच्च वाचा ।
अयं तस्माद् गार्हपत्यो नो अग्निरुदिन्नयाति सुकृतस्य लोकम् ।।का.६ सू. १२१ मं.२

हे जीव! जो तू काष्ठ में और जो रस्सी में और जो भूमि में बांधा जाता है और जो तू वाणी से बांधा जाता है उस बंधन से छुड़ा कर हमारे गृहों का स्वामी परमेश्वर, राजा यह साक्षात् ही पुण्य, शुभ कर्म से प्राप्त होने वाले प्रकाशमय लोक को ले जाता है। गुणमयी प्रकृति, मनुष्यादिजन्म, वाक्, वाणी, वेदाभ्यास, शिक्षा इन सब बन्धनों के द्वारा जीव को उन्नत लोकों में प्राप्त कराता है। ये बन्धन जीव की उन्नति के लिये हैं, अवनति के लिये नहीं।

७६. जानीत स्मैनं परमे व्योमन् देवाः सधस्था विद लोकमंत्र ।
अन्वागन्ता यजमानः स्वस्तीष्टापूर्तं स्म कृणुताविरस्मै ।।का.६ सू.१२३ मं.२

हे दिव्यगुणी सधस्थो ! इस यजमान को परम-रक्षक परमेश्वर में स्थित जानो, इस परमेश्वर में इसका लोक जानो। दानयज्ञ या ध्यानयज्ञ करने वाला दान के पश्चात् कल्याण मार्ग की ओर आएगा, इसके लिये हे दिव्य सधस्थो ! इसके अभीष्ट की पूर्ति करो।

७७. एकया च दशभिश्चा सुहूते द्वाभ्यामिष्टये विशत्या च ।
तिसृभिश्च वहसे त्रिंशता च वियुग्भिर्वाय इह ता वि मुंच ।।का.७ सू.४ मं.१

हे देह के प्रेरक, हे उत्तम रूप से अपने को देह में अर्पण करने वाले आत्मन्! तू एकचित्ति शक्ति से और दश प्राणों से इस देह को धारण कर और इसी प्रकार प्राण और अपान और उनकी बीस अर्थात् १० सूक्ष्म आभ्यन्तर और १० स्थूल अर्थात् बाह्य शक्तियों से अपनी इच्छापूर्ति के लिए जो देह को धारण करता है और इसी प्रकार तीस और तीन यानि ३३ विशेष रूप से जुड़ी दिव्य शक्तियों से इस देह को धारण करता है। तू उन सब बन्धनकारणी प्रवृत्तियों को यहीं त्याग दे और मुक्त हो।

महान् आत्मा के पक्ष में दश दिशाएं, एक महान् प्रकृति, दो अर्थात् महान् और अहंकार, २० वैकारिक तत्व अर्थात् पांच स्थूल भूत, पांच सूक्ष्म भूत, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच ज्ञानेन्द्रिय, ३३ देव अर्थात् ८ वसु, ११ रुद्र, १२ आदित्य, इन्द्र और प्रजापति। इनका विशेष प्रकार से योग होकर संसार का महान् यज्ञ चल रहा है। प्रलयकाल में वही सूत्रात्मा वायु, परमेश्वर उनको नियुक्त करता है।

७८. यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन् ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवाः ।।का.७ सू.५ मं.१

विद्वान् पुरुष यज्ञ अर्थात् समाधिरूप आत्मयज्ञ से सबके पूजनीय परमात्मा की उपासना करते हैं। वे ही सबसे उत्कृष्ट मोक्षप्राप्ति और अभ्युदय के साधन हैं। वे इन योग-समाधि की साधना करने वाले योगिजन महत्व को प्राप्त करके दुःखरहित मोक्षरूप परम पुरुषार्थ को प्राप्त होते हैं, जिसमें

कि पूर्व मुक्त हुए साधना सिद्ध ज्योतिर्मय मुक्त पुरुष विराजते हैं।

७९. यद् देवा देवान् हविषायजन्तामर्त्यान् मनसामर्त्येन ।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य ।।का.७ सू.५ मं.३

दिव्यगुणी उपासक, आत्मसमर्पण रूपी हवि द्वारा मन द्वारा जो अमर्त्य दिव्य गुणों को अपने साथ सुसंगत करते हैं, सम्बद्ध करते है, उस अवस्था में परमरक्षक परमेश्वर में हम उपासक हर्ष को प्राप्त हों, और सूर्य के उदित होने पर ध्यान में परमेश्वर की साक्षात् हम देखें।

८०. प्रपथे पथामजनिष्ट पूषा प्रपथे दिवः प्रपथे पृथिव्याः ।
उभे अभि प्रियतमे सधस्थे आ च परा च चरति प्रजानन् ।।का.७ सू.६ मं.१

पोषक परमात्मा समस्त मार्गों या लोकों के उच्चतर मार्ग में और सूर्य के मार्ग में और पृथिवी के मार्ग में विद्यमान है। वह अत्यन्त प्रिय स्थान अर्थात् आकाश में विद्यमान है। वह द्यौ और पृथिवी दोनों को सब ओर से जानता हुआ उनके पास और दूर सर्वत्र व्यापक है।

८१. दिव्य सुपर्णं पयसं बृहन्तमपां गर्भं वृषभमोषधीनाम् ।
अभीपतो वृष्ट्या तर्पयन्तमा नो गोष्ठे रयिष्ठां स्थापयाति ।।का.७ सू.३६ मं.१

द्युलोक में या मोक्ष में विद्यमान, पालन और ज्ञान से युक्त दुग्ध के समान निर्मल, पवित्र महान् कर्मों और विज्ञानों के स्थान वनस्पतियों के लिये जल-वृष्टि कर उन्हें बढ़ाने वाले, सूर्य के समान आनन्द की वर्षा करने वाले, अपनी शरण में आने वाले जीवों को आनन्दमय अमृत की वर्षा से सब ओर से तृप्त करने वाले उस परमेश्वर का हम स्मरण करें जो हमारे इन्द्रियों के निवासस्थान देह में बल और प्राण को स्थापित करता है।

८२. सोमारूद्रा वि वृहतं विषूचीममीवा या नो गयमाविवेश ।
बाधेथां दूरं निऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुक्तमस्मत् ।।का.७ सू.४२ मं.१

हे सोम और रुद्र! जल और अग्ने! जो रोगकारी पदार्थ हमारे शरीर में प्रविष्ट हो गया है, उस नाना प्रकार से शरीर में फैलने वाले रोग का नाश करो। आप दोनों कष्टों और दुःखों को दूर ही रोको और हमसे किये हए पाप या रोग को छुड़ाओ।

८३. शिवास्त एक अशिवास्त एकाः सर्वा बिभर्षि सुमनस्यमानः ।
तिस्रो वाचो निहिता अन्तरस्मिन् तासामेका वि पपातानु घोषम् ।।का.७ सू.४३ मं.१

हे पुरुष! तेरे पास एक वाणी तो कल्याणकारिणी और दूसरी तेरी अमंगलकारी है। तू उन्हें अपने चित्त को शुभ संकल्पमय करके धारण कर, अर्थात् स्तुति और निन्दा दोनों को प्रसन्नचित्त होकर सुना कर, स्तुतियों से प्रसन्न और निन्दा से उद्विग्न मत हो। क्योंकि इस पुरुष के भीतर तीन प्रकार की वाणियां रखी हैं। परा जो आत्मा में बीज रुप से विद्यमान रहती है, पश्यन्ती जो वक्ता के प्रयोग के पूर्व मन में संकल्प रूप से आती है। मध्यमा, जो इच्छापूर्वक मानस संकल्पों में रहकर

हर्ष, विषाद आदि विकारों को प्रकट करती है। उनमें से ही एक और चौथी बैखरी शब्द के रूप में बाहर आती है। प्रयोक्ता के भीतर निन्दात्मक वाणी के तीन रूप रहते हैं और केवल एक चतुर्थ भाग ही बाहर आता है।

८४. उभा जिग्यथुर्न परा जयेथे न पराजिग्ये कतरश्चनैनंयोः ।
इन्द्रश्च विष्णो यदपस्तृधेथां त्रेधा सहस्रं वि तदैरयेथाम् ।।का.७ सू.४४ मं.१

दोनों, इन्द्र और विष्णु विजय करते हैं, वे कभी शत्रुओं से हारते नहीं। इनमें से कोई अकेला भी नहीं हारता। हे इन्द्र और विष्णो! तुम दोनों जब भी असुरों के साथ होड़ करते हो, तब समस्त संसार को तीन प्रकार से व्याप्त करते और वश कर लेते हो।

८५. कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी हव्यां नो अस्य हविषो जुषेत ।
श्रृणोतु यज्ञमुंशती नो अद्य रायस्पोष चिकितुषी दधातु ।।का.७ सू.४७ मं. २

विद्वानों के बीच में कभी विनष्ट न होने वाली, सत्य सिद्धान्त या नियम का पालन करने वाली इस मन्त्र या विचार का सेवन करे और राष्ट्र के हित को या संगठन को चाहती हुई सब सभासदों के मत को सुने और अब यथार्थ रूप से राष्ट्र विषयों को जानती हुई हमारे राष्ट्र के धन की वृद्धि का करे। कुहू के वर्णन के साथ-साथ गृहपत्नी कर्तव्यों का भी वर्णन हो गया है। जैसे मैं कुहवा पति जितेन्द्रिय विदुषी पत्नी को यज्ञ में बुलाता हूँ। वह हमें सब प्रकार से हृष्ट-पुष्ट पुत्र प्रदान करें।

८६. राकामहं सुहवां सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना ।
सीव्यत्वपः सूच्याऽच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ।।का.७ सू. ४८ मं.१

मैं पुरुष पूर्ण चन्द्र वाली पूर्णिमा के समान षोडश कलायुक्त गुणवती स्त्री का उत्तम ज्ञान और उत्तम गुणयुक्त वाणी से वर्णन करता हूँ। वह सौभाग्य सम्पन्न स्त्री हमारे उपदेशों का श्रवण करे और अपने अन्तःकरण से विचार करे कि वह कभी न टूटने वाली सूची से सन्तति कर्म को सीये। अर्थात् न टूटते हुए प्रजा तन्तु को बनाये रखें और सैकड़ों दान धन को प्राप्त करने वाले प्रशंसनीय पुत्र को उत्पन्न करे।

८७. यो नः शपादशपतः शपतो यश्च नः शपात् ।
वृक्ष इव विद्युता हत आ मूलादनु शृष्यतु ।।का.७ सू.५६ मं.१

जो निन्दा न करने पर भी हमें बुरा भला कहे और जो प्रतिवद रूप में बुरा भला कहने पर हमें बुरा भला कहे, वह बिजली से मरे हुए वृक्ष के समान चोटी से जड़ तक सूख जाता है।।

८८. अयमग्नि सत्पतिर्वृद्धवृष्णो रथीव पत्तीनजयत् पुरोहितः ।
नाभा पृथिव्यां निहितो दविद्युतदधस्पदं कृणंतां ये पृतन्यवः ।।का.७ सू.६२ मं.१

यह ज्ञानवन् परमेश्वर, आचार्य और राजा सज्जन पुरुषों और ब्रह्मचारियों का पालक,

महाबलशाली, आयु में वृद्ध, एवं ज्ञानवृद्ध-पुरुषों द्वारा बलवान् प्रधान पद पर स्थित होकर, रथी जैसे पैदल सैनिकों पर विजय पा लेता है, वैसे यह भी समस्त विश्व ज्ञान तथा शत्रुओं पर विजय पाये हुए है। संसार की नाभि अर्थात् केन्द्र से स्थित सूर्य जैसे सबको प्रकाशित कर रहा है, वैसे परमेश्वर संसार को प्रकाशित करता है, आचार्य शिष्यों को ज्ञान से प्रकाशित करता है और राजा राष्ट्र में सुव्यवस्था का प्रकाश करता है। जो कामादि शत्रु और हमारे देश के शत्रु पूतना सेना लेकर हम पर चढ़ आवें, उन्हें आप नीचा करें, नष्ट कर दें।

८६. सरस्वति व्रतेषु ते दिव्येषु देवि धामसु ।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि ररास्व नः ।।का.७ सू.६८ मं.१

हे सरस्वती, रस अन्न आदि से गृह को पृष्ट करनेहारी स्त्री! तेरे कार्यों में और रमण करने योग्य या व्यवहार करने योग्य सामर्थ्यों में हमारा दिया हुआ स्वीकार करने योग्य पदार्थ स्वीकार कर और हमें गृहपतियों को हे देवि! प्रजा प्रदान कर। स्त्रियां पतियों के प्रदान किये पदार्थों को प्रेम से स्वीकार करें और उत्तम सन्तान उत्पन्न करें। विद्या को लक्ष्य करके हे सरस्वती! हम तेरे नियमपूर्वक अध्ययन-अध्यापन, दिव्य सामर्थ्यों में अपना मनोयोग प्रदान करते हैं, तू हमें प्रज्ञा प्रदान कर।

६०. इदं ते हव्यं घृतवद् सरस्वतीदं पितृणां हविरास्यंभ्यत् ।
इमानि ते उदिता शंतमानि तेभिर्वयं मधुमन्तः स्याम ।।का.७ सू.६८ मं. २

हे सरस्वती देवि! प्रियतमे! तेरा भोज्य पदार्थ यह घृत आदि पुष्टिकारक, गर्भपोषक पदार्थों से युक्त हो। यही सन्तान के उत्पादक पिता लोगों का भी अन्न है। जो खाने योग्य है। तेरे ये उच्चारण किये वाक्य सुखकारी हों। हम तेरे उन मधुर वचनों से ही हृदय में आनन्दित हों।

विद्यापक्ष में- हे विद्ये सरस्वति! यह तेरा प्राप्त करने योग्य तेजोमय रूप है जिसको पितृपालक गुरु आदि भी प्राप्त करते हैं और जो शिष्यों के प्रति देने योग्य है। तेरे समस्त वचन कल्याणकारी हों और उनसे हम मधुमान्, ज्ञानी और आनन्दमय रहें।

६१. शं नो वातो वातु शं नस्तपतु सूर्यः ।
अहानि शं भवन्तु नः शं रात्री प्रति धीयतां शमुषा नो व्युच्छतु ।।का.७ सू.६६ मं.१

वायु हमारे लिये सुखकर बहे, सूर्य हमारे लिये सुखकर तपे, दिन हमारे लिये सुखकर हों, रात्रि सुख प्रदान करे, हमारे लिये उषा सुखकर चमके।

६२. अपचितां लोहिनीनां कृष्णा मातेति शुश्रुम ।
मुनेर्देवस्य मूलेन सर्वा विध्यामि ता अहम् ।।का.७ सू.७४ मं.१

लालवर्ण की गण्डमाला की जननी काले व नीले रंग की नाड़ियां होती हैं। इस प्रकार हम अपने गुरुओं से सुनते हैं। मैं उन सबको प्रकाशमान तेजस्वी अग्नि के प्रतिष्ठास्थान, तीव्र जलन पैदा करने वाले पदार्थ से बेधता हूँ।

६३. विध्याभ्यासां प्रथमां विध्याम्युत मंध्यमाम् ।

इदं जघन्या मासाामा च्छिनद्‌भि स्तुकामिव ।।का.७ सू.७४ मं.२

इन अपचितों अर्थात् गण्डमालाओं में मुख्या को मैं बींधता हूं, विदारित करता हूं, तथा तदनन्तर मध्यमा मण्डलमाला को मैं बींधता हूं। इन गण्डमालाओं में अब सुसाध्या गण्डमाला को मैं सुगमता से छेद देता हूं, जैसे कि ऊन के गुच्छे को सुगमता से काट दिया जाता है।

६४. **स सुत्रामा स्ववाँ इन्द्रो अस्मदाराच्चिद् द्वेषः सनुतर्युयोतु ।**

तस्य वयं सुमतौ यज्ञियस्यापि भद्रे सौमनसे स्याम ।।का.७ सू.९२ मं.१

उत्तमरक्षक धनवान्, या स्वजात्य-स्वसाम्राज्योत्पन्न वह सम्राट् द्वेषियों को अन्तर्हित करके हमसे दूर और पृथक करे। पूजनीय उस इन्द्र की कल्याणकारी तथा सुखप्रद सुमति में तथा उसकी मानसिक प्रसन्नता में हम हो, (रहें)।

९५. **ध्रुवं ध्रुवेण हविषाऽव सोम नयामसि ।**

यथा न इन्द्रः केवलीर्विशः संमनसस्करत् ।।का.७ सू.९४ मं.१

स्थिर सैनिक-हवि द्वारा, युद्ध में ध्रुवरूप परकीय-सेनानायक का हम अवपात करते हैं, ताकि सम्राट् हम प्रजाओं को शत्रुरहित या पारस्परिक सेवा वाली और एक मन वाली करें।

९६. **मा संवृतो मोप सृप ऊरू माव सृपोऽन्तरा ।**

कृणोम्यस्यै भेषजं बजं दुर्णामचातनम् ।।का.८ सू.६ मं.३

हे दुर्नाम! कुष्ठ रोगी पुरुष! तू कभी वरण न किया जाय और यदि भूल से किसी प्रकार कन्या के द्वारा वरण भी किया गया हो तो कन्या के जंघा भागों स्पर्श मत कर अर्थात् कन्या के साथ संग मत कर का इस कन्या के लिये दुष्ट रोग से पीड़ित पुरुष को दूर करने वाले अभिगमनीय, सुन्दर पुरुष को ही उत्तम उपाय करता हूँ।

९७. **दुर्णामा च सुनामा चोभा संवृतमिच्छतः ।**

अरायानप हन्मः सुनामा स्त्रैणमिच्छताम् ।।का.८ सू.६ मं.४

दुष्ट रोग से बदनाम हुआ घृणित पुरुष और उत्तम रूप से युक्त सुन्दर, सुगुण पुरुष दोनों ही स्वयंवर के अवसर पर वरा जाना चाहते हैं। हम कन्या के सम्बन्धी गुण सम्पत्तियों से रहित निकृष्ट लोगों को दूर भगा दें और उत्तम गुण, रूप, यश वाला पुरुष कन्या (स्त्री) को प्राप्त करे।

९८. **यः कृष्णः केश्यसुर स्तम्बज उत तुण्डिकः ।**

अरायानस्य मुष्काभ्यां भंससोप हन्मसि ।।का.८ सू.६ मं.५

जो अति काला या काले कर्मों वाला, लम्बे-लम्बे बालों वाला, खाऊ, पीऊ, उड़ाऊ, जंगली और नाक थोथने वाला, कुरुप पुरुष हो और भी इसी प्रकार कुलक्षण वाले पुरुषों को हम इस कन्या के उत्पादक अंग तथा मूल भागों से परे रखें।

९९. **यः कृणोति मृतवत्सामवतोकामिमां स्त्रियम् ।**

तमोषधे त्वं नाशयास्याः कमलमञ्जिवम् ।।का.८ सू.६ मं.९

जो दुष्ट पुरुष इस स्त्री को मरे बच्चे वाली और पतित गर्भ वाली करे अर्थात् उसके बच्चों को मार दे या गर्भ को गिरा दे उसे हे दुष्टों के तापदायी राजन्! तू इस स्त्री के उस कामी जार को विनष्ट कर दण्ड दे।

१००. कुतस्तौ जातौ कतमः सो अर्धः कस्माल्लोकात् कतमस्या पृथिव्याः ।
वत्सौ विराजः सलिलादुवैतां तौ त्वा पृच्छामि कतरेण दुग्धा ।।का.८ सू.६ मं.१

वे दोनों जीव और ब्रह्म कहां से प्रादूर्भूत हुए वह कौन सा सर्वश्रेष्ठ परम सम्पन्नतम पद या स्वरूप है? किस लोक से कौन सी पृथिवी से ये दोनों प्रकट हुए? विराड् अर्थात् नाना रूपों से प्रकट होने वाली प्रकृति रूप सलिल सर्वव्यापक पदार्थ से दोनों बच्चों के समान प्रकट हुए। उन दोनों के विषय में हे ब्रह्मज्ञानिन्! मैं तुझसे प्रश्न करता हूँ कि वह विराड् गौ उन दोनों बछड़ों में से किसने दुही है।

१०१. यो अक्रन्दयत् सलिलं महित्वा योनिं कृत्वा त्रिभुजं शयानः ।
वत्सः कामदुघो विराजः स गुहा चक्रे तन्वः पराचैः ।।का.८ सू.६ मं.२

जो अपने महान् बल से पूर्वोक्त प्रकृति रूप सलिल को विक्षुब्ध करता है और तीन प्रकार से भोग करने योग्य सत्व, रज, तमो रूप उत्पत्ति स्थान बनाकर अव्यक्त रूप से व्यापक है। समस्त काम अर्थात् संकल्पों को पूर्ण करने वाली विराट् प्रकृति का व्यापक आच्छादक वह ब्रह्म दूर-दूर तक विस्तृत लोकों को इस आकाश रूपी गुफा में बनाता है।

१०२. यानि त्रीणि बृहन्ति येषा चतुर्थं वियुनक्ति वाचम् ।
ब्रह्मैनद् विद्यात् तपसा विपश्चिद् यस्मिन्नेक युज्यते यस्मिन्नेकम् ।।का.८ सू.६ मं.३

जो विशाल, तीन गुण सत्व, रजस् और तमस् हैं, जिनकी अपेक्षा से चौथी वेदमयी वाणी को प्रकट करता है। ब्रह्मवेत्ता विद्वन् अपने तप से उसको ब्रह्म जाने। एकमात्र वही समाधि द्वारा साक्षात् होता है, जिसके विषय में एक अद्वितीय, ऐसा ही समाधि में साक्षात् ज्ञान होता है या उसे एक अद्वितीय कहना उचित है।

१०३. बृहतः परि सामानि षष्ठात् पंचाधि निर्मिता ।
बृहद् बृहत्या निर्मितं कुतोऽधि बृहती मिता ।।का.८ सू.६ मं.४

पंच अर्थात् परिणाम स्वरूप, विस्तृत या व्यक्त रूप पंचभूत उस पष्ठ अर्थात् सर्वव्यापक, उनमें लीन उस महान् तत्व में से पृथक् बने ओर वह बृहत् महान् तत्व उस बृहती प्रकृति से बना या प्रकट हुआ। अब प्रश्न यह है कि वह बृहती प्रकृति कहां से बन गई है?

१०४. बृहती परि मात्राया मातुर्मात्राधि निर्मिता ।
माया ह जज्ञे मायया मायया मातली परि ।।का.८ सू.६ मं.५

वह बृहती स्थूल प्रकृति मात्रा सूक्ष्म प्रकृति से प्रकट हुई और वह सूक्ष्म प्रकृति माता निमत्ति ब्रह्म से प्रकट हुई। वह ज्ञानमयी निर्मात्री शक्ति कहां से आई? वह माया निर्मात्री, निश्चय से माया अर्थात् निर्मात्री शक्ति से ही प्रादूर्भूत हुई। अर्थात् वह स्वयम्भू अनादि है और उस निर्मात्री शक्ति के वश में मातली अर्थात् यह जीव है।

१०५. वैश्वानरस्य प्रतिमोपरि द्यौर्यावद् रोदसी विबबाधे अग्निः ।
ततः षष्ठादामुतो यन्ति स्तोमा उदितो यन्त्यभि पष्ठमहनः ।।का.८ सू.६

मं.६

वैश्वानर सर्वव्यापक ईश्वर की प्रतिमान अर्थात् परिमाण, लम्बाई चौड़ाई इतनी बड़ी है जितनी ऊपर यह द्युलोक है और सूर्य के समान स्वयं प्रकाशित परमेश्वर द्यौ और पृथिवी भर में व्यापक है। उस दूरतम पूर्वोक्त षष्ठ अर्थात् सर्वव्यापक निगूढ़ शक्ति से प्राणधारी जीव आते है और यहां से व्यापक शक्ति के सर्वव्यापी निगूढ़ रूप के प्रति पुनः चले जाते हैं, उसी में लीन होकर मुक्त हो जाते हैं।

१०६. को विराजों मिथुनत्वं प्र वेद क ऋतून क उ कल्पमस्याः ।
क्रमान् को अस्याः कतिधा विदुग्धान् को अस्यां धाम कतिधा व्युष्टीः ।।का.८ सू.६ मं.१०

कौन उस विराट् प्रकृति का परम पुरुष के साथ हुए मैथुन अर्थात् जगत् की उत्पत्ति को भली प्रकार जानता है? कोई नहीं। ऋतुओं को अर्थात् गर्भधारण सामर्थ्य और गर्भधारण के कालों को कौन जानता है? कोई नहीं। इस विराट् के उत्पादन सामर्थ्य को कौन जानता है? इस विराट् के नाना कर्मों और व्यवस्थाओं को कौन जानता है? और कितने प्रकार से उनका सार, बल या सामर्थ्य प्रकट करता है यह कौन जानता है? और इसके बल को कौन जानता है? और कौन जानता है कि इसकी कितने प्रकार की वशकारिणी शक्तियां हैं?

१०७. ऋतस्य पन्थामनु तिस्र आगस्त्रयो धर्मा अनु रेत आगुः ।
प्रजामेका जिन्वत्यूर्जमेका राष्ट्रमेका रक्षति देवयूनाम् ।।का.८ सू.६ मं.१३

तीन शक्तियां सत्य के मार्ग पर चलने से प्राप्त होती हैं। तीन धर्म, तेज रेतस् वीर्य के कारण प्राप्त होते हैं। उन तीन शक्तियों में से एक प्रजनन शक्ति प्रजा को तृप्त करती है और एक बल प्राप्त कराती है और एक देवतुल्य पुरुषों के राष्ट्र की रक्षा करती है।

१०८. अग्नीषोमावदधुर्या तुरीयासीद् यज्ञस्य पक्षावृषयः कल्पयन्तः ।
गायत्री त्रिष्टुभं जगतीमनुष्टुभं बृहदकी यजमानाय स्वराभरन्तीम् ।।का.८ सू.६ मं.१४

तत्वदर्शी ऋषिगण अग्नि और सोम, आत्मा और परमेश्वर दोनों को यज्ञ के दो पक्षों के तुल्य मानते हुए जो तुरीय-जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाओं से परे शिवरूपिणी, परमशक्ति है, उस यजमान के लिये सुख प्राप्त कराने वाली गायत्री, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप रूप, वा इन छन्दों से गाई गई अनन्त स्तुति के योग्य परम पूजनीय ब्रह्मशक्ति को धारण करते हैं।

१०६. पंच व्युष्टीरनु पंच दोहा गां पंचनाम्नीमृतवोऽनु पंच ।
पंच दिशेः पंचदशेन क्लृप्तास्ता एकमूर्ध्नीरभि लोकमेकम् ।।का.८ सू.६ मं.१५

पांच व्युष्टियों के साथ पांच दोहे हैं और पांच नाम वाली गौ के अनुसार पांच ऋतु हैं। पन्द्रहवें ने पांच दिशाओं को वश में किया। ये सब एक ही शिर वाली एक लोक के चारों ओर आश्रय लिये हैं।

११०. षडाहुः शीतान् षडु मास उष्णानृतुं नो ब्रूत यतमोऽतिरिक्तः ।

सप्त सुपर्णाः कवयो निषेदुः सप्तच्छन्दांस्यनु सप्त दीक्षाः ।।का.८ सू.६ मं.१७

छः मासों को शीत कहते हैं और छः ही मासों को उष्ण कहते हैं। हे विद्वान् पुरुषों! उस ऋतु को हमें बतलाओं जो इन ऋतुओं से अतिरिक्त अर्थात् बड़ा है।

१११. सप्त होमाः समिधो ह सप्त मधूनि सप्तर्तवो ह सप्त ।
सप्ताज्यानि परि भूतमायन् ताः संप्तगृध्रा इति शुश्रुमा वयम् ।।का.८ सू.६ मं.१८

सात होम, सात समिधाएं, सात मधु, सात ऋतुएं और सात आज्य ये सब इस सत् पदार्थ आत्मा को प्राप्त हैं। उनको ही सात गृध्र अर्थात् विषय लोलुप इन्द्रियगण के नाम से हम सुनते हैं।

११२. प्रथमा ह व्युवास सा धेनुरमदद् यमे ।
सा नः पयस्वती दुहामुत्तरां समाम् ।।का.८ सू.१० मं.१

वह पहली उषा चमकी। वह नियन्ता-परमेश्वर के नियमन में दुग्धदात्री गौ के सदृश फलदात्री हुईं। वह दुग्धवाली गौ के सदृश उत्तरोत्तर वर्षों में हमारे लिये अभिमत फल का दोहन करे।

११३. यां देवाः प्रतिनन्दन्ति रात्रि धेनुमुपायतीम् ।
संवत्सरस्य या पत्नी सा नो अस्तु सुमंगली ।।का.८ सू.१० मं.२

जिस रात्रि को समीप आती हुई देख देव प्रसन्न होते हैं, जो कि संवत्सर की पत्नी है, वह हमारे लिये उत्तम मंगलरूपा हो।

११४. पञ्चौदनः पञ्चधा विक्रमतामाक्रंस्यमानस्त्रीणि ज्योतींषि ।
ईजानानां सुकृतां प्रेहि मध्यं तृतीये नाके अधि विश्रयस्व ।।का.६ सू.५ मं.८

तीन ज्योतियों की प्राप्ति को लक्ष्य करके आक्रमण करना चाहता हुआ, पांच प्रकार के पंचेन्द्रियभोगों वाला व्यक्ति, पांच प्रकार से विक्रम अर्थात् पराक्रम करे। तब जिन्होंने इन्द्रिय भोगों पर विजयरूपी यज्ञ किये हैं उन सुकर्मियों के मध्यमें तू जा। तदन्तर सुखमय तीसरे मोक्षधाम में अधिकारपूर्वक तू आश्रय ले अर्थात् विश्राम कर।

११५. अजस्त्रिनाके त्रिदिवे त्रिपृष्ठे नाकस्य पृष्ठे ददिवांस दधाति ।
पंचौदनो ब्रह्मणे दीयमानो विश्वरूपा धेनुः कामदुघाऽस्येका ।।का.६ सू.५ मं.१०

वह परमात्मा आत्मसमर्पण करने वाले मुमुक्षु को आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक दुःखों से रहित, तीन ज्योतियों से पूर्ण, तीन प्रकार के रस, आनन्द से सम्पन्न स्वर्गमय परमपद् के पीठ पर ले जाता है। ठीक भी है ब्रह्म में समर्पित किया पंच प्राण, पंच ज्ञान सामर्थ्यों से युक्त आत्मा विश्वरूपा सब प्रकार के रस देने वाली गाय है जो एकमात्र समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करने वाली साक्षात् कामधेनु है।

११६. एतद् वो ज्योतिः पितरस्तृतीयं पंचौदानं ब्रह्मणेऽजं ददाति ।
अजस्तमांस्यप हन्ति दूरमस्मिँल्लोके श्रद्दधानेन दत्तः ।।का.६ सू.५ मं.११

हे प्राणों! यह अज आत्मारूप ज्योति तुम्हारी सबसे उत्तम ज्योति है। परमब्रह्म के लिये पूर्वोक्त पांच ओदन रूप पांच विषयों सहित पांचों इन्द्रियों के साथ अपने आत्मा को जो समर्पित कर देता है, ऐसे मुमुक्षु द्वारा समर्पित आत्मा इस लोक में ही मृत्यु बन्धनों को दूर कर देता है।

११७. यो विद्याद् ब्रह्म प्रत्यक्षं परूंषि यस्य संभारा ऋचो यस्यानूक्यम् ।।का.९ सू.६ मं.१

११८. सामानि यस्य लोमानि यजुर्हृदयमुच्यते परिस्तरणमिद्धविः ।।का.९ सू.६ मं.२

साक्षात् ब्रह्म यज्ञस्वरूप है। यज्ञोपयोगी पदार्थों का समुदाय जिसके पोरु पोरु हैं। ज्ञानमय वेदमन्त्र जिसके पीठ के मोहरे हैं। सामगायन जिसके लोम हैं और यजुर्वेदप्रतिपादित कर्म जिसके हृदय हैं हवि अर्थात् अन्न जिसका परिस्तरण बिछौना है जो पुरुष साक्षात् उस ब्रह्म को जान लेता है वह पूजा के योग्य है।

११९. पंचारे चक्रे परिवर्तमाने यस्मिन्नातस्थुर्भवनानि विश्वा ।
तस्य नाक्षस्तप्यते भूरिभारः सनादेव न च्छिद्यते सनाभिः ।।का.९ सू.९ मं.११

पांच तत्व रूपी अरों वाले चक्र सब ग्रह, उपग्रह आदि भुवन स्थित हैं, उस का अक्ष, जिस पर कि बहुत भार है, वह सनातन काल से ही नाभि समेत न तप्त होता है, न टूटता ही है (वह सनातन कल से ही विद्यमान है)।

१२०. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परि पस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभि चाकशीति ।।का.९ सू.९ मं.२०

जैसे सुन्दर पंखों वाले, परस्पर सहयोगी, तथा मित्रों के समान वर्तमान दो पक्षी, एक वृक्ष का आश्रय करते हैं, उन दोनों में से एक उस वृक्ष के पके हुए फल को स्वादपने से खाता है, ओर दूसरा न खाता हुआ सब ओर देखता रहता हैं। ऐसे व्याप्य-व्यापक भाव से परस्पर साथ सम्बन्ध ा रखने वाले मित्रों के समान वर्तमान जीव और ईश्वर, समान नश्वर देह का आश्रय करते हैं, उनमें से जीव पाप पुण्य से उत्पन्न सुखदुःखात्मक भोग को स्वादुपन से भोगता है, और दूसरा ईश्वर कर्मफल को न भोगता हुआ उस भोगते हुए जीव को सब ओर से देखता अर्थात् उस का साक्षी होता है।

१२१. यो वै तां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरम् ।
तस्मै ब्रह्म च ब्राह्मश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ।।का.१० सू.२ मं.२९

जो निश्चय से ब्रह्म की परमानन्द रस से या अनन्त जीवन से घिरी हुई, उस पुरी को जान लेता है वह ब्रह्म और उस ब्रह्मरूप महान् शक्ति के उपासकजन या उससे उत्पन्न लोक चक्षु आदि इन्द्रियां, जीवन और सन्तान प्रदान करते हैं।

१२२. अष्टचक्रा नवद्वारा देवानां पुरयोध्या ।
तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ।।का.१० सू.२ मं.३१

आठ चक्रों वाली, नौ द्वारों वाली, इन्द्रिय रुपी देवों की पुरी अयोध्या है। पुरी में सुवर्ण सदृश चमकीला कोश है, जिसे कि स्वर्ग कहते है, जो ब्राह्मीज्योति द्वारा घिरा हुआ है।

१२३. तस्मिन् हिरण्यये कोशे त्र्यरे त्रिप्रतिष्ठिते ।

तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद् वै ब्रह्मविदो विदुः ।।का.१० सू.२ मं.३२

आठ चक्रों और नवद्वारों से युक्त इन्द्रिय गणों की किसी से युद्ध द्वारा विजय न की जाने वाली पुरी है। उसमें तेजस्वरूप प्राणों का एकमात्र आश्रय सुखस्वरूप जीवात्मा परमात्मा के तेज से ढका हुआ रहता है।

१२४. कस्मिन्नंगे तपो अस्याधि तिष्ठति कस्मिनंगे ऋतमस्याध्याहितम् ।

क्व व्रतं क्व श्रद्धास्य तिष्ठति कस्मिन्नंगे सत्यमस्य प्रतिष्ठतम् ।। का.१० सू.७ मं.१

इसके किस अंग में तप विराजता है ? इसके किस अंग में ज्ञान धरा है ? इसके किस भाग में व्रत बैठा है ? और किस अंग में श्रद्धा स्थित है ? और इसके किस अंग में सत्य प्रतिष्ठित है ?

१२५. कस्मादंगाद् दीप्यते अग्निरस्य कस्मादंगात् पवते मातरिश्वा ।

कस्मादंगाद् वि मिंमीतेऽधि चन्द्रमा महः स्कम्भस्य मिमानो अंगम् ।। का. १० सू.७ मं२

इस स्कम्भ के किस अंग से अग्नि प्रकाशित होता है ? वायु किस अंग से बहता है ? महान् स्कम्भ अर्थात् ज्येष्ठ ब्रह्म के स्वरूप को प्रकट करता हुआ चन्द्रमा किस अंग से प्रकट होता है ?

१२६. कियता स्कम्भः प्र विवेश भूतं कियद् भविष्यदन्वाशयेऽस्य ।

एकं यदंगमकृणोत् सहस्त्रधा कियता स्कम्भः प्र विवेश तत्र ।। का. १० सू. ७ मं. ६

वह स्कम्भ भूतकाल में कितने अंश से प्रविष्ट है ? और भविष्य काल में इस स्कम्भ का कितना अंश व्याप्त है ? और एक अंग अर्थात् प्रकृति को जो इसमें हस्त्रों रूपों में प्रकट किया है उस प्रकृति में स्कम्भ कितने अंश से प्रविष्ट है ?

१२७. यत्र तपः पराक्रम्य व्रतं धारयत्युत्तरम् ।

ऋतं च यत्र श्रद्धा चापो ब्रह्म समाहिंताः स्कम्भं त ब्रूहि कतमः स्विदेघ्व सः ।।का.१० सू.७ मं११

जिसके आश्रय में तप पराक्रम करके उत्कृष्ट व्रत को धारण करता है और जहां परमसत्य और श्रद्धा समस्त जीवगण या प्रकृति के सूक्ष्म परमाणु या आप्त परमपद में प्राप्त मुक्त जीव और वेद का परमज्ञान आश्रित हैं उसको तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

१२८. यस्य त्रयस्त्रिंशद् देवा अंगे सर्वे समाहिताः । स्कम्भं तं० ।। का.१० सू. ७ मं. १३

जिसके अंग अर्थात् प्रकृति में सबके सब तेतींस देवगण भली प्रकार स्थित हैं, उसको

तू स्कम्भ कह, वह अत्यन्त सुखमय है।

१२६. यत्र ऋषयः प्रथमजा ऋचः साम यजुर्मही ।
एकर्षिर्यस्मिन्नार्पितः स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।।का.१० सू.७ मं. १४

जिस में प्रथमोत्पन्न ऋषि तथा ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और मही अर्थात् महती अथर्ववेद वाणी समाहित है, सम्यक्रूप में स्थित रहते हैं, तथा जिस में प्रधान-ऋषि अर्थात् अथर्वा समर्पित हैं, उसे स्कम्भ तू कह अतिशय सुखस्वरूप ही है, वह आनन्दरूप है।

१३०. ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिम् ।
यो वेद परमेष्ठिनं विदुस्ते स्कम्भमनुसंविदुः ।। का. १० सू. ७ मं. १७

जो विद्वान् योगी जन शरीर पुरी में विद्यमान जीवात्मा अन्तर्यामी रूप से स्थित उस महान् ब्रह्म का साक्षात् ज्ञान करते हैं, वे परम अर्थात् उत्कृष्ट जीवात्मा में स्थित ब्रह्म का परमेष्ठी रूप में साक्षात्कार करते हैं और जो ब्रह्मवेत्ता उस परम जीवात्मा में स्थित परमेष्ठी का साक्षात् ज्ञान कर लेते हैं, और साथ ही जो सौर जगत् में स्थित सूर्य के समान समस्त जड़ संसार में स्थित उस पालक का प्रजापति रूप में साक्षात् ज्ञान प्राप्त कर लेते है, जो ब्रह्मवेदी ज्येष्ठ रूप से उस ब्रह्म को साक्षात् जान लेते हैं, वे ही इन ज्ञानों के आधार पर उस जगदाधार स्कम्भ का भली प्रकार ज्ञान लाभ करते हैं।

१३१. यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन् ।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः ।।का.१० सू. ७ मं.२०

जिससे ऋचाए प्रकट हुई और जिसस यजुर्वेद प्रकट हुआ, साम जिसके लोम है और अथर्ववेद जो कि जीवन के रस के समान है, वह जिसका मुख है, उसको तू स्कम्भ कह। वह अत्यन्त सुखमय है।

१३२. यत्र देवा ब्रह्मविदो ब्रह्म ज्येष्ठमुपासते ।
यो वै तान् विद्यात् प्रत्यक्षं स ब्रह्मा वेदिता स्यात् ।।का.१० सू.७ मं.२४

जिसके आश्रय पर समस्त देवगण हैं, उस सर्वोत्कृष्ट परब्रह्म की, ब्रह्मवेत्ता ऋषि, उपासना करते हैं। जो भी उन ब्रह्मविदियों का साक्षात् सत्संग लाभ करे, वह भी ज्ञानी ब्रह्मवेत्ता हो जाय।

१३३. त्रीणि च्छन्दांसि कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता ओषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आर्पितानि ।।का.१८ सू.१ मं. १७

तीनों छन्दों अर्थात् वेदों की नाना प्रकार से विश्व में प्रकट होने वाले, विश्व के द्रष्टा, दर्शनीय परमेश्वर को लक्ष्य करके ही क्रान्तदर्शी विद्वान् पुरुष व्याख्या करते हैं। जिस प्रकार जल, नाना वायुएं और ओषधियें वे सब एक ही भूलोक पर आश्रित हैं, उसी प्रकार उस परमेश्वर के स्वरूप

वर्णन में ही ऋग्वेद, सामगान और याजुषकर्म तीनों आश्रित हैं।

१३४. सो चिन्नु भद्रा क्षुमती यशस्वत्युषा उवास मनवे स्वर्वती ।
यदीमुशन्तमुशतामनु क्रतुमग्निं होतारं विदथाय जीजनन् ।।का.१८ सू.१ मं.२०

वह वेदवाणी ही निश्चय से सुखजनक, मन्त्रमय शब्द से युक्त, वीर्यवाली, उषा के समान सब पदार्थों को प्रकाशित करने वाली मननशील पुरुष के लिए अत्यन्त सुखकारिणी होकर प्रकट होती है। क्योंकि विद्वान् पुरुष नाना प्रकार की कामना करने वालों में से इस वेदवाणी की ही कामना करने वाले क्रियाशील, ज्ञानवान् दूसरे को भी ज्ञान प्रदान करनेवाले विद्वान् को वेदवाणी के ज्ञान के लिए उत्पन्न करते हैं।

१३५. यस्ते अग्ने सुमतिं मर्तो अख्यत् सहसः सूनो अति स प्र शृण्वे ।
इषं दधानो वहमानो अश्वैरा स द्युमाँ अमवान् भूषति द्यून् ।।का.१८ सू.१ मं.२४

हे प्रकाशस्वरूप तथा बल के उत्पन्न करने वाले परमेश्वर! जो पुरुष तेरे ज्ञान का दूसरों को उपदेश करता है, वह बहुत अधिक प्रख्यात हो जाता है। वह पुरुष अन्न को धारण करता और घोड़ों की सवारी करता है। तेजस्वी और बलवान् होकर बहुत दिनों तक बना रहता है।

१३६. यस्मिन् देवा विदथे मादयन्ते विवस्वतः सदने धारयन्ते ।
सूर्ये ज्योतिरदधुर्मास्यक्तून् परि द्योतनिं चरतो अजस्रा ।।का.१८ सू.१ मं.३५

जिस प्राप्त करने योग्य या ज्ञान स्वरूप परमेश्वर में ज्ञानी पुरुष हर्ष और आनन्द प्राप्त करते हैं और नाना प्रकार के ऐश्वर्य से युक्त जिस परमेश्वर के शरण में अपने आपको स्थित करते हैं, उस सबके प्रेरक सूर्य के समान प्रकाश परमेश्वर में ही परम प्रकाश को धारण करते हैं। उसी सबके निर्माणकर्ता प्रभु में चन्द्र में रात्रियों के समान समस्त व्यक्त होने वाले पदार्थों को आश्रित मानते हैं, उसी प्रकाशमान के आश्रय पर निरन्तर गतिशील सूर्य और चन्द्र दोनों भी अपने-अपने मार्ग में गति कर रहे हैं।

१३७. सखाय आ शिषामहे ब्रह्मेन्द्राय वज्रिणे ।
स्तुष ऊ षु नृतमाय धृष्णवे ।।का.१८ सू.१ मं.३७

हे मित्रगण! हम लोग परमैश्वर्यवान् तथा परम शक्तिमान् परमेश्वर की उपासना के लिये वेद-ज्ञान की कामना करते हैं और उसी सर्वोत्तम नायक, सबके घर्षण करने वाले, शक्तिमान् की उत्तम रीति से स्तुति करते हैं।

१३८. शवसा ह्यसि श्रुतो वृत्रहत्येन वृत्रहा ।
मघैर्मघोनो अति शूर दाशसि ।।का.१८ सू.१ मं.३८

हे परमेश्वर! तू आवरणकारी, ज्ञान के विघ्नरूप वृत्र के नाश करने में समर्थ बल से सर्वत्र प्रसिद्ध है। हे शूर! तू ही धनाढयों को धनों से अतिक्रमण करके, समस्त जीवों को जीवन, अन्न और धन प्रदान करता है।

१३९. सरस्वतीं पितरो हवन्ते दक्षिणा यज्ञमभिनक्षमाणाः ।
आसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वमनमीवा इष आ धेह्यस्मे ।।का.१८ सू.१ मं.४२

पालक पिता, पितामह और देश के अधिकारी लोग यज्ञ में दक्षिण दिशा में विराजमान् होकर वेदवाणी को या गृहस्थ स्त्री को स्वीकार करते हैं। हे पुरुषों! आप लोग इस महान् यज्ञ में बैठकर हर्ष और आनन्द प्राप्त करो। हे सरस्वती! तू हमें रोगरहित अन्नों का प्रदान कर।

१४०. अपेत वीति वि च सर्पतातोऽस्मा एतं पितरो लोकमक्रन् ।
अहोभिरद्भिरक्तुभिर्व्यक्तं यमो ददात्यवसानमस्मै ।।का.१८ सू.१ मं.५५

इस लोक से हे जीव! तुम दूर जाते हो, नाना दिशाओं में जाते हो, और विविध प्रकारों से जीवन यात्रा करते हो। पूर्व पुरुषार्थी लोगों ने इस अपने उत्तराधिकारी के लिये यह लोक भोगने के लिये बनाया है। सर्वनियन्ता परमेश्वर दिनों, जलों और रात्रियों से विशेष रूप से कान्तियुक्त इस भूलोक को इन जीवों के निवास के लिए देता है।

१४१. इमं यम प्रस्तरमा हि रोहाङ्गिरोभिः पितृभिः संविदान ।
आ त्वा मन्त्राः कविशस्ता वहन्त्वेना राजन् हविषो मादयस्व ।।का.१८ सू.१ मं.६०

हे राजन्! आंगिरस वेद के ज्ञाता, राष्ट्र के पालक, पिता के समान पूजनीय पुरुषों के साथ राष्ट्र व्यवस्था की मन्त्रणा करता हुआ तू उत्तम बिछे हुए आसन पर आरुढ़ हो। क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी बुद्धिमान् पुरुषों द्वारा उपदेश किये गये नीति-उपदेश तुझको आगे के उचित मार्ग पर ले जाय। हे राजन्! इन विद्वान् पुरुषों को उत्तम अन्न और आदर से प्रदत्त पुरस्कारों से प्रसन्न रख।

१४२. सूर्यं चक्षुषा गच्छ वातमात्मना दिवं च गच्छ पृथिवीं च धर्मभिः ।
अपो वा गच्छ यदि तत्र ते हितमोषधीषु प्रति तिष्ठा शरीरैः ।।का.१८ सू.२ मं.७

हे पुरुष! अपनी चक्षु द्वारा सूर्य के प्रकाश को प्राप्त कर। शरीर के धारक बलों द्वारा आकाश और पृथिवी को भी प्राप्त कर, अपने वश कर। तू जलों को भी प्राप्त कर। फलतः तू अपने अनेक विश्व शरीरों से लोकों में प्रतिष्ठित होकर रह।

१४३. ये चित् पूर्व ऋतसाता ऋतजाता ऋतावृधः ।
ऋषीन् तपस्वतो यम तपोजाँ अपि गच्छतात् ।।का.१८ सू.२ मं.१५

हे यम-नियम में निष्ठ ब्रह्मचारिन्! जो पूर्व के या परिपूर्ण, तप और स्वाध्याय में संलग्न, सत्य ज्ञान में उत्पन्न, ब्रह्मज्ञान को बढ़ाने, उपदेश करके उसकी वृद्धि करने वाले ऋषि लोग हैं, उन तपश्चर्या से युक्त, तपस्वी, तत्वदर्शी, तपोनिष्ठ महर्षियों को प्राप्त हो और तू उनसे ज्ञान प्राप्त कर।

१४४. तपसा ये अनाधृष्यास्तपसा ये स्वर्ययुः ।
तपो ये चक्रिरे महस्तांश्चिदेवापि गच्छतात् ।।का.१८ सू.२ मं.१६

तपश्चर्या के कारण जो पापों द्वारा पराभूत नहीं हो सकते, तपश्चर्या के कारण जो सुखों को प्राप्त

होते हैं, महातप जिन्होंने किया है, उन्हें ही हे सद् गृहस्थ ! तू शिक्षार्थ प्राप्त हुआ कर।

१४५. उदह्मायुरायुषे क्रत्वे दक्षाव जीवसे ।

स्वान् गच्छतु ते मनो अधा पितॄँरुप द्रव ।।का.१८ सू.२ मं.२३

हे पुरुष! दीर्घजीवन, उत्तम कर्म करने, आरोग्य युक्त जीने के लिये, दीर्घ आयु प्राप्त करने का मैं उपदेश करता हूँ। तेरा चित्त अपने बन्धुजनों के प्रति जावे, और तू स्वयं भी माता-पिता आदि वृद्ध, पूज्य पालक पुरुषों के पास जा और उनसे विद्या और अनुभव प्राप्त कर।

१४६. विश्वामित्र जमदग्ने वसिष्ठ भरद्वाज गोतम वामदेव ।

शर्दिर्नो अत्रिरग्रभीन्नमोभिः सुशंसासः पितरो मृडता नः ।।का.१८ सू.३ मं.१६

हे विश्वामित्र अर्थात् सबके मित्र! हे जमदग्नि अर्थात् प्रज्ज्वलित अग्नि वाले! या अग्नि के समान दीप्तियुक्त! हे वशिष्ठ अर्थात् मन को वश में करने वालों में सबसे मुख्य! हे भरद्वाज अर्थात् अन्न को भरने हारे! ज्ञानों और अन्नों से सबको पोषण-करनेवाले, हे वामदेव अर्थात् ईश्वरोपासक! आप लोग और ये शर्दि अर्थात् शरण देने वाले, अत्रि अर्थात् त्रिविध तापों से मुक्त, ये सब हमें ग्रहण करके स्वीकार करें, अपनावें । ये सभी उत्तम रीति से शासन करने वाले सबके पालक, आप पूज्य वृद्धजन अन्न और दुष्टों के नमाने वाले बलयुक्त साधनों से सुखी करें। इस मन्त्र में ऋषि सात मुख्य प्राणों के नाम हैं और उन सात शक्तियों के साधक पुरुष और व्यष्टिरूप से जीव आत्मा और समष्टि रूप से परमेश्वर के भी नाम है।

१४७. सुकर्माणः सुरुचो देवयन्तो अयो न देवा जनिमा धमन्तः ।

शुचन्तो अग्निं वावृधन्तः इन्द्रमुर्वीं गव्यां परिषदं नो अक्रन ।।का.१८ सू.३ मं.२२

उत्तम कर्म करने वाले, उत्तम रुचि वाले, देव-उपासना करने वाले, ईश्वर भक्त पुरुष स्वयं विद्वान् होकर अपने जन्म को लोहार जिस प्रकार लोहे को वा स्वर्णकार जिस प्रकार सोने को आग में तपा-तपाकर शुद्ध करता है, उसी प्रकार बराबर तपस्या द्वारा शुद्ध करते हुए और अपने ज्ञानमय आत्मा को अग्नि के समान प्रदीप्त करते हुए तथा ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की स्तुतियों द्वारा महिमा बढ़ाते हुए, विशाल वाणी के प्रकाश के लिये हमारी परिषद् बनावें।

१४८. सं गच्छस्व पितृभिः सं यमेर्नेष्टापूर्तेन परमे व्योमन् ।

हित्वावद्यं पुनरस्तमेहि सं गच्छतां तन्वासुवर्चाः ।।का.१८ सू.३ मं.५८

हे पुरुष! तू पालन करने वाले वृद्ध महानुभावों से सत्संग किया कर। इन्द्रियों का संयम करने वाले ब्रह्मचारी पुरुष से संगति लाभ कर। उस परम रक्षास्थान परमेश्वर का आश्रय लेकर यज्ञ आदि के कार्यों और लोकोपकार के कार्यों के साथ अपने को संगत कर और निन्दा योग्य आचरण को छोड़ कर फिर अपने घर को आ और उत्तम तेज से सम्पन्न होकर देह से सदा संयुक्त रहे।

१४६. पुनर्देहि वनस्पते य एष निहितस्त्वयि ।

यथा यमस्य सादन आसातै विदथा वदन् ।।का.१८ सू.३ मं.७०

हे महावृक्ष के समान सब पर अपनी कृपा छाया रखने वाले सर्वशरण परमेश्वर। जो यह पुरुष

तुझमें विलीन हो जाता है, इस देह को छोड़ कर तेरे पास पहुंच जाता है, तू उसको पुनः शरीर प्रदान कर, जिससे सर्वनियन्ता की शरण में रहता हुआ ही वह परोपकारी जन सर्वसाधारण को ज्ञानों का उपदेश करता हुआ इस लोक में विद्यमान रहे।

१५०. तीर्थैस्तरन्ति प्रवतो महीरिति यज्ञकृतः सुकृतो येन यन्ति ।
अत्रादधुर्यजमानाय लोकं दिशो भूतानि यदकल्पयन्त ।।का.१८ सू.४ मं.७

जिस प्रकार तैरने के साधन नाव आदि द्वारा बड़ी वेगवान् नदियां तरी जाती हैं, उसी प्रकार भवसागर से पार उतरने के साधनभूत अध्यात्म यज्ञ, तप आदि तीर्थों और तपस्वी आदि जंगम तीर्थों द्वारा बड़ी-बड़ी भारी विपत्तियों को लोग तर जाते हैं। इस प्रयोजन से जिस मार्ग द्वारा उत्तम कर्म करने वाले पुण्यात्मा और ईश्वरोपासना करने वाले यज्ञशील पुरुष गमन करते हैं, उसी मार्ग में रहकर वे दिशा और उत्पन्न प्राणी जो भी बनाये हैं वे परमेश्वर के उपासक यज्ञशील पुरुष के लिये स्थान को बनाते हैं।

१५१. वृषा मतीनां पवते विचक्षणः सूरो अह्लां प्रतरीतोषसां दिवः ।
प्राणः सिन्धूनां कलशाँ अचिक्रददिन्द्रस्य हार्दिमाविशन् मनीषया ।।का.१८ सू.४ मं.५८

मनन करने योग्य ज्ञानों का वर्षण करने वाला, विविध प्रकार से ज्ञानों का द्रष्टा, दिनों के उत्पादक तथा प्रकाश और उषाओं के प्रवर्तक सूर्य के समान विविध रूप से दर्शनीय, निरन्तर विषयों में बहने वाले इन्द्रियों का मुख्य, प्राण रूप आत्मा, घटरूप इन देहों को प्राप्त होता हैं और उनको भी सजीव करता है और वह शक्तिशाली परमात्मा के हृदय में मन के नियन्त्रण द्वारा प्रविष्ट होता है।

१५२. अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रियाँ अधूषत ।
अस्तोषत स्वभानवो विप्रा यविष्ठा ईमहे ।।का.१८ सू.४ मं.६१

स्वयंप्रकाश मेधावी पुरुष जब उस परब्रह्म के साक्षात्कार से प्राप्त सोम रस का आस्वादन करते हैं, तब वे निरन्तर तृप्त रहा करते हैं, तब वे अपने प्रिय शरीर के भोगों को कंपाकर छोड़ देते हैं और परब्रह्म की स्तुति करते हैं। इन ज्ञानी पुरुषों के पास हम अति तुच्छ, ज्ञान वाले पुरुष उनको प्राप्त होकर ज्ञान की याचना करते हैं।

१५३. इन्द्रो राजा जगतश्चर्षणीनामधि क्षमि विषुरूपं यदस्ति ।
ततो ददाति दाशुषे वसूनि चोदद् राध उपस्तुतश्चिदर्वाक् ।।का.१६ सू.५ मं.१

परमैश्वर्यवान् परमात्मा समस्त जगत् का, समस्त प्रजाओं का और इस पृथिवी पर जो कुछ भी नाना प्रकार के पदार्थ हैं, उन सबका राजा है। वह अपने खजानें में से दानशील पुरुष को नाना जीवनोपयोग ऐश्वर्य प्रदान करता है। वह ही भक्ति पूर्वक स्तुति करने योग्य है। वह हमारे प्रति ऐश्वर्य और ज्ञान प्रदान करे।

१५४. सहस्रबाहुः पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।
स भूमि विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद् दशांगुलम् ।।का.१६ सू.६ मं.१

ब्रह्माण्ड पुरी में बसा हुआ परमेश्वर अनन्त बलवीर्य वाला, सर्वद्रष्टा तथा सर्वगत, सर्वाधार है। वह पृथिवी को सब ओर से घेर कर, और इसे अतिक्रमण करके ५ स्थूलभूतों ५ सूक्ष्मभूतों वाले ब्रह्माण्ड से परे स्थित है।

१५५. त्रिभिः पद्भिर्द्यामरोहत् पादस्येहाभवत् पुनः ।
तथा व्यक्रामद् विष्वङशनानशने अनु ।।का.१९ सू.६ मं.२

यह पुरुष तीन अंशों से प्रकाश रूप मोक्ष को व्याप्त करता है और इसका एक अंश ही इस दृश्य जगत् में बार-बार सृष्टि और प्रलय के रूप में प्रकट होता है। इसी प्रकार से वह विश्व में व्याप्त हो रहा है। वह भोजन करने वाले प्राणियों और भोजन न करने वाले जड़ पदार्थों के भीतर भी व्याप्त है।

१५६. पुरुष एवेदं सर्वं यद् भूतं यच्च भाव्यम् ।
उतामृतत्वस्येश्वरो यदन्येनाभवत् सह ।।का.१९ सू.६ मं.४

यह सब कुछ जो उत्पन्न हुआ था और उत्पन्न होने वाला है और जो ब्रह्म या चेतन रूप के अतिरिक्त जड़ प्रकृति द्वारा उत्पन्न हुआ है, वह परमात्मा की ही रचना है। वह अमृत सत्त का स्वामी है।

१५७. ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्योऽभवत् ।
मध्यं तदस्य यद् वैश्यः पद्भ्यां शूद्रो अजायत ।।का.१९ सू.६ मं.६

इस ईश्वर की सृष्टि में वेद और ईश्वर का ज्ञान मुख के तुल्य उत्तम ब्राह्मण है। भुजाओं के तुल्य बलपराक्रम युक्त प्रजानुरंजक क्षत्रिय हुआ है। जो इसकी सृष्टि में शरीर के मध्य भाग के सदृश खान पान की व्यवस्था करने वाला है। वह सर्वत्र व्यापार के लिये प्रवेश करनेवाला वैश्य है। पावों के समान नीचे रहकर समाज का आधार बनने से शूद्र प्रकट हुआ है।

१५८. विराडग्रे समभवत् विराजो अधि पूरुषः ।
स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथो पुरः ।।का.१९ सू.६ मं.९

उस पूर्ण पुरुष से सबसे प्रथम ज्योतिर्मय पदार्थों से प्रकाशमान ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ। उस ब्रह्माण्ड के भी ऊपर व्यापक परमेश्वर अधिष्ठाता रूप से विराजमान रहा। वह इतने विविध पदार्थों में शक्ति रूप से प्रकट होकर भी अभी बहुत अधिक शेष रहा, अर्थात् संसार के संचालक अंश से भी अतिरिक्त शक्ति का बहुत बड़ा अंश और शेष है। वही इस प्रथम उत्पन्न विराट् के बाद सब जंगम, स्थावर सृष्टि के आश्रयभूत और उत्पादक भूमि को उत्पन्न करता है और नाना शरीरों को भी रचता है।

१५९. तस्मादश्वा अजायन्त ये च के चोभयादतः ।
गावो ह जज्ञिरे तस्मात् तस्माज्जाता अजावयः ।।का.१९ सू.६ मं.१२

घोड़े तथा जो कोई और गदहा आदि दोनों ओर ऊपर-नीचे दांतों वाले हैं, वे उस परमेश्वर से पैदा हुए हैं। उसी से गौएं निश्चय करके उत्पन्न हुईं और उसी से बकरियां, भेड़ें उत्पन्न हुईं।

१६०. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे ।
छन्दो ह जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत ।।का.१९ सू.६ मं.१३

उस अत्यन्त पूजनीय, जिस के लिए सब लोग समस्त पदार्थों को देते वा समर्पण करते, उस परमात्मा से ऋग्वेद, सामवेद उत्पन्न हुए। उस परमात्मा से निश्चय से अथर्ववेद के मंत्र उत्पन्न हुए और उससे यजुर्वेद उत्पन्न हुआ है।

१६१. तस्माद् यज्ञात् सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ।
पशूँस्तांश्चक्रे वायव्यानारण्या ग्राम्याश्च ये ।।का.१९ सू.६ मं.१४

जो सब के द्वारा ग्रहण किया जाता, उस पूजनीय परमात्मा से दधि-घृत आदि भोगनेयोग्य वस्तुएँ सम्यक् उत्पन्न हुई। तथा जो वायु मे रहनेवाले, वन्य और ग्राम के पशु हैं, उन्हें परमात्मा ने उत्पन्न किया।

१६२. अग्ने प्रजातं परि यद्धिरणयममृतं दध्रे अधि मर्त्येषु ।
य एनद् वेद स इदेनमर्हति जरामृत्युर्भवति यो बिभर्ति ।।का.१९ सू.२६ मं. १

जो हितकर और रमणीय वीर्य-तत्त्व तपश्चर्या की अग्नि से प्रकृष्टस्वरूप में प्रकट होता है, वह वीर्य तत्त्व मरणधर्मा मनुष्यों में अमृत (परमेश्वर) को स्थापित करता है। जो कोई वीर्य-तत्त्व के इस स्वरूप को जानता है, वह ही इस अमृत (परमेश्वर) की प्राप्ति के योग्य होता है। जो कोई वीर्य-तत्त्व का धारण-पोषण करता है, वह बुढ़ापे की आयु भोगकर मरने वाला होता है।

१६३. यद्धिरण्यं सूर्येण सुवर्णे प्रजावन्तो मनवः पूर्व ईषिरे ।
तत् त्वा चन्द्रं वर्चसं सं सृजत्यायुष्मान् भवति यो बिभर्ति ।।का.१९ सू.२६ मं.२

हे आत्मन्! जिस रमणीय, हितकारी तथा सूर्य के समान उत्तम वर्ण वाली आत्मा की ज्योति को प्रजाओं वाले उत्तम श्रेणी के मनुष्य चाहते हैं, उस आल्हादजनक तुझ आत्मा को जो धारण करता है, वह तेज से युक्त हो जाता है और दीर्घायु हो जाता है।

१६४. भद्रमिच्छन्त ऋषयः स्वर्विदस्तपो दीक्षमुपनिषेदुरग्रे ।
ततो राष्ट्र बलमोजश्च जांते तदस्मै देवा उपसंनमन्तु ।।का.१९ सू.४१ मं. १

प्रजा का सुख और कल्याण चाहते हुए, स्वर्गीय सुख को प्राप्त ऋषियों ने, प्रथम तप और व्रतों का अनुष्ठान किया। तत्पश्चात् राष्ट्रभावना, राष्ट्रीय बल और ओज प्रकट हुआ, इसलिये इस राष्ट्रभावना और राष्ट्रीय बल तथा ओज की पूर्ति के प्रति राष्ट्र के दिव्यनेता परस्पर मिल कर श्रद्धापूर्वक झुके रहें।

१६५. कालो अश्वो वहति सप्तरशिमः सहस्राक्षो अजरो भूरिरेताः ।
तमा रोहन्ति कवयो विपश्चितस्तस्य चक्र भुवनानि विश्वा ।।का.१९ सू. ५३ मं.१

जिस प्रकार घोड़ा रथ को खींच ले जाता है उसी प्रकार काल सबको खींच कर ले जा रहा है। वह काल महत्व, अहंकार पांचतन्मात्रा रूपी सात रासों वाला, हजारों का क्षय करने वाला और बहुत बल से युक्त है। उस पर क्रान्तदर्शी तथा नाना कर्मों और ज्ञान का संचय करने वाले विद्वान्

चढ़ते हैं, उसको काबू कर लेते हैं। उसके ही ये समस्त लोक उसके महान् रथ में लगे चक्रों के समान गति करते हैं। इससे समस्त लोकों की वृत्ताकार गति और सबकी गोलाकार आकृति का भी वर्णन हो गया।

१६६. यथा कलां यथा शफं यर्थंण संनयन्ति ।
एवा दुष्वप्न्यं सर्वमप्रिये सं नयामसि ।।का.१६ सू.५७ मं.१

जिस प्रकार एक-एक कला के पश्चात् चन्द्र नामशेष हो जाता है और जिस प्रकार एक-एक पैर रखते-रखते मार्ग तय हो जाता है जिस प्रकार थोड़ा-थोड़ा करके ऋण चुक जाता है, उसी प्रकार हम आलस्य त्याग दें। आलस्य के अप्रिय पक्ष को जानकर उसे हम त्याग दें।

१६७. सं राजानो अगुः समृणान्यगुः सं कुष्ठा अगुः सं कला अगुः ।
समस्मासु यद् दुष्वप्न्यं निर्द्विषते दुष्वप्न्यं सुवाम ।।का.१६ सू.५७ मं.२

जैसे राजा लोग युद्धकाल में एक-एक करके बहुत से एकत्र हो जाते हैं, जैसे ऋण जुड़ते-जुड़ते बहुत सा एकत्र हो जाता है, जैसे कुत्सित त्वचा के रोग जमा होते-होते एकत्र हो जाते हैं और जिस प्रकार चन्द्र में कलाएं जुड़ती-जुड़ती एकत्र हो जाती हैं, उसी प्रकार जो दुःखदायी स्वप्न, निद्रा या आलस्य की मात्रा है, वह भी क्रम से हममें एकत्र होती जाती है। हम उस दुःखदायी स्वप्न या आलस्य को द्वेष पक्ष का जानकर उसे त्याग दें।

१६८. देवानां पत्नीनां गर्भ यमस्य कर यो भद्रः स्वप्न ।
स मम यः पापस्तद् द्विषते प्र हिण्मः ।
मा तृष्टानामसि कृष्णशकुनेर्मुखम् ।।का.१६ सू.५७ मं.३

हे निद्रा प्रमाद! विषयों में खेलने वाली इन्द्रियों की शक्तियों या वृत्तियों से तूं उत्पन्न होता है और बन्धनकारी प्रभाव का उत्पन्न करने वाला है। हे स्वप्न! जो तेरा रूप कल्याण और सुखकारी है उस रूप में मुझे प्राप्त हो और जो पापजनक रूप है, उसको द्वेष पक्ष में हम रखते हैं। परे कर दें। हे स्वप्न! तू हमें प्राप्त न हो। तू विषय-तृष्णालुओं को प्राप्त होता है और काले तथा शक्तिशाली पाप का मुख अर्थात् प्रवर्तक है।

१६६. आ देवानामपि पन्थामगन्म यच्छक्नवाम् तदनुप्रवोढुम् ।
अग्निर्विद्वान्त्स यजात् स इद्धोता सोऽध्वरान्त्स ऋतून् कल्पयाति ।।का.१६ सू.५६ मं.३

हम लोग विद्वान् पुरुषों के मार्ग का अनुसरण करें और जितना भी उनका अनुसरण करने में समर्थ हो सकें उतना अवश्य करें। ज्ञानवान् परमेश्वर ही सब कुछ जानता है। वह सब कुछ प्रदान करता है। वह सबको देने वाला और सबकी भक्ति को स्वीकार करने वाला है। वह समस्त हिंसारहित यज्ञों को और वही ऋतुओं को उत्पन्न करता है।

१७०. यस्मात् कोशादुदभराम वेदं तस्मिन्नन्तरव दध्म एनम् ।
कृतमिष्टं ब्रह्मणो वीर्येण तेन मा देवास्तपसावतेह ।।का.१६ सू.७२ मं.१

जिस परमात्मरूपी खजाने से वेद को हम ने लिया था, उसी के भीतर इसे हम रख देते हैं, उसे समर्पित कर देते हैं। क्योंकि वेद या परमेश्वर से प्राप्त सामर्थ्य द्वारा हमने अभीष्ट सिद्ध कर

लिया है। अब उस प्रसिद्ध आध्यात्मिक तप के कारण हे आध्यात्मिक गुरुदेवो ! इस जीवन में मेरी रक्षा कीजिये।

१७१. मरुतः पोत्रात् सृष्टुभः स्वर्कादृतुना सोमं पिबतु ।का.२० सू.२ मं.१

विद्वान् पुरुष, पवित्र करने वाले और उत्तम रूप से स्तुति करने योग्य, तथा उत्तम अर्चनीय परमेश्वर से प्राप्ट करके, ऋतु-ऋतु में ब्रह्मानन्दरस का पान करें।

१७२. आ नो याहि सुतावतोऽस्माकं सुष्टुतीरुप ।
पिबा सु शिप्रिन्नन्धसः ।।का.२० सू.४ मं.१

हे इन्द्र! परमेश्वर! योगसमाधि द्वारा साक्षात् प्राप्त हो। हमारी उत्तम स्तुतियों को अति समीप होकर श्रवण कर। हे उत्तम ज्ञानवान्! आप ही अमृतरस का हमें पान करावें।

१७३. अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।
यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ।।का.२० सू.१५ मं.३

हे पुरुष! उषाकाल के समान तेजोमय तथा हिंसा से रहित परमेश्वर के आश्रय में वर्तमान तू इस स्तुति योग्य, पराक्रमी परमेश्वर को हवि आदि सत्कार से पूर्ण कर। जिसका तेज, नमनकारी बल और ऐश्वर्य प्रसिद्ध है और जिसका प्रकाश मानो दूर-दूर दिशाओं तक फैलने के लिये उत्पन्न होता है।

१७४. यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते ।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनास इन्द्रः ।।का.२० सू.३४ मं.६

जिसकी सहायता के विना लोग विरोधी शक्तियों पर विजय नहीं पाते, और युद्ध करते हुए रक्षार्थ जिसको पुकारते हैं, जो समग्र संसार की प्रत्येक वस्तु का निर्माण करता है, जो अच्युतों को भी च्युत कर देता है, - हे प्रजाजनों ! वह परमेश्वर है।

१७५. उद् गा आजदङ्गिरोभ्य आविष्कृण्वन् गुहा सतीः ।
अर्वाञ्चं नुनुदे वलम् ।।का.२० सू.३६ मं.३

परमेश्वर ज्ञानवान् पुरुषों के लिये अन्तःकरण में विद्यमान वेदवाणियों को ऊपर प्रकट करता हुआ अन्तःकरण को घेरने वाले अज्ञान को नीचे गिरा देता है।

१७६. इच्छन्नश्वस्य यच्छिरः पर्वतेष्वपश्रितम् ।
तद् विंदच्छर्यणावति ।।का.२० सू.४१ मं.२

व्यापक आत्मा का जो शिर के समान मुख्य अंश पर्व वाले, या पोरु वाले शरीर या मेरुदण्ड में अज्ञानियों की दृष्टि से बहुत दूर अज्ञात रूप में स्थित है। उसको प्राप्त करना चाहता हुआ ध यानयोगी पुरुष उसको शर्यणा अर्थात् चेतना से सम्पन्न अपने हृदय या मस्तक भाग में ही ध्यान योग से प्राप्त करता है।

१७७. अभि त्वा वर्चसा गिरः सिञ्चन्तीराचरण्यवः ।
अभि वत्सं न धेनवः ।।का.२० सू.४८ मं.१

हे परमेश्वर! गौएं जिस प्रकार अपने प्रिय बछड़े के प्रति वेग से दौड़ती हुई आती हैं, उसी प्रकार सदाचार का उपदेश देने वाली वेदवाणियां, ज्ञान रस का प्रवाह बहाती हुई, कान्तिवाले तुझको प्राप्त होती है।

१७८. यच्छक्रा वाचमारुहन्नन्तरिक्षं सिषासथः ।
सं देवा अमदन् वृषा ।।का.२० सू.४६ मं.१

शक्तिशाली योगीजन जब वेदवाणी का आश्रय लेते हैं, हे ज्ञानी पुरुषों! तब-तब आप लोग भीतरी आत्मा को ही प्राप्त होते हो। तब प्राणगण और सुखों का वर्षक भीतरी बलवान् आत्मा दोनों एक साथ आनन्द, प्रसन्न एवं तृप्त होते हैं।

१७९. प्र सु श्रुतं सुराधसमर्चा शुक्रमभिष्टये ।
यः सुन्वते स्तुवते काम्यं वस सहस्रेणेव मंहते ।।का.२० सू.५१ मं.३

हे उपासक ! अभीष्ट की प्राप्ति के लिये, वेदों में सुने गये, सुगमता से अभीष्ट-साधक, शक्ति शाली परमेश्वर की प्रकर्षरूप में अच्छे प्रकार अर्चना किया कर, जो परमेश्वर कि भक्तिरस वाले स्तोता को मानो हजारों प्रकार से अभीष्ट धन अर्थात् मोक्ष प्रदान करता है।

१८०. एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम् ।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर ।।का.२० सू.५६ मं.६

हे परमेश्वर ! आपके ये जन्मधारी उपासक, श्रेष्ठ सब प्रजाजनों का परिपोषण करते हैं। इन जन्मध ारी उपासकों के हृदय के भीतर आप सत्-ज्ञान का प्रकथन करते रहते हैं। आप सब धनों के स्वामी है, सर्ववेत्ता हैं। उन अदानियों की सम्पत्तियां हम उपासकों को प्रदान कीजिये।

१८१. यद् वा शक्र परावति समुद्रे अधि मन्दसे ।
अस्माकमित् सुते रणा समिन्दुभिः ।।का.२० सू.१११ मं.२

हे शक्तिशाली परमेश्वर ! दूर तक फैले हुए समुद्र तथा अन्तरिक्ष में जो भक्तिरस है, उसका आप आनन्द लेते है। इसलिये हमारे भी भक्तियज्ञों में आप हमारे भक्तिरसों द्वारा सम्यक् रमण कीजिये, प्रसन्न होइए।

१८२. यद्वासिं सुन्वतो वृधो यजमानस्य सत्पते ।
उक्थे वा यस्य रण्यसि समिन्दुभिः ।।का.२० सू.१११ मं.३

हे सज्जनों के प्रतिपालक! आत्मन्! जो तू उपासना और योगसाधना करने वाले एवं देवपूजन करने वाले पुरुष की वृद्धि करने वाला है, और जिस किसी के भी कहे स्तुति वचन में आनन्द अनुभव करता है, जो तू हृदय को द्रवित करने वाले अपने ही आनन्दरसों से तृप्त होता है।

१८३. यमिमं त्वं वृषाकपि प्रियमिन्द्राभिरक्षसि ।
श्वा न्वस्य जम्भिषदपि कर्णे वराहयुर्विश्वस्मादिन्द्र उत्तरः ।।का.२० सू.१२६ मं.४

हे परमेश्वर! जिस इस अपने प्रिय जीव की तू सब ओर से रक्षा करता है, उस जीव को इसके कर्म के निमित्त वायु की कामना करने वाला आशु गतिशील प्राण ही पकड़ लेता, या बांध लेता

है। वह परमेश्वर सब जीवजगत् से ऊंचा है जो कभी देहबन्धन में नहीं आता।

१८४. य आक्ताक्षः सुभ्यक्तः सुमणिः सुहिरण्यवः ।

सुब्रह्मा ब्रह्मणः पुत्रस्तोता कल्पेषु संमिता ।।का.२० सू.१२८ मं.७

जो वेदज्ञ का पुत्र स्वयं उत्तम वेद का ज्ञाता है, वह अंजी आंख वाले के समान उत्तम रीति से शास्त्र के चक्षु से यक्त हो जाता है। गात्र में तैल आदि लगाने वाले के समान सुन्दर और स्वस्थ रहता है। वह उत्तम मणि को धारण करने वाले के समान सुशोभित और उत्तम सुवर्ण आदि के स्वामी के समान ज्ञान का धनी होता है। वे सब जन कर्म सामर्थ्यों से समान हैं।

१८५. अप्रपाणा च वेशन्ता रेवाँ अप्रतिदिश्ययः ।

अयभ्या कन्या कल्याणी तोता कल्पेषु संमिताः ।।का.२० सू.१२८ मं.८

तालाब जिसका जल पीने योग्य न हो, अथवा जिसमें घाट उत्तम न हो, वह धनी पुरुष जो कभी दान नहीं करता है और जो कि रूपादि से सम्पन्न तथा कल्याण लक्षणों से युक्त होकर भी सुख भोग के योग्य न हो। वे सब कर्मसामर्थ्यों में समान हैं।

१८६. परिवृक्ता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।

अनाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिताः ।।का.२० सू.१२८ मं.१०

रानी जो पति द्वारा छोड़ दी गई है, और कुशलपूर्वक युद्ध में न जाने वाला भीरु सैनिक, घोड़ा, जो तेज न हो, और जो पुरुष किसी नियम में न रह सके, वे सब कर्मसामर्थ्यों में समान हैं। ये सब कार्य के अवसर पर त्यागने योग्य हैं।

१८७. वावाता च महिषी स्वस्त्या च युधिंगमः ।

श्वाशुरश्चायामी तोता कल्पेषु संमिता ।।का.२० सू.१२८ मं.११

रानी जो पति की प्रेमपात्र हो और वह सैनिक जो कुशलपूर्वक युद्ध में गमन करे, वह अश्व जो उत्तम गति वाला हो और सुख से नियम में रहने वाला संयमी पुरुष ये सब कर्मसामर्थ्यों में समान हैं। ये काम के अवसर पर ग्रहण करने योग्य हैं।

१८८. यदिन्द्रादो दाशराज्ये मानुषं वि गाहथाः ।

विरूपः सर्वस्मा आसीत् सह यक्षाय कल्पते ।।का.२० सू.१२८ मं.१२

जिस प्रकार हे ऐश्वर्यवन्! तू दशों दिशाओं के राजाओं के बीच मनुष्य समूह में विचरता है। तू ही सबको घर के आक्रमणों को रोकने वाला होता है। ऐसा पुरुष ही प्रजापति पद के योग्य होता है।

१८९. आमिनोनिति भद्यते ।। का.२० सू.१३१ मं.१

जो सांसारिक भोगों को त्याग देता है, वह कल्याणमय और सुखी हो जाता है।

१९०. वरुणो याति वस्वभिः ।। का.२० सू.१३१ मं.३

तब क्लेश निवारक परमात्मा उसकी ओर आध्यात्मिक सम्पति के साथ प्राप्त होता है।

।। इति ।

केनोपनिषद्

१.	न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो अथैतदनुशिष्या दन्यदेव
तद्विदितादथो अविदितादधि । इति शुश्रुम पूर्वेषां ये नस्तद् व्याचचक्षिरे ।।
१ खण्ड/ ३

२.	यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। १ खण्ड/ ४

३.	यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। १ खण्ड/ ५

४.	यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षूँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। १ खण्ड/ ६

५.	यच्छ्रोत्रेण न शृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। १ खण्ड/७

६.	यत्प्राणेन न प्राणिति येन प्राणः प्रणीयते ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। १ खण्ड/८

७.	यदि मन्यसे सुवेदेति दभ्रमेवापि नूनं त्वं वेत्थ ब्रह्मणो रूपम् ।
यदस्य त्वं यदस्य च देवेष्थ नु मीमांस्यमेव ते मन्ये विदितम् ।।
२ खण्ड/ १

८.	इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः ।
भूतेषु भूतेषु विचित्य धीराः प्रेत्यस्माल्लोकादमृता भवन्ति ।।
२ खण्ड / ५

कठोपनिषद्

९.	स्वर्गे लोके न भयं किंचनास्ति न तत्र त्वं न जरया बिभेति ।
उभे तीर्त्वाशनायापिपासे शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।
प्रथमा वल्ली / १२

१०.	त्रिणाचिकेतस्त्रिभिरेत्य सन्धि त्रिकर्मकृत्तरति जन्ममृत्यू ।
ब्रह्मज (य) ज्ञं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्येमाँ शान्तिमत्यन्तमेति ।।
प्रथमा वल्ली / १७

११.	त्रिणचिकेतस्त्रयमेतद्विदित्वा य एवं विद्वाँश्चिनुते नाचिकेतम् ।
स मृत्युपाशान्पुरतः प्रणोद्य शोकातिगो मोदते स्वर्गलोके ।।
प्रथमा वल्ली / १८

१२.	शतायुषः पुत्रपौत्रान्वृणीष्व बहून्पशून्हस्तिहिरण्यमश्वान् ।
भूमेर्महदायतनं वृणीष्व स्वयं च जीव शरदो यावदिच्छसि ।।
प्रथमा वल्ली / २३

१३. एतत्तुल्यं यदि मन्यसेवरं वृणीष्व वित्तं चिरजीविकां च ।
महाभूमौ नचिकेतस्त्वमेधि कामानां त्वा कामभाजं करोमि ।।
प्रथमा वल्ली / २४
१४. ये ये कामा दुर्लभा मर्त्यलोके सर्वान्कामाश्छन्दतः प्रार्थयस्व ।
इमा रामाः सरथाः सतूर्या न हीदृशा लम्भनीया मनुष्यैः ।
आभिर्मत्प्रताभिः परिचारयस्व नचिकेतो मरणं मानुप्राक्षीः ।।
प्रथमा वल्ली / २५
१५. श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्सर्वेन्द्रियाणां जरयन्ति तेजः ।
अपि सर्वं जीवितमल्पमेव तवैव वाहास्तव नृत्यगीते ।। प्रथमा वल्ली / २६
१६. न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यो लप्स्यामहे वित्तमद्राक्ष्म चेत्वा ।
जीविष्यामो यावदीशष्यसि त्वं वरस्तु मे वरणीयः स एव ।।
प्रथमा वल्ली / २७
१७. अजीर्यताममृतानामुपेत्य जीर्यन्मर्त्यः क्वधःस्थः प्रजानन् ।
अभिध्यायन्वर्णरतिप्रमोदानतिदीर्घे जीविते को रमेत ।।
प्रथमा वल्ली / २८
१८. अन्यच्छ्रे योऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः ।
तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते ।।
द्वितीय वल्ली /१
१९. श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतस्तौ संपरीत्य विविनक्ति धीरः ।
श्रेयो हि धीरोऽभि प्रेयसो वृणीते प्रेयो मन्दो योग-क्षेमाद् वृणीते ।।
द्वितीय वल्ली / २
२०. दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता ।
विद्याभीप्सिनं नचिकेतसं मन्ये न त्वा कामा बहवोऽलोलुपन्त ।।
द्वितीय वल्ली / ४
२१. अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।
द्वितीय वल्ली / ५
२२. न सांपरायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम् ।
अयं लोको नास्ति पर इति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ।।
द्वितीय वल्ली / ६
२३. श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ।।
द्वितीय वल्ली /७
२४. नैषा तर्केण मतिरापनेया प्रोक्ताऽन्येनैव सुज्ञानाय प्रेष्ठ ।

यां त्वमापः सत्यधृतिर्बतासि त्वादृङः नो भूयान्नचिकेतः प्रष्टा ।।
द्वितीय वल्ली / ९

२५. जानाम्यहृ शेवधिरित्यनित्यं न ह्यध्रुवैः प्राप्यते हि ध्रुवं तत् ।
ततो मया नचिकेतश्चितोऽग्निरनित्यैर्द्रव्यैः प्राप्तवानस्मि नित्यम् ।।
द्वितीय वल्ली / १०

२६. तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम् ।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति ।।
द्वितीय वल्ली / १२

२७. सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाँसि सर्वाणि च यद्वदन्ति ।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदँ संग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत् ।।
द्वितीय वल्ली / १५

२८. एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम् ।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ।। द्वितीय वल्ली / १६

२९. एतदालम्बन श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ।
एतदालम्बन ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ।। द्वितीय वल्ली / १७

३०. न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।
द्वितीय वल्ली / १८

३१. हन्ता चेन्मन्यते हन्तुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्येत ।। द्वितीय वल्ली / १९

३२. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मास्य जन्तोनिहितो गुहायाम् ।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः ।।
द्वितीय वल्ली / २०

३३. आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वतः ।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति ।। द्वितीय वल्ली / २१

३४. अशरीरँ शरीरेष्वनवस्थेष्ववस्थितम् ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।। द्वितीय वल्ली / २२

३५. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनू स्वाम् ।।
द्वितीय वल्ली /२३

३६. नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात् ।। द्वितीय वल्ली / २४

३७. यस्य ब्रह्म च क्षत्रं चोभे भवत ओदनः ।
मृत्युर्यस्योपसेचनं क इत्था वेद यत्र सः ।। द्वितीय वल्ली / २५

३८. ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्धे ।
छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पंचाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः ।।
तृतीया वल्ली / १
३६. यः सेतुरीजानानामक्षरं ब्रह्म यत्परम् ।
अभयं तितीर्षतां पारं नाचिकेत् शकेमहि ।। तृतीया वल्ली / २
४०. आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च ।। तृतीया वल्ली / ३
४१. यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा ।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथे ।। तृतीया वल्ली / ६
४२. यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ।
न स तत्पदमाप्नोति ससारं चाधिगच्छति ।। तृतीया वल्ली / ७
४३. यस्तु विज्ञानवान्भवति समनस्कः सदा शुचिः ।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते ।। तृतीया वल्ली / ८
४४. इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः ।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान्परः ।। तृतीया वल्ली /१०
४५. महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ।
पुरुषान्न परं किंचित्सा काष्ठा सा परा गतिः ।। तृतीया वल्ली /११
४६. एष सर्वेषु भूतेषु गूढोत्मा न प्रकाशते ।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्धया सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः ।। तृतीया वल्ली /१२
४७. उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ।।
तृतीया वल्ली / १४
४८. अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत् ।
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ।।
तृतीया वल्ली / १५
४६. परांचि खानि व्यतृणत्स्वयंभूस्तस्मात्पराङः पश्यति नान्तरात्मन् ।
कश्चिद्धरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन् ।। चतुर्थी वल्ली / १
५०. पराचः कामाननुयन्ति बालास्ते मृत्योर्यन्ति विततस्य पाशम् ।
अथ धीरा अमृतत्वं विदित्वा ध्रुवमध्रुवेष्विह न प्रार्थयन्ते ।।
चतुर्थी वल्ली / २
५१. स्वप्नान्तं जागरितान्तं चोभौ येनानुपश्यति ।
महान्तं विभुमात्मानं मत्वा धीरो न शोचति ।। चतुर्थी वल्ली / ४
५२. य इमं मध्वदं वेद आत्मानं जीवमन्तिकात् ।
ईशानं भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते एतद्वै तत् ।। चतुर्थी वल्ली /५

५३. यतश्चोदेति सूर्योऽस्तं यत्र च यच्छति ।
तं देवाः सर्वेऽपितास्तदु नात्येति कश्चन एतद्वै तत् ।। चतुर्थी वल्ली / ९
५४. यदेवेह तदमुत्र यदमुत्र तदन्विह ।
मृत्योः च मृत्युमाप्नोति य इह नानेव पश्यति ।। चतुर्थी वल्ली /१०
५५. मनसंवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति यह इह नानेव पश्यति ।। चतुर्थी वल्ली /११
५६. अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो मध्य आत्मनि तिष्ठति ।
ईशानो भूतभव्यस्य न ततो विजुगुप्सते, एतद्वै तत् ।। चतुर्थी वल्ली / १२
५७. अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः ।
ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः, एतद्वै तत् ।। चतुर्थी वल्ली /१३
५८. यथोदकं दुर्गे वृष्टं पर्वतेषु विधावति ।
एवं धर्मान्पृथक् पश्यंस्तानेवानुविधावति ।। चतुर्थी वल्ली / १४
५९. यथोदकं शुद्धे शुद्धमासिक्तं तादृगेव भवति ।
एवं मुनेर्विजानत आत्मा भवति गौतम ।। चतुर्थी वल्ली /१५
६०. पुरमेकादशद्वारमजस्यावक्रचेतसः ।
अनुष्ठाय न शोचति विमुक्तश्च विमुच्यते, एतद्वै तत् ।। पंचम वल्ली /१
६१. न प्राणेन नापानेन मर्त्यो जीवति कश्चन ।
इतरेण तु जीवन्ति यस्मिन्नेतावुपाश्रितौ ।। पंचम वल्ली /५
६२. योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ।
स्थाणुमन्येऽसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ।। पंचम वल्ली / ७
६३. य एष सुप्तेषु जागर्ति कामं कामं पुरुषो निर्मिमाणः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।
तस्मिल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन, एतद्वै तत् ।।
पंचम वल्ली /८
६४. अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च ।। पंचम वल्ली /
९
६५. वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूप प्रतिरूपो बहिश्च ।। पंचम वल्ली /
१०
६६. सूर्यो यथा सर्वलोकस्य चक्षुर्न लिप्यते चाक्षुषैर्बाह्यदोषैः ।
एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ।।
पंचम वल्ली /११
६७. एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा एकं रूपं बहुधा यः करोति ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।

पंचम वल्ली /१२

६८. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

पंचम वल्ली /१५

६९. ऊर्ध्वमूलोऽवाक्शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ।
तदेव शुक्रं तद् ब्रह्म तदेवामृतमुच्यते ।।
तस्मिँल्लोकाः श्रिताः सर्वे तदु नात्येति कश्चन, एतद्वै तत् ।।

षष्ठी वल्ली / १

७०. यदिदं किंच जगत्सर्वं प्राण एजति निःसृतम् ।
महद्भयं वज्रमुद्यतं य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।। षष्ठी वल्ली /२

७१. भयादस्याग्निस्तपति भयातपति सूर्यः ।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पंचमः ।। षष्ठी वल्ली / ३

७२. इह चेदशकद् बोद्धुं प्राक् शरीरस्य विस्त्रसः ।
ततः सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते ।। षष्ठी वल्ली /४

७३. इन्द्रियाणां पृथग्भावमुदयास्तमयौ च यत् ।
पृथगुत्पद्यमानानां मत्वा धीरो न शोचति ।। षष्ठी वल्ली / ६

७४. इन्द्रियेभ्यः परं मनो मनसः सत्वमुत्तमम् ।
सत्वादधि महानात्मा महतोऽव्यक्तमुतमम् ।। षष्ठी वल्ली /७

७५. अव्यक्तत्तु परः पुरुषो व्यापकोऽलिंगः एव च ।
यं ज्ञात्वा मुच्यते जन्तुरमृतत्वं च गच्छति ।। षष्ठी वल्ली / ८

७६. यदा पंचावतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह ।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम् ।। षष्ठी वल्ली / १०

७७. तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम् ।
अप्रसतस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ ।। षष्ठी वल्ली /११

७८. नैव वाचा न मनसा प्राप्तुं शक्यो न चक्षुषा ।
अस्तीति ब्रुवतोऽन्यत्र कथं तदुपलभ्यते ।। षष्ठी वल्ली /१२

७९. यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः ।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते ।। षष्ठी वल्ली /१४

८०. शतं चैका च हृदयस्य नाड्यस्तासां मूर्धानमभिनिःसृतैका ।
तयोर्ध्वमायन्नमृतत्वमेति विश्वङ्ङन्या उत्क्रमणे भवन्ति ।।

षष्ठी वल्ली /१६

प्रश्नोपनिषद्

८१. हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां ।

द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्त्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ।।
तृतीय प्रश्न / ६

८२. एष हि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा ।
कर्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परेऽक्षर आत्मनि संप्रतिष्ठते ।।
चतुर्थ प्रश्न/६

८३. परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं ।
वेदयते यस्तु सोम्य स सर्वज्ञः सर्वो भवति । तदेष श्लोकः ।।
चतुर्थ प्रश्न/१०

८४. स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं ।
मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म लोका लोकेषु च नाम च ।।
षष्ठ प्रश्न/४

८५. अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन्प्रतिष्ठिताः ।
तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युः परिव्यथा इति ।।
षष्ठ प्रश्न/६

मुण्डकोपनिषद्

८६. ओं ब्रह्मा देवानां प्रथमः संबभूव विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता ।
स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वाय ज्येष्ठपुत्राय प्राह ।। प्रथम खण्ड /१

८७. तस्मै स होवाच । द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म ।
यद् ब्रह्मविदो वदन्ति, परा चैवापरा च ।। प्रथम खण्ड /४

८८. तत्रापरा, ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं ।
निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति । अथ परा, यया तदक्षरमधिगम्यते ।।
प्रथम खण्ड /५

८९. यतदद्रे (दृ) श्यमग्राह्यमगोत्रमवर्णमचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम् ।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं तदव्ययं यद्भूतयोनि परिपश्यन्ति धीराः ।।
प्रथम खण्ड / ६

९०. यथोर्णनाभिः सृजते गृह्यते च यथा पृथिव्यामोषधयः संभवन्ति ।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि तथाक्षरात्संभवतीह विश्वम् ।।
प्रथम खण्ड /७

९१. तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ।
अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतम् ।। प्रथम खण्ड /८

९२. यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः ।
तस्मादेतद् ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते ।। प्रथम खण्ड/ ९

प्रथम मुंडक - द्वितीय खण्ड

९३. अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितंमन्यमानाः ।
जंघन्यमानाः परियन्ति मूढा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।। ८
९४. अविद्यायां बहुधा वर्तमाना वयं कृतार्था इत्यभिमन्यन्ति बालाः ।
यत्कर्मिणो न प्रवेदयन्ति रागात्तेनातुराः क्षीणलोकाश्चयवन्ते ।। ९
९५. तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये शान्ता विद्वांसो भैक्षचर्या चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ।। ११
९६. परीक्ष्य लोकान्कर्मचितान्ब्राह्मणो निर्वेदमायान्नास्त्यकृतः कृतेन ।
तद्विज्ञानार्थं स गुरुमेवाभिगच्छेत्समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम् ।। १२
९७. तस्मै स विद्वानुपसन्नाय सम्यक्प्रशान्तचित्ताय शमान्विताय ।
येनाक्षरं पुरुषं वेद सत्यं प्रोवाच तां तत्त्वतो ब्रह्मविद्याम् ।।१३

द्वितीय मुंडक -प्रथम खण्ड

९८. दिव्यो ह्यमूर्तः पुरुषः स वाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ।
अप्राणो ह्यमनाः शुभ्रौ ह्यक्षरात्परतः परः ।। २
९९. एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी ।। ३
१००. पुरुष एवेदं विश्वं कर्म तपो ब्रह्म परामृतम् ।
एतद्यो वेद निहितं गुहायां सोऽविद्याग्रन्थिं विकिरतीह सोम्य ।। १०

द्वितीय मुण्डक- द्वितीय खण्ड

१०१. प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते ।
अप्रमतेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत् ।। ४
१०२. अरा इव रथनाभौ संहता यत्र नाड्यः ।
स एषोऽन्तश्चरते बहुधा जायमानः ।
ओमित्येवं ध्यायथ आत्मानं स्वस्ति वः पाराय तमसः परस्तात् ।।६
१०३. यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि ।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः ।
१०४. मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं संनिधाय ।
तद्विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद्विभाति ।। ७
१०५. भिद्यते हृदयग्रन्थिश्छिद्यन्ते सर्वसंशयाः ।
क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन्दृष्टे परावरे ।।८
१०६. हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ।
तच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद्यदात्मविदो विदुः ।।९
१०७. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भाषा सर्वमिदं विभाति ।। १०

१०८. ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद् ब्रह्म पश्चाद् ब्रह्म दक्षिणतश्चोत्तरेण ।
अधश्चोर्ध्वं च प्रसृतं ब्रह्मैवेदं विश्वमिदं वरिष्ठम् ।।११

तृतीय मुण्डक-- प्रथम -खण्ड

१०६. द्वा सुपर्णा सयुजा सखायः समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।। १

११०. समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।।२

१११. यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम् ।
तदा विद्वान्पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ।। ३

११२. प्राणो ह्येषः यः सर्वभूतैर्विभाति विजानन्विद्वान्भवते नातिवादी।
आत्मक्रीड आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ।। ४

११३. सत्येन लभ्यस्तपसा ह्येष आत्मा सम्यग्ज्ञानेन ब्रह्मचर्येण नित्यम् ।
अन्तःशरीरे ज्योतिर्मयो हि शुभ्रो यं पश्यन्ति यतयः क्षीणदोषाः ।। ५

११४. सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था विततो देवयानः ।
येनाक्रमन्त्यृषयो ह्याप्तकामा यत्र तत्सत्यस्य परमं निधानम् ।।६

११५. बृहच्च तद्दिव्यमचिन्त्यरूपं सूक्ष्माच्च तत्सूक्ष्मतरं विभाति ।
दूरात्सुदुरे तदिहान्तिके च पश्यत्स्विहैव निहितं गुहायाम् ।।७

११६. न चक्षुषा गृह्यते नापि वाचा नान्यैर्देवैस्तपसा कर्मणा च ।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्त्वस्ततस्तु तं पश्यते निष्कलं ध्यायमानः ।।८

११७. यं यं लोकं मनसा संविभाति विशुद्धसत्त्वः कामयते तंश्च कामान् ।
तं तं लोकं जयते तांश्च कामांस्तस्मादात्मज्ञं ह्यर्चयेद् भूतिकामः ।। १०

तृतीय मुण्डक-- द्वितीय खण्ड

११८. स वेदैतत्परमं ब्रह्मधाम यत्र विश्वं निहितं भाति शुभ्रम् ।
उपासते पुरुषं ये ह्यकामास्ते शुक्रमेतदतिवर्तन्ति धीराः ।।१

११६. नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन ।
यमेवैव वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनुँस्वाम् ।। ३

१२०. नायमात्मा बलहीनेन लभ्यो न च प्रमादात्तपसो वाप्यलिंगात् ।
एतैरूपायैर्यतते यस्तु विद्वांस्तस्यैष आत्मा विशते ब्रह्मधाम ।। ४

१२१. वेदान्तविज्ञानसुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः ।
ते ब्रह्मलोकेषु परान्तकाले परामृताः परिमुच्यन्ति सर्वे ।।६

१२२. यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय ।
यथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् ।।८

१२३. स यो ह वै तत्परमं ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति नास्याब्रह्मवित्कुले भवति ।
तरति शोकं तरति पाप्मानं गुहाग्रन्थिभ्यो विमुक्तोऽमृतो भवति ।।६

माण्डूक्योपनिषद्

१२४. ओमित्येतदक्षरमिद सर्वं तस्योपव्याख्यानं भूतं भवद्भविष्यदिति ।
सर्वमोंकार एव। यच्चान्यत्त्रिकालातीतं तदप्योंकार एव ।।१
१२५. सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात् ।।२
नान्तःप्रज्ञं न बहिःप्रज्ञं नोभयतः प्रज्ञं न प्रज्ञानघनं न प्रज्ञं नाप्रज्ञम् ।
१२६. अदृष्टमव्यवहार्यमग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसारं
प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेयः ।।७

एकादशोपनिषद्

ब्रह्मानन्द-वल्ली

१२७. ब्रह्मविदाप्नोति परम् । तदेषाऽभ्युक्ता । सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म । यो वेद
निहितं गुहायां परमे व्योमन् । सोऽश्नुते सर्वान् कामान् सह ब्रह्मणा
विपश्चितेति ।

ब्रह्मानन्द वल्ली का नवम अनुवाक

१२८. यतो यतो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सह। आनन्दं ब्रह्मणो विद्वान् ।
न बिभेति कुतश्चनेति । एत ह वाव न तपति किमह साधु नाकरवम् ।
१२६. किमहं पापमकरवमिति । स य एवं विद्वानेते आत्मान स्पृणुते । उभे ह्येवैष
एते आत्मान्
स्पृणुते । य एवं वेद । इत्युपनिषत् ।।झ।।

एतरेयोपनिषद्

१३०. आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीन्नान्यत्किंचन ।
मिषत् स ईक्षत लोकान्नु सृजा इति ।। प्रथम खण्ड/१
१३१. स इमांल्लोकानसृजत । अम्भो मरीचीर्मरमापोऽदोऽम्भः परेण दिवं
द्यौः प्रतिष्ठाऽन्तरिक्षं मरीचयः । पृथिवी मरो या अधस्ताता आपः ।।
प्रथम खण्ड/२

श्वेताश्वतर-उपनिषद्

१३२. किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठाः ।
अधिष्ठताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ।।

प्रथम अध्याय/ १

१३३. ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन्देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः ।।
प्रथम अध्याय/३

१३४. संयुक्तमेतत्क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्त भरते विश्वमीशः ।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज्ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।
प्रथम अध्याय/८

१३५. ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशानीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता ।
अनन्तश्चात्म विश्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ।।
प्रथम अध्याय/९

१३६. क्षरं प्रधानममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ।
तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्वभावाद्भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्तिः ।।
प्रथम अध्याय/१०

१३७. ज्ञात्वा देवं सर्वपाशपहानिः क्षीणैः क्लेशैर्जन्ममृत्युप्रहाणिः ।
तस्याभिध्यानात्तृतीयं देहभेदे विश्वैश्वर्यं केवल आप्तकामः ।।
प्रथम अध्याय/११

१३८. स्वदेहमरणि कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ।
ध्याननिर्मथनाभ्यासाद्देवं पश्येन्निगूढवत् ।।प्रथम अध्याय/१४

१३९. तिलेषु तैलं दधिनीव सर्पिरापः स्रोतःस्वरणीषु चाग्निः ।
एवमात्मात्मनि गृह्यतेऽसौ सत्येनैनं तपसा योऽनुपश्यति ।।
प्रथम अध्याय/१५

१४०. सर्वव्यापिनमात्मानं क्षीरे सर्पिरिवार्पितम् । आत्मविद्या-
तपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परमिति ।। प्रथम अध्याय/ १६

१४१. युंजानः प्रथमं मनस्तत्वाय सविता धियः ।
अग्नेर्ज्योतिर्निचाय्य पृथिव्या अध्याभरत् ।। द्वितीय अध्याय/ १

१४२. युंजते मन उत युंजते धियो विप्रा विप्रस्य बृहतो विपश्चितः ।
वि होत्रां दधे वयुनाविदेक इन्मही देवस्य सवितुः परिष्टुतिः ।।
द्वितीय अध्याय/४

१४३. युजे वां ब्रह्म पूर्व्यं नमोभिर्विश्लोक एतु पथ्येव सूरेः ।
शृण्वन्तु विश्वे अमृतस्य पुत्रा आ ये धामानि दिव्यानि तस्थुः ।।
द्वितीय अध्याय/५

१४४. नीहारधूमार्कानिलानलानां खद्योतविद्युत्स्फटिकशशीनाम् ।
एतानि रूपाणि पुरःसराणि ब्रह्मण्यभिव्यक्तिकराणि योगे ।।
द्वितीय अध्याय/११

१४५. पृथ्व्यप्तेजोऽनिलखे समुत्थिते पंचात्मके योगगुणे प्रवृत्ते ।
न तस्य रोगो न जरा न मृत्युः प्राप्तस्य योगाग्निमयं शरीरम् ।।
द्वितीय अध्याय/१२

१४६. यदात्मतत्वेन तु ब्रह्मतत्वं दीपोपमेनेह युक्तः प्रपश्येत् ।
अजं ध्रुवं सर्वतत्वैविशुद्धं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।
द्वितीय अध्याय/१५

१४७. एव ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः ।
स एव जातः स जनिष्यमाणः प्रत्यङ्जनांस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ।।
द्वितीय अध्याय/१६

१४८. यो देवोऽग्नौ योऽप्सु यो विश्वं भुवनमाविवेश ।
य ओषधीषु यो वनस्पतिषु तस्मै देवाय नमो नमः ।।
द्वितीय अध्याय/ १७

१४९. विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतोबाहुरुत विश्वतस्पात् ।
सं बाहुभ्यां धमति सं पतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ।। तृतीय अध्याय/३

१५०. ततः परं ब्रह्म परं बृहन्तं यथानिकायं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारमीशं त ज्ञात्वाऽमृता भवन्ति ।।
तृतीय अध्याय/ ७

१५१. वेदाहमेतं पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात् ।
तमेव विदित्वाऽति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।
तृतीय अध्याय/ ८

१५२. यस्मात्परं नापरमस्ति किंचिद्यस्मान्नाणीयो न ज्यायोऽस्ति कश्चित् ।
वृक्ष इव स्तब्धो दिवि तिष्ठत्येकस्तेनेदं पूर्णं पुरुषेण सर्वम् ।।
तृतीय अध्याय/ ९

१५३. सर्वाननशिरोग्रीवः सर्वभूतगुहाशयः ।
सर्वव्यापी स भगवांस्तस्मात्सर्वगतः शिवः ।। तृतीय अध्याय/ ११

१५४. अंगुष्ठमात्र पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।
तृतीय अध्याय/ १३

१५५. सहस्त्रशीर्षा पुरुषः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात् ।
स भूमिं विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्यशाङ्गुलम् ।।तृतीय अध्याय/ १४

१५६. पुरुष एवेद सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यम् ।
उतामृतत्वस्येशानो यदन्नेनाति रोहति ।। तृतीय अध्याय/ १५

१५७. सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोऽक्षिशिरोमुखम् ।
सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ।। तृतीय अध्याय/ १६

१५८. सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ।
सर्वस्य प्रभुमीशानं सर्वस्य शरणं बृहत् ।।तृतीय अध्याय/ १०७
१५६. नवद्वारे पुरे देही हँसो लेलायते बहिः ।
वशी सर्वस्य लोकस्य स्थावरस्य चरस्य च ।। तृतीय अध्याय/ १८
१६०. अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्णः ।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरुषं महान्तम् ।।
तृतीय अध्याय/ १६
१६१. अणोरणीयान्महतो महीयानात्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः ।
तमक्रतु पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमीशम् ।।
तृतीय अध्याय/ २०
१६२. वेदाहमेतमजरं पुराणं सर्वात्मानं सर्वगतं विभुत्वात् ।
जन्मनिरोधं प्रवदन्ति यस्य ब्रह्मवादिनो हि प्रवदन्ति नित्यम् ।।
तृतीय अध्याय/ २१
१६३. य एकोऽवर्णो बहुधा शक्तियोगाद्वर्णाननेकान्निहितार्थो दधाति ।
वि चैति चान्ते विश्वमादौ स देवः सा नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।
चतुर्थ अध्याय/१
१६४. तदेवाग्निस्तदादित्यस्तद्वायुस्तदु चन्द्रमाः ।
तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदापस्तत्प्रजापतिः ।। चतुर्थ अध्याय/२
१६५. त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी ।
त्वं जीर्णो दण्डेन वंचसि त्वं जातो भवसि विश्वतोमुखः ।।
चतुर्थ अध्याय/३
१६६. अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमानां सरूपाः ।
अजो ह्येको जुषमाणोऽनुशेते जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।।
चतुर्थ अध्याय/५
१६७. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ।। चतुर्थ अध्याय/६
१६८. समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः ।
जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमिति वीतशोकः ।।
चतुर्थ अध्याय/७
१६६. ऋचो अक्षरे परमे व्योमन्यस्मन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तं न वेद किमृचा करिष्यति य इत्तद्विदुस्त इमे समासते ।।
चतुर्थ अध्याय/८
१७०. छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति ।
अस्मान्मायी सृजते विश्वमेतत्तस्मिश्चान्यो मायया संनिरुद्धः ।।

चतुर्थ अध्याय/९

१७१. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ।। चतुर्थ अध्याय/१०

१७२. यो योनि योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति ।।
चतुर्थ अध्याय/११

१७३. यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ।
हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु ।।
चतुर्थ अध्याय/१२

१७४. सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं शान्तिमत्यन्तमेति ।।
चतुर्थ अध्याय/१४

१७५. स एव काले भुवनस्य गोप्ता विश्वाधिपः सर्वभूतेषु गूढः ।
यस्मिन्युक्ता ब्रह्मर्षयो देवताश्च तमेवं ज्ञात्वा मृत्युपाशांश्छिनति ।।
चतुर्थ अध्याय/१५

१७६. घृतात्परं मण्डमिवातिसूक्ष्मं ज्ञात्वा शिवं सर्वभूतेषु गूढम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।चतुर्थ अध्याय/१६

१७७. एष देवो विश्वकर्मा महात्मा सदा जनानां हृदये संनिविष्टः ।
हृदा मनीषा मनसाऽभिक्लृप्तो य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।
चतुर्थ अध्याय/१७

१७८. यदाऽतमस्तन्न दिवा न रात्रिर्न सन्न चासंछिव एव केवलः ।
तदक्षरं तत्सवितुर्वरेण्यं प्रज्ञा च तस्मात्प्रसृता पुराणी ।।
चतुर्थ अध्याय/१८

१७९. नैनमूर्ध्वं न तिर्यंचं न मध्ये परिजग्रभत् ।
न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः ।। चतुर्थ अध्याय/१९

१८०. न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम् ।
हृदा हृदिस्थं मनसा य एनमेवं विदुरमृतास्ते भवन्ति ।।
चतुर्थ अध्याय/२०

१८१. मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ।
वीरान्मा नो रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ।।
चतुर्थ अध्याय/२२

१८२. द्वे अक्षरे ब्रह्मपरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र यूढे ।
क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु योऽन्यः ।।
पंचम अध्याय / १

१८३. तद्वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद्ब्रह्मा वेदयते ब्रह्मयोनिम् ।
ये पूर्वदेवा ऋषयश्च तद्विदुस्ते तन्मया अमृता अमृता वै बभूवः ।।
पंचम अध्याय /६
१८४. गुणान्वयो यः फलकर्मकर्ता कृतस्य तस्यैव स चोपभोक्ता ।
स विश्वरूपस्त्रिगुणस्त्रिवर्त्मा प्राणाधिपः संचरति स्वकर्मभिः ।।
पंचम अध्याय /७
१८५. अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः संकल्पाहंकारसमन्वितो यः ।
बुद्धेर्गुणेनात्मगुणेन चैव आराग्रमात्रो ह्यपरोऽपि दृष्टः ।।पंचम अध्याय /८
१८६. बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ।
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते ।। पंचम अध्याय /६
१८७. नैव स्त्री न पुमानेष न चैवायं नपुंसकः ।
यद्यच्छरीरमादत्ते तेन तेन स रक्ष्यते ।। पंचम अध्याय /१०
१८८. अनाद्यनन्तं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य स्त्रष्टारमनेकरूपम् ।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।
पंचम अध्याय /१३
१८६. भावग्राह्यमनीड्याख्यं भावाभावकरं शिवम् ।
फलासर्गकरं देवं ये विदुस्ते जहुस्तनुम् ।। पंचम अध्याय /१४
१६०. स्वभावमेके कवयो वदन्ति कालं तथान्ये परिमुह्यमानाः ।
देवस्यैष महिमा तु लोके येनेदं भ्राम्यते ब्रह्मचक्रम् ।। षष्ठ अध्याय/ १
१६१. स वृक्षकालाकृतिभिः परोऽन्यो यस्मात्प्रपंचः परिवर्ततेऽयम् ।
धमविहं पापनुदं भगेशं ज्ञात्वात्मस्थममृतं विश्वधाम ।। षष्ठ अध्याय/६
१६२. तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमं च दैवतम् ।
पतिं पतीनां परमं परस्ताद्विदाम देवं भुवनेशमीड्यम् ।। षष्ठ अध्याय/७
१६३. न तस्य कार्यं करणं च विद्यते न तत्समश्चाभ्यधिकश्च दृश्यते ।
पराऽस्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते स्वाभाविकी ज्ञानबलक्रिया च ।।
षष्ठ अध्याय/८
१६४. न तस्य कश्चित्पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिंगम् ।
स कारणं करणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः ।।
षष्ठ अध्याय/ ६
१६५. यस्तूर्णनाभ इव तन्तुभिः प्रधानजैः स्वभावतः ।
देव एकः स्वमावृणोत् । स नो दधात् ब्रह्माप्ययम् ।। षष्ठ अध्याय/१०
१६६. एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा ।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ।।
षष्ठ अध्याय/११
१६७. एको वशी निष्क्रियाणां बहूनामेकं बीजं बहुधा यः करोति ।

तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम् ।।

षष्ठ अध्याय/१२

१६८. नित्यो नित्यानां चेतनश्चेतनानामेको बहूनां यो विदधाति कामान् ।
तत्कारणं सांख्ययोगाधिगम्यं ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः ।।

षष्ठ अध्याय/१३

१६६. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ।।

षष्ठ अध्याय/१४

२००. एको हसो भुवनस्यास्य मध्ये स एवाग्निः सलिले संनिविष्टः ।
तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय ।।

षष्ठ अध्याय/१५

२०१. स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञः सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता ।
य ईशे अस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय ।।

षष्ठ अध्याय/१७

२०२. यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ।
तँह देवमात्मबुद्धिप्रकाशं मुमुक्षुर्वे शरणमहं प्रपद्ये ।। षष्ठ अध्याय/१८

२०३. निष्कलं निष्क्रियँ शान्तं निरवद्यं निरंजनम् ।
अमृतस्य परँ सेतुं दग्धेन्धनमिवानलम् ।। षष्ठ अध्याय/१६

२०४. यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः ।
तदा देवमाविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति ।। षष्ठ अध्याय/२०

२०५. यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः प्रकाशन्ते महात्मन इति ।।

षष्ठ अध्याय/२३

बृहदारण्यक उपनिषद्

२०६. तस्य हैतस्य साम्नो यः सुवर्णं वेद, भवति हास्य सुवर्णम् । तस्य वै स्वर एव सुवर्णम् ।

भवति हास्य सुवर्ण, य एवमेतत्साम्नः सुवर्ण सुवर्ण वेद ।।

अ. १ / ब्रा. ३ /२६

२०७. अथातः पवमानानामेवाभ्यारोहः । स वै खलु प्रस्तोता साम प्रस्ताति । स यत्र प्रस्तुयात्तदेतानि जपेत्, ''असतो मा सद् गयम तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमयेति'' । स यदाहासतो मा सद् गमयेति मृत्यर्वा असत्संदमृतम् मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाहं

तमसो मा ज्योतिर्गमयेति, मृत्युर्वै तमो ज्योतिरमृतम्, मृत्योर्माऽमृतं गमयामृतं मा कुर्वित्येवैतदाह । मृत्योर्माऽमृतं गमयेति, नात्र तिरोहितमिवास्ति ।।

अ. १/ ब्रा. ३/२८

२०८. यो वै संवतत्सरः प्रजापतिः षोडशकलोऽयमेव स योऽयमेवंवित्पुरुषः । तस्य वित्तमेव पंचदश कला आत्मैवास्य षोडशी कला स वित्तनैवा च पूर्यतेऽप च क्षीयते । तदेतन्नभ्यं यदयमात्मा, प्रधिर्वित्तम्, तस्माद्यद्यपि सर्वज्यानिंजीयत आत्मना चेज्जीवति । प्रधि
नाऽगादित्येवाऽऽहुः ।। अ. १/ ब्रा.३/ १५

२०६. अथ त्रयो वाव लोका मनुष्यलोकः, पितृलोको देवलोक इति । सोऽयं मनुष्यलोकः पुत्रेणैव जय्यो नान्येन कर्मणा । कर्मणा पितृलोको विद्यया देव लोको । देवलोका वै लोकानां श्रेष्ठस्तस्माद्विद्यां प्रशंसन्ति ।।अ. १/ ब्रा. ३/१६

२१०. स यथोर्णनाभिस्तन्तुनोच्चरेद्यथाऽग्नेः क्षुद्रा विस्फुलिंगा व्युच्चरन्त्येवमेवास्मादात्मनः सर्वे प्राणाः, सर्वे प्राणाः, सर्वे लोकाः सर्वे देवाः, सर्वाणि भूतानि व्युच्चरन्ति । तस्योपनिषत्सत्यस्य सत्यमिति । प्राणा वै सत्यं तेषामेष सत्यम् ।।अ. २/ ब्रा. १/२०

२११. मैत्रेयीति होवाच याज्ञवल्क्य उद्यास्यन्वा अरेऽहमस्मात्स्थानादस्मि । हन्त, तेऽनया कात्यायन्याऽन्तं करवाणीति ।।अ.२ ब्रा.४/१

२१२. सा होवाच मैत्रेयी-यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् कथं तेनामृता स्यामिति । नेति होवाच याज्ञवल्क्यो यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितँ स्यात् । अमृतत्वस्य तु नाऽऽशाऽस्ति वित्तेनेति ।।

अ.२ ब्रा.४/२

२१३. सा होवाच मैत्रेयी-येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्याम् । यदेव भगवान्वेद तदेव मे ब्रूहीति ।।अ.२ ब्रा.४/३

२१४. आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः । मैत्रेय्यात्मनो वा अरे दर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्व विदितम् ।।

अ.२ ब्रा.४/५

२१५. स यथा दुन्दुभेर्हन्यमानस्य न बाह्यांछब्दांछक्नुयाद् ग्रहणाय दुन्दुभेस्तु ग्रहणेन दुन्दुभ्याघातस्य ववा शब्दो गृहीतः ।।अ.२ ब्रा.४/७

२१६. स यथा शंस्य ध्मायमानस्य न ब्राह्यांछब्दाक्नुयाद् ग्रहणाय, शंखस्य तु ग्रहणेन शंखस्य वा शब्दो गृहीतः ।। अ.२ ब्रा.४/८

२१७. अयं धर्मः सर्वेषां भूतानां मध्वस्य धर्मस्य सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चायमस्मिन्ध र्मे तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो यश्चायमध्यात्मं धार्मस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मा । इदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ।।अ.२ ब्रा.५/११

२१८. इदं सत्यं सर्वेषां भूतानां मध्वस्य सत्यस्य सर्वाणि भूतानि मधु । यश्चायमस्मिन्सत्ये तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषो पश्चायमध्यात्मं सात्यस्तेजोमयोऽमृतमयः पुरुषोऽयमेव स योऽयमात्मा । इदममृतमिदं ब्रह्मेदं सर्वम् ।।अ.२ ब्रा.५/१२

२१९. स होवाच- महिमान एवैषामेते त्रयस्त्रिशत्वेव देवा इति । कतमे ते त्रयास्त्रिंशदिति ? अष्टौ वसव एकादश रुद्रा द्वादशादित्यास्त एकत्रिंशदिन्द्रश्चैव प्रजापतिश्च त्रयस्त्रिंशाविति ।।अ.३ ब्रा.९/२

२२०. तद्यथा तृणजलायुका तृणस्यान्तं गत्वाऽन्यमाक्रममाक्रम्यात्मानमुपसंहरत्ये वमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यागमयित्वाऽन्यमाक्रम्यात्मानमुपसंहरति ।।
अ.४ ब्रा.४/३

२२१. तद्यथा पेशस्करी पेशसो मात्रामपादायान्यन्नवतरं कल्याणतरं रूपं तनुत एवमेवायमात्मेदं शरीरं निहत्याविद्यां गमयित्वाऽन्यन्नवतरं कल्याणतरं रूप कुरुते, पित्र्यं वा गान्धर्वं वा, दैवं वा प्राजापत्यं वा, ब्राह्मं वाऽन्येषां वा भूतानाम् ।।अ.४ ब्रा.४/४

२२२. तद्यथाऽहिनिर्त्वयनी वल्मीके मृता प्रत्यस्ता शयीतैवमेवदें शरीरं शेतेऽथाय मशरीरोऽमृतः प्राणो ब्रह्मैव तेज एव । सोऽहं भगवते सहस्त्रं ददामीति होवाच जनको वैदेहः ।।अ.४ ब्रा.४/७

२२३. तस्मिंछुक्लमुत नीलमाहुः पिंगलँ हरितं लोहितं च ।
एष पन्था ब्रह्मणा हानुवित्तस्तेनैति ब्रह्मवित्पुण्यकृत्तैजसश्च ।।
अ.४ ब्रा.४/९

२२४. अन्धं तमः प्रविशन्ति येऽविद्यामुपासते ।
ततो भूय इव ते तमो य उ विद्यायां रताः ।।अ.४ ब्रा.४/१०

२२५. अनन्दा नाम ते लोका अन्धेन तमसाऽऽवृताः ।
तास्ते प्रत्याभिगच्छन्त्यविद्वांसोऽबुधो जनाः ।।अ.४ ब्रा.४/११

२२६. मनसैवानुद्रष्टव्यं नेह नानाऽस्ति किंचन ।
मृत्योः स मृत्युमान्पोति य इहं नानेव पश्यति ।।अ.४ ब्रा.४/१९

२२७. एकधैवानुद्रष्टव्यमेतदप्रमेयं ध्रुवम् ।
विरजः पर आकाशादजं आत्मा महान्ध्रुवः ।।अ.४ ब्रा.४/२०
२२८. तमेव धीरो विज्ञाय प्रज्ञां कुर्वीत ब्राह्मणः ।
नानुध्यायाद् बहूंछब्दान्वाचो विग्लापनं हि तदिति ।।अ.४ ब्रा.४/२१
२२९. आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्यमसृजन्त, सत्यं ब्रह्म, ब्रह्म प्रजापतिम्, प्रजापतिर्देवास्ते देवाः सत्यमेवोपासते । तदेतत् त्र्यक्षरं सत्यमिति । स इत्येकमक्षरम्, ति इत्येकमक्षरम्, यम् इत्येकमक्षरम्, प्रथमोत्तमे अक्षरे सत्यं, मध यतोऽनृतम्, तदेतदनृतमुभयतः सत्येन परिगृहीतं सत्यभूयमेव भवति नैवं विद्वांसमनृतं हिनस्ति ।।अ.५ ब्रा.५/१

छान्दोग्योपनिषद्

२३०. ओमित्येतदक्षरमुदीथमुपासीतोमिति ह्युद्रगायति, तस्योपव्याख्यानम् ।।प्र.१ खं.१/१
२३१. सदेव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयम् । तद्धैक आहुरसदेवेदमग्र आसीदेकमेवद्वितीयम् । तस्मादसतः सज्जायत ।।प्र.६ खं.२/१
२३२. तदक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति। तत्तेजोऽसृजत । तत्तेज ऐक्षत बहु स्यां प्रजायेयेति । तदपोऽसृजत । तस्माद्यत्र क्व च शोचति स्वेदते वा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते।। प्र.६ खं.२/३
२३३. तासां त्रिवृतं त्रिवृतमेकैकां करवाणीति । सेयं देवतेमास्तिस्त्रो देवता अनेनैवजीवेनात्मनानुप्रविश्य नामरूपे व्याकरोत् ।।प्र.६ खं.३/३
२३४. अथात आत्मादेश एव । आत्मैवाधस्तादात्मोपरिष्टादात्मा पश्चादात्मा पुरस्तादात्मा दक्षिणत आत्मोत्तरत आत्मैवेदं सर्वमिति । स वा एष एवं पश्यन्नेवं मन्वान एवं विजानन्नात्मरतिरात्मक्रीड आत्ममिथुन आत्मानन्दः स स्वराड् भवति । तस्य सर्वेषु लोकेषु कामचारो भवति । अथ येऽन्यथाऽतो विदुरन्यराजानस्ते क्षय्यलोका भवन्ति तेषां सर्वेषु लोकेष्वकामचारो भवति ।। प्र.७ खं. २५/२
२३५. ऊँ अथ यदिदमस्मिन् ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म, दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशस्तस्मिन् यदन्तस्तदन्वेष्टव्यं, तद्वावं विजिज्ञासितव्यमिति ।।
प्र.८ खं.१/१
२३६. च चेद् ब्रूयुर्यदिदमस्मिन्ब्रह्मपुरे दहरं पुण्डरीकं वेश्म दहरोऽस्मिन्नन्तराकाशः, किं तदत्र विद्यते, यदन्वेष्टव्यं, यद्वाव विजिज्ञासितव्यमिति स ब्रूयात्।।प्र.८ खं.१/२
२३७. स वा एष आत्मा हृदि, तस्यैतदेव निरुक्तं, हृद्ययमिति । तस्माद्हृदयम् ।

अहरहर्वा एववित्स्वर्ग लोकमेति ।। प्र.८ खं.३/३

२३८. अथ य एष संम्प्रसादोऽस्माच्छरीरात्समुत्थाय, परं ज्योतिरुपसंपद्य, स्वेन रूपेणाभिनिष्पद्यत एष आत्मेति होवाच एतदमृतमभयमेतद् ब्रह्मेति । तस्य ह वा एतस्य ब्रह्मणो नाम सत्यमिति ।।प्र.८ खं.३/४

।। इति ।।

,,,

न्याय दर्शन

प्रथम अध्याय प्रथम आन्हिक

१. प्रमाणप्रमेयसंशयप्रयोजनदृष्टान्तसिद्धान्तावयवतर्कनिर्णयवादजल्पवितण्डा हेत्वाभासच्छलजातिनिग्रहस्थानानां तत्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः ।।१।।

२. प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दाः प्रमाणानि ।।३।।

३. आप्तोपदेशः शब्दः ।।७।।

४. आत्मशरीरेन्द्रियार्थबुद्धिमनः प्रवृतिदोषप्रेत्यभावफलदुःखापवर्गास्तु प्रमेयम् ।।६।।

५. घ्राणरसनचक्षुस्त्वक्श्रोत्राणीन्द्रियाणि भूतेभ्यः ।।१२।।
६. गन्धरसरूपस्पर्शशब्दाः पृथिव्यादिगुणास्तदर्थाः ।।१४।।
७. बुद्धिरूपलब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम् ।।१५।।
८. प्रवृत्तिर्वाग्बुद्धिशरीरारम्भः ।।१७।।
६. पुनरुत्पत्तिः प्रेत्यभावः ।।१६।।
१०. साध्यनिर्देशः प्रतिज्ञा ।।३३।।
११. तद्विपर्याद्वा विपरीतम् ।।३७।।

प्रथम अध्याय द्वितीय आन्हिक

१२. यथोक्तोपन्नश्छलजातिनिग्रहस्थानसाधनोपालम्भो जल्पः ।।२।।
१३. स प्रतिपक्षस्थापनाहीनो वितण्डा ।।३।।
१४. कालात्ययापदिष्टः कालातीतः ।।६।।

द्वितीय अध्याय प्रथम आन्हिक

१५. यथोक्ताध्यवसायादेव तद्विशेषापेक्षात् संशये नासंशयो नात्यन्तसंशयो वा ।।६।।
१६. प्रत्यक्षादीनामप्रामाण्यं त्रैकाल्यासिद्धेः ।।८।।
१७. नात्ममनसोः सन्निकर्षाभावे प्रत्यक्षोत्पत्तिः ।।२२।।

द्वितीय अध्याय द्वितीय आन्हिक

१८. अस्पर्शत्वात् ।।२२।।
१६. न, अणुनित्यत्वात् ।।२४।।
२०. विनाशकारणानुपलब्धेः ।।३३।।

तृतीय अध्याय प्रथम आन्हिक

२१. दर्शनस्पर्शनाभ्यामेकार्थग्रहणात् ।।१।।
२२. तद्व्यवस्थानादेवात्मसद्भावादप्रतिषेधः ।।३।।
२३. शरीरदाहे पातकाभावात् ।।४।।
२४. तदभावः सात्मकप्रदाहेऽपि तन्नित्यत्वात् ।।५।।
२५. इन्द्रियान्तरविकारात् ।।१२।।
२६. तदात्मगुणसद्भावादप्रतिषेधः ।।१४।।
२७. ज्ञातुर्ज्ञानसाधनोपपत्तेः संज्ञाभेदमात्रम् ।।१७।।
२८. पूर्वाभ्यस्तस्मृत्यनुबन्धाज्जातस्य हर्षभयशोकसम्प्रतिपत्तेः ।।१६।।
२६. वीतरागजन्मादर्शनात् ।।२५।।
३०. पार्थिवाप्यतैजसं तद्गुणोपलब्धेः ।।२८।।
३१. इन्द्रियार्थपंचत्वात् ।।५८।।
३२. गन्धरसरूपस्पर्शशब्दानां स्पर्शपर्यन्ताः पृथिव्याः ।।६४।।

तृतीय अध्याय द्वितीय आन्हिक

३३. ज्ञानसमवेतात्मप्रदेशसन्निकर्षान्मनसः स्मृत्युत्पत्तेर्न युगपदुत्पत्तिः ।।२५।।
३४. शरीरव्यापित्वात् ।।५२।।
३५. शरीरगुणवैधर्म्यात् ।।५।।
३६. अणुश्यामतानित्यत्ववदेतत्स्यात् ।।७४।।

चतुर्थ अध्याय प्रथम आन्हिक

३७. नैकप्रत्यनीकभावात् ।।४।।
३८. तेषां मोहः पापीयान् नामूढस्येतरोत्पत्तेः ।।६।।
३९. आत्मनित्यत्वे प्रेत्यभावसिद्धिः ।।१०।।
४०. ईश्वरः कारणं पुरुषकर्माफल्यदर्शनात् ।।१९।।
४१. न, पुरुषकर्माभावे फलानिष्पतेः ।।२०।।
४२. नोत्पत्तिविनाशकारणोपलब्धेः ।।३०।।

चतुर्थ अध्याय द्वितीय आन्हिक

४३. परं वा त्रुटेः ।।१७।।
४४. आकाशासर्वगतत्वं वा ।।१९।।
४५. संयोगोपपत्तेश्च ।।२४।।
४६. मायागन्धर्वनगरमृगतृष्णिकावद्वा ।।३२।।
४७. समाधिविशेषाभ्यासात् ।।३८।।
४८. अपवर्गेऽप्येवं प्रसंगः ।।४३।।

पंचम अध्याय प्रथम आन्हिक

४९. अर्थापत्तितः प्रतिपक्षसिद्धेरथापत्तिसमः ।।२१।।
५०. सर्वत्रैवम् ।।४०।।

पंचम अध्याय द्वितीय आन्हिक

५१. सिद्धान्तमभ्युपेत्यानि यमात् कथाप्रसंगोऽप सिद्धान्तः ।।२४।।

।। इति ।।

वैशेषिक दर्शन

प्रथमाध्यायः

१. अथातो धर्मं व्याख्यास्यामः। १/१/१
२. यतोभ्युदयनिःश्रेयससिद्धि स धर्मः। १/१/२
३. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यम्। १/१/३
४. धर्मविशेषप्रसूताद् द्रव्यगुणकर्मसामान्यविशेषसमवायानां पदार्थानां साधर्म्यवैधर्म्याभ्यां तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसम्। १/१/४
५. पृथिव्यापस्तेजो वायुराकाशं कालो दिगात्मा मन इति द्रव्याणि। १/१/५

६. न द्रव्यं कार्यं कारणं च वधति। १/१/१२
७. उभयथा गुणाः। १/१/१३
८. कार्यविरोधि कर्म। १/१/१४
९. क्रियागुणवत् समवायि कारणम् इति द्रव्यलक्षणम्।१/१/१५
१०. तथा गुणः। १/१/१६
११. संयोगविभागवेगानां कर्मं समानम्। १/१/२०
१२. न द्रव्याणां कर्म। १/१/२१
१३. द्रव्याणां द्रव्यं कार्यं सामान्यम्। १/१/२३
१४. गुणवैधर्म्यान्न कर्मणां कर्म।१/१/२४
१५. संयोगानां द्रव्यम्।१/१/२७
१६. रूपाणं रूपम्। ।१/१/२८
१७. संयोगविभागाश्च कर्मणाम्।१/१/३०
१८. कारणाभावात्कार्याभावः।१/२/१
१९. न तु कार्याभावात्कारणाभावः।१/२/२
२०. सामान्यं विशेष इति बुद्ध्‌ यपेक्षम्।१/२/३
२१. सदिति यतो द्रव्यगुणकर्मसु सा सत्ता।१/२/७
२२. द्रव्यगुणकर्मभ्योऽर्थान्तरं सत्ता।१/२/८
२३. तथा गुणेषु भावाद् गुणत्वमुक्वम्।१/२/१३
२४. रूपरसगन्धस्पर्शवती पृथिवी।२/१/१
२५. रूपरसस्पर्शवत्य आपो द्रवाः स्निग्धाः।२/१/२
२६. तेजो रूपस्पर्शवत्।२/१/३
२७. स्पर्शवान् वायुः।२/१/४
२८. त आकाशे न विद्यन्ते।२/१/५
२९. स्पर्शश्च वायोः।२/१/६
३०. क्रियावत्त्वाद् गुणवत्त्वाच्च।२/१/१२
३१. अद्रव्यवत्वेन नित्यत्वमुक्तम्।२/१/१३
३२. वायोर्वायुसंमूर्च्छनं नानात्व लिंगम्।२/१/१४
३३. तस्मादागमिकम्।२/१/१७
३४. संज्ञा कर्म त्वस्मद्विशिष्टानां लिंगम्।२/१/१८
३५. निष्क्रमणं प्रवेशनमित्याकाशस्य लिंगम्।२/१/२०
३६. कारणगुणपूर्वकः कार्यगुणो दृष्टः।२/१/२४
३७. द्रव्यत्वनित्यत्ये वायुना व्याख्याते।२/१/२८
३८. एतेनोष्णता व्याख्याता।व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः। २/२/२
३९. व्यवस्थितः पृथिव्यां गन्धः।२/२/३

४०. तेजस्युष्णता।२/२/४
४१. अप्सु शीतता।२/२/५
४२. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते।२/२/७
४३. तत्त्वं भावेन।२/२/८
४४. नित्येष्वभावादनित्येषु भावात् कारणे कालाख्येति।२/२/९
४५. इत इदमिति यतस्यतद्दिश्यं लिंगम्।२/२/१०
४६. द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते।२/२/११
४७. तत्त्वं भावेन।२/२/१२
४८. आदित्यसंयोगाद् भूतपूर्वाद् भविष्यतो भूताच्च प्राची।२/२/१४
४९. तथा दक्षिणा प्रतीची उदीची च।२/२/१५
५०. एतेन दिगन्तरालानि व्याख्यातानि।२/२/१६
५१. विद्याविद्यातश्च संशयः।२/२/२०
५२. श्रोत्रग्रहणो योऽर्थः स शब्दः।२/२/२१
५३. अनित्यश्चायं कारणतः।२/२/२८
५४. लिंगाच्चानित्यः शब्दः।२/२/३२
५५. प्रसिद्धा इन्द्रियार्थाः।३/१/१
५६. सोऽनपदेशः।३/१/३
५७. कारणाज्ञानात्।३/१/४
५८. कार्येषु ज्ञानात्।३/१/५
५९. अज्ञानाच्च।३/१/६
६०. अन्येदेव हेतुरित्यनपदेशः।३/१/७
६१. प्रसिद्धिपूर्वकत्वादपदेशस्य।३/१/१४
६२. आत्मेन्द्रियार्थसन्निकर्षाद्यिन्निष्पद्यते तदन्यत्।३/१/१८
६३. आत्मेन्द्रियार्थसन्किर्षे ज्ञानस्य भावोऽभावश्च मनसो लिंगम्।३/२/१
६४. तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते।३/२/२
६५. प्राणापाननिमेषोन्मेष जीवनमनोगतीन्द्रियान्तरविकाराः सुखदुःखेच्छाद्वेषप्रयत्नाश्चात्मनो लिंगानि।३/२/४
६६. तस्य द्रव्यत्वनित्यत्वे वायुना व्याख्याते।३/२/५
६७. सुखदुःखज्ञाननिष्पत्यविशेषादैकात्म्यम्।३/२/१९
६८. व्यवस्थातो नाना।३/२/२०
६९. शास्त्रसामर्थ्याच्च।३/२/२१
७०. सदकारणवन्नित्यम्।४/१/१
७१. तस्य कार्यं लिंगम्।४/१/२
७२. कारणभावात् कार्यभावः।४/१/३

७३. अविद्या।४/१/५
७४. महत्यनेकद्रव्यवत्त्वात् रूपाच्चोपलब्धिः।४/१/६
७५. अनेकद्रव्यसमवायाद् रूपविशेषाच्च रूपोपलब्धिः।४/१/८
७६. तेन रसगन्धस्पर्शेषु ज्ञानं व्याख्यातम्।४/१/६
७७. अणुसंयोगस्त्वप्रतिषिद्धः।४/२/४
७८. तत्र शरीरं द्विविधं योनिजमयोनिजं च।४/२/५
७६. अनियतदिग्देशपूर्वकत्वात्।४/२/६
८०. धर्मविशेषाच्च।४/२/७
८१. संज्ञाया अनादित्वात्।४/२/६
८२. सन्त्ययोनिजाः।४/२/१०
८३. वेदलिंगाच्च।४/२/११
८४. तथात्मसंयोगो हस्तकर्मणि।५/१/४
८५. अभिघाता न्मुसलसंयोगाद्धस्ते कर्म।५/१/५
८६. आत्मकर्म हस्तसंयोगाच्च।५/१/६
८७. नाड्यो वायुसंयोगादारोहणम्।५/२/५
८८. नोदनापीडनात् संयुक्तसंयोगाच्च।५/२/६
८६. वैदिकं च।५/२/१०
६०. अपां संयोगाद् विभागाच्च स्तनयित्नोः।५/२/११
६१. आत्मेन्द्रियमनोऽर्थसन्निकर्षात् सुखदुःखम्।५/२/१५
६२. तदनारम्भ आत्मस्थे मनसि शरीरस्य दुःखाभावः संयोगः।५/२/१६
६३. एतेन कर्माणि गुणाश्च व्याख्याताः।५/२/२२
६४. कारणेन कालः।५/२/२६
६५. बुद्धिपूर्वा वाक्यकृतिर्वेदे।६/१/१
६६. ब्राह्मणे संज्ञाकर्म सिद्धिलिंगम्।६/१/२
६७. आत्मान्तरगुणानामात्मान्तरेऽकारणत्वात्।६/१/५
६८. विशिष्टे आत्मत्यागः इति।६/१/१६
८८. सुखाद्रागः।६/२/१०
१००. इच्छाद्वेषपूर्विका धर्माधर्मप्रवृत्तिः।६/२/१४
१०१. आत्मकर्मसु मोक्षो व्याख्यातः।६/२/१६
१०२. अप्सु तेजसि वायौ च नित्या द्रव्यनित्यत्वात्।७/१/४
१०३. अतो विपरीतमणु।७/१/१०
१०४. अनित्येऽनित्यम्।७/१/१८
१०५. तदभावादणु मनः।७/१/२३
१०६. गुणैर्दिग् व्याख्याता।७/१/२४

१०७. तत्रात्मा मनश्चाप्रत्यक्षे।८/२/२
१०८. सदसत्।६/१/२
१०६. आत्मसमवायादात्मगुणेषु।६/१/१५
११०. आर्ष सिद्धदर्शनं च धर्मेभ्यः।६/३/१३
१११. तद्वचनादाम्नायस्य प्रामाण्यमिति।१०/२/६

।। इति ।।

,,,

सांख्यदर्शनम्

।। अथ प्रथमोऽध्यायः ।।

१. अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः।।१।।
२. न दृष्टात्तत्सिद्धिर्निवृत्तेऽप्यनुवृत्तिदर्शनात्।।२।।
३. प्रात्यहिकक्षुत्प्रतीकारवत् तत्प्रतीकारचेष्टनात् पुरुषार्थत्वम्।।३।।
४. सर्वासम्भवात्संभवेऽपि सत्तासंभवाद्धेयः प्रमाणकुशलैः।।४।।
५. उत्कर्षादपि मोक्षस्य सर्वोत्कर्षश्रुतेः।।५।।
६. अविशेषश्चोभयोः।।६।।

७. न स्वभावतो बद्धस्य मोक्षसाधनोपदेशविधिः।।७।।
८. स्वभावस्यानपायित्वादननुष्ठानलक्षणमप्रामाण्यम्।।८।।
९. नाशक्योपदेशविधिरुपदिष्टे ऽप्यनुपदेशः।।९।।
१०. शुक्लपटवद्बीजवच्चेत्।।१०।।
११. शक्त्युद्भवानुद्भवाभ्यां नाशक्योपदेशः।।११।।
१२. न कालयोगतो व्यापिनो नित्यस्य सर्वसम्बन्धात्।।१२।।
१३. न देशयोगतो ऽप्यस्मात्।।१३।।
१४. नावस्थातो देहधर्म्मत्वात् तस्याः।।१४।।
१५. असंगो ऽयं पुरुष इति।।१५।।
१६. न कर्मणान्यधर्मत्वादतिप्रसक्तेश्च।।१६।।
१७. विचित्रभोगानुपपत्तिरन्यधर्मत्वे।।१७।।
१८. प्रकृतिनिबंधनाच्चेन्न तस्या अपि पारतन्त्र्यम्।।१८।।
१९. न नित्यशुद्धबुद्धमुक्तस्वभावस्य तद्योगस्तद्योगादृते।।१९।।
२०. तद्योगोप्यविवेकान्न समानत्वम्।।२०।।
२१. नियकारणात्तदुच्छित्तिर्ध्वान्तवत्।।२१।।
२२. प्रधानाविवेकादन्याविवेकस्य तद्धाने हानम्।।२२।।
२३. वाङ्मात्रं न तु तत्त्वं चित्तस्थितेः।।२३।।
२४. युक्तितो ऽपि न बाध्यते दिङ्गूढवदपरोक्षादृते।।२४।।
२५. अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वन्हेः।।२५।।
२६सत्त्वरजस्तमसांसाम्यावस्थाप्रकृतिःप्रकृतेर्महान्महतो ऽहंकारो ऽहंकारात्पंचतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पंचविंशतिर्गणः।।२६।।
२७. स्थूलात्पञ्चतन्मात्रस्य।।२७।।
२८. बाह्याभ्यन्तराभ्यां तैश्चाहङ्कारस्य।।२८।।
२९. तेनान्तःकरणस्य।।२९।।
३०. ततः प्रकृतेः।।३०।।
३१. संहतपरार्थत्वात्पुरुषस्य।।३१।।
३२. मूलेमूलाभावादमूलं मूलम्।।३२।।
३३. पारम्पर्य्ये ऽप्येकत्रपरिनिष्ठेतिसंज्ञामात्रम्।।३३।।
३४. समानः प्रकृतेर्द्वयोः।।३४।।
३५. अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः।।३५।।
३६. महदाख्यमाद्यं कार्यं तन्मनः।।३६।।
३७. चरमो ऽहंकारः।।३७।।
३८. तत्कार्यत्वमुत्तरेषाम्।।३८।।
३९. आद्यहेतुता तद्द्वारा पारम्पर्ये ऽप्यणुवत्।।३९।।

४०. पूर्वभावित्वे द्वयोरेकतरस्य हानेऽन्यतरयोगः।।४०।।
४१. परिच्छिन्नं न सर्वोपादानम्।।४१।।
४२. तदुत्पत्तिश्रुतेश्च।।४२।।
४३. नावस्तुनो वस्तुसिद्धिः।।४३।।
४४. अबाधाददुष्टकारणजन्यत्वाच्च नावस्तुत्वम्।।४४।।
४५. भावे तद्योगेन तत्सिद्धिरभावे तदभावात्कुतस्तरां तत्सिद्धिः।।४५।।
४६. न कर्मण उपादानत्वायोगत्।।४६।।
४७. नानुश्रविकादपि तत्सिद्धिः साध्यत्वेनावृत्तियोगादपुरुषार्थत्वम्।।४७।।
४८. तत्र प्राप्तविवेकस्यानावृत्तिश्रुतिः।।४८।।
४९. दुःखाद्दुखं जलाभिषेकवन्न जाड्यविमोकः।।४९।।
५०. काम्येऽकाम्येऽपि साध्यत्वाविशेषात्।।५०।।
५१. निजमुक्तस्य बन्धध्वंसमात्रं परं न समानत्वम्।।५१।।
५२. द्वयोरेकतरस्य वाप्यसन्निकृष्टार्थपरिच्छित्तिः प्रमा तत्साधकतमं यत्तत् त्रिविधं प्रमाणम्।।५२।।
५३. तत्सिद्धौ सर्वसिद्धेर्नाधिक्यसिद्धिः।।५३।।
५४. यत्सम्बद्धं सत्तदाकारोल्लेखिविज्ञानं तत्प्रत्यक्षम्।।५४।।
५५. योगिनामबाह्यप्रत्यक्षत्वान्न दोषः।।५५।।
५६. लीनवस्तुलब्धातिशयसम्बंधाद्वाऽदोषः।।५६।।
५७. ईश्वरासिद्धेः।।५७।।
५८. मुक्तबद्धयोरन्यतराभावान्न तत्सिद्धिः।।५८।।
५९. उभयथाप्यसत्करत्वम्।।५९।।
६०. मुक्तात्मनः प्रशंसा उपासासिद्धस्य वा।।६०।।
६१. तत्सन्निधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्।।६१।।
६२. विशेषकार्येष्वपि जीवानाम्।।६२।।
६३. सिद्धरूपबोद्धृत्वाद्वाक्यार्थोपदेशः।।६३।।
६४. अन्तःकरणस्य तदुज्ज्वलितत्वाल्लोहवदधिष्ठातृत्वम्।।६४।।
६५. प्रतिबन्धदृशः प्रतिबद्धज्ञानमनुमानम्।।६५।।
६६. आप्तोपदेशः शब्दः।।६६।।
६७. उभयसिद्धिः प्रमाणात्तदुपदेशः।।६७।।
६८. सामान्यतो दृष्टादुभयसिद्धिः।।६८।।
६९. चिदवसानो भोगः।।६९।।
७०. अकर्त्तुरपि फलोपभोगोऽन्नाद्यवत्।।७०।।
७१. अविवेकाद्वा तत्सिद्धेः कर्त्तुः फलावगमः।।७१।।
७२. नोभयं च तत्त्वाख्याने।।७२।।

७३. विषयोऽविषयोऽप्यतिदूरादेर्हानोपादानाभ्यामिन्द्रियस्य।।७३।।
७४. सौक्ष्म्यात्तदनुपलब्धिः।।७४।।
७५. कार्यदर्शनात्तदुपलब्धेः।।७५।।
७६. वादिविप्रतिपत्तेस्तदसिद्धिरिति चेत्।।७६।।
७७. तथाप्येकतरदृष्ट्या एकतरसिद्धेर्नापलापः।।७७।।
७८. त्रिविधविरोधापत्तेश्च।।७८।।
७९. नासदुत्पादो नृश्रृङ्गवत्।।७९।।
८०. उपादाननियमात्।।८०।।
८१. सर्वत्र सर्वदा सर्वासंभवात्।।८१।।
८२. शक्तस्य शक्यकरणात्।।८२।।
८३. कारणभावाच्च।।८३।।
८४. न भावे भावयोगश्चेत्।।८४।।
८५. नाभिव्यक्तिनिबन्धनौ व्यवहाराव्यवहारौ।।८५।।
८६. नाशः कारणलयः।।८६।।
८७. पारम्पर्यतोऽन्वेषणा बीजाङ्कुरवत्।।८७।।
८८. उत्पत्तिवद्वाऽदोषः।।८८।।
८९. हेतुमदनित्यम् सक्रियमनेकमाश्रितं लिंगम्।।८९।।
९०. आञ्जस्यादभेदतो वा गुणसामान्यादेस्तत्सिद्धिः प्रधानव्यपदेशाद्वा।।९०।।
९१. त्रिगुणाचेतनत्वादिद्वयोः।।९१।।
९२. प्रीत्यप्रीतिविषदाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम्।।९२।।
९३. लघ्वादिधर्मैः साधर्म्यं वैधर्म्यं च गुणानाम्।।९३।।
९४. उभयान्यत्वात् कार्यत्वं महदादेर्घटादिवत्।।९४।।
९५. परिमाणात्।।९५।।
९६. समन्वयात्।।९६।।
९७. शक्तितश्चेति।।९७।।
९८. तद्धाने प्रकृतिः पुरुषो वा।।९८।।
९९. तयोरन्यत्वे तुच्छत्वम्।।९९।।
१००. कार्यात्कारणानुमानं तत्साहित्यात्।।१००।।
१०१. अव्यक्तं त्रिगुणाल्लिङ्गात्।।१०१।।
१०२. तत्कार्यतस्तत्सिद्धेर्नापलापः।।१०२।।
१०३. सामान्येन विवादाभावाद्धर्मवन्न साधनम्।।१०३।।
१०४. शरीरादिव्यतिरिक्तः पुमान्।।१०४।।
१०५. संहतपरार्थत्वात्।।१०५।।
१०६. त्रिगुणादिविपर्ययात्।।१०६।।

१०७. अधिष्ठानाच्चेति।।१०७।।
१०८. भोक्तृभावात्।।१०८।।
१०६. कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।१०६।।
११०. जडप्रकाशायोगात् प्रकाशः।।११०।।
१११. निर्गुणत्वान्न चिद्धर्मा।।१११।।
११२. श्रुत्या सिद्धस्य नापलापस्तत्प्रत्यक्षबाधात्।।११२।।
११३. सुषुप्त्याद्यसाक्षित्वम्।।११३।।
११४. जन्मादिव्यवस्थातः पुरुषबहुत्वम्।।११४।।
११५. उपाधिभेदेऽप्येकस्य नानायोग आकाशस्येव घटादिभिः।।११५।।
११६. उपाधिर्भिद्यते न तु तद्वान्।।११६।।
११७. एवमेकत्वेन परिवर्त्तमानस्य न विरुद्धधर्माध्यासः।।११७।।
११८. अन्यधर्मत्वेऽपि नारोपात्तत्सिद्धिरेकत्वात्।।११८।।
११६. नाद्वैतश्रुतिविरोधो जातिपरत्वात्।।११६।।
१२०. विदितबन्धकारणस्य दृष्ट्या तद्रूपम्।।१२०।।
१२१. नान्धादृष्ट्या चतुष्मतामनुपलम्भः।।१२१।।
१२२. वामदेवादिर्मुक्तो नाद्वैतम्।।१२२।।
१२३. अनादावद्ययावदभावाद्भविष्यदप्येवम्।।१२३।।
१२४. इदानीमिव सर्वत्र नात्यन्तोच्छेदः।।१२४।।
१२५. व्यावृत्तोभयरूपः।।१२५।।
१२६. साक्षात्सम्बन्धात्साक्षित्वम्।।१२६।।
१२७. नित्यमुक्तत्वम्।।१२७।।
१२८. औदासीन्यं चेति।।१२८।।
१२६. उपरागात्कर्तृत्वं चित्सान्निध्याच्चित्सान्निध्यात्।।१२६।।

।।अथ द्वितीयोऽध्यायः।।

१३०. विमुक्तमोक्षार्थं स्वार्थं वा प्रधानस्य।।१।।
१३१. विरक्तस्य तत्सिद्धेः।।२।।
१३२. न श्रवणमात्रात्तत्सिद्धिरनादिवासनाया बलवत्त्वात्।।३।।
१३३. बहुभृत्यवद्वा प्रत्येकम्।।४।।
१३४. प्रकृतिवास्तवे च पुरुषस्याध्याससिद्धिः।।५।।
१३५. कार्यस्तत्सिद्धेः।।६।।
१३६. चेतनोद्देशान्नियमः कंटकमोक्षवत्।।७।।
१३७. अन्ययोगेऽपि तत्सिद्धिर्नाञ्जस्येनायोदाहवत्।।८।।
१३८. रागविरागयोर्योगः सृष्टिः।।६।।
१३६. महदादिक्रमेण पञ्चभूतानाम्।।१०।।

१४०. आत्मार्थत्वात्सृष्टेर्नैषामात्मार्थ आरम्भः।।१७६।।
१४१. दिक्कालावाकाशादिभ्यः।।१२।।
१४२. अध्यवसायो बुद्धिः।।१३।।
१४३. तत्कार्यं धर्मादि।।१४।।
१४४. महदुपरागाद्विपरीतम्।।१५।।
१४५. अभिमानोऽहंकारः।।१६।।
१४६. एकादशपञ्चतन्मात्रं तत्कार्यम्।।१७।।
१४७. सात्त्विकमेकादशकं प्रवर्त्तते वैकृतादहंकारात्।।१८।।
१४८. कर्मेन्द्रियबुद्धीन्द्रियैरान्तरमेकादशकम्।।१९।।
१४९. आहंकारिकत्वश्रुतेर्न भौतिकानि।।२०।।
१५०. देवतालयश्रुतिर्नारम्भकस्य।।२१।।
१५१. तदुत्पत्तिश्रुतेर्विनाशदर्शनाच्च।।२२।।
१५२. अतीन्द्रियमिन्द्रियं भ्रान्तानामधिष्ठाने।।२३।।
१५३. शक्तिभेदेऽपि भेदसिद्धौ नैकत्वम्।।२४।।
१५४. न कल्पनाविरोधः प्रमाणदृष्टस्य।।२५।।
१५५. उभयात्मकं मनः।।२६।।
१५६. गुणपरिणामभेदान्नानात्वमवस्थावत्।।२७।।
१५७. रूपादिरसमलान्त उभयोः।।२८।।
१५८. दृष्टृत्वादिरात्मनः करणत्वमिन्द्रियाणाम्।।२९।।
१५९. त्रयाणां स्वालक्षण्यम्।।३०।।
१६०. सामान्याकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च।।३१।।
१६१. क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः।।३२।।
१६२. वृत्तयः पञ्चतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः।।३३।।
१६३. तन्निवृत्तावुपशान्तोपरागः स्वस्थः।।३४।।
१६४. कुसुमवच्च मणिः।।३५।।
१६५. पुरुषार्थं करणोद्भवोऽप्यदृष्टोल्लासात्।।३६।।
१६६. धेनुवद्वत्साय।।३७।।
१६७. करणं त्रयोदशविधमवान्तरभेदात्।।३८।।
१६८. इन्द्रियेषु साधकतमत्वयोगात् कुठारवत्।।३९।।
१६९. द्वयोः प्रधानं मनो लोकवद् भृत्यवर्गेषु।।४०।।
१७०. अव्यभिचारात्।।४१।।
१७१. तथाऽशेषसंस्काराधारत्वात्।।४२।।
१७२. स्मृत्यानुमानाच्च।।४३।।
१७३. संभवेन्न स्वतः।।४४।।

१७४. आपेक्षिको गुणप्रधानभावः क्रियाविशेषात्।।४५।।
१७५. तत्कर्मार्जितत्वात्तदर्थमभिचेष्टा लोकवत्।।४६।।
१७६. समानकर्मयोगे बुद्धेः प्राधान्यं लोकवल्लोकवत्।।४७।।

अथ तृतीयोऽध्यायः

१७७. अविशेषाद् विशेषारम्भः।।१।।
१७८. तस्माच्छरीरस्य।।२।।
१७९. तद्बीजात् संसृतिः।।३।।
१८०. आ विवेकाच्च प्रवर्त्तनमविशेषाणाम्।।४।।
१८१. उपभोगादितरस्य।।५।।
१८२. सम्प्रति परिष्वक्तो द्वाभ्याम्।।६।।
१८३. मातापितृजं स्थूलं प्रायशः, इतरन्न तथा।७।।
१८४. पूर्वोत्पत्तेस्तत्कार्यत्वं भोगादेकस्य नेतरस्य।।८।।
१८५. सप्तदशैकं लिङ्गम्।।९।।
१८६. व्यक्तिभेदः कर्मविशेषात्।।१०।।
१८७. तदधिष्ठानाश्रये देहे तद्वादात् तद्वादः।।११।।
१८८. न स्वातन्त्र्यात् तदृते छायावच्चित्रवच्च।।१२।।
१८९. मूर्त्तत्वेऽपि न सङ्घातयोगात् तरणिवत्।।१३।।
१९०. अणुपरिमाणं तत् कृतिश्रुतेः।।१४।।
१९१. तदन्नमयत्वश्रुतेश्च।।१५।।
१९२. पुरुषार्थं संसृतिर्लिङ्गानां सूपकारवद्राज्ञः।।१६।।
१९३. पाञ्चभौतिको देहः।।१७।।
१९४. चातुर्भौतिकमित्येके।।१८।।
१९५. ऐकभौतिकमित्यपरे।।१९।।
१९६. न सांसिद्धिकं चैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः।।२०।।
१९७. प्रपञ्चमरणाद्यभावश्च।।२१।।
१९८. मदशक्तिवच्चेत् प्रत्येकपरिदृष्टे सौक्ष्म्यात् सांहत्ये तदुद्भवः।।२२।।
१९९. ज्ञानान्मुक्तिः।।२३।।
२००. बन्धो विपर्ययात्।।२४।।
२०१. नियतकारणत्वान्न समुच्चयविकल्पौ।।२५।।
२०२. स्वप्नजागराभ्यामिव मायिकामायिकाभ्यां नोभयोर्मुक्तिः पुरुषस्य।।२६।।
२०३. इतरस्यापि नात्यन्तिकम्।।२७।।
२०४. संकल्पितेऽप्येवम्।।२८।।
२०५. भावनोपचयाच्छुद्धस्य सर्वं प्रकृतिवत्।।२९।।
२०६. रागोपहतिर्ध्यानम्।।३०।।

२०७. वृत्तिनिरोधात् तत्सिद्धिः।।३१।।
२०८. धारणासनस्वकर्मणा तत्सिद्धिः।।३२।।
२०६. निरोधश्छर्दिविधारणाभ्याम्।।३३।।
२१०. स्थिरसुखमासनम्।।३४।।
२११. स्वकर्म स्वाश्रमविहितकर्मानुष्ठानम्।।३५।।
२१२. वैराग्यादभ्यासाच्च।।३६।।
२१३. विपर्ययभेदाः पञ्च।।३७।।
२१४. अशक्तिरष्टाविंशतिधा तु।।३८।।
२१५. तुष्टिर्नवधा।।३६।।
२१६. सिद्धिरष्टधा।।४०।।
२१७. अवान्तरभेदाः पूर्ववत्।।४१।।
२१८. एवमितरस्याः।।४२।।
२१६. आध्यात्मिकादिभेदान्नवधा तुष्टिः।।४३।।
२२०. ऊहादिभिः सिद्धिरष्टधा।।४४।।
२२१. नेतरादितरहानेन विना।।४५।।
२२२. दैवादिप्रभेदा।।४६।।
२२३. आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं तत्कृते सृष्टिराविवेकात्।।४७।।
२२४. ऊर्ध्वं सत्त्वविशाला।।४८।।
२२५. तमोविशाला मूलतः।।४६।।
२२६. मध्ये रजोविशाला।।५०।।
२२७. कर्मवैचित्र्यात् प्रधानचेष्टा गर्भदासवत्।।५१।।
२२८. आवृत्तिस्तत्राप्युत्तरोत्तरयोनियोगाद्धेयः।।५२।।
२२६. समानं जरामरणादिजं दुःखम्।।५३।।
२३०. न कारणलयात् कृतकृत्यता मग्नवदुत्थानात्।।५४।।
२३१. अकार्यत्वेऽपि तद्योगः पारवश्यात्।।५५।।
२३२. स हि सर्ववित् सर्वकर्त्ताः।।५६।।
२३३. ईदृशेश्वरसिद्धिः सिद्धा।।५७।।
२३४. प्रधानसृष्टिः परार्थं स्वतोऽप्यभोक्तृत्वात्, उष्ट्रकुङ्क मवहनवत्।।५८।।
२३५. अचेतनत्वेपि क्षीरवच्चेष्टितं प्रधानस्य।।५६।।
२३६. कर्मवद् दृष्टेर्वा कालादेः।।६०।।
२३७. स्वभावाच्चेष्टितमनभिसन्धानाद् भृत्यवत्।।६१।।
२३८. कर्माकृष्टेर्वानादितः।।६२।।
२३६. विविक्तबोधात् सृष्टिनिवृत्तिः प्रधानस्य सूदवत् पाके।।६३।।
२४०. इतर इतरवत्तद्दोषात्।।६४।।

२४१. द्वयोरेकतरस्य वौदासीन्यमपवर्गः।।६५।।
२४२. अन्यसृष्ट्यु परागेऽपि न विरज्यते प्रबुद्धरज्जु तत्त्वस्येवोरगः।।६६।।
२४३. कर्मनिमित्तयोगाच्च।।६७।।
२४४. नैरपेक्ष्येऽपि प्रकृत्युपकारेऽविवेको निमित्तम्।।६८।।
२४५. नर्त्तकीवत् प्रवृत्तस्यापि निवृत्तिश्चारितार्थ्यात्।।६६।।
२४६. दोषबोधेऽपि नोपसर्पणं प्रधानस्य कुलवधूवत्।।७०।।
२४७. नैकान्ततो बन्धमोक्षौ पुरुषस्याविवेकादृते।।७१।।
२४८. प्रकृतेराञ्जस्यात् ससङ्गत्वात् पशुवत्।।७२।।
२४८. रूपैः सप्तभिरात्मानं बध्नाति प्रधानं कोशकारवद् विमोचयत्येकेन रूपेण।।७३।।
२५०. निमित्तत्त्वमविवेकस्येति न दृष्टहानिः।।७४।।
२५१. तत्त्वाभ्यासान्नेति नेतीति त्यागाद् विवेकसिद्धिः।।७५।।
२५२. अधिकारिप्रभेदान्न नियमः।।७६।।
२५३. बाधितानुवृत्या मध्यविवेकतोऽप्युपभोगः।।७७।।
२५४. जीवन्मुक्तश्च।।७८।।
२५५. उपदेश्योपदेष्टृत्वात् तत्सिद्धिः।।७६।।
२५६. श्रुतिश्च।।८०।।
२५७. इतरथाऽन्धपरम्परा।।८१।।
२५८. चक्रभ्रमणवद् धृतशरीरः।।८२।।
२५६. संस्कारलेशतस्तत्सिद्धिः।।८३।।
२६०. विवेकान्निःशेषदुःखनिवृत्तौ कृतकृत्यता नेतरान्नेतरात्।।८४।।

अथ चतुर्थोऽध्यायः

२६१. राजपुत्रवत् तत्त्वोपदेशात्।।१।।
२६२. पिशाचवदन्यार्थोपदेशेऽपि।।२।।
२६३. आवृत्तिरसकृदुपदेशात्।।३।।
२६४. पितापुत्रवदुभयोर्दृष्टत्वात्।।४।।
२६५. श्येनवत्सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम्।।५।।
२६६. अहिनिर्ल्वयिनीवत्।।६।।
२६७. छिन्नहस्तवद्वा।।७।।
२६८. असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत्।।८।।
२६६. बहुभिर्योगे विरोधो रागदिभिः कुमारीशङ्खवत्।।६।।
२७०. द्वाभ्यामपि तथैव।।१०।।
२७१. निराशः सुखी पिङ्गलावत्।।११।।
२७२. अनारम्भेऽपि परगृहे सुखी सर्पवत्।।१२।।
२७३. बहुशास्त्रगुरूपासनेऽपि सारादानं षट्पदवत्।।१३।।

२७४. इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः।।१४।।
२७५. कृतनियमलङ्घनादानर्थक्यं लोकवत्।।१५।।
२७६. तद्विस्मरणेऽपि भेकीवत्।।१६।।
२७७. नोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत्।।१७।।
२७८. दृष्टस्तयोरिन्द्रस्य।।१८।।
२७९. प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात् तद्वत्।।१९।।
२८०. न कालनियमो वामदेववत्।।२०।।
२८१. अध्यस्तरूपोपासनात् पारम्पर्येण यज्ञोपासकानामिव।।२१।।
२८२. इतरलाभेऽप्यावृत्तिः पञ्चाग्नियोगतो जन्मश्रुतेः।।२२।।
२८३. विरक्तस्य हेयहानमुपादेयोपादानं हंसक्षीरवत्।।२३।।
२८४. लब्धातिशययोगात् तद्वत्।।२४।।
२८५. न कामचारित्वं रागोपहते।।२५।।
२८६. गुणयोगाद् बन्धः शुकवत्।।२६।।
२८७. न भोगाद्रागशान्तिर्मुनिवत्।।२७।।
२८८. दोषदर्शनादुभयोः।।२८।।
२८९. न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत्।।२९।।
२९०. नाभासमात्रमपि मलिनदर्पणवत्।।३०।।
२९१. न तज्जस्यापि तद्रूपता पङ्कजवत्।।३१।।
२९२. न भूतियोगेऽपि कृतकृत्यतोपास्यसिद्धिवदुपास्यसिद्धिवत्।।३२।।

अथ पञ्चमोऽध्यायः

२९३. मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनाच्छुतितश्चेति।।१।।
२९४. नेश्वराधिष्ठिते फलनिष्पत्तिः कर्मणा तत्सिद्धेः।।२।।
२९५. स्वोपकारादधिष्ठानं लोकवत्।।३।।
२९६. लौकिककेश्वरवदितरथा।।४।।
२९७. पारिभाषिकोवा।।५।।
२९८. न, रागादृते तत्सिद्धिः प्रतिनियतकारणत्वात्।।६।।
२९९. तद्योगेऽपि न नित्यमुक्तः।।७।।
३००. प्रधानशक्तियोगाच्चेत् संगापत्तिः।।८।।
३०१. सत्तामात्राच्चेत् सर्वैश्वर्यम्।।९।।
३०२. प्रमाणाभावान्न तत्सिद्धिः।।१०।।
३०३. सम्बन्धाभावान्नानुमानम्।।११।।
३०४. श्रुतिरपि प्रधानकार्यत्वस्य।।१२।।
३०५. नाविद्याशक्तियोगो निःसङ्गस्य।।१३।।
३०६. तद्योगे तत्सिद्धावन्योन्याश्रयत्वम्।।१४।।

३०७. न बीजाङ्कुरवत् सादिसंसारश्रुतेः।।१५।।

३०८. विद्यातोऽन्यत्वे ब्रह्मबाधप्रसंगः।।१६।।

३०९. अबाधे नैष्फल्यम्।।१७।।

३१०. विद्याबाध्यत्वे जगतोऽप्येवम्।।१८।।

३११. तद्रूपत्वे सादित्वम्।।१९।।

३१२. न धर्मापलापः प्रकृतिकार्यवैचित्र्यात्।।२०।।

३१३. श्रुतिलिङ्गादिभिस्तत्सिद्धिः।।२१।।

३१४. न नियमः प्रमाणान्तरावकाशात्।।२२।।

३१५. उभयत्राप्येवम्।।२३।।

३१६. अर्थात् सिद्धिश्चेत् समानमुभयोः।।२४।।

३१७. अन्तःकरणधर्मत्वं धर्मादीनाम्।।२५।।

३१८. गुणादीनाञ्च नात्यन्तबाधः।।२६।।

३१९. पञ्चावयवयोगात् सुखसंवित्तिः।।२७।।

३२०. न सकृद्ग्रहणात् सम्बन्धसिद्धिः।।२८।।

३२१.नियतधर्मसाहित्यमुभयोरेकतरस्य वा व्याप्तिः।।२९।।

३२२. न तत्त्वान्तरं वस्तुकल्पनाप्रसक्तेः।।३०।।

३२३. निजशक्त्युद्भवमित्याचार्याः।।३१।।

३२४. आधेयशक्तियोग इति पञ्चशिखः।।३२।।

३२५. न स्वरूपशक्तिर्नियमः पुनर्वादप्रसक्तेः।।३३।।

३२६. विशेषणानर्थक्यप्रसक्तेः।।३४।।

३२७. पल्लवादिष्वनुपपत्तेश्च।।३५।।

३२८. आधेयशक्तिसिद्धौ निजशक्तियोगः समानन्यायात् ।।३६।।

३२९. वाच्यवाचकभावः सम्बन्ध शब्दार्थयोः ।।३७।।

३३०. त्रिभिस्सम्बन्धसिद्धिः ।।३८।।

३३१. न कार्ये नियम उभयथा दर्शनात् ।।३९।।

३३२. लोके व्युत्पन्नस्य वेदार्थप्रतीतिः ।।४०।।

३३३. न त्रिभिरपौरुषेयत्वाद्वेदस्य तदर्थस्याप्यतीन्द्रियत्वात् ।।४१।।

३३४. न यज्ञादेः स्वरूपतो धर्मत्वं वैशिष्ट्यात् ।।४२।।

३३५. निजशक्तिर्व्युत्पत्त्या व्यवच्छिद्यते ।।४३।।

३३६. योग्यायोग्येषु प्रतीतिजनकत्वात् तत्सिद्धिः ।।४४।।

३३७. न नित्यत्वं वेदानां कार्यत्वश्रुतेः ।।४५।।

३३८. न पौरुषेयत्वं तत्कर्तुः पुरुषस्याभावात् ।।४६।।

३३९. न मुक्तामुक्तयोरयोग्यत्वात् ।।४७।।

३४०. नापौरुषेयत्वान्नित्यत्वमंकुरादिवत् ।।४८।।

३४१. तेषामपि तद्योगे दृष्टबाधादिप्रसक्तिः ।।४६।।
३४२. यस्मिन्नदृष्टेऽपि कृतबुद्धिरुपजायते तत्पौरुषेयम् ।।५०।।
३४३. निजशक्त्यभिव्यक्तेः स्वतः प्रामाण्यम् ।।५१।।
३४४. नासतः ख्यानं नृशृङ्गवत् ।।५२।।
३४५. न सतो बाधदर्शनात् ।।५३।।
३४६. नानिर्वचनीयस्य तदभावात् ।।५४।।
३४७. नान्यथा ख्यातिः स्ववचोव्याघातात् ।।५५।।
३४८. सदसत्ख्यातिर्बाधाबाधात् ।।५६।।
३४९. नाद्वैतमात्मनो लिंगात् तदभेदप्रतीतेः ।।५७।।
३५०. नानात्मनापि प्रत्यक्षबाधात् ।।५८।।
३५१. नोभाभ्यां तेनैव ।।५८।।
३५२. अन्यपरत्वमविवेकानां तत्र ।।५९।।
३५३. नात्माविद्या नोभयं जगदुपादानकारणं निःसंगत्वात् ।।६०।।
३५४. नैकस्यानन्दचिद्रूपत्वे द्वयोर्भेदात् ।।६१।।
३५५. दुःखनिवृत्तेर्गौणः ।।६२।।
३५६. विमुक्तिप्रशंसा मन्दानाम् ।।६३।।
३५७. न व्यापकत्वं मनसः करणत्वादिन्द्रियत्वाद्वा वास्यादिवच्चक्षुरादिवत् ।।६४।।
३५८. सक्रियत्वाद्गतिश्रुतेः ।।६५।।
३५९. न निर्भागत्वं तद्योगाद्घटवत् ।।६६।।
३६०. प्रकृतिपुरुषयोरन्यत्सर्वमनित्यम् ।।६७।।
३६१. न भागलाभो भोगिनो निर्भागत्वश्रुतेः ।।६८।।
३६२. नानन्दाभिव्यक्तिर्मुक्तिर्निर्धर्मत्वात् ।।६९।।
३६३. न विशेषगुणोच्छित्तिस्तद्वत् ।।७०।।
३६४. न विशेषगतिर्निष्क्रियस्य ।।७१।।
३६५. नाकारोपरागोच्छित्तिः क्षणिकत्वादिदोषात् ।।७२।।
३६६. न सर्वोच्छित्तिरपुरुषार्थत्वादिदोषात् ।।७३।।
३६७. न भागियोगो भागस्य ।।७४।।
३६८. न देशादिलाभोऽपि।।७५।।
३६८. नाणिमादियोगोऽप्यवश्यंभावित्वात्तदुच्छित्तेरितरयोगवत् ।।७६।।
३६९. नेन्द्रादिपदयोगोऽपि तद्वत् ।।७७।।
३७०. समाधिसुषुप्तिमोक्षेषु ब्रह्मरूपता ।।७८।।
३७१. द्वयोः सबीजमन्यत्र तद्धतिः ।।७९।।
३७२. द्वयोरिव त्रयस्यापि दृष्टत्वान्नतु द्वौ ।।८०।।
३७३. वासनयानर्थख्यापनं दोषयोगेऽपि निमित्तस्य प्रधानबाधकत्वम् ।।८१।।

३७४. न देहमात्रतः कर्माधिकारित्वं वैशिष्ट्यश्रुतेः ।।८२।।
३७५. त्रिधा त्रयाणां व्यवस्था कर्मदेहोपभोगदेहोभयदेहाः ।।८३।।
३७६ न किंचिदप्यनुशयिनः ।।८४।।
३७७. न बुद्ध्यादिनित्यत्वमाश्रयविशेषेऽपि बह्निवत् ।।८५।।
३७८. आश्रयासिद्धेश्च ।।८६।।
३७९. योगसिद्धयोऽप्यौषधादिसिद्धिवन्नापलपनीयाः ।।८७।।
३८०. न भूतचैतन्यं प्रत्येकादृष्टेः सांहत्येऽपि च सांहत्येऽपि च ।।८८।।

।। इति पंचमोऽध्यायः समाप्तः ।।

अथ षष्ठोऽध्यायः

३८२. अस्त्यात्मा नास्तित्वसाधनाभावात् ।।१।।
३८३. देहादिव्यतिरिक्तोऽसौ वैचित्र्यात् ।।२।।
३८४. षष्ठी व्यपदेशादपि ।।३।।
३८५. न शिलापुत्रवद्धर्मिग्राहकमानबाधात् ।।४।।
३८६. अत्यन्तदुःखनिवृत्या कृतकृत्यता ।।५।।
३८७. यथा दुःखात्क्लेशः पुरुषस्य न तथा सुखादभिलाषः ।।६।।
३८८. कुत्रापि कोऽपि सुखीति ।।७।।
३८९. तदपि दुःखशबलमिति दुःखपक्षे निःक्षिपन्ते विवेचकाः ।।८।।
३९०. सुखलाभाभावादपुरुषार्थत्वमितिचेन्न द्वैविध्यात् ।।९।।
३९१. निर्गुणत्वमात्मनोऽसंगत्वादिश्रुतेः ।।१०।।
३९२. परधर्मत्वेऽपि तत्सिद्धिरविवेकात् ।।११।।
३९३. अनादिरविवेकोऽन्यथा दोषद्वयप्रसक्तेः ।।१२।।
३९४. न नित्यः स्यादात्मवदन्यथानुच्छित्तिः ।।१३।।
३९५. प्रतिनियतकारणनाश्यत्वमस्य ध्वान्तवत् ।।१४।।
३९६. अत्रापि प्रतिनियमोऽन्वयव्यतिरेकात् ।।१५।।
३९७. प्रकारान्तरासंभवादविवेक एव बन्धः ।।१६।।
३९८. न मुक्तस्य पुनर्बन्धयोगोऽप्यनावृत्तिश्रुतेः ।।१७।।
३९९. अपुरुषार्थत्वमन्यथा ।।१८।।
४००. अविशेषापत्तिरुभयोः ।।१९।।
४०१. मुक्तिरन्तरायध्वस्तेर्न परः ।।२०।।
४०२. तत्राप्यविरोधः ।।२१।।
४०३. अधिकारित्रैविध्यान्न नियमः ।।२२।।
४०४. दाढर्यार्थमुत्तरेषाम् ।।२३।।
४०५. स्थिरसुखमासनमिति न नियमः ।।२४।।
४०६. ध्यानं निर्विषयं मनः ।।२५।।

४०७. उभयथाप्यविशेषश्चेन्नैवमुपरागनिरोधाद्विशेषः ।।२६।।
४०८. निःसंगेऽप्युपरागोऽविवेकात् ।।२७।।
४०६. जवास्फटिकयोरिव नोपरागः किन्त्वभिमानः ।।२८।।
४१०. ध्यानधारणाभ्यासवैराग्यादिभिस्तन्निरोधः ।।२६।।
४११. लयविक्षेपयोर्व्यावृत्त्येत्याचार्याः ।।३०।।
४१२. न स्थाननियमश्चित्तप्रसादात् ।।३१।।
४१३. प्रकृतेराद्योपादानतान्येषां कार्यत्वश्रुतेः ।।३२।।
४१४. नित्यत्वेऽपि नात्मनो योग्यत्वाभावात् ।।३३।।
४१५. श्रुतिविरोधान्न कुतर्कापसदस्यात्मलाभः ।।३४।।
४१६. पारम्पर्येऽपि प्रधानानुवृत्तिरणुवत् ।।३५।।
४१७. सर्वत्र कार्यदर्शनाद्विभुत्वम् ।।३६।।
४१८. गतियोगेप्याद्यकारणताऽहानिरणुवत् ।।३७।।
४१६. प्रसिद्धाधिक्यं प्रधानस्य न नियमः ।।३८।।
४२०. सत्त्वादीनामतद्धर्मत्वं तद्रूपत्वात् ।।३६।।
४२१. अनुपभोगेऽपि पुमर्थं सृष्टिः प्रधानस्योष्ट्रकुंकुमवहनवत् ।।४०।।
४२२. कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम् ।।४१।।
४२३. साम्यवैषम्याभ्यां कार्यद्वयम् ।।४२।।
४२४. विमुक्तबोधान्न सृष्टिः प्रधानस्य लोकवत् ।।४३।।
४२५. नान्योपसर्पणेऽपि मुक्तोपभोगो निमित्ताभावात् ।।४४।।
४२६. पुरुषबहुत्वं व्यवस्थातः ।।४५।।
४२७. उपाधिश्चेत्तत्सिद्धौ पुनर्द्वैतम् ।।४६।।
४२८. द्वाभ्यामपि प्रमाणविरोधः ।।४७।।
४२६. द्वाभ्यामप्यविरोधान्न पूर्वमुत्तरं च साधकाभावात् ।।४८।।
४३०. प्रकाशतस्तत्सिद्धौ कर्मकर्तृविरोधः ।।४६।।
४३१. जडव्यावृत्तो जडं प्रकाशयति चिद्रूपः ।।५०।।
४३२. न श्रुतिविरोधो रागिणां वैराग्याय तत्सिद्धेः ।।५१।।
४३३. जगत्सत्यत्वमदुष्टकारणजन्यत्वाद् बाधकाभावात् ।।५२।।
४३४. प्रकारान्तरासंभवात्सदुत्पत्तिः ।।५३।।
४३५. अहंकारः कर्त्ता न पुरुषः ।।५४।।
४३६. चिदवसाना भुक्तिस्तत्कर्मार्जितत्वात् ।।५५।।
४३७. चन्द्रादिलोकेऽप्यावृत्तिर्निमित्तसद्भावात् ।।५६।।
४३८. लोकस्य नोपदेशात् सिद्धिः पूर्ववत् ।।५७।।
४३६. पारम्पर्येण तत्सिद्धौ विमुक्तिश्रुतिः ।।५८।।
४४०. गतिश्रुतेश्च व्यापकत्वेऽप्युपाधियोगाद् भोगदेशकाललाभो व्योमवत् ।।५६।।

४४१. अनधिष्ठितस्य पूतिभावप्रसंगान्न तत्सिद्धिः ।।६०।।
४४२. अदृष्टाद्वारा चेदसम्बद्धस्य तदसंभवाज्जलादिवदंकुरे ।।६१।।
४४३. निर्गुणत्वात्तदसंभवादहंकारधर्मा ह्येते ।।६२।।
४४४. विशिष्टस्य जीवत्वमन्वयव्यतिरेकात् ।।६३।।
४४५. अहंकारकर्त्रधीना कार्यसिद्धिर्नेश्वराधीना प्रमाणाभावात् ।।६४।।
४४६. अदृष्टोद्भूतिवत्समानत्वम् ।।६५।।
४४७. महतोऽन्यत् ।।६६।।
४४८. कर्मनिमित्तः प्रकृतेः स्वस्वामिभावोऽप्यनादिर्बीजांकुरवत् ।।६७।।
४४९. अविवेकनिमित्तो वा पंचशिखः ।।६८।।
४५०. लिंगशरीरनिमित्तक इति सनन्दनाचार्यः ।।६९।।
४५१. यद्वा तद्वा तदुच्छित्तिः पुरुषार्थस्तदुच्छित्तिः पुरुषार्थः ।।७०।।

।। इति ।।

योग दर्शनम्

अथ प्रथमः समाधिपादः

१. अथ योगानुशासनम् ।।१।।
२. योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः ।।२।।
३. तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम् ।।३।।
४. वृत्तिसारूप्यमितरत्र ।।४।।
५. वृत्तयः पंचतय्यः क्लिष्टाऽक्लिष्टाः ।।५।।

६. प्रमाणविपर्ययविकल्पनिद्रास्मृतयः ।।६।।
७. प्रत्यक्षानुमानागमाः प्रमाणानि ।।७।।
८. विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूपप्रतिष्ठम् ।।८।।
९. शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः ।।९।।
१०. अभावप्रत्ययालम्बना वृत्तिर्निद्रा ।।१०।।
११. अनुभूतविषयाऽसंप्रमोषः स्मृतिः ।।११।।
१२. अभ्यासवैराग्याभ्यां तन्निरोधः ।।१२।।
१३. तत्र स्थितौ यत्नोभ्यासः ।।१३।।
१४. स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढभूमिः ।।१४।।
१५ दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम् ।।१५।।
१६. तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम् ।।१६।।
१७. वितर्क विचार आनन्द अस्मिता रूप अनुगमात् संप्रज्ञातः ।।१७।।
१८. विरामप्रत्ययाभ्यासपूर्वः संस्कारशेषोऽन्यः ।।१८।।
१९. भवप्रत्ययो विदेहप्रकृतिलयानाम् ।।१९।।
२०. श्रद्धावीर्यस्मृतिसमाधिप्रज्ञापूर्वक इतरेषाम् ।।२०।।
२१. तीव्रसंवेगानामासन्नः ।।२१।।
२२. मृदुमध्याधिमात्रत्वात्ततोऽपि विशेषः ।।२२।।
२३. ईश्वरप्रणिधानाद्वा ।।२३।।
२४. क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः ।।२४।।
२५. तत्र निरतिशयं सर्वज्ञबीजम् ।।२५।।
२६. सः एष पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात् ।।२६।।
२७. तस्य वाचकः प्रणवः ।।२७।।
२८. तज्जपस्तदर्थभावनम् ।।२८।।
२९. ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ।।२९।।
३०. व्याधिस्त्यान संशय प्रमाद आलस्याविरति भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः ।।३०।।
३१. दुःखदौर्मनस्यांगमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः ।।३१।।
३२. तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।।३२।।
३३. मैत्रीकरुणामुदितोपेक्षाणां सुखदुःखपुण्यापुण्यविषयाणां भावनातश्चित्तप्रसादनम् ।।३३।।
३४. प्रच्छर्दनविधारणाभ्यां वा प्राणस्य ।।३४।।
३५. विषयवती वा प्रवृत्तिरुपन्ना मनसः स्थितिनिबन्धनी ।।३५।।
३६. विशोका वा ज्योतिष्मती ।।३६।।
३७. वीतरागविषयं वा चित्तम् ।।३७।।

३८. स्वप्ननिद्राज्ञानालम्बनं वा ।।३८।।
३६. यथाभिमतध्यानाद्वा ।।३६।।
४० परमाणुपरममहत्त्वान्तोऽस्य वशीकारः ।।४०।।
४१ क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृग्रहणग्राह्येषु तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ।।४१।।
४२ तत्र शब्दार्थज्ञानविकल्पैः संकीर्णा सवितर्का समापत्तिः ।।४२।।
४३. स्मृतिपरिशुद्धौ स्वरूपशून्येवार्थमात्रनिर्भासा निर्वितर्का ।।४३।।
४४. एतयैव सविचारा निर्विचारा च सूक्ष्मविषया व्याख्याता ।।४४।।
४५. सूक्ष्मविषयत्वं चालिंगपर्यवसानम् ।।४५।।
४६. ता एव सबीजः समाधिः ।।४६।।
४७ निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः ।।४७।।
४८ ऋतंभरा तत्र प्रज्ञा ।।४८।।
४६ श्रुतानुमानप्रज्ञाभ्यामन्यविषया विशेषार्थत्वात् ।।४६।।
५० तज्जः संस्कारोऽन्य संस्कारप्रतिबन्धी ।।५०।।
५१. तस्यापि निरोधे सर्वनिरोधान्निर्बीजः समाधिः ।।५१।।

प्रथमः पादः समाप्तः

अथ द्वितीयः साधनपादः

५२. तपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि क्रियायोगः ।।१।।
५३. समाधिभावनार्थः क्लेशतनूकरणार्थश्च ।।२।।
५४. अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः पंच क्लेशाः ।।३।।
५५. अविद्या क्षेत्रमुत्तरेषां प्रसुप्ततनुविच्छिन्नोदाराणाम् ।।४।।
५६. अनित्याशुचिदुःखानात्मसु नित्यशुचिसुखात्मख्यातिरविद्या ।।५।।
५७. दृग्दर्शनशक्त्योरेकात्मतेवास्मिता ।।६।।
५८. सुखानुशयी रागः ।।७।।
५६. दुःखानुशयी द्वेषः ।।८।।
६०. स्वरसवाही विदुषोऽपि तथारूढ़ोऽभिनिवेशः ।।६।।
६१ ते प्रतिप्रसवहेयाः सूक्ष्माः ।।१०।।
६२ ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः ।।११।।
६३ क्लेशमूलः कर्माशयो दृष्टादृष्टजन्मवेदनीयः ।।१२।।
६४ सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः ।।१३।।
६५ ते ह्लादपरितापफलाः पुण्यापुण्यहेतुत्वात् ।।१४।।
६६ परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च दुःखमेव सर्वं विवेकिनः ।।१५।।
६७ हेयं दुःखमनागतम् ।।१६।।
६८ द्रष्ट्रीदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः ।।१७।।

६६ प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम् ।।१८।।
७० विशेषऽविशेषलिंगमात्रालिंगानि गुणपर्वाणि ।।१६।।
७१ द्रष्टा दृशिमात्रः शुद्धोऽपि प्रत्ययानुपश्यः ।।२०।।
७२. तदर्थ एव दृश्यस्याऽत्मा ।।२१।।
७३ कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात् ।।२२।।
७४ स्वस्वामिशक्त्योः स्वरूपोपलब्धिहेतुः संयोगः ।।२३।।
७५ तस्य हेतुरविद्या ।।२४।।
७६. तदभावात्संयोगाभावो हानं तद्दृशेः कैवल्यम् ।।२५।।
७७. विवेकख्यातिरविप्लवा हानोपायः ।।२६।।
७८. तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।।२७।।
७६. योगांगनुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः ।।२८।।
८०. यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहार धारणाध्यानसमाधयोऽष्टावंगानि ।।२६।।
८१. अहिंसासत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमाः ।।३०।।
८२. जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम् ।।३१।।
८३. शौचसंतोषतपः स्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः ।।३२।।
८४. वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम् ।।३३।।
८५. वितर्का हिंसादयः कृतकारिताऽनुमोदिता लोभक्रोधमोहपूर्वका मृदुमध्याधिमात्रा दुःखाज्ञानानन्तफला इति प्रतिपक्षभावनम् ।।३४।।
८६. अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्संनिधौ वैरत्यागः ।।३५।।
८७. सत्यप्रतिष्ठायां क्रियाफलाश्रयत्वम् ।।३६।।
८८. अस्तेयप्रतिष्ठायां सर्वरत्नोपस्थानम् ।।३७।।
८६. ब्रह्मचर्यप्रतिष्ठायां वीर्यलाभः ।।३८।।
६०. अपरिग्रहस्थैर्ये जन्मकथंतासंबोधः ।।३६।।
६१. शौचात्स्वांगजुगुप्सा परैरसंसर्गः ।।४०।।
६२. सत्त्वशुद्धसौमनस्यैकाग्र्येन्द्रियजयात्मदर्शन योग्यत्वानि च ।।४१।।
६३. संतोषादनुत्तमः सुखलाभः ।।४२।।
६४. कायेन्द्रियसिद्धिरशुद्धिक्षयात्तपसः ।।४३।।
६५. स्वाध्यायादिष्टदेवतासंप्रयोगः ।।४४।।
६६. समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात् ।।४५।।
६७. स्थिरसुखमासनम् ।।४६।।
६८. प्रयत्नशैथिल्यानन्तसमापत्तिभ्याम् ।।४७।।
६६. ततो द्वंद्वानभिघातः ।।४८।।
१००. तस्मिन्सति श्वासप्रश्वासयोर्गतिविच्छेदः प्राणायामः ।।४६।।
१०१. बाह्याभ्यन्तरस्तम्भवृत्तिर्देशकालसंख्याभिः परिदृष्टो दीर्घसूक्ष्मः ।।५०।।

१०२. बाह्याभ्यन्तरविषयापेक्षी चतुर्थः ।।५१।।
१०३. ततः क्षीयते प्रकाशावरणम् ।।५२।।
१०४. धारणासु च योग्यता मनसः ।।५३।।
१०५. स्वविषयासंप्रयोगे चित्तस्वरूपानुकार इवेन्द्रियाणां प्रत्याहारः ।।५४।।
१०६. ततः परमा वश्यतेन्द्रियाणाम् ।।५५।।

द्वितीयः पादः समाप्तः

अथ तृतीयो विभूतिपादः

१०७. देशबन्धश्चित्तस्य धारणा ।।१।।
१०८. तत्र प्रत्ययैकतानता ध्यानम् ।।२।।
१०९. तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः ।।३।।
११०. त्रयमेकत्र संयमः ।।४।।
१११. तज्जयात्प्रज्ञाऽऽलोकः ।।५।।
११२. तस्य भूमिषु विनियोगः ।।६।।
११३. त्रयमन्तरंग पूर्वेभ्यः ।।७।।
११४. तदपि वहिरंगं निर्बीजस्य ।।८।।
११५. व्युत्थाननिरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ निरोधक्षणचित्तान्वयो निरोधपरिणामः ।।९।।
११६. तस्य प्रशान्तवाहिता संस्कारात् ।।१०।।
११७. सर्वार्थतैकाग्रतयोः क्षयोदयौ चित्तस्य समाधिपरिणामः ।।११।।
११८. ततः पुनः शान्तोदितौ तुल्यप्रत्ययौ चित्तस्यैकाग्रतापरिणामः ।।१२।।
११९. एतेन भूतेन्द्रियेषु धर्मलक्षणावस्थापरिणामा व्याख्याताः ।।१३।।
१२०. शान्तोदिताव्यपदेश्यधर्मानुपाती धर्मी ।।१४।।
१२१. क्रमान्यत्वं परिणामान्यत्वे हेतुः ।।१५।।
१२२. परिणामत्रयसंयमादतीतानागतज्ञानम् ।।१६।।
१२३. शब्दार्थप्रत्ययानामितरेतराध्यासात्संकरस्तत्प्रविभागसंयमात्सर्वभूतरुतज्ञानम् ।।१७।।
१२४. संस्कारसाक्षात्करणात्पूर्वज्ञातिज्ञानम् ।।१८।।
१२५. प्रत्ययस्य परचित्तज्ञानम् ।।१९।।
१२५. न च तत्सालम्बनं तस्याविषयीभूतत्वात्।
१२६. कायरूपसंयमात्तद्ग्राह्यशक्तिस्तम्भे चक्षुष्प्रकाशासंप्रयोगेऽन्तर्धानम् ।।२०।।
१२७. सोपक्रमं निरुपक्रमं च कर्म तत्संयमादपरान्तज्ञानमरिष्टेभ्यो वा ।।२१।।
१२८. मैत्र्यादिषु बलानि ।।२२।।
१२९. बलेषु हस्तिबलादीनि ।।२३।।
१३०. प्रवृत्त्यालोकन्यासात्सूक्ष्मव्यवहितविप्रकृष्ट ज्ञानम् ।।२४।।

१३१. भुवनज्ञानं सूर्ये संयमात् ।।२५।।
१३२. चन्द्रे ताराव्यूहज्ञानम् ।।२६।।
१३३. ध्रुवे तद्‌गतिज्ञानम् ।।२७।।
१३४. नाभिचक्रे कायव्यूहज्ञानम् ।।२८।।
१३५. कण्ठकूपे क्षुत्पिपासानिवृत्तिः ।।२९।।
१३६. कूर्मनाड्यां स्थैर्यम् ।।३०।।
१३७. मूर्धज्योतिषि सिद्ध-दर्शनम् ।।३१।।
१३८. प्रातिभाद्वा सर्वम् ।।३२।।
१३९. हृदये चित्तसंवित् ।।३३।।
१४०. सत्त्वपुरुषयोरत्यन्तासंकीर्णयोः प्रत्ययाविशेषो भोगः परार्थात् स्वार्थसंयमात्पुरुषज्ञानम् ।।३४।।
१४१. ततः प्रातिभश्रावणवेदनादर्शास्वादवार्ता जायन्ते ।।३५।।
१४२. ते समाधावुपसर्गा व्युत्थाने सिद्धयः ।।३६।।
१४३. बन्धकारणशैथिल्यत्प्रचारसंवेदनाच्च चित्तस्य परशरीरावेशः ।।३७।।
१४४. उदानजयाज्जलपंककण्टकादिष्वसंगः उत्क्रान्तिश्च ।।३८।।
१४५. समानजयाज्ज्वलनम् ।।३९।।
१४६. श्रोत्राकाशयोः संबन्धसंयमाद् दिव्यं श्रोत्रम् ।।४०।।
१४७. कायाकाशयोः संबन्धसंयमाल्लघुतूलसमापत्तेश्चाऽऽकाशगमनम् ।।४१।।
१४८. बहिरकल्पिता वृत्तिर्महाविदेहा ततः प्रकाशावरणक्षयः ।।४२।।
१४९. स्थूलस्वरूपसूक्ष्मान्वयार्थवत्त्वसंयमाद् भूतजयः ।।४३।।
१५०. ततोऽणिमादिप्रादुर्भावः कायसंपत्तद्धर्मानभिघातश्च ।।४४।।
१५१. रूपलावण्यबलवज्रसंहननत्वानि कायसंपत् ।।४५।।
१५२. ग्रहणस्वरूपास्मितान्वयार्थवत्त्वसंयमादिन्द्रियजयः ।।४६।।
१५३. ततो मनोजवित्वं विकरणभावः प्रधानजयश्च ।।४७।।
१५४. सत्त्वपुरुषान्यताख्यातिमात्रस्य सर्वभावाधिष्ठातृत्वं सर्वज्ञातृत्वं च ।।४८।।
१५५. तद्वैराग्यादपि दोषबीजक्षये कैवल्यम् ।।४९।।
१५६. स्थान्युपनिमन्त्रणे संगस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसंगात् ।।५०।।
१५७. क्षणतत्क्रमयोः संयमाद्विवेकजं ज्ञानम् ।।५१।।
१५८. जातिलक्षणदेशैरन्यताऽनवच्छेदात्तुल्ययोस्ततः प्रतिपत्तिः ।।५२।।
१५९. तारकं सर्वविषयं सर्वथाविषयमक्रमं चेति विवेकजं ज्ञानम् ।।५३।।
१६०. सत्त्वपुरुषयोः शुद्धिसाम्ये कैवल्यमिति ।।५४।।

तृतीयः पादः समाप्तः

अथ चतुर्थः कैवल्यपादः

१६१. जन्मौषधिमन्त्रतपः समाधिजाः सिद्धयः ।।१।।
१६२. जात्यन्तरपरिणामः प्रकृत्यापूरात् ।।२।।
१६३. निमित्तमप्रयोजकं प्रकृतीनां वरणभेदस्तु ततः क्षेत्रिकवत् ।।३।।
१६४. निर्माणचित्तान्यस्मितामात्रात् ।।४।।
१६५. प्रवृत्तिभेदे प्रयोजकं चित्तमेकमनेकेषाम् ।।५।।
१६६. तत्र ध्यानजमनाशयम् ।।६।।
१६७. कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम् ।।७।।
१६८. ततस्तद्विपाकानुगुणानामेवाभिव्यक्तिर्वासनानाम् ।।८।।
१६९. जातिदेशकालव्यवहितानामप्यानन्तर्यं स्मृतिसंस्कारयोरेकरूपत्वात् ।।९।।
१७०. तासामनादित्वं चाऽशिषो नित्यत्वात् ।।१०।।
१७१. हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ।।११।।
१७२. अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद्धर्माणाम् ।।१२।।
१७३. ते व्यक्तसूक्ष्मा गुणात्मनः ।।१३।।
१७४. परिणामैकत्वाद्वस्तुतत्त्वम् ।।१४।।
१७५. वस्तुसाम्ये चित्तभेदात्तयोर्विभक्तः पन्थाः ।।१५।।
१७६. न चैकचित्ततन्त्रं वस्तु तदप्रमाणकं तदा किं स्यात् ।।१६।।
१७७. तदुपरागापेक्षित्वाच्चित्तस्य वस्तु ज्ञाताज्ञातम् ।।१७।।
१७८. सदा ज्ञाताश्चित्तवृत्तयस्तत्प्रभोः पुरुषस्यापरिणामित्वात् ।।१८।।
१७९. न तत्स्वाभासं दृश्यत्वात् ।।१९।।
१८०. एकसमये चोभयानवधारणम् ।।२०।।
१८१. चित्तान्तरदृश्ये बुद्धिबुद्धेरतिप्रसंग स्मृतिसंकरश्च ।।२१।।
१८२. चित्तेरप्रतिसंक्रमायास्तदाकारापत्तौ स्वबुद्धिसंवेदनम् ।।२२।।
१८३. द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् ।।२३।।
१८४. तदसंख्येयवासनाभिश्चित्रमपि परार्थं संहत्यकारित्वात् ।।२४।।
१८५. विशेषदर्शिन आत्मभावभावनाविनिवृत्तिः ।।२५।।
१८६. तदा विवेकनिम्नं कैवल्यप्राग्भारं चित्तम् ।।२६।।
१८७. तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः ।।२७।।
१८८. हानमेषां क्लेशवदुक्तं ।।२८।।
१८९. प्रसंख्यानेऽप्यकुसीदस्य सर्वथा विवेकख्यातेर्धर्ममेघः समाधिः ।।२९।।
१९०. ततः क्लेशकर्मनिवृत्तिः ।।३०।।
१९१. तदा सर्वावरणमलापेतस्य ज्ञानस्याऽनन्त्याज्ज्ञेयमल्पम् ।।३१।।
१९२. ततः कृतार्थानां परिणामक्रमसमाप्तिर्गुणानाम् ।।३२।।
१९३. क्षणप्रतियोगी परिणामापरान्तनिर्ग्राह्यः क्रमः ।।३३।।

१६४. पुरुषार्थशून्यानां गुणानां प्रतिप्रसवः कैवल्यं स्वरूपप्रतिष्ठा वा चितिशक्तिरिति ।।३४।।

।। इति ।।

,,,

मीमांसा दर्शन

प्रथम अध्याय प्रथम पाद

१. अथातो धर्मजिज्ञासा ।।१।।

२. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः ।।२।।

३. तस्य निमित्तपरीष्टिः ।।३।।

४.सत्सम्प्रयोगे पुरुषस्येन्द्रियाणां बुद्धिजन्म तत्प्रत्यक्षमनिमित्तं विद्यमानोपलम्भनत्वात्

।।४।।
५. उक्तं तु शब्दपूर्वत्वम् ।।२९।।
६. परन्तु श्रुतिसामान्यमात्रम् ।।३१।।
७. कृते वा विनियोगस्स्यात् कर्मणस्सम्बन्धात् ।।३२।।

द्वितीय पाद

८. तुल्यं च साम्प्रदायिकम् ।।८।।
९. रूपात्प्रायात् ।।११।।
१०. विद्याप्रशंसा ।।१५।।
११. स्तुतिस्तु शब्दपूर्वत्वादचोदना च तस्य ।।२७।।
१२. बुद्धशास्त्रात् ।।३३।।
१३. अविशिष्टस्तु वाक्यार्थः ।।४०।।
१४. परिसंख्या ।।४२।।
१५. अविरुद्धं परम् ।।४४।।
१६. ऊहः ।।५२।।
१७. विधिशब्दाश्च ।।५३।।

तृतीय पाद

१८. अपि वा कर्तृसामान्यात् प्रमाणमनुमानं स्यात् ।।२।।
१९. हेतुदर्शनाच्च ।।४।।
२०. न शास्त्रपरिमाणत्वात् ।।६।।
२१. अवाक्यशेषाच्च ।।१३।।
२२. सर्वत्र च प्रयोगात्सन्निधानशास्त्राच्च ।।१४।।
२३. अनुमानव्यवस्थानात् तत्संयुक्तं प्रमाणं स्यात् ।।१५।।

चतुर्थ पाद

२४. तत्सिद्धिः ।।२३।।
२५. सारूप्यात् ।।२५।।

षष्ठ अध्याय प्रथम पाद

२६. चेदितत्वाद्यथाश्रुति ।।९।।
२७. फलवत्तां च दर्शयति ।।२१।।
२८. संस्कारस्य तदर्थत्वाद्विद्यायां पुरुषश्रुतिः ।।३५।।
२९. अवैद्यत्वादभावः कर्मणि स्यात् ।।३७।।
३०. तथा चाऽन्यार्थदर्शनम् ।।३८।।
३१. उक्तमनिमित्तत्वम् ।।४९।।

तृतीय पाद

३२. सर्व शक्तौ प्रवृत्ति स्यात्तथा भूतोपदेशात् ।।१।।
३३. अपि वाऽप्येकदेशे स्यात्प्रधनि ह्यर्थनिवृत्तिर्गुणमात्रमितरत्तदर्थत्त्वात् ।।२।।

अष्ट पाद

३४. पशुचोदनायामनियमोऽविशेषात् ।।३०।।
३५. छागो वा मन्त्रवर्णात् ।।३१।।
३६. न चोदनाविरोधात् ।।३२।।
३७. अनियमो वार्थान्तरत्वादन्यत्वं व्यतिरेकशब्दभेदाभ्याम् ।।३६।।
३८. छागेन कर्माख्या रूपलिंगाभ्याम् ।।३६।।
३९. विकारो नौत्पत्तिकत्वात् ।।४१।।
४०. स नैमित्तिकः पशोर्गुणस्याचोदितत्वात् ।।४२।।
४१. जातेर्वा तत्प्रायवचनार्थवत्त्वाभ्याम् ।।४३।।

द्वादशो अध्याय

द्वितीय पाद

४२. मांसपाकप्रतिषेधश्च तद्वत् ।।२।।
४३. अभावदर्शनाच्च ।।५।।
४४. क्रिया वा देवतार्थत्वात् ।।६।।

।। इति ।।

वेदान्त दर्शन

अध्याय १

पहला पाद

१. अथातो ब्रह्मजिज्ञासा ।।१।।
२. जन्माद्यस्य यतः ।।२।।

३. शास्त्रयोनित्वात् ।।३।।
४. तत्तु समन्वयात् ।।४।।
५. ईक्षतेर्नाशब्दम् ।।५।।
६. गौणश्चेन्नात्मशब्दात् ।।६।।
७. तन्निष्ठस्य मोक्षोपदेशात् ।।७।।
८. हेयत्वावचनाच्च ।।८।।
६. स्वाप्ययात् ।।६।।
१०. गतिसामान्यात् ।।१०।।
११. श्रुतत्वाच्च ।।११।।
१२. आनन्दमयोऽभ्यासात् ।।१२।।
१३. विकारशब्दान्नेति चेन्न प्राचुर्यात् ।।१३।।
१४. तद्धेतुव्यपदेशाच्च ।।१४।।
१५. मान्त्रवर्णिकमेव च गीयते ।।१५।।
१६. नेतरोऽनुपपत्तेः। १/१/१६
१७. भेदव्यपदेशाच्च। १/१/१७
१८. कामाच्च नानुमानापेक्षा। १/१/१८
१६. अस्मिन्नस्य च तद्योगं शास्ति। १/१/१६
२०. अन्तस्मद्धर्मोपदेशात्। १/१/२०
२१. भेदव्यपदेशाच्चान्यः। १/१/२१
२२. आकाशस्तल्लिंगात्। १/१/२२
२३. अत एव प्राणः। १/१/२३
२४. ज्योतिश्चरणाभिधानात्। १/१/२४
२५. छान्दोऽभिधानान्नेति चेन्न तथा चेतोऽर्पणनिगदात् तथा हि दर्शनम्। १/१/२५
२६. भूतादिपादव्यपदेशोपपत्तेश्चैवम्। १/१/२६
२७. उपदेशभेदान्नेति चेन्नोभयस्मिन्नप्यविरोधात्। १/१/२७
२८. प्राणस्तथानुगमात्। १/१/२८
२६. न वक्तुरात्मोपदेशादिति चेदध्यात्मसम्बन्धभूमा ह्यस्मिन्। १/१/२६
३०. शास्त्रदृष्ट्या तूपदेशो वामदेववत्। १/१/३०
३१. जीवमुख्यप्राणलिंगान्नेति चेन्नोपासात्रैविध्यादाश्रितत्वादिह तद्योगात्। १/१/३१

दूसरा पाद

३२. सर्वत्र प्रसिद्धोपदेशात् ।। १/२/१
३३. विवक्षितगुणोपपत्तेश्च ।। १/२/२
३४. अनुपपत्तेस्तु न शारीरः ।। १/२/३
३५. कर्मकर्तृव्यपदेशाच्च ।। १/२/४

३६. शब्दविशेषात् ।। १/२/५
३७. स्मृतेश्च ।। १/२/६
३८. अर्भकौकस्त्वात्तद्व्यपदेशाच्च नेति चेन्न निचाय्यत्वादेवं व्योमवच्च ।। १/२/७
३९. सम्भोगप्राप्तिरिति चेन्न वैशेष्यात् ।। १/२/८
४०. अत्ता चराचरग्रहणात् ।। १/२/९
४१. प्रकरणाच्च ।। १/२/१०
४२. गुहां प्रविष्टावात्मानौ हि तद्दर्शनात् ।। १/२/११
४३. विशेषणाच्च ।। १/२/१२
४४. अन्तर उपपत्तेः ।। १/२/१३
४५. स्थानादिव्यपदेशाच्च ।। १/२/१४
४६. सुखविशिष्टाभिधानादेव च ।। १/२/१५
४७. श्रुतोपनिषत्कगत्यभिधानाच्च ।। १/२/१६
४८. अनवास्थितेरसम्भवाच्च नेतरः ।। १/२/१७
४९. अन्तर्याम्यधिदैवादिषु तद्धर्मव्यपदेशात् ।। १/२/१८
५०. न च स्मार्तमतद्धर्माभिलापात् ।। १/२/१९
५१. शारीरश्चोभयेऽपि हि भेदेनेनधीयते ।। १/२/२०
५२. अदृश्यत्वादिगुणको धर्मोक्तेः ।। १/२/२१
५३. विशेषणभेदव्यपदेशाभ्यान्र्च च नेतरौ ।। १/२/२२
५४. रूपोपन्यासाच्च ।। १/२/२३
५५. वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ।। १/२/२४
५६. स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ।। १/२/२५
५७. शब्दादिभ्योऽन्तःप्रतिष्ठानाच्च नेति चेन्न तथा दृष्ट्युपदेशादसम्भवात्पुरूषमपि चैनमधीयते ।।१/२/२६
५८. अत एव न देवता भूतं च ।।१/२/२७
५९. साक्षादप्यविरोधं जैमिनिः ।।१/२/२८
६०. अभिव्यक्तेरित्याश्मरथ्यः ।।१/२/२९
६१. अनुस्मृतेर्बादरि ।।१/२/३०
६२. सम्पत्तेरिति जैमिनिस्तथा हि दर्शयति ।।१/२/३१
६३. आमनन्ति चैनमस्मिन् ।।१/२/३२

तीसरा पाद

६४. द्युभ्वाद्यायतनं स्वशब्दात् ।।१/३/१
६५. मुक्तोपसृप्यव्यपदेशात् ।।१/३/२
६६. नानुमानमतच्छब्दात् ।।१/३/३
६७. प्राणभृच्च ।।१/३/४

६८. भेदव्यपदेशात् ।।१/३/५
६९. प्रकरणात् ।।१/३/६
७०. स्थित्यदनाभ्यां च ।।१/३/७
७१. भूमा सम्प्रसादादध्युपदेशात् ।।१/३/८
७२. धर्मोपपत्तेश्च ।।१/३/९
७३. अक्षरमम्बरान्तधृतेः ।।१/३/१०
७४. सा च प्रशासनात् ।।१/३/११
७५. अन्यभावव्यावृत्तेश्च ।।१/३/१२
७६. ईक्षतिकर्मव्यपदेशात् सः ।।१/३/१३
७७. दहर उत्तरेभ्यः ।।१/३/१४
७८. गतिशब्दाभ्यां तथा हि दृष्टं लिङ्गं च ।।१/३/१५
७९. धृतेश्च महिम्नोऽस्यास्मिन्नुपलब्धेः ।।१/३/१६
८०. प्रसिद्धेश्च ।।१/३/१७
८१. इतरपरामर्शात् स इति चेन्नासम्भवात् ।।१/३/१८
८२. उत्तराच्चेदाविर्भूतस्वरूपस्तु ।।१/३/१९
८३. अन्यार्थश्च परामर्शः ।।१/३/२०
८४. अल्पश्रुतेरिति चेत्तदुक्तम् ।।१/३/२१
८५. अनुकृतेस्तस्य च ।।१/३/२२
८६. अपि च स्मर्यते ।।१/३/२३
८७. शब्दादेव प्रमितः ।।१/३/२४
८८. हृद्यपेक्षया तु मनुष्याधिकारत्वात् ।।१/३/२५
८९. तदुपर्यपि बादारायणः सम्भवात् ।।१/३/२६
९०. विरोधः कर्मणीति चेन्नानेकप्रतिपत्तेर्दर्शनात् ।।१/३/२७
९१. शब्द इति चेन्नातः प्रभवात् प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।।१/३/२८
९२. अत एव च नित्यत्वम् ।।१/३/२९
९३. समान नामरूप त्वाच्चावृत्तावप्यविरोधो दर्शनात्स्मृतेश्च ।।१/३/३०
९४. मध्वादिष्वसम्भवादनधिकारं जैमिनिः ।।१/३/३१
९५. ज्योतिषि भावाच्च ।।१/३/३२
९६. भावं तु बादरायणोऽस्ति हि ।।१/३/३३
९७. शुगस्य तदनादरश्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते हि ।।१/३/३४
९८. क्षत्रियत्वगतेश्चोत्तरत्र चैत्ररथेन लिङ्गात् ।।१/३/३५
९९. संस्कारपरामर्शात् तदीावाभिलापाच्च ।।१/३/३६
१००. तदभावनिर्धारणे च प्रवृत्तेः ।।१/३/३७
१०१. श्रवणाध्ययनार्थप्रतिषेधात् स्मृतेश्च ।।१/३/३८

१०२. प्राणः कम्पनात् ।।१/३/३९
१०३. ज्योतिर्दर्शनात् ।।१/३/४०
१०४. आकाशोऽर्थान्तरत्वादिव्यपदेशात् ।।१/३/४१
१०५. सुषुप्त्युत्क्रान्त्यार्भेदेन ।।१/३/४२
१०६. पत्यादिशब्देभ्यः ।।१/३/४३

चतुर्थ पाद

१०७. आनुमानिकम्प्येकेषमिति चेन्न शरीररूपकविन्यस्तगृहीतेर्दर्शयति च ।।१/४/१
१०८. सूक्ष्मतं तु तदर्हत्वात् ।।१/४/२
१०९. तदधीनत्वादर्थवत् ।।१/४/३
११०. ज्ञेयत्वावचनाच्च ।।१/४/४
१११. वदतीति चेनन प्राज्ञो हि प्रकरणात्।।१/४/५
११३. त्रयाणामेव चैवमुपन्यासः प्रश्नश्च ।।१/४/६
११४. महद्वच्च ।।१/४/७
११५. चमसवदविशेषात् ।।१/४/८
११६. ज्योतिरूपक्रमात्तु तथा ह्यधीयत एके ।।१/४/९
११७. कल्पनोपदेशाच्च मध्वादिवदविरोधः ।।१/४/१०
११८. न सङ्ख्योपसङ्ग्रहादपि नानाभावादतिरेकाच्च ।।१/४/११
११९. प्राणादयो वाक्यशेषात् ।।१/४/१२
१२०. ज्योतिषैकेषामसत्यन्ने ।।१/४/१३
१२१. कारणत्वने चाकाशादिषु यथाव्यपदिष्टोक्तेः ।।१/४/१४
१२२. समाकर्षात् ।।१/४/१५
१२३. जगद्वाचित्वात् ।।१/४/१६
१२४. जीवमुख्यप्राणलिङ्गान्नेति चेत्तद्व्याख्यातम् ।।१/४/१७
१२५. अन्यार्थं तु जैमिनिः प्रश्नव्याख्यानाभ्यामपि चैवमेके ।।१/४/१८
१२६. वाक्यान्वयात् ।।१/४/१९
१२७. प्रतिज्ञासिद्धेर्लिङ्गमाश्मरथ्यः ।।१/४/२०
१२८. उत्क्रमिष्यत एवम्भावादित्यौडुलोमिः ।।१/४/२१
१२९. अवस्थितेरिति काशकृत्स्नः ।।१/४/२२
१३०. प्रकृतिश्च प्रतिज्ञादृष्टान्तानुपरोधात् ।।१/४/२३
१३१. अभिध्योपदेशाच्च ।।१/४/२४
१३२. साक्षाच्चोभयाम्नानात् ।।१/४/२५
१३३. आत्मकृतेः परिणामात् ।।१/४/२६
१३४. योनिश्च हि गीयते ।।१/४/२७

१३५. एतेन सर्वे व्याख्याता व्याख्याताः ।।१/४/२८

।। इति प्रथमोऽध्याः ।।

।। अथ द्वितीयोऽध्यायः ।।

प्रथमः पादः

१३६. स्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्ग इति चेन्नान्यस्मृत्यनवकाशदोषप्रसङ्गात् ।।१।।
१३७. इतरेषां चानुपलब्धेः ।।२।।
१३८. एतेन योगः प्रत्युक्तः ।।३।।
१३९. न विलक्षणत्वादस्य तथात्व च शब्दात् ।।४।।
१४०. अभिमाननित्यपदेशस्तु विशेषानुगतिभ्याम्।।५।।
१४१. दृश्यते तु ।।६।।
१४२. असदिति चेन्न प्रतिषेधमात्रत्वात् ।।७।।
१४३. अपीतौ तद्वत्प्रसङ्गादसमंजसम् ।।८।।
१४४. न तु दृष्टान्तभावात् ।।९।।
१४५. स्वपक्षदोषाच्च ।।१०।।
१४६. तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथाऽनुमेयमिति च देवमप्यविमोक्षप्रसङ्गः ।।११।।
१४७. एतेन शिष्टाऽपरिग्रहा अपि व्याख्याताः ।।१२।।
१४८. भोक्त्रापत्तेरविभागश्चेत् स्याल्लोकवत् ।।१३।।
१४९. तदनन्यत्वमारम्भणशब्दादिभ्यः ।।१४।।
१५०. भावे चोपलब्धेः ।।१५।।
१५१. सत्त्वाच्चावरस्य ।।१६।।
१५२. असद्व्यपदेशान्नेति चेन्न धर्मान्तरेण वाक्यशेषात् ।।१७।।
१५३. युक्तेः शब्दान्तराच्च ।।१८।।
१५४. पटवच्च ।।१९।।
१५५. यथा च प्राणादि ।।२०।।
१५६. इतरव्यपदेशाद्धिताकरणादिदोषप्रसक्तिः ।।२१।।
१५७. अधिकं तु भेदनिर्देशात् ।।२२।।
१५८. अश्मादिवच्च तदनुपपत्तिः ।।२३।।
१५९. उपसंहारदर्शनान्नेति चेन्न क्षीरवद्धि ।।२४।।
१६०. देवादिवदपि लोके ।।२५।।
१६१. कृत्स्नप्रसक्तिनिरवयवत्वशब्कोपो वा ।।२६।।
१६२. श्रुतेस्तु शब्दमूलत्वात् ।।२७।।
१६३. आत्मनि चैवं विचित्राश्च हि ।।२८।।
१६४. स्वपक्षदोषाच्च ।।२९।।

१६५. सर्वोपेता च तद्दर्शनात् ।।३०।।
१६६. विकरणत्वान्नेति चेत् तदुक्तम् ।।३१।।
१६७. न प्रयोजनवत्त्वात् ।।३२।।
१६८. लोकवत्तु लीलाकैवल्यम् ।।३३।।
१६९. वैषम्यनैर्घृण्ये न सापेक्षत्वात् तथा हि दर्शयति ।।३४।।
१७०. कर्माविभागादिति चेन्नानादित्वात् ।।३५।।
१७१. उपपद्यते चाप्युपलभ्यते च ।।३६।।
१७२. सर्वधर्मोपपत्तेश्च ।।३७।।

द्वितीय पादः

१७३. रचनानुपपत्तेश्च नानुमानम् ।।१।।
१७४. प्रवृत्तेश्च ।।२।।
१७५. पयोऽम्बुवच्चेत् तत्रापि ।।३।।
१७६. व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ।।४।।
१७७. अन्यत्राभावाच्च न तृणादिवत् ।।५।।
१७८. अभ्युपगमेऽप्यर्थाभावात् ।।६।।
१७९. पुरूषाश्मवदिति चेत् तथापि ।।७।।
१८०. अङ्गित्वानुपपत्तेः च।।८।।
१८१. अन्यथाऽनुमितौ च ज्ञशक्तिवियोगात् ।।९।।
१८२. विप्रतिषेधाच्चासमंजसम् ।।१०।।
१८३. महद्दीर्घवद् वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम् ।।११।।
१८४. उभयथाऽपि न कर्मातस्तदभावः ।।१२।।
१८५. समवायाभ्युपगमाच्च साम्यादनवस्थितेः ।।१३।।
१८६. नित्यमेव च भावात् ।।१४।।
१८७. रूपादिमत्त्वाच्च विपर्ययो दर्शनात् ।।१५।।
१८८. उभयथा च दोषात् ।।१६।।
१८९. अपिरग्रहाच्चात्यन्तमनपेक्षा ।।१७।।
१९०. समुदाय उभयहेतुकेऽति तदप्राप्तिः ।।१८।।
१९१. इतरेतरप्रत्ययत्वादिति चेन्नोत्पत्तिमात्रनिमित्तत्वात् ।।१९।।
१९२. उत्तरोत्पादे च पूर्वनिरोधात् ।।२०।।
१९३. असति प्रतिज्ञोपरोधो यौगपद्यमन्यथा ।।२१।।
१९४. प्रतिसङ्ख्याप्रतिसङ्ख्यानिरोधप्राप्तिरविच्छेदात् ।।२२।।
१९५. उभयथा च दोषात् ।।२३।।
१९६. आकाशे चाविशेषात् ।।२४।।

१६७. अनुस्मृतेश्च ।।२५।।
१६८. नासतोऽदृष्टत्वात् ।।२६।।
१६६. उदासीनानामपि चैवं सिद्धिः ।।२७।।
२००. नाभाव उपलब्धेः ।।२८।।
२०१. वैधर्म्याच्च न स्वप्नादिवत् ।।२६।।
२०२. न भावोऽनुपलब्धेः ।।३०।।
२०३. क्षणिकत्वाच्च ।।३१।।
२०४. सर्वथाऽनुपपत्तेश्च ।।३२।।
२०५. नैकस्मिननसम्भवात् ।।३३।।
२०६. एवंचाऽत्माकात्स्र्न्यम् ।।३४।।
२०७. न च पर्यायादप्यविरोधो विकारादिभ्यः ।।३५।।
२०८. अन्त्यावस्थितेश्चोभयनित्यत्वादविशेषः ।।३६।।
२०६. पत्युरसामंजस्यात् ।।३७।।
२१०. सम्बन्धानुपपत्तेश्च ।।३८।।
२११. अधिष्ठानानुपपत्तेश्च ।।३६।।
२१२. करणवच्चेन्न भोगादिभ्यः ।।४०।।
२१३. अन्तवत्त्वमसर्वज्ञता वा ।।४१।।
२१४. उप्तत्तयसम्भवात् ।।४२।।
२१५. न च कर्तुः करणम् ।।४३।।
२१६. विज्ञानादिभावे वा तदप्रतिषेधः ।।४४।।
२१७. विप्रतिषेधाच्च ।।४५।।

तृतीय पादः

२१८. न वियदश्रुतेः ।।१।।
२१६. अस्ति तु ।।२।।
२२०. गौण्यसम्भवात् ।।३।।
२२१. शब्दाच्च ।।४।।
२२२. स्याच्चैकस्य ब्रह्मशब्दवत् ।।५।।
२२३. प्रतिज्ञाऽहानिरव्यतिरेकाच्छब्देभ्यः ।।६।।
२२४. यावद्विकारं तु विभागो लोकवत् ।।७।।
२२५. एतेन मातरिश्वा व्याख्यातः ।।८।।
२२६. असम्भवस्तु सतोऽनुपपत्तेः ।।६।।
२२७. तेजोऽतस्तथा ह्याह ।।१०।।
२२८. आपः ।।११।।

२२६. पृथिव्यधिकाररूपशब्दान्तरेभ्यः ।।१२।।
२३०. तदभिध्यानादेव तु तल्लिङ्गात् सः ।।१३।।
२३१. विपर्ययेण तु क्रमोऽत उपपद्यते च ।।१४।।
२३२. अन्तरा विज्ञानमनसी क्रमेण तल्लिङ्गादिति चेन्नाविशेषात् ।।१५।।
२३३. चराचरव्यपाश्रयस्तु तद्व्यपदेशो भाक्तस्तद्भावभावित्वात् ।।१६।।
२३४. नात्माऽश्रुतेर्नित्यत्वाच्च ताभ्यः ।।१७।।
२३५. ज्ञोऽत एव ।।१८।।
२३६. उत्क्रान्तिगत्यागतीनाम् ।।१६।।
२३७. स्वात्मना चोत्तरयोः ।।२०।।
२३८. नाणुरतच्छुतेरिति चेन्नेतराधिकारात् ।।२१।।
२३६. स्वशब्दानुमानाभ्यां च ।।२२।।
२४०. अविरोधश्चन्दनवत् ।।२३।।
२४१. अवस्थितिवैशेष्यादिति चेन्नाध्युपगमाद्हृदि हि ।।२४।।
२४२. गुणद्वा लोकवत् ।।२५।।
२४३. व्यतिरेको गन्धवत् ।।२६।।
२४४. तथा च दर्शयति ।।२७।।
२४५. पृथगुपदेशात् ।।२८।।
२४६. तद्गुणसारत्वात्तु तद्व्यपदेशः प्राज्ञवत् ।।२६।।
२४७. यावदात्मभावित्वाच्च न दोषस्तद्दर्शनात् ।।३०।।
२४८. पुंस्त्वादिवत्त्वस्य सतोऽभिव्यक्तियोगात् ।।३१।।
२४६. नित्योपलब्ध्यनुपलब्धिप्रसंगोऽन्यतरनियमो वान्यथा ।।३२।।
२५०. कर्ता शास्त्रार्थवत्त्वात् ।।३३।।
२५१. विहारोपदरेशात् ।।३४।।
२५२. उपादानात् ।।३५।।
२५३. व्यपदेशाच्च क्रियायां न चेन्निर्देशषविपर्ययः ।।३६।।
२५४. उपलब्धिवदनियमः ।।३७।।
२५५. शक्तिविपर्ययात् ।।३८।।
२५६. समाध्यभावाच्च ।।३६।।
२५७. यथा च तक्षोभयथा ।।४०।।
२५८. परात्तु तच्छुतेः ।।४१।।
२५६. कृतप्रयत्नापेक्षस्तु विहितप्रतिषिद्धावैयर्थ्या दिभ्यः ।।४२।।
२६०. अंशो नानाव्यपदेशादन्यथा चापि दाशकितवादित्व मधीयत एके ।।४३।।
२६१. मन्त्रवर्णाच्च ।।४४।।
२६२. अपि च स्मर्यते ।।४५।।

२६३. प्रकाशादिवन्नैवं परः ।।४६।।
२६४. स्मरन्ति च ।।४७।।
२६५. अनुज्ञापरिहारौ देहसम्बन्धाज्ज्योतिरादिवत् ।।४८।।
२६६. असंततेश्चाव्यतिकरः ।।४६।।
२६७. आभासा एव च ।।५०।।
२६८. अदृष्टानियमात् ।।५१।।
२६६. अभिसन्ध्यादिष्वपि चैवम् ।।५२।।
२७०. प्रदेशादिति चेन्नान्तर्भावात् ।।५३।।

चतुर्थ पादः

२७१. तथा प्राणाः ।।१।।
२७२. गौण्यसम्भवात् ।।२।।
२७३. तत्प्राक् श्रुतेश्च ।।३।।
२७४. तत्पूर्वकत्वाद्वाचः ।।४।।
२७५. सप्त गतेर्विशेषितत्वाच्च ।।५।।
२७६. हस्तादयस्तु स्थितेऽतो नैवम् ।।६।।
२७७. अणवश्च ।।७।।
२७८. श्रेष्ठश्च ।।८।।
२७६. न वायुक्रिये पृथगुपदेशात् ।।६।।
२८०. चक्षुरादिवत्तु तत्सहशिष्ट्यादिभ्यः ।।१०।।
२८१. अकरणत्वाच्च न दोषस्तथा हि दर्शयति ।।११।।
२८२. पंचवृत्तिर्मनोवद् व्यपदिश्यते ।।१२।।
२८३. अणुश्च ।।१३।।
२८४. ज्योतिराद्यधिष्ठानं तु तदामननात् ।।१४।।
२८५. प्राणवता शब्दात् ।।१५।।
२८६. तस्य च नित्यत्वात् ।।१६।।
२८७. त इन्द्रियाणि तद्व्यपदेशादन्यत्र श्रेष्ठात् ।।१७।।
२८८. भेदश्रुतेः ।।१८।।
२८६. वैलक्षण्याच्च ।।१६।।
२६०. संज्ञामूर्तिक्लृप्तिस्तु त्रिवृत्कुर्वत उपदेशात् ।।२०।।
२६१. मांसादि भौमं यथाशब्दमितरयोश्च ।।२१।।
२६२. वैशेष्यात्तु तद्वादस्तद्वादः ।।२२।।

।। इति द्वितीयोऽध्यायः ।।

।। अथ तृतीयऽध्यायः ।।

प्रथम पादः

२६३. तदन्तरप्रतिपत्तौ रंहति सम्परिष्वक्त प्रश्ननिरूपणाभ्याम् ।।१।।
२६४. त्र्यात्मकत्वात्तु भूयस्त्वात् ।।२।।
२६५. प्राणगतेश्च ।।३।।
२६६. अग्न्यादिगतिश्रुतेरिति चेन्न भाक्तत्वात् ।।४।।
२६७. प्रथमेऽश्रवणादिति चेन्न ता एव ह्युपपत्तेः ।।५।।
२६८. अश्रुतत्वादिति चेन्नेष्टादिकारिणां प्रतीतेः ।।६।।
२६९. भाक्तं वानात्मवित्त्वात्तथा हि दर्शयति ।।७।।
३००. कृतात्ययेऽनुशयवान्दृष्टस्मृतिभ्यां यथेतमनेवं च ।।८।।
३०१. चरणादिति चेन्नोपलक्षणार्थेति कार्ष्णाजिनिः ।।९।।
३०२. आनर्थक्यमिति चेन्न तदपेक्षत्वात् ।।१०।।
३०३. सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ।।११।।
३०४. अनिष्टादिकारिणामपि च श्रुतम् ।।१२।।
३०५. संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ।।१३।।
३०६. स्मरन्ति च ।।१४।।
३०७. अपि च सप्त ।।१५।।
३०८. तत्रापि च तद्व्यापारादविरोधः ।।१६।।
३०८. विद्याकर्मणोरिति तु प्रकृतत्वात् ।।१७।।
३०९. न तृतीये तथोपलब्धेः ।।१८।।
३१०. स्मर्यतेऽपि च लोके ।।१९।।
३११. दर्शनाच्च ।।२०।।
३१२. तृतीयशब्दावरोधः संशोकजस्य ।।२१।।
३१३. तत्साभाव्यापत्तिरुपपत्तेः ।।२२।।
३१४. नातिचिरेण विशेषात् ।।२३।।
३१५. अन्याधिष्ठितेषु पूर्ववदभिलापात् ।।२४।।
३१६. अशुद्धमिति चेन्न शब्दात् ।।२५।।
३१७. रेतः सिग्योगोऽथ ।।२६।।
३१८. योनेः शरीरम् ।।२७।।

।। इति प्रथम पादः ।।

द्वितीय पादः

३१९. संध्ये सृष्टिराह हि ।।१।।
३२०. निर्मातारं चैके पुत्रादयश्च ।।२।।
३२१. मायामात्रं तु कार्त्स्न्येनानभिव्यक्तस्वरूपत्वात् ।।३।।
३२२. सूचकश्च हि श्रुतेराचक्षते च तद्विदः ।।४।।
३२३. पराभिध्यानात्तु तिरोहितं ततो ह्यस्य बन्धविपर्ययौ ।।५।।

३२४. देहयोगाद्व सोऽपि ।।६।।
३२५. तदभावो नाडीषु तच्छ्रुतेरात्मनि च ।।७।।
३२६. अतः प्रबोधोऽस्मात् ।।८।।
३२७. स एव तु कर्मानुस्मृतिशब्दविधिभ्यः ।।६।।
३२८. मुग्धेऽर्द्धसम्पत्तिः परिशेषात् ।।१०।।
३२६. न स्थानतोऽपि परस्योभयलिङ्गं सर्वत्र हि ।।११।।
३३०. न भेदादिति चेन्न प्रत्येकमतद्वचनात् ।।१२।।
३३१. अपि चैवमेके ।।१३।।
३३२. अरूपवदेव हि तत्प्रधानत्वात् ।।१४।।
३३३. प्रकाशवच्चावैयर्थ्यात् ।।१५।।
३३४. आह च तन्मात्रम् ।।१६।।
३३५. दर्शयति चाथो अपि स्मर्यते ।।१७।।
३३६. अत एव चोपमा सूर्यकादिवत् ।।१८।।
३३७. अम्बुवदग्रहणात्तु न तथात्वम् ।।१६।।
३३८. वृद्धिह्रासभाक्त्वमन्तर्भावादुभयसामंजस्यादेवम् ।।२०।।
३३६. दर्शनाच्च ।।२१।।
३४०. प्रकृतैतावत्त्वं प्रतिषेधति ततो ब्रवीति च भूयः ।।२२।।
३४१. तदव्यक्तमाह हि ।।२३।।
३४२. अपि संराधने प्रत्यक्षानुमानाभ्याम् ।।२४।।
३४३. प्रकाशादिवच्चवैशेष्यं प्रकाशश्च कर्मण्यभ्यासात् ।।२५।।
३४४. अतोऽनन्तेन तथा हि लिङ्गम् ।।२६।।
३४५. उभयव्यपदेशात्त्वहिकुण्डलवत् ।।२७।।
३४६. प्रकाशाश्रयवद्वा तेजस्त्वात् ।।२८।।
३४७. पूर्ववद्वा ।।२६।।
३४८. प्रतिषेधाच्च ।।३०।।
३४६. सामान्यात्तु ।।३२।।
३५०. बुद्ध्यर्थः पादवत् ।।३३।।
३५१. स्थानविशेषात् प्रकाशादिवत् ।।३४।।
३५२. उपपत्तेश्च ।।३५।।
३५३. तथान्यप्रतिषेधात् ।।३६।।
३५४. अनेन सर्वगतत्वमायामशब्दादिभ्यः ।।३७।।
३५५. फलमत उपपत्तेः ।।३८।।
३५६. श्रुतत्वाच्च ।।३६।।
३५७. धर्मं जैमिनिरत एव ।।४०।।

३५८. पूर्वं तु बादरायणो हेतुव्यपदेशात् ।।४१।।

।। इति द्वितीयो पादः ।।

तृतीय पाद

३५९. सर्ववेदान्तप्रत्यं चोदनाद्यविशेषात् ।।१।।
३६०. भेदान्नेति चैन्नैकस्यामपि ।।२।।
३६१. स्वाध्यायस्य तथात्वेन हि समाचारेधिकाराच्च सववच्च तन्नियमः ।।३।।
३६२. दर्शयति च ।।४।।
३६३. उपसंहारोऽर्थाभेदाद्विधिशेषवत्समाने च ।।५।।
३६४. अन्यथात्वं शब्दादिति चेन्नाविशेषात् ।।६।।
३६५. न वा प्रकरणभेदात्परो वरीयस्त्वादिवत् ।।७।।
३६६. संज्ञातश्चेत्तदुक्तमस्ति तु तदपि ।।८।।
३६७. व्याप्तेश्च समंजसम् ।।९।।
३६८. सर्वाभेदादन्यत्रेमे ।।१०।।
३६९. आनन्दादयः प्रधानस्य ।।११।।
३७०. प्रियशिरस्त्वाद्यप्राप्तिरूपचयापचयौ हि भेदे ।।१२।।
३७१. इतरे त्वर्थसामान्यात् ।।१३।।
३७२. आध्यानाय प्रयोजनाभावात् ।।१४।।
३७३. आत्मशब्दाच्च ।।१५।।
३७४. आत्मगह्रीतिरितरवदुत्तरात् ।।१६।।
३७५. अन्वयादिति चेत्स्यादवधारणात् ।।१७।।
३७६. कार्याख्यानादपूर्वम् ।।१८।।
३७७. समान एवं चाभेदात् ।।१९।।
३७८. सम्बन्धादेवमन्यत्रापि ।।२०।।
३७९. न वा विशेषात् ।।२१।।
३८०. दर्शयति च ।।२२।।
३८१. सम्भृतिद्युव्याप्त्यपि चातः ।।२३।।
३८२. पुरुषविद्यायामिव चेतरेषामनाम्नानात् ।।२४।।
३८३. वेधाद्यर्थभेदात् ।।२५।।
३८४. हानौ तूपायनशब्दशेषत्वात्कुशाच्छन्दस्तुत्युप गानवत्तदुक्तम् ।।२६।।
३८५. साम्पराये तर्तव्याभावात्तथा ह्यन्ये ।।२७।।
३८६. छन्दत उभयाविरोधात् ।।२८।।
३८७. गतेरर्थवत्त्वमुभयथाऽन्यथा हि विरोधः ।।२९।।
३८८. उपपन्नस्तल्लक्षणार्थोपलब्धेर्लोकवत् ।।३०।।
३८९. अनियमः सर्वासामविरोधः शब्दानुमानाभ्याम् ।।३१।।

३६०. यावदधिकारमवस्थितिराधिकारिकाणाम् ।।३२।।
३६१. अक्षरधियां त्ववरोधः सामान्यतद्भावाभ्यामौपसदवत्तदुक्तम् ।।३३।।
३६२. इयादामननात् ।।३४।।
३६३. अन्तरा भूतग्रामवत्स्वात्मनः ।।३५।।
३६४. अन्यथाभेदानुपपत्तिरिति चेन्नोपदेशान्तरवत् ।।३६।।
३६५. व्यतिहारो विशिंषन्ति हीतरवत् ।।३७।।
३६६. सैव हि सत्यादयः ।।३८।।
३६७. कामादीतरत्र तत्र चायतनादिभ्यः ।।३६।।
३६८. आदरादलोपः ।।४०।।
३६६. उपस्थितेऽतस्तद्वचनात् ।।४१।।
४००. तन्निर्धारणानियमस्तद्दृष्टेः पृथग्घ्यप्रतिबन्धः फलम् ।।४२।।
४०१. प्रदानवदेव तदुक्तम् ।।४३।।
४०२. लिंगभूयस्त्वात्तद्धि बलीयस्तदपि ।।४४।।
४०३. पूर्वविकल्पः प्रकरणात्स्यात् क्रियामानसवत् ।।४५।।
४०४. अतिदेशाच्च ।।४६।।
४०५. विद्यैव तु निर्धारणात् ।।४७।।
४०६. दर्शनाच्च ।।४८।।
४०७. श्रुत्यादिबलीयस्त्वाच्च न बाधः ।।४६।।
४०८. अनुबन्धादिभ्यः प्रज्ञान्तरपृथक्त्ववद् दृष्टश्च तदुक्तम् ।।५०।।
४०६. न सामान्यादप्युपलब्धेर्मृत्युवन्न हि लोकापत्तिः ।।५१।।
४१०. परेण च शब्दस्य ताद्विध्यं भूयस्त्वात्त्वनुबन्धः ।।५२।।
४११. एक आत्मनः शरीरे भावात् ।।५३।।
४१२. व्यतिरेकस्तद्भावाभावित्वान्न तूपलब्धिवत् ।।५४।।
४१३. अंगावबद्धास्तु न शाखासु हि प्रतिवेदम् ।।५५।।
४१४. मन्त्रादिवद्वाऽविरोधः ।।५६।।
४१५. भूम्नः क्रतुवज्ज्यायस्त्वं तथा हि दर्शयति ।।५७।।
४१६. नाना शब्दादिभेदात् ।।५८।।
४१७. विकल्पोऽविशिष्टफलत्वात् ।।५६।।
४१८. काम्यास्तु यथकामं समुच्चीयेरन्न वा पूर्व हेत्वभावात् ।।६०।।
४१६. अंगेषु यथाश्रयभावः ।।६१।।
४२०. शिष्टेश्च ।।६२।।
४२१. समाहारात् ।।६३।।
४२२. गुणसाधारण्यश्रुतेश्च ।।६४।।
४२३. न वा तत्सहभावाश्रुतेः ।।६५।।

४२४. दर्शनाच्च ।।६६।।

।। इति तृतीय पादः ।।

चतुर्थ पादः

४२५. पुरुषार्थोऽतश्शब्दादिति बादरायणः ।।१।।
४२६. शेषत्वात्पुरुषार्थवादो यथान्येविष्वति जैमिनिः ।।२।।
४२७. आचारदर्शनात् ।।३।।
४२८. तच्छ्रुतेः ।।४।।
४२६. समन्वारम्भणात् ।।५।।
४३०. तद्वतो विधानात् ।।६।।
४३१. नियामाच्च ।।७।।
४३२. अधिकोपदेशात्तु बादरायणस्यैवं तद्दर्शनात् ।।८।।
४३३. तुल्यं तु दर्शनम् ।।६।।
४३४. असार्वत्रिकी ।।१०।।
४३५. विभागः शतवत् ।।११।।
४३६. अध्ययनमात्रवतः ।।१२।।
४३७. नाविशेषात् ।।१३।।
४३८. स्तुतयेऽनुमतिर्वा ।।१४।।
४३६. कामकारेण चैके ।।१५।।
४४०. उपमर्दं च ।।१६।।
४४१. ऊर्ध्वरेतस्सु च शब्दे हि ।।१७।।
४४२. परामर्शं जैमिनिरचोदना चापवदति हि ।।१८।।
४४३. अनुष्ठेयं बादरायणः साम्यश्रुतेः ।।१६।।
४४४. विधिर्वा धारणवत् ।।२०।।
४४५. स्तुतिमात्रमुपादानादिति चेन्नापूर्वत्वात् ।।२१।।
४४६. भावशब्दाच्च ।।२२।।
४४७. पारिप्लवार्था इति चेन्न विशेषितत्वात् ।।२३।।
४४८. तथा चैकवाक्यतोपबन्धात् ।।२४।।
४४६. अतएव चाग्नीन्धनाद्यनपेक्षा ।।२५।।
४५०. सर्वापेक्षा च यज्ञादिश्रुतेरश्ववत् ।।२६।।
४५१. शमदमाद्युपेतः स्यात्तथापि तु तद्विधेस्तदंगतया तेषामवश्यानुष्ठेयत्वात् ।।२७।।
४५२. सर्वान्नानुमतिश्च प्राणात्यये तद्दर्शनात् ।।२८।।
४५३. अबाधाच्च ।।२६।।
४५४. अपि च स्मर्यते ।।३०।।
४५५. शब्दश्चातोऽकामकारे ।।३१।।

४५६. विहितत्वाच्चाश्रमकर्मापि ।।३२।।
४५७. सहकारित्वेन च ।।३३।।
४५८. सर्वथापि त एवोभयलिंगात् ।।३४।।
४५६. अनभिभवं च दर्शयति ।।३५।।
४६०. अन्तरा चापि तु तद्दृष्टेः ।।३६।।
४६१. अपि च स्मर्यते ।।३७।।
४६२. विशेषानुग्रहश्च ।।३८।।
४६३. अतस्त्वितरज्यायो लिंगाच्च ।।३६।।
४६४. तद्भूतस्य नातद्भावो जैमिनेरपि नियमात द्रूपाभावेभ्यः ।।४०।।
४६५. नाधिकारिकमपि पतनानुमानात्तदयोगात् ।।४१।।
४६६. उपपूर्वमपि त्वेके भावमशनवत्तदुक्तम् ।।४२।।
४६७. बहिस्तूभयथापि स्मृतेराचाराच्च ।।४३।।
४६८. स्वामिनः फलश्रुतेरित्यात्रेयः ।।४४।।
४६६. आर्त्त्विज्यमित्यौडुलोमिस्तस्मै हि परिक्रीयते ।।४५।।
४७०. श्रुतेश्च ।।४६।।
४७१. सहकार्यन्तरविधिः पक्षेण तृतीयं तद्वतो विध्यादिवत् ।।४७।।
४७२. कृत्स्नभावात्तु गृहिणोपसंहारः ।।४८।।
४७३. मौनवदितरेषामप्युपदेशात् ।।४६।।
४७४. अनाविष्कुर्वन्नन्वयात् ।।५०।।
४७५. ऐहिकमप्यप्रस्तुतप्रतिबन्धे तद्दर्शनात् ।।५१।।
४७६. एवं मुक्तिफलानियमस्तदवस्थावधृतेस्त दवस्थावधृतेः ।।५२।।

।। इति चतुर्थः पादः ।।

अथः चतुर्थऽध्यायः

प्रथम पादः

४७७. आवृत्तिरसकृदुपदेशात् ।।१।।
४७८. लिंगाच्च ।।२।।
४७६. आत्मेति तूपगच्छन्ति ग्राहयन्ति च ।।३।।
४८०. न प्रतीके न हि सः ।।४।।
४८१. ब्रह्मदृष्टिरुत्कर्षात् ।।५।।
४८२. आदित्यादिमतयश्चांग उपपत्तेः ।।६।।
४८३. आसीनः सम्भवात् ।।७।।
४८४. ध्यानाच्च ।।८।।
४८५. अचलत्वं चापेक्ष्य ।।६।।
४८६. स्मरन्ति च ।।१०।।

४८७. यत्रैकाग्रता तत्राविशेषात् ।।११।।
४८८. आ प्रायणात्तत्रापि हि दृष्टम् ।।१२।।
४८९. तदधिगम उत्तपूर्वाघयोरश्लेषविनाशौ तद्व्यपदेशात् ।।१३।।
४९०. इतरस्याप्येवमसंश्लेषः पाते तु ।।१४।।
४९१. अनारब्धकार्ये एव तु पूर्वे तदवधेः ।।१५।।
४९२. अग्निहोत्रादि तु तत्कार्यायैव तद्दर्शनात् ।।१६।।
४९३. अतोऽन्यापि ह्येकेषामुभयोः ।।१७।।
४९४. यदेव विद्ययेति हि ।।१८।।
४९५. भोगेन त्वितरे क्षपयित्वा सम्पद्यते ।।१९।।

।। इति प्रथम पादः ।।

द्वितीय पादः

४९६. वाङ्मनसि दर्शनाच्छब्दाच्च ।।१।।
४९७. अत एव च सर्वाण्यनु ।।२।।
४९८. तन्मनः प्राण उत्तरात् ।।३।।
४९९. सोऽध्यक्षे तदुपगमादिभ्यः ।।४।।
५००. भूतेषु तच्छ्रुतेः ।।५।।
५०१. नैकस्मिन्दर्शयतो हि ।।६।।
५०२. समाना चासृत्युपक्रमादमृतत्वं चानुपोष्य ।।७।।
५०३. तदापीतेः संसारव्यपदेशात् ।।८।।
५०४. सूक्ष्मं प्रमाणतश्च तथोपलब्धेः ।।९।।
५०५. नोपमर्देनातः ।।१०।।
५०६. अस्यैव चोपपत्तेरेष ऊष्मा ।।११।।
५०७. प्रतिषेधादिति चेन्न शारीरात् ।।१२।।
५०८. स्पष्टो ह्येकेषाम् ।।१३।।
५०९. स्मर्यते च ।।१४।।
५१०. तानि परे तथा ह्याह ।।१५।।
५११. अविभागो वचनात् ।।१६।।
५१२. तदोकोऽग्रज्वलनं तत्प्रकाशितद्वारो विद्यासामर्थ्यात्तच्छेषगत्यनुस्मृतियोगाच्च हार्दानुगृहीतः शताधिकया ।।१७।।
५१३. रश्म्यनुसारी ।।१८।।
५१४. निशि नेति चेन्न सम्बन्धस्य यावद्देहभावित्वा द्दर्शयति च ।।१९।।
५१५. अतश्चायनेऽपि दक्षिणे ।।२०।।
५१६. योगिनः प्रति च स्मर्यते स्मार्ते चैते ।।२१।।

।। इति द्वितीय पादः ।।

तृतीय पादः

५१७. अर्चिरादिना तत्प्रथितेः ।।१।।
५१८. वायुमब्दादविशेविशेषाभ्याम् ।।२।।
५१९. तडितोऽधि वरूणः सम्बन्धात् ।।३।।
५२०. आतिवाहिकास्तल्लिंगात् ।।४।।
५२१. उभयव्यामोहात्तत्सिद्धेः ।।५।।
५२२. वैद्युतेनैव ततस्तच्छ्रुतेः ।।६।।
५२३. कार्य बादरिरस्य गत्युपपत्तेः ।।७।।
५२४. विशेषितत्वाच्च ।।८।।
५२५. सामीप्यात्तु तद्व्यपदेशः ।।९।।
५२६. कार्यात्यये तदध्यक्षेण सहातः परमभिधानात् ।।१०।।
५२७. स्मृतेश्च ।।११।।
५२८. परं जैमिनिर्मुख्यत्वात् ।।१२।।
५२९. दर्शनाच्च ।।१३।।
५३०. न च कार्ये प्रतिपत्त्यभिसन्धिः ।।१४।।
५३१. अप्रतीकालम्बनान्नयतीति बादरायण उभयथा दोषात्तत्क्रतुश्च ।।१५।।
५३२. विशेषं च दर्शयति ।।१६।।

।। इति तृतीय पादः ।।

चतुर्थः पादः

५३३. सम्पद्याविर्भावः स्वेन शब्दात् ।।१।।
५३४. मुक्तः प्रतिज्ञानात् ।।२।।
५३५. आत्मा प्रकरणात् ।।३।।
५३६. अविभागेन दृष्टत्वात् ।।४।।
५३७. ब्राह्मेण जैमिनिरुपन्यासादिभ्यः ।।५।।
५३८. चितितन्मात्रेण तदात्मकत्वादित्यौडुलोमिः ।।६।।
५३९. एवमप्युपन्यासात् पूर्वभावादविरोधं बादरायणः ।।७।।
५४०. संकल्पादेव तु तच्छ्रुतेः ।।८।।
५४१. अत एव चानन्याधिपतिः ।।९।।
५४२. अभावं बादरिराह ह्येवम् ।।१०।।
५४३. भावं जैमिनिर्विकल्पामननात् ।।११।।
५४४. द्वादशाहवदुभयविधं बादरायणोऽतः ।।१२।।
५४५. तन्वभवे संध्यवदुपपत्तेः ।।१३।।
५४६. भावे जाग्रद्वत् ।।१४।।
५४७. प्रदीपवदावेशस्तथा हि दर्शयति ।।१५।।

५४८. स्वाप्ययसम्पत्त्योरन्यतरापेक्षमाविष्कृतं हि ।।१६।।
५४६. जगद्व्यापारवर्जं प्रकरणादसन्निहितत्वाच्च ।।१७।।
५५०. प्रत्यक्षोपदेशादिति चेन्नाधिकारिकमण्डल स्थोक्तेः ।।१८।।
५५१. विकारावर्ति च तथा हि स्थितिमाह ।।१६।।
५५२. दर्शयतश्चैवं प्रत्यक्षानुमाने ।।२०।।
५५३. भोगमात्रसाम्यलिंगाच्च ।।२१।।
५५४. अनावृत्तिः शब्दादनावृत्तिः शब्दात् ।।२२।।

।। इति ।।

,,,

अष्टाध्यायीसूत्रपाठः

अथ शब्दानुशासनम्

अइउण् । ऋलृक् । एओङ् । ऐऔच् । हयवरट् । लण् । ञमङणनम् । झभञ् । घढधष् । जबगडदश् । खफछठथचटतव् । कपय् । शषसर् । हल् ।। इति प्रत्याहारसूत्राणि ।।

प्रथमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१. वृद्धिरादैच् ।।१।।
२. अदेङ् गुणः ।।२।।
३. इको गुणवृद्धी ।।३।।
४. हलोऽनन्तराः संयोगः ।।७।।
५. मुखनासिकावचनोऽनुनासिकः ।।८।।
६. तुल्यास्यप्रयत्नं सवर्णम् ।।६।।
७. तृतीयासमासे ।।२६।।
८. द्वन्द्वे च ।।३०।।
६. स्वरादिनीपातमव्ययम् ।।३६।।
१०. इग् यणः सम्प्रसारणम् ।।४४।।
११. आद्यन्तौ टकितौ ।।४५।।
१२. मिदचोऽन्त्यात् परः ।।४६।।
१३. प्रत्ययस्य लुक्श्लुलुपः ।।६०।।
१४. अचोऽन्त्यादि टि ।।६३।।
१५. अलोऽन्त्यात् पूर्व उपधा ।।६४।।

द्वितीयः पादः

१६. सार्वधातुकमपित् ।।४।।
१७. ऊकालोऽज्झ्रस्वदीर्घप्लुतः ।।२७।।
१८. समाहारः स्वरितः ।।३१।।
१६. तस्यादित उदात्तमर्धह्रस्वम् ।।३२।।
२०. स्वरितात् संहितायामनुदात्तानाम् ।।३६।।
२१. उदात्तस्वरितपरस्य सन्नतरः ।।४०।।
२२. अपृक्त एकाल्प्रत्ययः ।।४१।।
२३. तत्पुरुषः समानाधिकरणः कर्मधारयः ।।४२।।
२४. प्रथमानिर्दिष्टं समास उपसर्जनम् ।।४३।।
२५. अर्थवदधातुरप्रत्ययः प्राति पदिकम् ।।४५।।
२६. कृत्तद्धितसमासाश्च ।।४६।।
२७. प्रधानप्रत्यार्थवचनमर्थस्यान्यप्रमाणत्वात् ।।५६।।

तृतीयः पादः

२८. भूवादयो धातवः ।।१।।

२९. उपदेशेऽजनुनासिक इत् ।।२।।
३०. न विभक्तौ तुस्माः ।।४।।
३१. आदिर्ञिटुडवः ।।५।।
३२. चुटू ।।७।।
३३. लशक्वतद्धिते ।।८।।
३४. यथासंख्यमनुदेशः समानाम् ।।१०।।
३५. स्वरितेनाधिकारः ।।११।।
३६. अनुदात्तङित आत्मनेपदम् ।।१२।।
३७. भावकर्मणोः ।।१३।।
३८. स्वरितञितः कर्त्रभिप्राये क्रियाफले ।।७२।।
३९. शेषात् कर्तरि परस्मैपदम् ।।७८।।

चतुर्थः पादः

४०. ह्रस्वं लघु ।।१०।।
४१. संयोगे गुरु ।।११।।
४२. दीर्घं च ।।१२।।
४३. यस्मात् प्रत्ययविधिस्तदादि प्रत्ययेऽङ्गम् ।।१३।।
४४. बहुषु बहुवचनम् ।।२१।।
४५. द्व्येकयोर्द्विवचनैकवचने ।।२२।।
४६. कारके ।।२३।।
४७. ध्रुवमपायेऽपादानम् ।।२४।।
४८. भीत्रार्थानां भयहेतुः ।।२५।।
४९. वारणार्थानामीप्सितः ।।२७।।
५०. कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम् ।।३२।।
५१. रुच्यर्थानां प्रीयमाणः ।।३३।।
५२. श्लाघह्नुङ्स्थाशपां ज्ञीप्स्यमानः ।।३४।।
५३. धारेरुत्तमर्णः ।।३५।।
५४. क्रुधद्रुहेर्ष्यासूयार्थानां यं प्रति कोपः ।।३७।।
५५. क्रुधद्रुहोरुपसृष्टयोः कर्म ।।३८।।
५६. साधकतमं करणम् ।।४२।।
५७. आधारोऽधिकरणम् ।।४५।।
५८. कर्तुरीप्सिततमं कर्म ।।४९।।
५९. स्वतन्त्रः कर्ता ।।५४।।
६०. लः परस्मैपदम् ।।९८।।

६१. तङानावात्मनेपदम् ।।६६।।
६२. तिङस्त्रीणि त्रीणि प्रथममध्यमोत्तमाः ।।१००।।
६३. तान्येकवचनद्विवचनबहुवचनान्येकशः ।।१०१।।
६४. सुपः ।।१०२।।
६५. विभक्तिश्च ।।१०३।।
६६. युष्मद्युपपदे समानाधिकरणे स्थानिन्यपि मध्यमः ।।१०४।।
६७. अस्मद्युत्तमः ।।१०६।।
६८. शेषे प्रथमः ।।१०७।।

द्वितीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

६६. तत्पुरुषः ।।२१।।
७०. द्विगुश्च ।।२२।।
७१. द्वितीया श्रितातीतपतितगतात्यस्तप्राप्तापन्नैः ।।२३।।
७२. पंचमी भयेन ।।३६।।

द्वितीयः पादः

७३. षष्ठी ।।८।।
७४. उपपदमतिङ् ।।१६।।
७५. चार्थे द्वन्दः ।।२६।।
७६. निष्ठा ।।३६।।

तृतीयः पादः

७७. कर्मणि द्वितीया ।।२।।
७८. चतुर्थी सम्प्रदाने ।।१३।।
७६. नमःस्वस्तिस्वाहास्वधालंवषड्योगाच्च ।।१६।।
८०. कर्तृकरणयोस्तृतीया ।।१८।।
८१. सहयुक्तेऽप्रधाने ।।१६।।
८२. येनाङ्ग विकाराः ।।२०।।
८३. इत्थम्भूतलक्षणे ।।२१।।
८४. अपादाने पंचमी ।।२८।।
८५. सम्बोधने च ।।४७।।
८६. सामन्त्रितम् ।।४८।।
८७. एकवचनं सम्बुद्धिः ।।४६।।

८८. षष्ठी शेषे ।।५०।।

चतुर्थः पादः

८९. तत्पुरुषोऽनञ्कर्मधारयः ।।१९।।
९०. अस्तेर्भूः ।।५२।।
९१. ब्रुवो वचिः ।।५३।।

तृतीयोऽध्यायः

प्रथमः पादः

९२. प्रत्ययः ।।१।।
९३. परश्च ।।२।।
९४. आद्युदात्तश्च ।।३।।
९५. अनुदात्तौ सुप्पितौ ।।४।।
९६. च्लि लुङि ।।४३।।
९७. च्लेः सिच् ।।४४।।
९८. सार्वधातुके यक् ।।६७।।
९९. दिवादिभ्यः श्यन् ।।६९।।
१००.स्वादिभ्यः श्नुः ।।७३।।
१०१. तनूकरणे तक्षः ।।७६।।
१०२. तुदादिभ्यः शः ।।७७।।
१०३. रुधादिभ्यः श्नम् ।।७८।।
१०४. तनादिकृञ्भ्य उः ।।७९।।
१०५. क्र्यादिभ्यः श्ना ।।८१।।
१०६. धातोः ।।९१।।
१०७. कृत्याः ।।९५।।
१०८. तव्यत्तव्यानीयरः ।।९६।।
१०९. अचो यत् ।।९७।।
११०. पोरदुपधात् ।।९८।।
१११. शकिसहोश्च ।।९९।।
११२. मृजेर्विभाषा ।।११३।।
११३. ण्युट् च ।।१४७।।

द्वितीयः पादः

११४. लुङ् ।।११०।।

११५. अनद्यतने लङ् ।।१११।।
११६. अभिज्ञावचने लृट् ।।११२।।
११७. परोक्षे लिट् ।।११५।।
११८. हशश्वतोर्लङ् च ।।११६।।
११९. लट् स्मे ।।११८।।
१२०. अपरोक्षे च ।।११९।।
१२१. वर्तमाने लट् ।।१२३।।
१२२. लटः शतृशानचावप्रथमा समानाधिकरणे ।।१२४।।
१२३. सम्बोधने च ।।१२५।।
१२४. तौ सत् ।।१२७।।

तृतीयः पादः

१२५. अनद्यतने लुट् ।।१५।।
१२६. ल्युट् च ।।११५।।
१२७. लोट् च ।।१६२।।

चतुर्थः पादः

१२८. कर्तरि कृत् ।।६७।।
१२९. लः कर्मणि च भावे चाकर्मकेभ्यः ।।६९।।
१३०. लस्य ।।७७।।
१३१. टित आत्मनेपदानां टेरे ।।७९।।
१३२. थासः से ।।८०।।
१३३. लिटस्तझयोरेशिरेच् ।।८१।।
१३४. परस्मैपदानां णलतुसुस्थलथुसणल्वमाः ।।८२।।
१३५. एत ऐ ।।९३।।
१३६. झस्य रन् ।।१०५।।
१३७. इटोऽत् ।।१०६।।
१३८. सुट् तिथोः ।।१०७।।
१३९. झेजुस् ।।१०८।।
१४०. आर्धधातुकं शेषः ।।११४।।
१४१. लिट् च ।।११५।।

चतुर्थोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१४२. ङ्याप्प्रातिपदिकात् ।।१।।

१४३. स्वौजसमौट्छष्टाभ्याम्भिस्ङेभ्याम्भ्यस्ङसिभ्याम्भ्यस्ङसोसाम्ङयोस्सुप् ।।२।।
१४४. अजाद्यतष्टाप् ।।४।।
१४५. ऋन्नेभ्यो ङीप् ।।५।।
१४६. वयसि प्रथमे ।।२०।।

द्वितीयः पादः

१४७. तदधीते तद्वेद ।।४८।।

तृतीयः पादः

१४८. पथः पन्थ च ।।२६।।

चतुर्थः पादः

१४६. धर्मं चरति ।।४१।।

पंचमोऽध्यायः

तृतीयः पादः

१५०. अधुना ।।१७।।

षष्ठोऽध्यायः

प्रथमः पादः

१५१. एकाचो द्वे प्रथमस्य ।।१।।
१५२. अजादेर्द्वितीयस्य ।।२।।
१५३. पूर्वोऽभ्यासः ।।४।।
१५४. उभे अभ्यस्तम् ।।५।।
१५५. तुजादीनां दीर्घोऽभ्यासस्य ।।७।।
१५६. लिटि धातोरनभ्यासस्य ।।८।।
१५७. सन्यङोः ।।६।।
१५८. श्लौ ।।१०।।
१५६. चङि ।।११।।
१६०. वचिस्वपियजादीनां किति ।।१५।।
१६१. लिड्यङोश्च ।।२६।।
१६२. णौ च संश्चङोः ।।३१।।
१६३. धात्वादेः षः सः ।।६२।।
१६४. णो नः ।।६३।।

१६५. लोपो व्योर्वलि ।।६४।।
१६६. वेरपृक्तस्य ।।६५।।
१६७. हल्ङ्याब्भ्यो दीर्घात् सुतिस्यपृक्तंहल् ।।६६।।
१६८. एङ्ह्रस्वात् सम्बुद्धेः ।।६७।।
१६९. शेश्छन्दसि बहुलम् ।।६८।।
१७०. ह्रस्वस्य पिति कृति तुक् ।।६९।।
१७१. इको यणचि ।।७४।।
१७२. एचोऽयवायावः ।।७५।।
१७३. वान्तो यि प्रत्यये ।।७६।।
१७४. एकः पूर्वपरयोः ।।८१।।
१७५. आद् गुणः ।।८४।।
१७६. वृद्धिरेचि ।।८५।।
१७७. एत्येधत्यूठ्सु ।।८६।।
१७८. आटश्च ।।८७।।
१७९. एङि पररूपम् ।।।९१।।
१८०. ओमाङोश्च ।।९२।।
१८१. उस्यपदान्तात् ।।९३।।
१८२. अतो गुणे ।।९४।।
१८३. अकः सवर्णे दीर्घः ।।९७।।
१८४. प्रथमयोः पूर्वसवर्णः ।।९८।।
१८५. तस्माच्छसो नः पुंसि ।।९९।।
१८६. एङः पदान्तादति ।।१०५।।
१८७. ङसिङसोश्च ।।१०६।।
१८८. ऋत उत् ।।१०७।।
१८९. अतो रोरप्लुतादप्लुते ।।१०९।।
१९०. हशि च ।।११०।।
१९१. इकोऽसवर्णे शाकल्यस्य ह्रस्वश्च ।।१२३।।
१९२. धातोः ।।१५६।।
१९३. चितः ।।१५७।।
१९४. तद्धितस्य ।।१५८।।
१९५. कितः ।।१५९।।
१९६. अनुदात्ते च ।।१८४।।

द्वितीयः पादः

१६७. तृतीया कर्मणि ।।४८।।

चतुर्थः पादः

१६८. अंगस्य ।।१।।
१६६. हलः ।।२।।
२००. नामि ।।३।।
२०१. नोपधायाः ।।७।।
२०२. सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ ।।८।।
२०३. लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः ।।७१।।

सप्तमोऽध्यायः

प्रथमः पादः

२०४. युवोरनाकौ ।।१।।
२०५. अतो भिस ऐस् ।।६।।
२०६. टाङसिङसामिनात्स्याः ।।१२।।
२०७. ङेर्यः ।।१३।।
२०८. सर्वनाम्नः स्मै ।।१४।।
२०६. ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ ।।१५।।
२१०. पूर्वादिभ्यो नवभ्यो वा ।।१६।।
२११. जसः शी ।।१७।।
२१२. औङ आपः ।।१८।।
२१३. जश्शसोः शिः ।।२०।।
२१४. अष्टाभ्य औश् ।।२१।।
२१५. षड्भ्यो लुक् ।।२२।।
२१६. स्वमोर्नपुंसकात् ।।२३।।
२१७. अतोऽम् ।।२४।।
२१८. ङेप्रथमयोरम् ।।२८।।
२१६. शसो न ।।२६।।
२२०. भ्यसो भ्यम् ।।३०।।
२२१. पंचम्या अत् ।।३१।।
२२२. एकवचनस्य च ।।३२।।
२२३. साम आकम् ।।३३।।
२२४. आत औ णलः ।।३४।।
२२५. थो न्थः ।।८७।।

२२६. भस्य टेर्लोपः ।।८८।।

द्वितीयः पादः

२२७. युवावौ द्विवचने ।।६२।।
२२८. यूयवयौ जसि ।।६३।।
२२६. त्वाहौ सौ ।।६४।।
२३०. तुभ्यमह्यौ ङयि ।।६५।।
२३१. तवममौ ङसि ।।६६।।
२३२. त्वमावेकमवचने ।।६७।।
२३३. प्रत्ययोत्तरपदयोश्च ।।६८।।
२३४. अदस औ सुलोपश्च ।।१०७।।
२३५. इदमो मः ।।१०८।।
२३६. इदोऽय् पुंसि ।।१११।।
२३७. हलि लोपः ।।११३।।
२३८. मृजेर्वृद्धिः अगला सूत्र अचो ञ्णिति ।।११५।।
२३६. अत उपधायाः ।।११६।।
२४०. तद्धितेष्वचामादेः ।।११७।।
२४१. किति च ।।११८।।

तृतीयः पादः

२४२. मिदेर्गुणः ।।८२।।
२४३. जुसि च ।।८३।।
२४४. ब्रुव ईट् ।।६३।।
२४५. यङो वा ।।६४।।
२४६. अस्तिसिचोऽपृक्ते ।।६६।।
२४७. सुपि च ।।१०२।।
२४८. बहुवचने झल्येत् ।।१०३।।
२४६. ओसि च ।।१०४।।
२५०. आङि चापः ।।१०५।।
२५१. सम्बुद्धौ च ।।१०६।।
२५२. ह्रस्वस्य गुणः ।।१०८।।
२५३. जसि च ।।१०६।।
२५४. आण्नद्याः ।।११२।।
२५५. याडापः ।।११३।।

चतुर्थः पादः
२५६. ह्रस्वः ।।५६।।
२५७. हलादिः शेषः ।।६०।।
२५८. कुहोश्चुः ।।६२।।
२५९. उरत् ।।६६।।
२६०. दीर्घ इणः किति ।।६९।।
२६१. गुणो यङ्लुकोः ।।८२।।
२६२. रीगृदुपधस्य च ।।९०।।
२६३. ई च गणः ।।९७।।

अष्टमोऽध्यायः

प्रथमः पादः
२६४. पदस्य ।।१६।।
२६५. पदात् ।।१७।।
२६६. आमन्त्रितस्य च ।।१९।।
द्वितीयः पादः
२६७. झलो झलि ।।२६।।
२६८. इट ईटि ।।२८।।
२६९. चोः कुः ।।३०।।
२७०. हो ढः ।।३१।।
२७१. नहो धः ।।३४।।
२७२. आहस्थः ।।३५।।
२७३. झलां जशोऽन्ते ।।३९।।
२७४. झषस्तथोर्धोऽधः ।।४०।।
२७५. षढोः कः सि ।।४१।।
२७६. रदाभ्यां निष्ठातो नः पूर्वस्य च दः ।।४२।।
२७७. ससजुषो रुः ।।६६।।
२७८. रोऽसुपि ।।६९।।
२७९. हलि च ।।७७।।
२८०. उपधायां च ।।७८।।
२८१. अदसोऽसेर्दादु दो मः ।।८०।।
२८२. एत ईद् बहुवचने ।।८१।।
२८३. ओमभ्यादाने ।।८७।।

तृतीयः पादः

२८४. ढो ढे लोपः ।।१३।।

२८५. रो रि ।।१४।।

२८६. खरवसानयोर्विसर्जनीयः ।।१५।।

२८७. रोः सुपि ।।१६।।

२८८. भोभगोअघोअपूर्वस्य योऽशि ।।१७।।

२८९. व्योर्लघुप्रयत्नतरः शाकटाय नस्य ।।१८।।

२९०. लोपः शाकल्यस्य ।।१९।।

२९१. मोऽनुस्वारः ।।२३।।

२९२. नश्चापदान्तस्य झलि ।।२४।।

२९३. मो राजि समः क्वौ ।।२५।।

२९४. विसर्जनीयस्य सः ।।३४।।

चतुर्थः पादः

२९५. रषाभ्यां नो णः समानपदे ।।१।।

२९६. अट्कुप्वाङ्नुम्व्यवायेऽपि ।।२।।

२९७. पदान्तस्य ।।३६।।

२९८. स्तोः श्चुना श्चुः ।।३९।।

२९९. ष्टुना ष्टुः ।।४०।।

३००. यरोऽनुनासिकेऽनुनासिको वा ।।४४।।

३०१.अचो रहाभ्यां द्वे ।।४५।।

३०२. झलां जश् झशि ।।५२।।

३०३. अभ्यासे चर्च ।।५६।।

३०४. खरि च ।।५४।।

३०५. वावसाने ।।५५।।

३०६. अनुस्वारस्य ययि परसवर्णः ।।५७।।

३०७. वा पदान्तस्य ।।५८।।

३०८. तोर्लि ।।५९।।

३०९. झयो होऽन्यतरस्याम् ।।६१।।

३१०. हलो यमां यमि लोपः ।।६३।।

३११. झरो झरि सवर्णे ।।६४।।

३१२. उदात्तादनुदात्तस्य स्वरितः ।।६५।।

३१३. अ अ ।।६७।।

।। इति ।।

,,,

गीता श्लोक

प्रथमोऽध्यायः

१. धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।
मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत संजय ।।१।।

२. क्लैव्यं मा स्म गमः पार्थ नैतत्त्वय्युपपद्यते ।
क्षुद्रं हृदयदौर्बल्यं त्यक्त्वोत्तिष्ठ परन्तप ।।३।।
३. अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे ।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिताः ।।११।।
४. न त्वेवाहं जातु नासं न त्वं नेमे जनाधिपाः ।
न चैव न भविष्यामः सर्वे वयमतः परम् ।।१२।।
५. देहिनोऽस्मिन्यथा देहे कौमारं यौवनं जरा ।
तथा देहान्तरप्राप्तिर्धीरस्तत्र न मुह्यति ।।१३।।
६. यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुषं पुरुषर्षभ ।
समदुःखसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते ।।१५।।
७. अन्तवन्त इमे देहा नित्यस्योक्ताः शरीरिणः ।
अनाशिनोऽप्रमेयस्य तस्माद्युध्यस्व भारत ।।१८।।
८. य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतो नायं हन्ति न हन्यते ।।१६।।
६. न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः ।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ।।२०।।
१०. वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।।२२।।
११. नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः ।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ।।२३।।
१२. अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयमक्लेद्योऽशोष्य एव च ।
नित्यः सर्वगतः स्थाणुरचलोऽयं सनातनः ।।२४।।
१३. अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते ।
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुमर्हसि ।।२५।।
१४. जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ।।२७।।
१५. स्वधर्ममपि चावेक्ष्य न विकम्पितुमर्हसि ।
धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत्क्षत्रियस्य न विद्यते ।।३१।।
१६. यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।
सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम् ।।३२।।
१७. अथ चेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि ।
ततः स्वधर्मं कीर्तिं च हित्वा पापमवाप्स्यसि ।।३३।।
१८. यावानर्थ उदपाने सर्वतः सम्प्लुतोदके ।

तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।४६।।
१६. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन ।
मा कर्मफलहेतुर्भूर्मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।।४७।।
२०. दुःखेष्वनुद्विग्नमनाः सुखेषु विगतस्पृहः ।
वीतरागभयक्रोधः स्थितधीर्मुनिरुच्यते ।।५६।।
२१. ध्यायतो विषयान्पुंसः संगस्तेषूपजायते ।
संगात्संजायते कामः कामात्क्रोधोऽभिजायते ।।६२।।
२२. क्रोधात् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ।
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।।६३।।
२३. रागद्वेषवियुक्तैस्तु विषयानिन्द्रियैश्चरन् ।
आत्मवश्यैर्विधेयात्मा प्रसादमधिगच्छति ।।६४।।
२४. विहाय कामान्यः सर्वान्पुमाँश्चरति निःस्पृहः ।
निर्ममो निरहंकारः स शान्तिमधिगच्छति ।। ७१।।
२५. एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुह्यति ।
स्थित्वाऽस्यामन्तकालेऽपि ब्रह्मनिर्वाणमृच्छति ।।७२।।

तृतीयोऽध्यायः

२६. कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ।।६।।
२७. यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ।।७।।
२८. सहयज्ञाः प्रजाः सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापतिः ।
अनेन प्रसविष्यध्वमेष वोऽस्त्विष्टकामधुक् ।।१०।।
२६. नैव तस्य कृतेनार्थो नाकृतेनेह कश्चन ।
न चास्य सर्वभूतेषु कश्चिदर्थव्यापाश्रयः ।।१८।।
३०. तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर ।
असक्तो ह्याचरन्कर्म परमाप्नोति पूरुषः ।।१६।।
३१. कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।।२०।।
३२. न मे पार्थास्ति कर्तव्यं त्रिषु लोकेषु किंचन ।
नानवाप्तमवाप्तव्यं वर्त एव च कर्मणि ।।२२।।
३३. यदि ह्यहं न वर्तेयं जातु कर्मण्यतन्द्रितः ।
मम वर्त्मानुवर्तन्ते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।२३।।
३४. ये मे मतमिदं नित्यमनुतिष्ठन्ति मानवाः ।
श्रद्धावन्तोऽनसूयन्तो मुच्यन्ते तेऽपि कर्मभिः ।।३१।।

३५. सदृशं चेष्टते स्वस्याः प्रकृतेर्ज्ञानवानपि ।
प्रकृतिं यान्ति भूतानि निग्रहः किं करिष्यति ।।३३।।
३६. काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भवः ।
महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम् ।।३७।।
३७. धूमेनाव्रियते वन्हिर्यथादर्शो मलेन च ।
यथोल्वेनावृतो गर्भस्तथा तेनेदमावृतम् ।।३८।।
३८. आवृतं ज्ञानमेतेन ज्ञानिनो नित्यवैरिणा ।
कामरूपेण कौन्तेय दुष्पूरेणानलेन च ।।३६।।

चतुर्थोऽध्यायः

३६. इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम् ।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत् ।।१।।
४०. एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः ।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तप ।।२।।
४१. स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः ।
भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम् ।।३।।
४२. बहूनि मे व्यतीतानि जन्मानि तव चार्जुन ।
तान्यहं वेद सर्वाणि न त्वं वेत्थ परन्तप ।।५।।
४३. यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ।।७।।
४४. जन्म कर्म च मे दिव्यमेवं यो वेत्ति तत्त्वतः ।
त्यक्त्वा देहं पुनर्जन्म नैति मामेति सोऽर्जुन ।।६।।
४५. बीतरागभयक्रोधा मन्मया मामुपाश्रिताः ।
बहवो ज्ञानतपसा पूता मद्भावमागताः ।।१०।।
४६. कांक्षन्तः कर्मणां सिद्धिं यजन्त इह देवताः ।
क्षिप्रं हि मानुषे लोको सिद्धिर्भवति कर्मजा ।।१२।।
४७. न मां कर्माणि लिम्पन्ति न मे कर्मफले स्पृहा ।
इति मां योऽभिजानाति कर्मभिर्न स बध्यते ।।१४।।
४८. निराशीर्यतचित्तात्मा त्यक्तसर्वपरिग्रहः ।
शारीरं केवलं कर्म कुर्वन्नाप्नोति किल्बिषम् ।।२१।।
४६. यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम् ।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम ।।३१।।
५०. श्रेयान्द्रव्यमयाद्यज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परन्तप ।
सर्वं कर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते ।।३३।।
५१. अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः ।

सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि ।।३६।।
५२. यथैधांसि समिद्धोऽग्निर्भस्मसात्कुरुतेऽर्जुन ।
ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात्कुरुते तथा ।।३७।।
५३. न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते ।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति ।।३८।।
५४. श्रद्धावाँल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः ।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति ।।३९।।

पंचमोऽध्यायः

५५. सन्न्यासं कर्मणां कृष्ण पुनर्योगं च शंससि।
यच्छ्रेय एतयोरेकं तन्मे ब्रूहि सुनिश्चितम् ।।१।।
५६. संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयसकरावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात्कर्मयोगो विशिष्यते ।।२।।
५७. ज्ञेयः स नित्यसंन्यासी यो न द्वेष्टि न काङ्क्षति ।
निर्द्वन्दो हि महाबाहो सुखं बन्धात्प्रमुच्यते ।।३।।
५८. संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः ।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाजधिगच्छति ।।६।।
५९. योगयुक्तो विशुद्धात्मा विजितात्मा जितेन्द्रियः ।
सर्वभूतात्मभूतात्मा कुर्वन्नपि न लिप्यते ।।७।।
६०. कायेन मनसा बुद्ध्या केवलैरिन्द्रियैरपि।
योगिनः कर्म कुवन्ति संगं त्यक्त्वाऽऽत्मशुद्धये ।।११।।
६१. सर्वकर्माणि मनसा संन्यस्यास्ते सुखं वशी ।
नवद्वारे पुरे देही नैव कुर्वन्न कारयन् ।।१३।।
६२. विद्याविनयसम्पन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः ।।१८।।
६३. इहैव तैर्जितः सर्गो येषां साम्ये स्थितं मनः ।
निर्दोषं हि समं ब्रह्म तस्माद् ब्रह्मणि ते स्थिताः ।।१९।।
६४. बाह्यस्पर्शष्वसक्तात्मा विन्दत्यात्मानि यत्सुखम् ।
स ब्रह्मयोगयुक्तात्मा सुखमक्षयमश्नुते ।।२१।।
६५. शन्कोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात् ।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः ।।२३।।
६६. लभन्ते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ।।२५।।
६७. कामक्रोधवियुक्तानां यतीनां यतचेतसाम् ।
अभितो ब्रह्मनिर्वाणं वर्तते विदितात्मनाम् ।।२६।।

६८. भोक्तारं यज्ञतपसां सर्वलोकमहेश्वरम् ।
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छति ।।२६।।

षष्ठोऽध्यायः

६६. जितात्मनः प्रशान्तस्य परमात्मा समाहितः ।
शीतोष्णसुखदुःखेषु तथा मानापमानयोः ।।७।।
७०. ज्ञानविज्ञानतृप्तात्मा कूटस्थो विजितेन्द्रियः ।
युक्त इत्युच्यते योगी समलोष्ठाश्मकांचनः ।।८।।
७१. सुहृन्मित्रार्युदासीनमध्यस्थद्वेष्यबन्धुषु ।
साधुष्वपि च पापेषु समबुद्धिर्विशिष्यते ।।६।।
७२. योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः ।
एकाकी यतचित्तात्मा निराशीरपरिग्रहः ।।१०।।
७३. तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः ।
उपविश्यासने युंज्याद्योगमात्मविशुद्धये ।।१२।।
७४. प्रशान्तात्मा विगतभीर्ब्रह्मचर्यव्रते स्थितः ।
मनः संयम्य मच्चित्तो युक्त आसीत मत्परः ।।१४।।
७५. नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः ।
न चाति स्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन ।।१६।।
७६. युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा ।।१७।।
७७. प्राप्य पुण्यकृतां लोकानुषित्वा शाश्वतीः समाः ।
शुचीनां श्रीमतां गेहे योगभ्रष्टोऽभिजायते ।।४१।। कुल ७७

सप्तोऽध्यायः

७८. त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत् ।
मोहितं नाऽभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम् ।।१३।।
७६. न मां दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमाः ।
माययापहृतज्ञाना आसुरं भावमाश्रिताः ।।१५।।
८०. चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ।।१६।।
८१. तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।१७।।
८२. उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् ।
आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम् ।।१८।।
८३. यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति ।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ।।२१।।
८४. स तया श्रद्धया युक्तस्तस्याराधनमीहते ।

लभते च ततः कामान्ममैव विहितान्हि तान् ।।२२।।

अष्टमोऽध्यायः

८५. अक्षरं ब्रह्म परमं स्वभावोऽध्यात्ममुच्यते ।
भूतभावोद्‌भवकरो विसर्गः कर्मसंज्ञितः ।।३।।
८६. अन्तकाले च मामेव स्मरन्मुक्त्वा कलेवरम् ।
यः प्रयाति स मद्‌भावं याति नास्त्यत्र संशयः ।।५।।
८७. यं यं वापि स्मरन्भावं त्यजत्यन्ते कलेवरम् ।
तं तमेवैति कौन्तेय सदा तद्‌भावभावितः ।।६।।
८८. मामुपेत्य पुनर्जन्म दुःखालयमशाश्वतम् ।
नाप्नुवन्ति महात्मानः संसिद्धिं परमां गताः ।।१५।।
८९. अव्यक्तोऽक्षर इत्युक्तस्तमाहुः परमां गतिम् ।
यं प्राप्य न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम ।।२१।।
९०. पुरुषः स परः पार्थ भक्त्या लभ्यस्त्वनन्यया ।
यस्यान्तः स्थानि भूतानि येन सर्वमिदं ततम् ।।२२।।

नवमोऽध्यायः

९१. मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना ।
मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थितः ।।४।।
९२. ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ते यजन्तो मामुपासते ।
एकत्वेन पृथक्त्वेन बहुधा विश्वतोमुखम् ।।१५।।
९३. अहं क्रतुरहं यज्ञः स्वधाऽहमहमौषधम् ।
मन्त्रोऽहममेवाज्यमहमग्निरहं हुतम् ।।१६।।
९४. पिताहमस्य जगतो माता धाता पितामहः ।
वेद्यं पवित्रमोंकार ऋक्साम यजुरेव च ।।१७।।
९५. येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धयाज्न्विताः ।
तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम् ।।२३।।
९६. यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रताः ।
भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम् ।।२५।।
९७. पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।
तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः ।।२६।।

दशमोऽध्यायः

९८. न मे विदुः सुरगणा प्रभवं न महर्षयः ।
अहमादिर्हि देवानां महर्षीणां च सर्वशः ।।२।।
९९. यो मामजमनादिं च वेत्ति लोकमहेश्वरम् ।
असम्मूढः स मर्त्येषु सर्वपापैः प्रमुच्यते ।।३।।

१००. अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते ।
इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः ।।८।।
१०१. रुद्राणां शंकरश्चास्मि वित्तेशो यक्षरक्षसाम् ।
वसूनां पावकश्चास्मि मेरुः शिखरिणामहम् ।।२३।।
१०२. मृत्युः सर्वहरश्चाऽहमुद्भवश्च भविष्यताम् ।
कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा ।।३४।।
१०३. दण्डो दमयतामस्मि नीतिरस्मि जिगीषताम् ।
मौनं चैवास्मि गुह्यानां ज्ञानं ज्ञानवतामहम् ।।३८।।

द्वादशोऽध्यायः

१०४. एवं सततयुक्ता ये भक्तास्त्वां पर्युपासते ।
ये चाप्यक्षरमव्यक्तं तेषां के योगवित्तमाः ।।१।।
१०५. ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संन्यस्य मत्पराः ।
अनन्येनैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ।।६।।
१०६. यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः ।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः ।।१५।।
१०७. अनपेक्षः शुचिर्दक्ष उदासीनो गतव्यथः ।
सर्वारम्भपरित्यागी यो मद्भक्तः स मे प्रियः ।।१६।।
१०८. यो न हृष्यति न द्वेष्टि न शोचति न काङ्क्षति ।
शुभाशुभपरित्यागी भक्तिमान्यः स मे प्रियः ।।१७।।

त्रयोदशोऽध्यायः

१०९. महाभूतान्यहंकारो बुद्धिरव्यक्तमेव च ।
इन्द्रियाणि दशैकं च पंच चेन्द्रियगोचराः ।।५।।
११०. इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं संघातश्चेतना धृतिः ।
एतत्क्षेत्रं समासेन सविकारमुदाहृतम् ।।६।।
१११. अमानित्वमदम्भित्वमहिंसा क्षान्तिरार्जवम् ।
आचार्योपासनं शौचं स्थैर्यमात्मविनिग्रहः ।।७।।
११२. असक्तिरनभिष्वंङ्गः: पुत्रदारगृहादिषु ।
नित्यं च समचित्तत्वमिष्टानिष्टोपपत्तिषु ।।९।।
११३. ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमसः परमुच्यते ।
ज्ञानं ज्ञेयं ज्ञानगम्यं हृदि सर्वस्य विष्ठितम् ।।१७।।
११४. पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान् ।
कारणं गुणसंगोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु ।।२१।।

चतुर्दशोऽध्यायः

११५. तत्र सत्त्वं निर्मलत्वात्प्रकाशकमनामयम् ।

सुखसंगेन बध्नाति ज्ञानसंगेन चानघ ।।६।।
११६. रजो रागात्मकं विद्धि तृष्णासंगसमुद्‌भवम् ।
तन्निबध्नाति कौन्तेय कर्मसङ्गेन देहिनम् ।।७।।
११७. सत्त्वं सुखे संजयति रजः कर्मणि भारत ।
ज्ञानमावृत्य तु तमः प्रमादे संजयत्युत ।।६।।
११८. रजस्तमश्चाभिभूय सत्त्वं भवति भारत ।
रजः सत्त्वं तमश्चैव तमः सत्त्वं रजस्तथा ।।१०।।
११६. सर्वद्वारेषु देहेऽस्मिन्प्रकाशः उपजायते ।
ज्ञानं यदा तदा विद्याद्विवृद्धं सत्त्वमित्युत ।।११।।
१२०. लोभः प्रवृत्तिरारम्भः कर्मणामशमः स्पृहा ।
रजस्येतानि जायन्ते विवृद्धे भरतर्षभ ।।१२।।
१२१. यदा सत्त्वे प्रवृद्धे तु प्रलयं याति देहभृत् ।
तदोत्तमविदां लोकानमलान्प्रतिपद्यते ।।१४।।
१२२. रजसि प्रलयं गत्वा कर्मसंगिषु जायते ।
तथा प्रलीनस्तमसि मूढयोनिषु जायते ।।१५।।
१२३. कर्मणः सुकृतस्याहुः सात्त्विकं निर्मलं फलम् ।
रजसस्तु फलं दुःखमज्ञानं तमसः फलम् ।।१६।।
१२४. सत्त्वात्संजायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च ।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च ।।१७।।
१२५. ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।
जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसाः ।।१८।।
१२६. नान्यं गुणेभ्यः कर्तारं यदा द्रष्टानुपश्यति ।
गुणेभ्यश्च परं वेत्ति मद्‌भावं सोऽधिगच्छति ।।१६।।

पंचदशोऽध्यायः

१२७. न तद्‌भासयते सूर्यो न शशांको न पावकः ।
यद्‌गत्वा न निवर्तन्ते तद्‌धाम परमं मम ।।६।।
१२८. ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः ।
मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति ।।७।।
१२६. श्रोत्रं चक्षुः स्पर्शनं च रसनं घ्राणमेव च ।
अधिष्ठाय मनश्चायं विषयानुपसेवते ।।६।।
१३०. उत्क्रामन्तं स्थितं वापि भुंजानं वा गुणान्वितम् ।
विमूढा नानुपश्यन्ति पश्यन्ति ज्ञानचक्षुषः ।।१०।।
१३१. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च ।
क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते ।।१६।।

१३२. उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः ।
यो लोकत्रयमाविश्य बिभर्त्यव्यय ईश्वरः ।।१७।।
१३३. यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः ।।१८।।

षोडशोऽध्यायः

१३४. तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहोनातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ।।३।।
१३५. दम्भो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम् ।।४।।
१३६. दैवी सम्पद्विमोक्षाय निबन्धायासुरी मता ।
मा शुचः सम्पदं दैवीमभिजातोऽसि पाण्डव ।।५।।
१३७. द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन्दैव आसुर एव च ।
दैवो विस्तरशः प्रोक्त आसुरं पार्थ मे शृणु ।।६।।
१३८. प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।
न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।।७।।
१३६. अहंकारं बलं दर्पं कामं क्रोधं च संश्रिताः ।
मामात्मपरदेहेषु प्रद्विषन्तोऽभ्यसूयकाः ।।१८।।
१४०. तानहं द्विषतः क्रूरान्संसारेषु नराधमान् ।
क्षिपाम्यजस्त्रमशुभानासुरीष्वेव योनिषु ।।१६।।
१४१. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मनः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रयं त्यजेत् ।।२१।।
१४२. यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः ।
न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम् ।।२३।।
१४३. तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ ।
ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्तुमिहार्हसि ।।२४।।

सप्तदशोऽध्यायः

१४४. ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ।।१।।
१४५. आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ।।७।।
१४६. आयुः सत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ।।८।।
१४७. कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः ।
आहार राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ।।६।।

१४८. यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ।।१०।।
१४६. अफलाकांक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ।।११।।
१५०. अभिसन्धाय तु फलं दम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ।।१२।।
१५१. विधिहीनमसृष्टान्नं मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ।।१३।।
१५२. देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ।।१४।।
१५३. अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यासनं चैवा वाङ्मयं तप उच्यते ।।१५।।
१५४. मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ।।१६।।
१५५. श्रद्धया परया तप्तं तपस्तत्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाङ्क्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ।।१७।।
१५६. सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसं चलमध्रुवम् ।।१८।।
१५७. मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्तामसमुदाहृतम् ।।१६।।
१५८. दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम् ।।२०।।
१५६. यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ।।२१।।

अष्टादशोध्यायः

१६०. ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना ।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसंग्रहः ।।१८।।
१६१. अनुबन्धं क्षयं हिंसामनवेक्ष्य च पौरुषम् ।
मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते ।।२५।।
१६२. मुक्तसंगोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः ।
सिद्धय सिद्धयोर्निर्विकारः कर्ता सात्त्विक उच्यते ।।२६।।
१६३. रागी कर्मफलप्रेप्सुर्लुब्धो हिंसात्मकोऽशुचिः ।
हर्षशोकान्वितः कर्ता राजसः परिकीर्तितः ।।२७।।
१६४. अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः ।

विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते ।।२८।।
१६५. शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च ।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम् ।।४२।।
१६६. स्वभावजेन कौन्तेय निबद्धः स्वेन कर्मणा ।
कर्तुं नेच्छसि यन्मोहात्करिष्यस्यवशोऽपि तत् ।।६०।।
१६७. ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया ।।६१।।
१६८. तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शान्ति स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।६२।।
१६९. इति ते ज्ञानमाख्यातं गुह्याद् गुह्यतरं मया ।
विमृश्यैतदशेषेण यथेच्छसि तथा कुरु ।।६३।।
१७०. मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु ।
मामेवैष्यसि सत्यं ते प्रतिजाने प्रियोऽसि मे ।।६५।।
१७१. सर्वधार्मन्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ।।६६।।
१७२. इदं ते नातपस्काय नाभक्ताय कदाचन ।
न चाशुश्रूषवे वाच्यं न च मां योऽभ्यसूयति ।।६७।।
१७३. य इमं परमं गुह्यं मद्भक्तेष्वभिधास्यति ।
भक्तिं मयि परां कृत्वा मामेवैष्यत्यसंशयः ।।६८।।
१७४. यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः ।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम ।।७८।।

।। इति ।।

,,,

महाभारत

वनवर्प

१. ब्रह्मादित्यमुन्नयति देवास्तस्याभितश्चरः ।
धर्मश्चास्तं नयति च सत्ये च प्रतितिष्ठति ।। ४६/३१३

२. श्रुतेन श्रोत्रियो भवति तपसा विन्दते महत् ।
धृत्या द्वितीयवान् भवति बुद्धिमान् वृद्धसेवया ।। ४८/३१३

३. स्वाध्याय एषां देवत्वं तप एषां सतामिव ।
मरणं मानुषो भावः परिवादोऽसतामिव ।। ५०/३१३

४. देवतातिथिभृत्यानां पितृणामात्मनश्च यः ।
न निर्वपति पश्चानामुच्छ्वसन् न स जीवति ।। ५८/३१३

५. माता गुरुतरा भूमेः खात् पितोच्चतरस्तथा ।
मनः शीघ्रतरं वाताच्चिन्ता बहुतरी तृणात् ।। ६०/३१३

६. सार्थः प्रवसतो मित्रं भार्या मित्रं गृहे सतः ।
आतुरस्य भिषङ्मित्रं दानं मित्रं मरिष्यतः ।। ६४/३१३

७. अतिथिः सर्वभूतानामग्निः सोमो गवामृतम् ।
सनातनोऽमृतो धर्मो वायुः सर्वमिदं जगत् ।। ६६/३१३

८. पुत्र आत्मा मनुष्यस्य भार्या दैवकृतः सखा ।
उपजीवनं च पर्जन्यो दानमस्य परायणम् ।। ७२/३१३

९. धन्यानामुत्तमं दाक्ष्य ध्नानामुत्तमं श्रुतम् ।
लाभानां श्रेय आरोग्यं सुखानां तुष्टिरुत्तमा ।। ७४/३१३

१०. आनृशंस्यं परो धर्मस्त्रयीधर्मः सदाफलः ।
मनोयम्य न शोचन्ति संधिः सद्भिर्न जीर्यते ।। ७६/३१३

११. मानं हित्वा प्रियो भवति क्रोधं हित्वा न शोचति ।
कामं हित्वार्थवान् भवति लोभं हित्वा सुखी भवेत् ।। ७८/३१३

१२. धर्मार्थ ब्राह्मणे दानं यशोऽर्थे नटनर्तके ।
भृत्येषु भरणार्थे वै भयार्थे चैव राजसु ।। ८०/३१३

१३. अज्ञानेनावृतो लोकस्तमसा न प्रकाशते ।
लोभात् त्यजति मित्राणि संगात् स्वर्गे न गच्छति ।। ८२/३१३

१४. मृतो दरिद्रः पुरुषो मृतं राष्ट्रमराजकम् ।
मृतमश्रोत्रियं श्राद्धं मृतो यज्ञस्त्वदक्षिणः ।। ८४/३१३

१५. सन्तो दिग जलमाकाशं गौरन्नं प्रार्थना विषम् ।
श्रद्धास्य ब्राह्मणः कालः कथं वा यज्ञ मन्यसे ।। ८६/३१३

१६. तपः स्वधर्मवर्तित्वं मनसो दमनं दमः ।
क्षमा द्वन्द्वसहिष्णुत्वं ह्रीरकार्यनिवर्तनम् ।। ८८/३१३

१७. ज्ञानं तत्त्वार्थसम्बोधः शमश्चित्तप्रशान्तता ।
दया सर्वसुखैषित्वमार्जवं समचित्तता ।। ९०/३१३

१८. क्रोधः सुदुर्जयः शत्रुर्लोभो व्याधिरनन्तकः ।
सर्वभूतहितः साधुरसाधुर्निर्दयः स्मृतः ।।९२/३१३

१६. मोहो हि धर्ममूढत्वं मानस्त्वात्माभिमानिता ।
धर्मनिष्क्रियताऽऽलस्यं शोकस्त्वज्ञानमुच्यते ।। ६४/३१३

२०. स्वधर्मे स्थिरता स्थैर्य धैर्यमिन्द्रिनिग्रहः ।
स्नानं मनोमलत्यागो दानं वै भूतरक्षणम् ।। ६६/३१३

२१. धर्मज्ञः पण्डितो ज्ञेयो नास्तिको मूर्ख उच्यते ।
कामः संसारहेतुश्च हृत्तापो मत्सरः स्मृतः ।। ६८/३१३

२२. महाज्ञानमहंकारो दम्भो धर्मो ध्वजोच्छ्रयः ।
दैवं दानफलं प्रोक्तं पैशुन्यं परदूषणम् ।। १००/३१३

२३. यदा धर्मश्च भार्या च परस्परवशानुगौ ।
तदा धर्मार्थकामानां त्रयाणामपि संगमः ।। १०२/३१३

२४. ब्राह्मणं स्वयमाहूय याचमानमकिंचनम् ।
पश्चान्नास्तीति यो ब्रूयात् सोऽक्षयं नरकं व्रजेत् ।। १०४/३१३

२५. शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्यायो न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ।। १०८/३१३

२६. वृत्तं यत्नेन संरक्ष्यं ब्राह्मणेन विशेषतः ।
अक्षीणवृत्तो न क्षीणो वृत्तमेव न संशयः ।। १०६/३१३

२७. पठकाः पाठकाश्चैव ये चान्ये शास्त्रचिन्तकाः ।
सर्वेव्यसनिनो मूर्खाः यः क्रियावान् स पण्डितः ।। ११०/३१३

२८. चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्रपरो दान्तः स ब्राह्मण इत स्मृतः ।। १११/३१३

२६. प्रियवचनवादी प्रियो भवति विमृशितकार्यकरोऽधिकं जयति ।
बहुमित्रकरः सुखं वसते यश्च धर्मरतः स गतिं लभते ।। ११३/३१३

३०. अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम् ।
शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम् ।। ११६/३१३

३१. तर्कोऽप्रतिष्ठाः श्रुतयो विभिन्ना नैको ऋषिर्यस्य मतं प्रमाणम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ।। ११७/३१३

३२. तुल्ये प्रियाप्रिये यस्य सुखदुःखे तथैव च ।
अतीतानागते चोभे स वै सर्वधनी नरः ।। १२१/३१३

महाभारत
शान्तिपर्व

३३. वेदवादापविद्धांस्तु तान् विद्धि भृशनास्तिकान् ।
न हि वेदोक्तमुत्सृज्य विप्रः सर्वेषु कर्मसु ।। ५/१२

३४. वित्तानि धर्मलब्धानि क्रतुमुख्येष्ववासृजन् ।। ७/१२
कृतात्मा स महाराज स वै त्यागी स्मृतो नरः ।। ८/१२
३५. अनवेक्ष्य सुखादानं तथैवोर्ध्वं प्रतिष्ठितः ।
आत्मत्यागी महाराज स त्यागी तामसो मतः ।। ६/१२
३६. द्व्यक्षरस्तु भवेन्मृत्युस्त्र्यक्षरं ब्रह्म शाश्वतम् ।
ममेति च भवेन्मृत्युर्न ममेति च शाश्वतम् ।। ४/१३
३७. ब्रह्ममृत्यू ततो राजन्नात्मन्येव समाश्रितौ ।
अदृश्यमानौ भूतानि योधयेतामसंशयम् ।। ५/१३
३८. न क्लीबो वसुधां भुङ्क्ते न लकीबो धनमश्नुते ।
न क्लीबस्य गृहे पुत्रा मत्स्याः पंक इवासते ।। १३/१४
३६. नादण्डः क्षत्रियो भाति नादण्डो भूमिमश्नुते ।
नादण्डस्य प्रजा राज्ञः सुखं विन्दन्ति भारत ।। १४/१४
४०. मित्रता सर्वभूतेषु दानमध्ययनं तपः ।
ब्राह्मणस्यैव धर्मः स्यान्न राज्ञो राजसत्तम ।। १५/१४
४१. असतां प्रतिषेधश्च सतां च परिपालनम् ।
एष राज्ञां परो धर्मः समरे चापलायनम् ।।१६/१४
४२. यस्मिन् क्षमा च क्रोधश्च दानादाने भयाभये ।
निग्रहानुग्रहौ चोभौ स वै धर्मविदुच्यते ।। १७/१४
४३. ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थश्च भिक्षुकः ।
दण्डस्यैव भयादेते मनुष्या वर्त्मनि स्थिताः ।। १२/१५
४४. नाभीतो यजते राजन् नाभीतो दातुमिच्छति ।
नाभीतः पुरुषः कश्चित् समये स्थातुमिच्छति ।। १३/१५
४५. न हि पश्यामि जीवन्तं लोके कश्चिदहिंसया ।
सत्त्वैः सत्त्वा हि जीवन्ति दुर्वलैर्वलवत्तराः ।। २०/१५
४६. नकुलो मूषिकानत्ति बिडालो नकुलं तथा ।
विडालमत्ति श्वा राजंश्वानं व्यालमृगस्तथा ।।२१/१५
४७. तानत्ति पुरुषः सर्वान् पश्य कालो यथागतः ।
प्राणस्यान्नमिदं सर्व जंगमं स्थावरं च यत् ।। २२/१५
४८. येऽपि समिभन्नमर्यादा नास्तिका वेदनिन्दकाः ।
तेऽपि भोगाय कल्पन्ते दण्डेनाशु निपीडिताः ।। ३३/१५
४६. सर्वो दण्डजितो लाको दुर्लभो हि शुचिर्जनः।
सर्वो दण्डस्य हि भयाद् भीतो भोगायैव प्रवर्तते ।। ३४/१५
५०. चातुर्वर्ण्यप्रमोदाय सुनीतिनयनाय च ।
दण्डो विधात्रा विहितो धर्मार्थौ भुवि रक्षितुम् ।। ३५/१५

५१. यदि दण्डान्न बिभ्येयुर्वयांसि श्वापदानि च ।
अद्युः पशून् मनुष्यांश्च यज्ञार्थानि हवींषि च ।।३६/१५

५२. न ब्रह्मचार्यधीयीत कल्याणी गौर्न दुह्यते ।
न कन्योद्वहनं गच्छेद् यदि दण्डो न पालयेत् ।।३७/ १५

५३. विष्वग्लोपः प्रवर्तेत भिद्येरन् सर्वसेतवः ।
ममत्वं न प्रजानीयुर्यदि दण्डो न पालयेत् ।। ३८/१५

५४. चरेयुर्नाश्रमे धर्मं यथोक्तं विधिमाश्रिताः ।
न विद्यां प्राप्नुयात् कश्चिद् यदि दण्डो न पालयेत् ।।४०/१५

५५. दण्डे स्थिताः प्रजाः सर्वा भयं दण्डे विदुर्बुधाः ।
दण्डे स्वर्गो मनुष्याणां लोकोऽयं सुप्रतिष्ठितः ।। ४३/१५

५६. न तत्र कूटं पापं वा वंचना वापि दृश्यते ।
यत्र दण्डः सुविहितश्चरत्यरिविनाशनः ।। ४४/१५

५७. शारीरं मानसं दुःखं योऽतीतमनुशोचति ।
दुःखेन लभते दुःखं द्वावनर्थौ च विन्दति ।। १०/१६

५८. कश्चित् सुखे वर्तमानो दुःखस्य स्मर्तुमिच्छति ।
कश्चिद् दुःखे वर्तमानः सुखस्य स्मर्तुमिच्छिति ।। १५/१६

५९. यस्त्विमां वसुधां कृत्स्नां प्रशासेदखिलां नृपः ।
तुल्याश्मकांचनों यश्च स कृतार्थो न पार्थिवः ।। १२/१७

६०. तपसा ब्रह्मचर्येण स्वाध्यायेन महर्षयः ।
विमुच्य देहांस्ते यान्ति मृत्योरविषयं गताः ।। १६/१७

६१. गृहस्थेभ्योऽपि निर्मुक्ता गृहस्थानेव संश्रिताः ।
प्रभवं च प्रतिष्ठां च दान्ता विन्दन्त आसते ।।२६/१८

६२. त्यागान्न भिक्षुकं विद्यान्न मौढ्यान्न च याचनात् ।
ऋजुस्तु योऽर्थत्यजति नसुखं विद्धि भिक्षुकम् ।। ३०/१८

६३. असक्तः सक्तवद् गच्छन् निःसंगोमुक्तबन्धनः ।
समः शत्रौ च मित्रे च स वै मुक्तो महीपते ।।३१/१८

६४. परिव्रजन्ति दानार्थं मुण्डाः काषायवाससः ।
सिता बहुविधैः पाशैः संचिन्वन्तो वृथामिषम् ।।३२/१८

६५. अनर्हते यद् ददाति न ददाति यदर्हते ।
अर्हानर्हापरिज्ञानाद् दानधर्मोऽपि दुष्करः ।। ६/२०

६६. संतोषो वै स्वर्गतमः संतोषः परमं सुखम् ।
तुष्टेर्न किंचित् परतः सा सम्यक् प्रतितिष्ठति ।। २/२१

६७. यदा संहरते कामान् कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
तद्ऽऽत्मज्योतिरचिरात् स्वात्मन्येव प्रसीदति ।। ३/२१

६८. न बिभेति यदा चायं यदा चास्मान्न विभ्यति ।
कामद्वेषौ च जयति तदाऽऽत्मानं च पश्यति ।। ४/२१
६६. यदासौ सर्वभूतानां न द्रुह्यति न कांक्षति ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।। ५/२१
७०. प्रजनं स्वेषु दारेषु मार्दवं ह्रीरचापलम् ।
एवं धर्मे प्रधानेष्टं मनुः स्वाम्यभुवोऽब्रवीत् ।। १२/२१
७१. त्वं गत्वा बहुदां शीघ्रं तर्पयस्व यथाविधि ।
देवानृषीन् पितृंश्चैव मा चाधर्मे मनः कृथाः ।। ३६/२३
७२. सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् ।
न नित्यं लभते दुःखं न नित्य लभते सुखम् ।। २३/२५
७३. सुखमेव हि दुःखान्तं कदाचिद् दुःखतः सुखम् ।
तस्मादेतद् द्वयं जह्याद् य इच्छेच्छाश्वतं सुखम् ।। २४/२५
७४. सुखान्तप्रभवं दुःखं दुःखान्तप्रभवं सुखम् ।
येन दुःखेन यो दुःखी न स जातु सुखी भवेत् ।
दुःखानां हि क्षयो नास्ति जायते ह्यपरात् परम् ।।३०/२५
७५. सुखं च दुःखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायतः सर्वमवाप्नुवन्ति तस्माद् धीरो नैव हृष्येन्न शोचेत् ।।३१/२५
७६. तुष्टेर्न किंचित् परमं सा सम्यक् प्रतितिष्ठति ।
विनीतक्रोधहर्षस्य सततं सिद्धिरुत्तमा ।। १२/२६
७७. यदा न भावं कुरुते सर्वभूतेषु पापकम् ।
कर्मणा मनसा वाचा ब्रह्म सम्पद्यते तदा ।। १५/२६
७८. विनीतमानमोहश्च बहुसंगविवर्जितः ।
तदाऽऽत्मज्योतिषः साधोर्निर्वाणमुपपद्यते ।। १६/२६
७६. लब्धस्य त्यागमित्याहुर्न भोगं न च संचयम् ।
तस्य किं संचयेनार्थः कार्ये ज्यायसि तिष्ठति ।। २८/२६
८०. संयोगा विप्रयोगान्ता जातानां प्राणिनां ध्रुवम् ।।२६/२०
८१. बुद्बुदा इव तोयेषु भवन्ति न भवन्ति च ।
सर्वे क्षयान्ता निचयाः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः ।। ३०/२७
८२. संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम् ।
सुखं दुःखान्तमालस्यं दाक्ष्यं दुःखं सुखोदयम् ।
भूतिः श्रीर्ह्रीर्धृतिः कीर्तिर्दक्षते वसति नालसे ।। ३१/२७
८३. यथा काष्ठं च काष्ठं च समेयातां महोदधौ ।
समेत्य च व्यपेयातां तद्वद् भूतसमागमः ।।३६/२८
८४. क्वासे क्व च गमिष्यामि को न्वहं किमिहास्थितः ।

कस्मात् किमनुशोचेयमित्येवं स्थापयेन्मनः ।।४०/२८

८५. अनित्ये प्रियसंवासे संसारे चक्रवद्गतौ ।
पथि संगतमेवैतद् भ्राता माता पिता सखा ।।४१/२८

८६. न दृष्टपूर्वं प्रत्यक्षं परलोकं विदुर्बुधाः ।
आगमांस्त्वनतिक्रम्य श्रद्धातव्यं बुभूषता ।। ४२/२८

८७. न ह्यहानि निवर्तन्ते न मासा न पुनः समाः ।
जातानां सर्वभूतानां न पक्षा न पुनः क्षपाः ।। ४६/२८

८८. सुरापानं सकृत् कृत्वा योऽग्निवर्णा सुरां पिबेत् ।
स पावयत्यथात्मानमिह लोके परत्र च ।। १६/३५

८९. भूमिप्रदानं कुर्याद् यः सुरां पीत्वा विमत्सरः ।
पनुर्नच पिबेद् राजन् संस्कृतः स च शुद्ध्यति ।। १९/३५

९०. परदारापहारी तु परस्यापहरन् वसु ।
संवत्सरं व्रती भूत्वा तथा मुच्येत किल्बिषात् ।।२५/३५

९१. धनं तु यस्यापहरेत् तस्मै दद्यात् समं वसु ।
विविधेनाभ्युपायेन तदा मुच्येत किल्बिषात् ।। २६/३५

९२. भक्ष्याभक्ष्येषु चान्येषु वाच्यावाच्ये तथैव च ।
अज्ञानज्ञानयो राजन् विहितान्यनुजानतः ।। ४४/३५

९३. जानता तु कृतं पापं गुरु सर्वं भवत्युत ।
अज्ञानात् स्वल्पको दोषः प्रायश्चितं विधीयते ।। ४५/३५

९४. शक्यते विधिना पापं यथोक्तेन व्यपोहितुम् ।
आस्तिके श्रद्दधाने च विधिरेष विधीयते ।। ४६/३५

९५. जातिश्रेण्यधिवासानां कुलधर्माश्च सर्वतः ।
वर्जयन्ति च ये धर्मं तेषां धर्मो न विद्यते ।।१९/३६

९६. प्रेतान्नं सूतिकान्नं च यच्च किंचिदनिर्दैशम् ।
अभोज्यं चाप्यपेयं च धेनोर्दुग्धमनिर्दशम् ।। २६/३६

९७. विष्ठा वार्धुषिकस्यान्नं गणिकान्नमथेन्द्रियम् ।
मृष्यन्ति ये चोपपतिं स्त्रीजितान्नं च सर्वशः ।।२८/३६

९८. दीक्षितस्य कदर्यस्य क्रतुविक्रयिकस्य च ।
तक्ष्णश्चर्मावकर्तुश्च पुंश्चल्या रजकस्य च ।। २९/३६

९९. चिकित्सकस्य यच्चान्नमभोज्यं रक्षिणस्तथा ।
वामहस्ताहृदतं चान्नं भक्तं पर्युषितं च यत् ।।३१/३६

१००. सुरानुगतमुच्छिष्टमभोज्यं शेषित च यत् ।
पिष्टस्य चेक्षुशाकानां विकाराः पयसस्तथा ।। ३२/३६

१०१. सक्तधानाकरम्भाणां नोपभोग्याश्चिरस्थिताः ।

यथा प्रव्रजितो भिक्षुस्तथैव स्वे गृहे वसेत् ।।
एवंवृत्तः प्रियैर्दारैः संवसन् धर्ममाप्नुयात् ।।।३५/३६
१०२. काष्ठैरार्द्रैर्यथा वन्हिरूपस्तीर्णो न दीप्यते ।
तपःस्वाध्यायचारित्रैरेवं हीनः प्रति ग्रही ।।४१/३६
१०३. निर्मन्त्रो निर्वृतो यः स्यादशास्त्रज्ञोऽनसूयकः ।
अनुकोशात् प्रदातव्यं हीनेष्वव्रतिकेषु च ।। ४३/३६
१०४. धर्मे स्थिता सत्त्ववीर्या धर्मसेतुवटारका ।
त्यागवाताध्वगा शीघ्रा नौस्तं संतारयिष्यति ।। ६६/३७
१०५. यदा निवृत्तः सर्वस्मात् कामोयोऽस्य हृदि स्थितः ।
तदा भवति सत्त्वस्थस्ततो ब्रह्म समश्नुते ।।६६/३८
१०६. सुप्रसन्नस्तु भावेन योगेन च नराधिप ।
धर्म पुरुषशार्दूल प्राप्स्यते पालने रतः ।।६६/३६
१०७. अहिंसा सत्यवचनमानृशंस्यं दमो घृणा ।
एतत् तपो विदुर्धीरा न शरीरस्य शोषणम् ।।७६/१८
१०८. अप्रामाण्यं च वेदानां शास्त्राणां चाभिलंनम् ।
अव्यवस्था च सर्वत्र तद् वै नाशनमात्मनः ।। ७६/१६
१०६. शक्त्यान्नदानं सततं तितिक्षार्जवमार्दवम् ।
यथार्हप्रतिपूजा च शस्त्रमेतदनायसम् ।।८१/२१
११०. ज्ञातीनां वक्तुकामानां कटुकानि लघूनि च ।
गिरा त्वं हृदयं वाचं शमयस्व मनांसि च ।। ८१/२२
१११. नामहापुरुषः कश्चिन्नानात्मा नासहायवान् ।
महतीं धुरमाधत्तते तामुद्यम्योरसा वह ।। ८१/२३
११२. भवेत् सत्यं न वक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
यत्रानृतं सत्यं सत्यं वाप्यनृतं भवेत् ।।१०६/५
११३. तादृशो बध्यते बालो यत्र सत्यमनिष्ठितम् ।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ।। १०६/६
११४. प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यात् प्रभवसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।।१०६/१०
११५. धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मेण विधृताः प्रजाः ।
यः स्याद् धारणसंयुक्तः स धर्म इति निश्चयः ।। १०६/११
११६. अहिंसार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ।
यः स्यादहिंसासम्पृक्तः स धर्म इति निश्चयः ।। १०६/१२
११७. येऽन्यायेन जिहीर्षन्तो धनमिच्छन्ति कस्यचित् ।
तेभ्यस्तु न तदाख्येयं स धर्म इति निश्चयः ।। १०६/१४

११८. प्रत्याहुर्नोच्यमाना ये न हिंसन्ति च हिंसिताः ।
प्रयच्छन्ति न याचन्ते दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/४
११९. वासयन्त्यतिथीन् नित्यं ये चानसूयकाः ।
नित्यं स्वाध्यायशीलश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/५
१२०. मातापित्रोश्च ये वृत्तिं वर्तन्ते धर्मकोविदाः ।
वर्जयन्ति दिवा स्वप्नं दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।।११०/६
१२१. ये वा पापं न कुर्वन्ति कर्मणा मनसा गिरा ।
निक्षिप्तदण्डा भूतेषु दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/७
१२२. ये तपश्च तपस्यन्ति कौमारब्रह्मचारिणः ।
विद्यावेदव्रतसाता दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/१४
१२३. ये च संशान्तरजसः संशान्ततमसश्च ये ।
सत्वे स्थिता महात्मानो दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/१५
१२४. येषां न कश्चित् त्रसति न त्रसन्ति हि कस्यचित् ।
येषामात्मसमो लोको दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/१६
१२५. परश्रिया न तप्यन्ति ये सन्तः पुरुषर्षभाः ।
ग्राम्यादर्थान्निवृताश्च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/१७
१२६. ये क्रोधं संनियच्छन्ति क्रुद्धान् संशमयन्ति च ।
न च कुप्यन्ति भूतानां दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/२०
१२७. मधु मांसं च ये नित्यं वर्जयन्तीह मानवाः ।
जन्मप्रभृति मद्यं च दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/२२
१२८. यात्रार्थं भोजनं येषां संतानार्थे च मैथुनम् ।
वाक् सत्यवचनार्थाय दुर्गाण्यतितरन्ति ते ।। ११०/२३
१२९. सत्यं ब्रह्म तपः सत्यं सत्यं विसृजते प्रजाः ।
सत्येन धार्यते लोकः स्वर्गे सत्येन गच्छति ।।१९०/१
१३०. अनृतं तमसो रूपं तमसा नीयते ह्यधः ।
तमोग्रस्ता न पश्यन्ति प्रकाशं तमसाऽऽवृताः ।।१९०/ २
१३१. स्वर्गः प्रकाश इत्याहुर्नरकं तम एव च ।
सत्यानृतं तदुभयं प्राप्यते जगतीचरैः ।।१९०/३
१३२. तत्राप्येवंविधा लोके वृत्तिः सत्यानृते भवेत् ।
धर्माधर्मौ प्रकाशश्च तमो दुःखं सुखं तथा ।।१९०/ ४
१३३. तत्र यत् सत्यं स धर्मो यो धर्मः स।
प्रकाशस्तत् सुखमिति । तत्र यदनृतं सोऽधर्मो
योऽधर्मस्तत् तमोयत् तमस्तद् दुःखमिति ।।१९०/ ५
१३४. इन्द्रियाणि मनश्चैव यदा पिण्डीकरोत्ययम् ।

एष ध्यानपथः पूर्वो मया समनुवर्णितः ।।१६५/ १०

१३५. जलबिन्दुर्यथा लोलः पर्णस्थः सर्वतश्चलः ।
एवमेवास्य चित्तं च भवति ध्यानवर्त्मनि ।। १६५/१२

१३६. समाहितं क्षणं किंचिद् ध्यानवर्त्मनि तिष्ठति ।
पुनर्वायुपथं भ्रान्तं मनो भवति वायुवत् ।।१६५/ १३

१३७. मनसा किलश्यमानस्तु समाधानं च कारयेत् ।
न निर्वेदं मुनिर्गच्छेत् कुर्यादेवात्मनो हितम् ।। १६५/१६

१३८. स्वयमेव मनश्चैव पंचवर्ग च भारत ।
पूर्वं ध्यानपथे स्थाप्य नित्ययोगेन शाम्यति ।। १६५/२०

१३९. न तत्पुरुषकारेण न च दैवेन केनचित् ।
सुखमेष्यति तत् तस्य यदेवं संयतात्मनः ।। १६५/२१

१४०. नायं लोकोऽस्ति न परो न च पूर्वान् स तारयेत् ।
कुत एव जनिष्यांस्तु मृषावादपरायणः ।। १६६/६१

१४१. न यज्ञाध्ययने दानं नियमास्तारयन्ति हि ।
यथा सत्यं परे लोके तथेह पुरुषर्षभ ।। १६६/६२

१४२. तपांसि यानि चीर्णानि चरिष्यन्ति च यत् तपः ।
शतैः शतसहस्त्रैश्च तैः सत्यान्न विशिष्यते ।। १६६/६३

१४३. सत्यमेकाक्षरं ब्रह्म सत्यमेकाक्षर तपः ।
सत्यमेकाक्षरो यज्ञः सत्यमेकाक्षरं श्रुतम् ।। १६६/६४

१४४. सत्यं वेदेषु जागर्ति फलं सत्ये परं स्मृतम् ।
सत्याद् धर्मो दमश्चैव सर्व सत्ये प्रतिष्ठितम् ।। १६६/६५

१४५. सत्य वेदास्तथाडानि सत्य विद्यास्तथा विधिः ।
व्रतचर्या तथा सत्यमोङ्कारः सत्यमेव च ।। १६६/६६

१४६. प्राणिनां जननं सत्यं सत्यं संततिरेव च ।
सत्येन वायुरभ्येति सत्येन तपते रविः ।। १६६/६७

१४७. सत्येन चाग्निर्दहति स्वर्गः सत्ये प्रतिष्ठितः ।
सत्यं यज्ञस्तपो वेदाः स्तोभा मन्त्राः सरस्वती ।। १६६/६८

१४८. यतो जगत् सर्वमिदं प्रसूतं,
ज्ञात्वाऽऽत्मवन्तो व्यतियान्ति यत् तत् ।
यन्मन्त्रशब्दैरकृतप्रकाशं तदुच्यमानं श्रृणु मे परं यत् ।। २०१/२५

१४९. रसैर्विमुक्तं विविधैश्च गन्धै-
रशब्दमस्पर्शमरूपवच्च ।
अग्राह्यमव्यक्तमवर्णमेकं
पंचप्रकारान् ससृजे प्रजानाम् ।।२०१/२६

१५०. न स्त्री पुमान् नापि नपुंसकं च
न सन्न चासत् सदसच्च तन्न ।
पश्यन्ति यद् ब्रह्मविदो मनुष्या-
स्तदक्षरं न क्षरतीति विद्धि ।। २०१/२७

१५१. यथा व्यक्तमिदं शेते स्वप्ने चरति चेतनम् ।
ज्ञानमिन्द्रियसंयुक्तं तद्वत् प्रेत्य भवाभवौ ।। २०४/१

१५२. यथाम्भसि प्रसन्ने तु रूपं पश्यति चक्षुषा ।
तद्वत्प्रसन्नेन्द्रियत्वाज्ज्ञेयं ज्ञानेन पश्यति ।। २०४/२

१५३. स एव लुलिते तस्मिन् यथा रूपं न पश्यति ।
तथेन्द्रियाकुलीभावे ज्ञेयं ज्ञाने न पश्यति ।। २०४/३

१५४. तर्षच्छेदो न भवति पुरुषस्येह कल्मषात् ।
निवर्तते तदा हर्षः पापमन्तगतं यदा ।। २०४/६

१५५. ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात् पापस्य कर्मणः ।
यथाऽऽदर्शतले प्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि ।। २०४/८

१५६. प्रसृतैरिन्द्रियैर्दुःखी तैरेव नियतैः सुखी ।
तस्मादिन्द्रियरूपेभ्यो यच्छेदात्मानमात्मना ।।२०४/६

१५७. अव्यकात् प्रसृतं ज्ञानं ततो बुद्धिस्ततो मनः ।
मनः श्रोत्रादिभिर्युक्तं शब्दादीन् साधु पश्यति ।। २०४/११

१५८. उद्यन् हि सविता यद्वत्सृजते रश्मिमण्डलम् ।
स एवास्तमपागच्छंस्तदेवात्मनि यच्छति ।। २०४/१३

१५६. अन्तरात्मा तथा देहमाविश्येन्द्रियरश्मिभिः ।
प्राप्येन्द्रियगुणान् पंच सोऽस्तमावृत्य गच्छति ।। २०४/१४

१६०. विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिनः ।
रसवर्जे रसोऽप्यस्य परं दृष्टा निवर्तते ।। २०४/१६

१६१. बुद्धिः कर्मगुणैर्हीना यदि मनसि वर्तते ।
तदा सम्पद्यते ब्रह्म तत्रैव प्रलयं गतम् ।। २०४/१७

१६२. मनस्याकृतयो मग्ना मनस्त्वभिगतं मतिम् ।
मतिस्त्वभिगता ज्ञानं ज्ञानं चाभिगतं परम् ।। २०४/१६

१६३. नेन्द्रियैर्मनसः सिद्धिर्न बुद्धिं बुद्ध्यते मनः ।
न बुद्धिर्बुद्ध्यतेऽव्यक्तं सूक्ष्मं त्वेतानि पश्यति ।। २०४/२०

१६४. भैषज्यमेतद् दुःखस्य यदेतन्नानुचिन्तयेत् ।
चिन्त्यमानं हि चाभ्येति भूयश्चापि प्रवर्तते ।। २०५/२

१६५. अनित्यं यौवनं रूपं जीवितं द्रव्यसंचयः ।
आरोग्यं प्रियसंवासो गृध्येत् तत्र न पण्डितः ।। २०५/४

१६६. सुखाद् बहुतरं दुःखं जीविते नास्ति संशयः ।
स्निग्धस्य चेन्द्रियार्थेषु मोहान्मरणमप्रियम् ।।२०५/ ६
१६७. दुःखमर्था हि सुज्यन्ते पालनेन च ते सुखम् ।
दुःखेन चाधिगम्यन्ते नाशमेषां न चिन्तयेत् ।। २०५/८
१६८. यदा कर्म गुणैर्हीना बुद्धिर्मनसि वर्तते ।
तदा प्रज्ञायते ब्रह्म ध्यानसोगसमाधिना ।। २०५/१०
१६९. यदा मनसि सा बुद्धिर्वर्ततेऽन्तरचारिणी ।
व्यवसायगुणोपेता तदा सम्पद्यते मनः ।। २०५/१६
१७०. अव्यक्तस्येह विज्ञाने नास्ति तुल्यं निदर्शनम् ।
यत्र नास्ति पदन्यासः कस्तं विषयमाप्नुयात् ।। २०५/१८
१७१. नैर्गुण्याद् ब्रह्म चाप्नोति सगुणत्वान्निवर्तते ।
गुणप्रचारिणी बुद्धिर्हुताशन इवेन्धन ।। २०५/२१
१७२. पुरुषः प्रकृतिर्बुद्धिविषयाश्चेन्द्रियाणि च ।
अहंकारोऽभिमानश्च समूहो भूतसंज्ञकः ।। २०५/२४
१७३. धर्मादुत्कृष्यते श्रेयस्तथाश्रेयोऽप्यधर्मतः ।
रागवान् प्रकृतिं ह्येति विरक्तो ज्ञानवान् भवेत् ।। २०५/२६
१७४. सूक्ष्मेण मनसा विद्यो वाचा वक्तुं न शन्कुमः ।
मनो हि मनसा ग्राह्यं दर्शनेन च दर्शनम् ।। २०६/२४
१७५. ज्ञानेन निर्मलीकृत्य बुद्धिं बुद्ध्या मनस्तथा ।
मनसा चेन्द्रियग्राममक्षरं प्रतिपद्यते ।। २०६/२५
१७६. बुद्धिप्रवीणो मनसा समृद्धो
निराशिषं निर्गुणमभ्युपैति ।
परं त्यजन्तीह विलोड्यमाना
हुताशनं वायुरिवेन्धनस्थम् ।।२०६/२६
१७७. गुणादाने विप्रयोगे च तेषां
मनः सदा बुद्धिपरावराभ्याम् ।
अनेनैव विधिना सम्प्रवृत्तो
गुणापाये ब्रह्म शरीर मेति ।। २०६/२७
१७८. जन्ममृत्युजरादःखैर्व्याधिभिर्मानसकूलमैः ।
दृष्टैव संततं लोकं घटेन्मोक्षाय बुद्धिमान् ।।२१५/२
१७९. अथवा मनसः संडं पश्येद् भूतानुकम्पया ।
तत्राप्युपेक्षां कुर्वीत ज्ञात्वा कर्मफलं जगत् ।। २१५/४
१८०. यत् कृतंस्थाच्छुभं कर्म पापं वा यदि वाश्नुते।
तस्माच्छुभानि कर्माणि कुर्याद् वा बुद्धिकर्मभिः ।। २१५/५

१८१. यश्चैनं परमं धर्म सर्वभूतसुखावहम् ।
दुःखान्निःसरणं वेद सर्वज्ञः स सुखी भवेत् ।।२१५/७
१८२. तस्मात् समाहितं बुद्ध्यामनो भूतेषु धारयेत् ।
नापध्यायेन्न स्पृहयेन्नाबद्धं चिन्तयेदसत् ।। २१५/८
१८३. अथामोघप्रयत्नेन मनो ज्ञाने निवेशयत् ।
वाचामोघप्रयासेन मनोज्ञं तत् प्रवर्तते ।। २१५/९
१८४. विवक्षता च सद्वाक्यं धर्म सूक्ष्ममवेक्षता ।
सत्यां वाचमहिंस्त्रां च वदेदनपवादिनीम् ।।२१५/१०
१८५. कल्कापेतामपरुषामनृशंसामपैशुनाम् ।
ईदृगल्पं च वक्तव्यमविक्षिप्तेन चेतसा ।। २१५/११
१८६. रजोभूतैर्हि करणैः कर्मणि प्रतिपद्यते ।
स दुःखं प्राप्य लोकेऽस्मिन् नरकायोपपद्यते ।
१८७. तस्मान्मनोवाक्शरीरैराचरेद् धैर्यमात्मनः ।।२१५/१३
तमेव च यथा दस्युः क्षिप्त्वा गच्छेच्छिवां दिशम् ।
१८८. तथा रजस्तमः कर्माण्युत्सृज्य प्राप्नुयाच्छुभम् ।। २१५/१५
निःसंदिग्धमनीहो वै मुक्तः सर्वपरिग्रहैः ।
१८९. विविक्तचारी लध्वाशी तपस्वी नियतेन्द्रियः ।।२१५/१६
ज्ञानदग्धपरिक्लेशः प्रयोगरतिरात्म्वान् ।
१९०. निष्प्रचारेण मनसा परं तदधिगच्छति ।।२१५/१७
आहार नियमं चैव देशे काले च सात्विकम् ।
१९१. तत् परीक्ष्यानुवर्तेत तत्प्रवृत्यनुपूर्वकम् ।। २१५/२३
प्रवृतं नोपरुन्धेत शनैरग्निमिवेन्धयेत् ।
१९२. ज्ञानान्वितं तथा ज्ञानमर्कवत् सम्प्रकाशते ।।२१५/२४
न च स्त्री न पुमांश्चैव तथैव न नपुंसकः ।
१९३. केवलज्ञानमात्रं तत् तस्मिन् सर्व प्रतिष्ठितम् ।। अ० २२०
वेदगम्यं परं शुद्धमिति सत्या परा श्रुतिः ।
१९४. व्याहत्या नैतदित्याह व्युपलिंगे च वर्तते ।। अ० २२०
नानारूपवदस्यैवमैश्वर्य दृश्यते शुभे ।
१९५. न वायुस्तन्न सूर्यस्तन्नाग्निस्तत् तु परं पदम् ।। अ० २२०
अनेन पूर्णमेतद्धि हृदि भूतमिहेष्यते ।
१९६. तेषां लिंगानि वक्ष्यामि येषं समुदयो दमः ।
अकार्पण्यमसंरम्भः संतोषः श्रद्दधानता ।। २२०/९
१९७. अक्रोध आर्जवं नित्यं नातिवादोऽभिमानिता ।
गुरुपूजानसूया च दया भूतेष्वपैशुनम् ।। २२०/१०

१६८. जनवादमृषावादस्तुतिनिन्दाविवर्जनम् ।
साधुकामश्च स्पृहयेन्नायतिं प्रत्ययेषु च ।। २२०/११

१६६. अभयं यस्य भूतेभ्यः सर्वेषामभयं यतः ।
नमस्यः सर्वभूतानां दान्तो भवति बुद्धिमान् ।। २२०/१५

२००. न हर्ष्यति महत्यर्थे व्यसने च न शोचति ।
स वै परिमितप्रज्ञः स दान्तो द्विज उच्यते ।।२२०/१६

२०१. कामक्रोधौ च लोभश्च परस्येर्ष्याविकत्थना ।
कामक्रोधौ वसे कृत्वा ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः ।।२२०/१६

२०२. विक्रम्य घोरे तपसि ब्राह्मणः संशितव्रतः ।
कालाकाङ्क्षी चरेल्लोकान् निरपाय इवात्मवान् ।। २२०/२०

२०३. विनीय खलु तद् दुःखमागतं वैमनस्यजम् ।
ध्यातव्यं मनसा हृद्यं कल्याणं संविजानता ।। २२६/६

२०४. यदा यदा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तदा यस्य प्रसिध्यन्ति सर्वार्था नात्र संशयः ।।२२६/७

२०५. एकः शास्तान द्वितीयोऽस्ति शास्ता
गर्भेशयानं पुरुषं शास्ति शास्ता ।
तेनानुयुक्तः प्रवणादिवोदकं
यथा नियुक्तोस्मि तथा वहामि ।। २२६/८

२०६. यथा यथास्य प्राप्तव्यं प्राप्नोत्येव तथा तथा ।
भवितव्यं यथा यच्च भवत्येव तथा यथा ।। २२६/१०

२०७. यत्र यत्रैव संयुक्तो धात्रा गर्भे पुनः पुनः ।
तत्र तत्रैव वसति न यत्र स्वयमिच्छति ।। २२६/११

२०८. न पण्डितः क्रुद्ध्यति नाभिपद्यते
न चापि संसीदति न प्रहर्ष्यति ।
न चार्थकृच्छ्रव्यसनेषु शोचते
स्थितः प्रकृया हिमवानिवाचलः ।। २२६/१५

२०६. यमर्थसिद्धिः परमा न मोहयेत्
तथैव काले व्यसनं न मोहयेत् ।
सुखं च दुःखं च तथैव मध्यमं
निषेवते यः स धुरंधरो नरः ।।२२६/१६

२१०. निन्दत्सु च समा नित्यं प्रशंसत्सु च देवल ।
निन्हुवन्ति च ये तेषां समयं सुकृतं च यत् ।।२३०/८

२११. उक्ताश्च न वदिष्यन्ति वक्तारमहिते हितम् ।
प्रतिहन्तुं न चेच्छन्ति हन्तारं वै मनीषिणः ।। २३०/६

२१२. नाप्राप्तमनुशोचन्ति प्राप्तकालानि कुर्वते ।
न चातीतानि शोचन्ति न चैव प्रतिजानत ।। २३०/१०

२१३. पक्वविद्या महाप्राज्ञा जितक्रधा जितेन्द्रियाः ।
मनसा कर्मणा वाचा नापराध्यन्ति कर्हिचित् ।।२३०/१२

२१४. अनीर्षवो न चान्योन्यं विहिंसन्ति कदाचन ।
न च जातूपतप्यन्ते धीराः परसमृद्धिभिः ।। २३०/१३

२१५. ये धर्मं चानुरुद्ध्यन्ते धर्मज्ञा द्विजसत्तम ।
ये ह्यतो विच्युता मार्गात् ते हृष्यन्त्युद्विजन्ति च ।। २३०/१८

इति

महाभारत

उद्योग पर्व - अष्टमोऽध्यायः

२१६. आत्मज्ञानं समारम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
यमर्थाननापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ।।१०।।

२१७. निसेवते प्रशस्तानि निन्दितानि न सेवते ।
अनास्तिकः श्रद्दधान एतत् पण्डितलक्षणम् ।।११।।

२१८. क्रोधो हर्षश्च दर्पश्च ह्रीस्तम्भो मान्यमानिता ।
यमर्थान्नापकर्षन्ति स वै पण्डित उच्यते ।।१२।।

२१९. यस्य कृत्यं न जानन्ति मन्त्रं वा मन्त्रितं परे ।
कृतेवास्य जानन्ति स वै पण्डित उच्यते ।।१३।।

२२०. यस्य कृत्यं न जानन्ति शीतमुष्णं भयं रतिः ।
समृद्धिरसमृद्धिर्वा स वै पण्डित उच्यते ।।१४।।

२२१. क्षिप्रं विजानाति चिर शृणोति विज्ञाय चार्थं भजते न कामात् ।
नासम्पृष्टो हयृपयुङ्क्ते परार्थे तत् प्रज्ञानं प्रथमं पण्डितस्य ।।१५।।

२२२. नाप्राप्यमभिवांछन्ति नष्टं नेच्छति शोचितुम् ।
आपत्सु च न मुह्यन्ति नराः पण्डिबुद्धयः ।।१६।।

२२३. निश्चित्य यः प्रक्रमते नान्तर्वसति कर्मणः ।
अवन्ध्यकालो वश्यात्मा स वै पण्डित उच्यते ।।१७।।

२२४. न हृष्यत्यात्मसम्माने नावमानेन तप्यते ।
गांगो ह्रद इवाक्षोभ्यो यः स पण्डित उच्यते ।।१८।।

२२५. तत्त्वज्ञः सर्वभूतानां योगज्ञः सर्वकर्मणाम् ।
उपायज्ञो मनुष्याणां नरः पण्डित उच्यते ।।१९।।

२२६. प्रवृत्तवाक् चित्रकथ ऊहवान् प्रतिभानवान् ।
आशु ग्रन्थस्य वक्ता च यः स पण्डित उच्यते ।।२०।।

२२७. श्रुतं प्रज्ञानुगं यस्य प्रज्ञा चैव श्रुतानुगा ।
असम्भिन्नार्यमर्यादः पण्डिताख्यां लभेत सः ।।२१।।
२२८. अश्रुतश्च समुन्नद्धो दरिद्रश्च महामनाः ।
अर्थाश्चाकर्मणा प्रेप्सुर्मूढ इत्युच्ते बुधैः ।।२२।।
२२९. स्वमर्थं यः परित्यज्य परार्थमनुतिष्ठति ।
मिथ्या चरति मित्रार्थे यश्च मूढः स उच्यते ।।२३।।
२३०. अकामान् कामयति यः काममानान् परित्यजेत् ।
बलवन्तं च यो द्वेष्टि तमाहुर्मूढचेतसम् ।।२४।।
२३१. अमित्रं कुरुते मित्रं मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च ।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढचेतसम् ।।२५।।
२३२. संसारयति कृत्यानि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढो भरतर्षभ ।।२६।।
२३३. अनाहूतः प्रविशति अपृष्टो बहु भाषते ।
अविश्वस्ते विश्वसिति मूढचेता नराधमः ।।२७।।
२३४. परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रुध्यत्यनीशानः स च मूढतमो नरः ।।२८।।
२३५. एकः सम्पन्नमश्नाति धत्ते वासश्च शोभनम् ।
योऽसंविभज्य भृत्येभ्यः को नृशंसतरस्ततः ।।२९।।
२३६. एकः पापानि कुरुते फलं भुङ्क्ते महाजनाः ।
भोक्तारो विप्रमुच्यन्ते कर्ता दोषेण लिप्यते ।।३०।।
२३७. एकं हन्यान्न वा हन्यादिषुर्मुक्तो धनुष्मता ।
बुद्धिर्बुद्धिमतोत्सृष्टा हन्याद् राष्ट्रं सराजकम् ।।३१।।
२३८. एकया द्वे विनिश्चित्य त्रींश्चतुर्भिर्वशे कुरु ।
पंच जित्वा विदित्वा षट् सप्त हित्वा सुखी भवेत् ।।३२।।
२३९. एकं विषरसो हन्ति शस्त्रेणैकश्च वध्यते ।
सराष्ट्रं सप्रजं हन्ति राजानं मन्त्रविप्लवः ।।३३।।
२४०. एकः स्वादु न भुंजीत एकश्चार्थान् न चिन्तयेत् ।
एको न गच्छेदध्वानं नैकः सुप्तेषु जागृयात् ।।३४।।
२४१. एकमेवाद्वितीयं तद् यद् राजन् नावबुध्यसे ।
सत्यं स्वर्गस्य सोपानं पारावारस्य नौरिव ।।३५।।
२४२. एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते ।
यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ।।३६।।
२४३. सोऽस्य दोषो न मन्तव्यः क्षमा हि परमं बलम् ।
क्षमा गुणो ह्यशक्तानां शक्तानां भूषणं क्षमा ।।३७।।

२४४. क्षमा वशीकृतिर्लोके क्षमया किं न साध्यते ।
शान्तिखङ्गः करे यस्य किं करिष्यति दुर्जनः ।।३८।।
२४५. अतृणे पतितो वह्निः स्वयमेवोपशाम्यति ।
अक्षमावान् परं दोषैरात्मानं चैव योजयेत् ।।३९।।
२४६. एको धर्मः परं श्रेयः क्षमैका शान्तिरुत्तमा ।
विद्यैका परमा तृप्तिरहिंसैका सुखावहा ।।४०।।
२४७. द्वाविमौ ग्रसते भूमिः सर्पो बिलशयानिव ।
राजानं चाविरोद्धारं ब्राह्मणं चाप्रवासिनम् ।।४१।।
२४८. द्वे कर्मणी नरः कुर्वन्नस्मिल्लोके विरोचते ।
अब्रुवन् परुषं किंचिदसतोऽनर्चयँस्तथा ।।४२।।
२४९. द्वाविमौ कण्टकौ तीक्ष्णौ शरीरपरिशोषिणौ ।
यश्चाधनः कामयते यश्च कुप्यत्यनीश्वरः ।।४३।।
२५०. द्वाविमौ न विराजेते विपरीतेन कर्मणा ।
गृहस्थश्च निरारम्भः कार्यवाँश्चैव भिक्षुकः ।।४४।।
२५१. द्वाविमौ पुरुषौ राजन् स्वर्गस्योपरि तिष्ठतः ।
प्रभुश्च क्षमया युक्तो दरिद्रश्च प्रदानवान् ।।४५।।
२५२. न्यायागतस्य द्रव्यस्य बोद्धव्यौ द्वावतिक्रमौ ।
अपात्रे प्रतिपत्तिश्च पात्रे च चा प्रातिपादनम् ।।४६।।
२५३. द्वावम्भसि निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढां शिलाम् ।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम् ।।४७।।
२५४. द्वाविमौ पुरुषव्याघ्र सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ।।४८।।
२५५. त्रिविधाः पुरुषा राजन्नुत्तमाधममध्यमाः ।
नियोजयेद् यथावत् ताँस्त्रिविधेष्वेव कर्मसु ।।४९।।
२५६. हरणं च परस्वानां परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदश्च परित्यागस्त्रयो दोषाः क्षयावहाः ।।५०।।
२५७. त्रिविधं नरकस्येदं द्वारं नाशनमात्मानः ।
कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ।।५१।।
२५८. भक्तं च भजमानं च तवास्मीति च वादिनम् ।
त्रीनेताँश्छरणं प्राप्तान् विषमेऽपि न संत्यजेत् ।।५२।।
२५९. चत्वारि राज्ञा तु महाबलेन वर्ज्यान्याहुः पण्डितस्तानि विद्यात् ।
अल्पप्रज्ञैः सह मन्त्रं न कुर्यात् दीर्घ सूत्रै रभसैश्चारणैश्च ।।५३।।
२६०. चत्वारि ते तात गृहे वसन्तु श्रियाभिजुष्टस्य गुहस्थधर्मे ।
वृद्धो ज्ञातिरवसन्नः कुलीनः सख दरिद्रश्च स्वसाऽनपत्या ।।५४।।

२६१. चत्वारि कर्माण्यभयङ्कराणि भयं प्रयच्छन्त्ययथ कृतानि ।
मानाग्निहोत्रमुत मानमौनं मानेनाधीतमुत मानयज्ञः ।।५५।।
२६२. पंचैव पूजयंल्लोके यशः प्राप्नोति केवलम् ।
देवान् पितृन् मनुष्याँश्च भिक्षूनतिथिपंचमान् ।।५७।।
२६३. पंचेन्द्रियस्य मर्त्यस्यच्छिद्रं चेदेकमिन्द्रियम् ।
ततोऽस्य स्त्रवति प्रज्ञा दृतेः पात्रादिवोदकम् ।।५८।।
२६४. षड् दोषाः पुरुषेणेह हाततव्या भूतिमिच्छता ।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता ।।५६।।
२६५. षडिमान् पुरुषो जह्याद भिन्नां नावमिवार्णवे ।
अप्रवक्तारमाचार्यमनधीयानमृत्विजम् ।।६०।।
२६६. अरक्षितारं राजानं भार्यां चाप्रियवादिनीम् ।
ग्रामकामं च गोपालं वनकामं च नापितम् ।।६१।।
२६७. षण्णामात्मनि नित्या नामैश्वर्यं योऽधिगच्छति ।
न स पापैः कुतोऽनर्थैर्युज्यते विजितेन्द्रियः ।।६४।।
२६८. आरोग्यमानृण्यमविप्रवासः सद्भिर्मनुष्यैः सह सम्प्रयोगः ।
स्वप्रत्यया वृत्तिरमीतवासः षड्जीवलोकस्य सुखानि राजन् ।।७०।।
२६६. ईर्ष्युर्घृणी त्वसन्तुष्टः क्रोधनो नित्यशंकितः ।
परभाग्योपजीवी च षडेते नित्यदुःखिताः ।।७१।।
२७०. सप्त दोषा सदा राज्ञा हातव्या वयसनोदयाः ।
प्रायशो यैर्विनश्यन्ति कृतभूला अपीश्वराः ।।७२।।
२७१. स्त्रियोऽक्षमा मृगया पानं वाक्पारुष्यं च पंचमम् ।
महच्च्व दण्डपारुष्यमर्थदूषणमेव च।।७३।।
२७२. अष्टौ गुणाः पुरुषं दीपयन्ति प्रज्ञा च कौल्यं च दमः श्रुतं च ।
पराक्रमश्चाबहुभाषिता च दानं यथाशक्ति कृतज्ञाता च ।।७४।।
२७३. नवद्वारमिदं वेश्म त्रिस्थूणं पंचसाक्षिकम् ।
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स परः कविः ।।७५।।
२७४. दश धर्म न जानन्ति धृतराष्ट्र निबोध तान् ।
मत्तः प्रमत्त उन्मत्तः श्रान्तः क्रुद्धो बुभुक्षितः ।।७६।।
२७५. त्वरमाणश्च लुब्धश्च भीतः कामी च ते दश ।
तस्मादेतेषु सर्वेषु न प्रसज्जेत पण्डितः ।।७७।।
२७६. जानाति विश्वासयितुं मनुष्यान् विज्ञातदोषेषु दधाति दण्डम् ।
जानाति मात्रां च तथा क्षमां च तं तादृशं श्रीर्जुषते समग्राः ।।७६।।
२७७. सुदुर्बलं नावजानाति कंचिद् युक्ते रिपुं सेवते बुद्धिपूर्वम् ।
न विग्रहं रोचयते बलस्थैः काले च यो विक्रमते स धीरः ।।८०।।

२७८. न योऽभ्यसूयत्यनुकम्पते च न दुर्बलः प्रतिभाव्यं करोति ।
नात्याह किंचित् क्षमते विवादं सर्वत्र तादृग् लभते प्रशंसाम् ।।८१।।

२७६. न वैरमुद्दीपयति प्रशान्तं न दर्पमारोहति नास्तमेति ।
न दुर्गतोऽस्मीति करोत्यकार्यं तमार्यशीलं परमाहुरार्याः ।।८२।।

२८०. न स्वे सुखे वै कुरुते प्रहर्षं चान्यस्य दुःखे भवति विषादी ।
दत्वा न पश्चात् कुरुतेऽनुतापं स कथ्यते सत्पुरुषार्यशीलः ।।८३।।

२८१. दम्भं मोहं मत्सरं पापकृत्यं राजद्विष्टं पैशुनं पूगवैरम् ।
मत्तोन्मत्तैर्दुर्जनैश्चापि वादं यः प्रज्ञावान् वर्जयेत् स प्रधानः ।।८४।।

२८२. मितं भुंक्ते संविभज्याश्रितेभ्यो मितं स्वपित्यमितं कर्म कृत्वा ।
ददात्यमित्रेष्वपि याचितः संस्तमात्मवन्तं प्रजहत्यनार्थाः ।।८५।।

उद्योग पर्व - नवमोऽध्यायः

२८३. वनस्पतेरपक्वानि फलानि प्रचिनोति यः ।
स नाप्नोति रसं तेभ्यो बीजं चास्य विनश्यति ।।७।।

२८४. पितृपैतामहं राज्यं प्राप्तवान् स्वेन कर्मणा ।
वायु संत्यजतो धर्ममधर्मं चानुतिष्ठतः ।।१३।।

२८५. अथसंत्यजतो धर्ममधर्म चानुतिष्ठतः ।
प्रतिसंवेष्टते भूमिरग्नौ चर्माहितं यथा ।।१४।।

२८६. अप्युन्मत्तात्प्रलपतो बालाच्च परिजल्पतः ।
सर्वतः सारमादद्यादश्मभ्य इव कांचनम् ।।१६।।

२८७. आत्मानमेव प्रथमं द्वेष्यरूपेण यो जयेत् ।
ततोऽमात्यानमित्राँश्च न मोघां विजिगीषते ।।३०।।

२८८. रथः शरीरं पुरुषस्य राजन्नात्मा नियन्तेन्द्रियाण्यस्य चाश्वाः ।
तैरप्रमत्तः कुशली सदश्वै र्दान्तैः सुखं याति रथीव धीरः ।।३२।।

२८६. एतान्यनिगृहीतानि व्यापादयतुमप्यलम् ।
अविधेया इवादान्ता हयाः पथि कुसारथिम् ।।३३।।

२६०. आत्मनाऽऽत्मानमन्विच्छेन्मनोबुद्धीन्द्रियैर्यतैः ।
आत्मा ह्येवात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ।।३५।।

२६१. क्षुद्राक्षेणेव जालेन झषावपिहितावुभौ ।
कामश्च राजन् क्रोधश्च तौ प्रज्ञानं विलुम्पतः ।।३६।।

२६२. अनसूयाऽऽर्जवं शौचं सन्तोषः प्रियवादिता ।
दमः सत्यमनोयासो न भवन्ति दुरात्मनाम् ।।३७।।

२६३. आत्मज्ञानमसंरम्भस्तितिक्षा धर्मनित्यता ।
वाक् चैव गुप्ता दानं च नैतान्यन्त्येषु भारत ।।३८।।

२९४. आक्रोशपपरिवादाभ्यां विहिंसन्त्यबुधा बुधान् ।
वक्ता पापमुपादत्ते क्षममाणो विमुच्यते ।।३९।।
२९५. हिंसा बलमसाधूनां राज्ञां दण्डविधिर्बलम् ।
शुश्रूषा तु बलं स्त्रीणां क्षमा गुणवतां बलम् ।।४०।।
२९६. वाक्संयमो हि नृपते सुदुष्करतमो मतः ।
अर्थवच्च विचित्रं च न शक्यं बहु भाषितुम् ।।४१।।
२९७. अभ्यावाहति कल्याणं विविधा वाक् सुभाषिता ।
सैव दुर्भाषिता राजन्ननर्थायोपपद्यते ।।४२।।
२९८. रोहते सायकैर्विद्धं वनं परशुना हतम् ।
वाचा दुरुक्तं बीभत्सं न संरोहति वाक्क्षतम् ।।४३।।
२९९. कर्णिनालीकनाराचा निर्हरन्ति शरीरतः ।
वाक्शल्यस्तु न निर्हर्तुं शक्यो हृदिशयो हि सः ।।४४।।
३००. वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति यैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
परस्य नामर्मसु ते पतन्ति तान् पण्डितो नावसृजेत् परेभ्यः ।।४५।।
३०१. यस्मैः देवाः प्रयच्छनित पुरुषाय पराभवम् ।
बुद्धि तस्यापकर्षन्ति सोऽपाचीनानि पश्यति ।।४६।।
३०२. बुद्धौ कलूषभूतायां विनाशे समुपस्थिते ।
अनयो नयसंकाशो हृदयान्नापसर्पति ।।४७।।

उद्योग पर्व - दशमोऽध्यायः

३०३. त्वं हि राजेन्द्र भूम्पर्थे नानृतं वक्तुमर्हसि ।
मा गमः ससुतामात्यो नाशं पुत्रार्थमब्रुवन् ।।४।।
३०४. न देवा दण्डमादाय रक्षन्ति पशुपालवत् ।
यं तु रक्ष्ज्ञितुमिच्छन्ति बुद्ध्यज्ञ संविभजन्ति तम् ।।५।।
३०५. यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मनः ।
तथा तथास्य सर्वार्थाः सिद्ध्यन्ते नात्र संशयः ।।६।।
३०६. न छन्दाँसि वृजिनात् तारयन्ति मायाविनं मायया वर्तमानम् ।
नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाश्छन्दाँस्येनं प्रजहत्यन्तकाले ।।७।।
३०७. मद्यपानं कलहं पूगवैरं भार्यापत्योरन्तरं ज्ञातिभेदम् ।
राजद्विष्टं स्त्रीपुंसयोर्विवादं वर्ज्यान्याहुर्यश्च पन्थाः प्रदुष्टः ।।८।।
३०८. सामुद्रिकं वणिजं चोरपूर्व शलाकधूर्तं च चिकित्सकं च ।
अरि च मित्रं च कुशीलवं च नैतान् साक्ष्ये त्वधिकुर्वीत सप्त ।।९।।
३०९. तृणेल्कया हि ज्ञायते जातरूपं वृत्तेन भद्रो व्यवहारेण साधुः ।
शूरो भयेषु चार्थकृच्छेषु धीरः कृच्छ्रष्वापत्सु सुहृदश्चारयश्च ।।१०।।

३१०. जरा रूपं हरति धैर्यमाश मृत्युः प्राणान् धर्मचर्यामसूया ।
क्रोध श्रियं शीलमनार्यसेवा ह्रियं कामः सर्वमेवाभिमानः ।।११।।
३११. अष्टौ नृपेमानि मनुष्यलोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्‌भिश्चत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ।।१२।।
३१२. अष्टौ नृपेमानि मनुष्लोके स्वर्गस्य लोकस्य निदर्शनानि ।
चत्वार्येषामन्ववेतानि सद्‌भिचत्वारि चैषामनुयान्ति सन्तः ।।१३।।
३१३. यज्ञो दानमध्ययनं तपश्च चत्वार्येतान्यन्ववेतानि सद्‌भिः ।
दमः सत्यमार्जवमानृशंस्यं चत्वार्येतान्यनुयान्ति सन्तः ।।१४।।
३१४. इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं क्षमा घृणा ।
अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः ।।१५।।
३१५. तत्र पूर्वचतुर्वर्गो दम्भार्थमपि सेव्यते ।
उत्तरस्तु चतुर्वर्गो नामहात्मसु तिष्ठति ।।१६।।
३१६. न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति ।
धर्मो न स यत्र न सत्यमस्ति सत्यं न तत् यच्छलेनाभ्युपेतम् ।।१७।।
३१७. सत्यं व्रतं श्रुतं विद्या कौल्यं शीलं बलं धनम् ।
शौर्यं च चित्रभाष्यं च दशेमे स्वर्गयोनयः ।।१८।।
३१८. असूयको दन्दशूको निष्ठुरो वैरकृच्छठः ।
स कृच्छं महदाप्नोति न चिरात् पापमाचरन् ।।१९।।
३१९. दिवसेनैव तत् कुर्याद् येन रात्रौ सुखे वसेत् ।
अष्टमासेन तत्कुर्याद् येन वर्षाः सुखं वसेत् ।।२०।।
३२०. पूर्वे वयसि तत् कुर्याद् येन वृद्धः सुखं वसेत् ।
यावज्जीवेन तत् कुर्याद् येन प्रेत्य सुखं वसेत् ।।२१।।
३२१. जीर्णमन्नं प्रशंसन्ति भार्यां च गतयौवनाम् ।
शूरं विजितसंग्रामं गतपारं तपस्विनम् ।।२२।।
३२२. ऋषीणां च नदीनां च कुलानां च महात्मनाम् ।
प्रभवो नाधिगन्तव्यः स्त्रीणां दुश्चरितस्य च ।।२३।।
३२३. द्विजातिपूजाभिरतो दाता ज्ञातिषु चार्जवी ।
क्षत्रियः शीलभाग् राजँश्चिरं पालयते महीम् ।।२४।।
३२४. सुवर्णपुष्पितां पृथ्वीं चिन्वन्ति पुरुषास्त्रयः ।
शूरश्च कृतविद्यश्च यश्च जानाति सेवितुम् ।।२५।।

उद्योग पर्व - एकादशोऽध्यायः

३२५. तपो दमो ब्रह्मवित्तं वितानाः पुण्या विवाहाः सततान्नदानम् ।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि ।।२।।
३२६. अनिज्यया कुविवाहैर्वेदस्योत्सादनेन च ।

कुलान्यकुलतां यन्ति धर्मस्यातिक्रमेण च ।।४।।

३२७. कुलानि समुपेतानि गोभिः पुरुषतोऽर्थतः ।
कुलसंख्यां न गच्छन्ति यानि हीनानि वृत्ततः ।।५।।

३२८. वृत्ततस्त्वहिहीनानि कुलान्यल्पधनान्यपि ।
कुलसंख्यां च गच्छन्ति कर्षन्ति च महद्यशः ।।६।।

३२९. वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमेति च याति च ।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः ।।७।।

३३०. मा नः कुले वैरकृत् कश्चिदस्तु राजामात्यो मा परस्वापहारी ।
मित्रद्रोही नैकृतिकोऽनृती वा पूर्वाशी वा पितृदेवातिथिभ्यः ।।८।।

३३१. तृणानि भूमिरदकं वाक् चतुर्थी य सूनृता ।
सतामेतानि गेहेषु नेच्छिद्यन्ते कदाचन ।।९।।

३३२. अकस्मादेव कुप्यन्ति प्रसीदन्त्यनिमित्ततः ।
शीलमेतदसाधूनामभ्रं परिप्लवं यथा ।।१०।।

३३३. सत्कुताश्च कुतार्थाश्च मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नानूनोपभुंजते ।।११।।

३३४. सुखं च दुखं च भवाभवौ च लाभालाभौ मरणं जीवितं च ।
पर्यायशः सर्वमेते स्पृशन्ति तस्माद् धीरो न च हृष्येन्न शोचेत् ।।१३।।

३३५. नान्यत्र विद्यातपसोर्नान्यत्रेन्द्रियनिग्रहात् ।
नान्यत्र लोभसंत्यागाच्छान्ति पश्यामि तेऽनघ ।।१६।।

३३६. बुद्ध्या भयं प्रणुदति तपसा विन्दते महत् ।
गुरुशुश्रूषया ज्ञानं शान्ति योगेन विन्दति ।।१७।।

३३७. स्वधीतस्य सुयुद्धस्य सुकृतस्य च कर्मणः ।
तपसश्च सुतप्तस्य तस्यान्ते सुखमेधते ।।१८।।

३३८. स्वास्तीर्णानि शयनानि प्रपन्ना न वै भिन्ना जातु निद्रां लभन्ते ।
न स्त्रीषु राजन् रतिमाप्नुवन्ति न मागधैः स्तूयमाना न सूतैः ।।१९।।

३३९. न वै भिन्ना जातु धर्म चरन्ति न वै सुखं प्राप्नुवन्तीह भिन्नाः ।
न वै भिन्ना गौरवं प्राप्नुवन्ति न वै भिन्ना प्रशमं रोचयन्ति ।।२०।।

३४०. न वै तेषां स्वदते पथ्यमुक्तं योगक्षेमं कल्पते नैव तेषाम् ।
भिन्नानां वै नृपेन्द्र परायणं न विद्यते किंचिदन्यद् विनाशात् ।।२१।।

३४१. धूमायन्ते व्यपेतानि ज्वलन्ति सहितानि च ।
धृतराष्ट्रोल्मुकानीव ज्ञातयो भरतर्षभ ।।२२।।

३४२. ब्राह्मणेषु च ये शूराः स्त्रीषु ज्ञातिषु गोषु च ।
वृन्तादिव फलं पक्वं धृतराष्ट्र पतन्ति ते ।।२३।।

३४३. महानप्येकजो वृक्षो बलवान् सुप्रतिष्ठितः ।

प्रसह्य एव वातेन सस्कन्धो मर्दितुं क्षणात् ।।२४।।
३४४. अथ ये सहिता वृक्षाः संघशः सुप्रतिष्ठिताः ।
ते हि शीघ्रतमान् वातान् सहन्तेऽन्योन्यसंश्रयात् ।।२५।।
३४५. एवं मनुष्यमप्येकं गुणैरपि समन्वितम् ।
शक्यं द्विषन्तो मन्यन्ते वायुर्द्रुममिवैकजम् ।।२६।।
३४६. अवध्या ब्राह्मणा गावो ज्ञातयः शिशवः स्त्रियः ।
योषं चान्नानि भुंजीत ये च स्युः शरणागताः ।।२७।।
३४७. अतिमानोऽतिवादश्च तथात्यागो नराधिप ।
क्रोधश्चात्मविधित्सा च मित्रद्रोहश्च तानि षट् ।।३५।।
३४८. एत एवासयस्तीक्ष्णाः कृन्तन्त्यायूंषि देहिनाम् ।
एतानि मानवान् घ्नन्ति न मृत्युर्भद्रमस्तु ते ।।३६।।
३४९. सुलभाः पुरुषा राजन् सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य तु पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः ।।३८।।
३५०. यो हि धर्मं समाश्रित्य हित्वा भर्तुः प्रियाप्रिये ।
अप्रियाण्याह पथ्यानि तेन राजा सहायवान् ।।३९।।
३५१. त्यजेत् कुलार्थे पुरुषं ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् ।
ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ।।४०।।
३५२. आपदर्थे धनं रक्षेद् दारान् रक्षेद् धनैरपि ।
आत्मानं सततं रक्षेद् दारैरपि धनैरपि ।।४१।।
३५३. अस्तब्धमक्लीबमदीर्घसूत्रं सानुक्रोशं श्लक्ष्णमहार्यमन्यैः ।
अरोगजातीयमुदारवाक्यं दूतं वदन्त्यष्टगुणोपपन्नम् ।।४३।।
३५४. गुणा दश स्नानशीलं भजन्ते बलं रूपं स्वरवर्णप्रशुद्धिः ।
स्पर्शश्च गन्धश्च विशुद्धता च श्रीः सौकुमार्यं प्रवराश्च नार्यः ।।४४।।
३५५. गुणाश्च षण्मितभुक्तं भजन्ते आरोग्यमायुश्च बलं सुखं च ।
अनाविलं चास्य भवत्यपत्यं न चैनमाद्यून इति क्षिपन्ति ।।४५।।
३५६. अकर्मशीलं च महशनं च लोकद्विष्टं बहुमायं नृशंसम् ।
अदेशकालज्ञमनिष्टवेष मेतन्नु गृहे न प्रतिवासयेत ।।४६।।
३५७. कदर्यमाक्रोषकमश्रुतं च वनौकसं धूर्तममान्यमानिनम् ।
निष्ठूरिणं कृतवैरं कुतघ्नमेतान् भृशार्तोऽपि न जातु याचेत् ।।४७।।
३५८. हितं यत् सर्वभूतानामात्मनश्च सुखावहम् ।
तत् कर्यादीश्वरे ह्येतन्मूलं सर्वार्थसिद्धये ।।४८।।

उद्योग पर्व - द्वादशोऽध्यायः

३५९. अपकृत्य बुद्धिमतो दूरस्थोऽस्मीति नाश्वसेत् ।

दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू याभ्यां हिंसति हिंसितः ।।१।।
३६०. न विष्वसेदविश्वस्ते विश्वस्ते नातिविश्वसेत् ।
विश्वासाद् भयमुत्पन्नं मूलान्यपि निकृन्तति ।।२।।
३६१. अनीर्ष्युर्गुप्तदारश्च संविभागी प्रियंवदः ।
श्लक्ष्णो मधुरवाक् स्त्रीणां न चासां वशगो भवेत् ।।३।।
३६२. पूजनीया महाभागाः पुण्याश्च गृहदीप्तयः ।
स्त्रियः श्रियो गृहस्योक्तास्तस्माद् रक्ष्या विशेषतः ।।४।।
३६३. अप्रशस्तानि कार्याणि यो मोहादनुतिष्ठति ।
स तेषां विपरिभ्रंशाद् भ्रंश्यते जीवितादपि ।।५।।
३६४. अनार्यवृत्तमप्राज्ञमसूयकमधार्मिकम् ।
अनर्थाः क्षिप्रमायान्ति वाग्दुष्टं क्रोधनं तथा ।।८।।
३६५. अविसंवादनं दानं समयस्याव्यतिक्रमः ।
आवर्तयन्ति भूतानि सम्यक् प्रणिहिता च वाक् ।।९।।
३६६. धृतिः शमो दमः शौचं कारुण्यं वागनिष्ठुरा ।
मित्राणां चानभिद्रोहः सप्तैताः समिधः श्रियः ।।१०।।
३६७. न स रात्रौ सुखं शेते ससर्प इव वेश्मनि ।
यः कोपयति निर्दोषं सदोषोऽभ्यन्तरं जनम् ।।१२।।
३६८. यत्र स्त्री यत्र कितवो बालो यत्रानुशासिता ।
मज्जन्ति तेऽवशा राजन् नद्यामश्मप्लवा इव ।।१३।।
३६९. यं प्रशंसन्ति कितवा यं प्रशंसन्ति चारणाः ।
यं प्रशंसन्ति बन्धक्यो न स जीवति मानवः ।।१४।।
३७०. प्रियो भवति दानेन प्रियवादेन चापरः ।
मन्त्रमूलबलेनान्यो यः प्रियः प्रिय एव सः ।।१५।।
३७१. द्वेष्यो न साधुर्भवति न मेधावी न पण्डितः ।
प्रिये शुभानि कार्याणि द्वेष्ये पापानि चैव ह ।।१६।।
३७२. ये वै भेदनशीलास्तु सकामा निस्त्रपाः शठाः ।
ये पापा इति विख्याताः संवासे परिगर्हिताः ।।१७।।
३७३. यो ज्ञातिमनुगृह्लाति दरिद्रं दीनमातुरम् ।
स पुत्रपशुभिर्वृद्धिं श्रेयश्चानन्त्यमश्नुते ।।१८।।
३७४. विगुणा ह्यपि संरक्ष्या ज्ञातयो भरतर्षभ ।
किं पुनर्गुणवन्तस्ते त्वत्प्रसादाभिकांक्षिणः ।।१९।।
३७५. सम्भोजनं संकथनं सम्प्रीतिश्च परस्परम् ।
ज्ञातिभिः सह कार्याणि विरोधः न विरोधः कदाचन ।।२१।।
३७६. येन खट्वां समारूढः परितप्येत कर्मणा ।

आदावेव न तत् कुर्यादध्रुवे जीविते सति ।।२३।।
३७७. न वै श्रुतमविाय वृद्धाननुपसेव्य वा ।
धर्माथौ वेदितुं शक्यौ बृहस्पतिसमैरपि ।।२६।।
३७८. नष्टं समुद्रे पतितं नष्टं वाक्यमशृण्वति ।
अनात्मनि श्रुतं नष्टं नष्टं हुतमनग्निकम् ।।२७।।
३७९. अकीर्ति विनयो हन्ति हन्त्यनर्थं पराक्रमः ।
हन्ति नित्यं क्षमा क्रोधमाचारो हन्त्यलक्षणम् ।।२८।।
३८०. प्राज्ञोपसेविनं वैद्यं धार्मिकं प्रियदर्शनम् ।
मित्रवन्तं सुवाक्यं च सुहृदं परिपालयेत् ।।२९।।
३८१. दुष्कुलीनः कुलीनो वा मर्यादां यो न लंघयेत् ।
धर्मापेक्षी मृदुः ह्रीमान् स कुलीनशताद् वरः ।।३०।।
३८२. अवलिप्तेषु मूर्खेषु रौद्रसाहसिकेषु च ।
तथैवापेतधर्मेषु न मैत्रीमाचरेद् बुधः ।।३१।।
३८३. कृतज्ञं धार्मिकं सत्यमक्षुद्रं दृढभक्तिकम् ।
जितेन्द्रियं स्थितं स्थित्यां मित्रमत्यागि चेष्यते ।।३२।।
३८४. इन्द्रियाणामनुत्सर्गो मृत्युनापि विशिष्यते ।
अत्यर्थं पुनरुत्सर्गः सादयेद् दैतान्यपि ।।३३।।
३८५. मार्दवं सर्वभूतानामनसूया क्षमा धृतिः ।
आयुष्याणि बुधाः प्राहुर्मित्राणां चाविमानना ।।३४।।
३८६. मंगलालम्भनं योगः श्रुतमुत्थानमार्जवम् ।
भूतिमेतानि कुर्वन्ति सतां चाभक्ष्णदर्शनम् ।।३५।।
३८७. अनिर्वेदः श्रियो मूलं लाभस्य च शुभस्य च।
महान् भवत्यनिर्विण्णः सुखं चात्यन्तमश्नुते ।।३६।।
३८८. नातः श्रीमत्तरं किंचिदन्यत् पुण्यतमं मतम् ।
प्रभविष्णोर्यथा तात क्षमा सर्वत्र सर्वदा ।।३७।।
३८९. क्षमेदशक्तः सर्वस्य शक्तिमान् धर्मकारणात् ।
अर्थानथौ समौ यस्य तस्य नित्यं क्षमा हिता ।।३८।।
३९०. यत् सुखं सेवमानोऽपि धर्मार्थाभ्यां न हीयते ।
कामं तदुपसेवेत न मूढव्रतमाचरेत् ।।३९।।
३९१. दुःखार्तेषु प्रमत्तेषु नास्तिकेष्वलसेषु च ।
न श्रीर्वसत्यदान्तेषु ये चोत्साहविवर्जिताः ।।४०।।
३९२. अत्यार्यमतिदातारमतिशूरमतिव्रतम् ।
प्रज्ञाभिमानिनं चैव श्रीर्भयान्नोपसर्पति ।।४१।।
३९३. अधर्मोपार्जितैरर्थैर्यः करोत्यौर्ध्वदेहिकम् ।

न स तस्य फलं प्रेत्य भुंक्तेऽर्थस्य दुरागमात् ।।४२।।

३९४. कान्तारे वनदुर्गेषु कृच्छ्रास्वापत्सु सम्भ्रमे ।
उद्यतेषु च शस्त्रेषु नास्ति सत्त्ववतां भयम् ।।४३।।

३९५. उत्थानं संयमो दाक्ष्यमप्रमादो धृतिः स्मृतिः ।
समीक्ष्य च समारम्भो विद्धि मूलं भवस्य तु ।।४४।।

३९६. तपो बलं तापसानां ब्रह्म ब्रह्मविदां बलम् ।
हिंसा बलमसाधूनां क्षमा गुणवतां बलम् ।।४५।।

३९७. न तत् परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः ।
संग्रहेणैष धर्मः स्यात् कामादन्यः प्रवर्तते ।।४६।।

३९८. अक्रोधेन जयेत् क्रोधमसाधु साधुना जयेत् ।
जयेत् कदर्यं दानेन जयेत् सत्येन चानृतम् ।।४७।।

३९९. स्त्रीधूर्तकेऽलसे भीरौ चण्डे पुरुषमानिनि ।
चौरे कृतघ्ने विश्वासो न कार्यो न च नास्तिके ।।४८।।

४००. अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः ।
चत्वारि सम्प्रवर्धन्ते ह्यायुर्विद्यायशोबलम् ।।४९।।

४०१. अविद्या पुरुषः शोच्यः शोच्यं मैथुनमप्रजम् ।
निराहाराः प्रजाः शोच्यं राष्ट्रमराजकम् ।।५०।।

४०२. न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन जयेत् स्त्रियः ।
नेन्धनेन जयेदाग्नि न पानेन सुरां जयेत् ।।५१।।

४०३. यस्य दानजितं मित्रं शत्रवो युधि निर्जिताः ।
अन्नपानजिता दाराः सफलं तस्य जीवितम् ।।५२।।

४०४. सहस्त्रिणोऽपि जीवन्ति जीवन्ति शतिनस्तथा ।
धृतराष्ट्र विमुञ्चेच्छां न कथञ्चिन्न जीव्यते ।।५३।।

४०५. यत् पृथिव्यां व्रीहियवं हिरण्यं पशवः स्त्रियः ।
नालमेकस्य तत् सर्वमिति पश्यन्न मुह्यति ।।५४।।

४०६. महान्तमप्यर्थमधर्मयुक्तं यः संत्यजत्यनपाकृष्ट एव ।
सुखं सुदुःखान्यवमुच्य शेते जीर्णा त्वचं सर्पं इवावमुच्य ।।५५।।

४०७. अनृते च समुत्कर्षो राजगामि च पैशुनम् ।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया ।।५६।।

४०८. असूयैकपदं मृत्युरतिवादः श्रियो वधः ।
अशुश्रूषा त्वरा श्लाधा विद्यायाः शत्रवस्त्रयः ।।५७।।

४०९. आलस्यं मदमोहौ च चापलं गोष्ठिरेव च ।
स्तब्धता चाभिमानित्वं तथात्यागित्वमेव च ।
एते वै सप्त दोषाः स्युः सदा विद्यार्थिनां मताः ।।५८।।

४१०. सुखार्थिनः कुतो विद्या नास्ति विद्यार्थिन सुखम् ।
सुखार्थी वा त्यजेद् विद्यां विद्यार्थी वा त्यजेत् सुखम् ।।५६।।

४११. न जातु कामान्न भयान्न लोभाद् धर्मं जह्याज्जीवितस्यापि हेतोः ।
नित्यो धर्मः सुखदुःखे त्वनित्ये जीवो नित्यो हेतुरस्य त्वनित्यः ।।६०।।

४१२. धृत्या शिश्नोदरं रक्षेत् पाणिपादं च चक्षुषा ।
चक्षुः श्रोत्रे च मनसा मनो वाचं च कर्मणा ।।६८।।

।। इति ।।

,,,

बाल्मीकिय रामायण

१. कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्च वीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्वाक्यो दृढव्रतः ।।

२. चारित्रेण च को युक्तः सर्वभूतेषु को हितः ।

विद्वान् कः समर्थश्च कश्चैक प्रियदर्शनः ।।
३. बहवो दुर्लभश्चैव ये त्वया कीर्तिता गुणाः ।
मुने वक्ष्याम्यहं बुद्ध्वा तैर्युक्तः श्रूयतां नरः ।।
४. श्रूयते मनुना गीतो श्लोकौ चारित्रवत्सलौ ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तत्तथा चरितं मया हरे ।। कि० का० १८/३०-३१
५. गुरुं वा बालवृद्धौ वा ब्राह्मणं वा बहुश्रुतम् ।
आततायिनामायान्तं हन्या देवाविचारयन् ।।
नाततायि वधे दोषो हन्तुर्भवति कश्चन् ।
प्रकाशं वाऽप्रकाशं वा मन्युस्तन्मन्युमृच्छति ।। मनु० ८/३५०-३५१

वाल्मीकि रामायण

६. प्राप्तराज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवानृषिः ।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत् ।। बाल० ४/१
७. तपः स्वाध्यायनिरतं तपस्वी वाग्विदां वरम् ।
नारदं परिपप्रच्छ बाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ।।
कोऽन्वस्मिन् साम्प्रतं लोके गुणवान् कश्चवीर्यवान् ।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च सत्यवाक्यो दृढ़व्रतः ।। बाल० १/१-२
८. चतुर्विंशतिसहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः ।
ततः सर्गशतान् पंच षट् काण्डानि तथोत्तरम् ।। बाल० ४/२
९. इक्ष्वाकुवंशप्रभवो रामो नाम जनैः श्रुतः ।
नियतात्मा महावीर्यो द्युतिमान् वशी ।। बाल० १/८
१०. नन्दिग्रामे जटां हित्वा भ्रातृभिः सहितोऽनघः ।
रामः सीतामनुप्राप्य राज्यं पुनराप्तवान् ।। बाल० १/८९
११. दशवर्षसहस्राणि दशवर्षशतानि च ।
भ्रातृभिः सहितः श्रीमान् रामो राज्यमकारयत् ।। युद्ध० १२८/१०६

उत्तर काण्ड

१२. धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदं चार्षं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।। १२८/१०७
१३. शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
श्रद्धानो जितक्रोधो दुर्गान्यतितरत्यसौ ।। १२८/११३
१४. शृणोति यं इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
ते प्रार्थितान् व रान् सर्वान् प्राप्नुवन्तीह राधवात् ।। १२८/११४
१५. रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ।

प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ।। १२८/११६

सीता वनवास

१६. एवमुक्त्वा तु काकुत्स्थो वाष्पेण पिहितेक्षणः ।
संविवेश स धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः ।।
शोकसंविग्नहृदयो निशश्वास यथाद्विपः । ४५/२५

१७. गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानतः ।
उत्पथं प्रतिपन्नस्य न्याय्यं भवति शासनम् ।। अयो० २१/१३

१८. समयत्यागिनेलुब्धान् गुरूनपि च केशव ।
निहन्ति समरे पापान् क्षत्रियः स हि धर्मवित् ।। शान्ति० ५५/१६

१६. मुनेरपि वनस्थस्य स्वानि कर्माणि कुर्वतः ।
उत्पद्यन्तेत्रयः पक्षाः मित्रोदासीन शत्रवः ।। महाभारत

२०. स्नेहं दयां च सौख्यं च यदि वा जानकीमपि ।
आराधनाय लोकस्य मुंचतो नास्ति मे व्यथा ।।

लव-कुश

२१. यदि पृच्छेत् स काकुत्स्थो युवां कस्येति दारकौ ।
वाल्मीकेरथ शिष्यौ द्वौ ब्रूतमेनं नराधिपम् ।। उत्तर० ६३/१३

२२. ऊचुः परस्परं चेदं सर्व एव समाहिताः ।
उभौ रामस्य सदृशौ बिम्बाद् बिम्बमिवोत्थितौ ।। ६४/१४

२३. जटिलौ यदि न स्यातां न वल्कलधरौ यदि ।
विशेषं नाभिगच्छामो गायतो राघवस्य च ।। ६४/१५

२४. तस्मिन् गीते तु विज्ञाय सीतापुत्रौ कुशीलवौ ।
तस्याः परिषदो मध्ये रामो वचनमब्रवीत् ।। ६५/२

२५. दूतान् शुद्ध समाचारानाहूयात्ममनीषया ।
मद् वचो ब्रूत गच्छध्वमितो भगवतोऽन्तिके ।। ६५/३

२६. यदि शुद्धसमाचारा यदि वा वीतकल्मषा ।
करोत्विहात्मनः शुद्धिमनुमान्य महामुनिम् ।। ६५/४

२७. अर्धरात्रे तु शत्रुघ्नः शुश्राव सुमहत् प्रियम् ।
पर्णशालां ततो गत्वा मातर्दिष्ट्येति चाब्रवीत् ।। ६६/१२

२८. तदा तस्य प्रहृष्टस्य शत्रुघ्नस्य महात्सनः ।
व्यतीता वार्षिकी रात्रिः श्रावणी लघु विक्रमा ।।

२६. प्रभाते तु महावीर्यः कृत्वा पौर्वान्हिकीं क्रियाम् ।
मुनि प्रांजलिरामन्त्र्य ययौ पश्चान्मुखः पुनः ।। ६६/१२-१४

३०. तस्य तद् वचनं श्रुत्वा तस्याक्लिष्ट कर्मणः ।
अवाक्शिरास्तथाभूतो वाक्यमेतदुवाच ह ।। ७६/१

३१. न मिथ्याहं वदे राम देवलोक जिगीषया ।
शूद्रं मां विद्धि काकुत्स्थ शम्बूकं नाम नामतः ।। ७६/१-३

३२. भाषतस्तस्य शूद्रस्य खड्गं सुरुचिरप्रभम् ।
निष्कृष्य कोषाद् विमलं शिरश्चिच्छेद राघवः ।।७६/४

३३. राजन् ! कुलेन वृत्तेन स्वाध्यायेन श्रुतेन वा ।
ब्राह्मण केन भवति एतद् ब्रूहि सुनिश्चितम् ।। महा० वन० ३१३/१०८

३४. शृणु यक्ष कुलं तात न स्वाध्याये न च श्रुतम् ।
कारणं हि द्विजत्वे च वृत्तमेव न संशयः ।। महा० वन० ३१३/१०८

३५. वृत्तं यत्नेन संरक्ष्य ब्रह्मणेन विशेषतः ।
अक्षणवृत्तो न क्षीणो वृत्ततस्तु हतोहतः ।। महा० वन० ३१३/१०६

३६. किं ब्राह्मणस्य पितरं किम् पृच्छामि मातरम् ।
श्रुतं चेदस्मिन् वेद्यं स पिता स पितामहः ।।

३७. धर्मचर्यया जघन्यो वर्णः पूर्वं पूर्वं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।१।
अधर्मचर्य्यया पूर्वो वर्णो जघन्यं जघन्यं वर्णमापद्यते जातिपरिवृत्तौ ।२।
आपस्तम्ब धर्मसूत्र २/५/११/१०-११

३८. शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम् ।। मनु० १०/६५

३६. चतुर्वेदोऽपि दुर्वृत्तः स शूद्रादतिरिच्यते ।
योऽग्निहोत्रपरोदान्तः स ब्राह्मणः इति स्मृतः ।।महा० वन० ३१३/१११

४०. ब्राह्मणाः क्षत्रिय वैश्याः शूद्रा ये चाश्रितास्तपः ।
दानधर्माग्निना शुद्धास्ते स्वर्गं यान्ति भारत ।। महा० अनुगीता पर्व ६१/३७

४१. सत्यं दानं क्षमा शीलमान्नृशस्यं तपो धृति ।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः ।। वन पर्व १८०/२१

४२. यत्रैल्लक्ष्यते सर्व वृत्तं स ब्राह्मणः स्मृतः ।
यत्रैतन भवेत् सर्प तं शूद्रमिति निर्दिशेत् ।। वन पर्व १८०/२६

४३. विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि ।
शुनि चैव श्वपाके च पण्डिता समदर्शिनः ।। गीता ५/१८

४४. मां हि पार्थ व्यपाश्रित्य येऽपि स्युः पापयोनयः ।
स्त्रियो वैश्यास्तथा शूद्रास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ।। गीता ६/१२

४५. तस्यान्तरं विदित्वा तु सहस्राक्षः शचीपतिः ।

मुनिवेषधरोऽहल्यांमिदं वचनमब्रवीत् ।।
४६. मुनिवेषं सहस्राक्षं विज्ञाय रघुनन्दन ।
मर्तिचकार दुर्मेधा देवराज कुतूहलात् ।।
४७. अथाब्रवीत् सुरश्रेष्ठं कृतार्थेनान्तरात्मना ।
कृतार्थास्मि सुरश्रेष्ठ गच्छ शीघ्रमितः प्रभो ।।
४८. सुश्रोणि परितुष्टोऽस्मि गमिष्यामि यथामतम् ।
एवं संगम्य तु तथा निश्चक्रामोटजात्ततः ।।
४९. वायुभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी ।
अहल्या सर्वभूतानामाश्रमेऽस्मिन्निवत्स्यसि ।। रामायण बाल० १७-२२,२६,३०
५०. पुरा विचार्य मोहेन मुनिपत्नीं शतक्रतु ।
घर्षयित्वा मुनेः शापत्तत्रैव विफलीकृतः ।।
इदानीं कुप्यते देवान् देवराजः पुरंदरः ।।४९/६-७
५१. ददर्श च महाभागां तपसा द्योतितप्रभाम्।
लोकैरपि समागम्य दुर्निरीक्ष्यां सुरासुरैः।। ४९/१३

शबरी

५२. मया तु संचितं वन्यं विविधं पुरुषर्षभ ।
तवार्थे पुरुषव्याघ्रपंपायास्तीर संभवम् ।। अरण्य० ७४/१७
५३. फलानि च सुपक्वानि मूलानि मधुराणि च ।
स्वयमासाद्य माधुर्यं परीक्ष्य परिभक्ष्य च ।।
५४. श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तचरितं मया ।। कि० १८/३०-३१

सीता की उत्पति

५५. ब्राह्मे मुहूर्त्ते किल तस्य देवी कुमारकल्पं सुषुवे कुमारम् ।
अतः पिता ब्रह्मण एव नाम्ना तमात्मजमन्नामजं चकार ।। रघुवंश सर्ग ५, श्लोक ३६
५६. पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वाग्निसन्निधौ ।
अनुशिष्टं जनन्या मे वाक्यं तदपि मे धृतम् ।। अयो० ११८/८-९

सीता स्वयंवर

५७. नृणां शतानिपंचाशद् व्यायतानां महात्मनाम् ।
मंजूषामष्टचक्रां तां समूहुस्ते कथंचन ।।
५८. वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुङ्गव ।
तेषा वरयातां कन्यां सर्वेषा पृथिवीक्षिताम् ।। ६६/१६

५६. मिथिलामप्यमुपागम्य वीर्यं जिज्ञासवस्तदा ।
तेषां जिज्ञासमानानां शैवं धनुरूपाहृतम् ।। ६६/१८

६०. तेषां वीर्यवतां वीर्यमल्पं ज्ञात्वा महामुने ।
प्रत्याख्याता नृपतयस्तन्निबोध तपोधन ।। ६६/१६

६१. यद्यस्य धनुषो राम, कुर्यादारोपणं मुने ।
सीतामयोनिजां सीतां दद्यां दाशरथेऽहम् ।। बाल० ६६/१६-१६,२६

६२. महर्षेर्वचनाद् यत्र तिष्ठति तद्धनुः ।
मंजूषा तामपावृत्य दृष्ट्वा धनुरथाब्रवीत् ।। ६७/१३

६३. बाढमित्यब्रवीद् राजा मुनिश्च समभाषत ।
लीलया स धनुर्मध्ये जग्राह वचनान्मुनेः ।। ३७/१५

६४. पश्यतां नृसहस्त्राणां बहूनां रघुनन्दनः ।
आरोपयत् स धर्मात्मा सलीलमिव तद्धनुः ।। ६७/१६

६५. मम सत्या प्रतिज्ञा सा वीर्यशुल्केति कौशिक ।
सीता प्राणैर्बहुमता देया रामाय मे सुता ।। बाल० ६७/२३

विवाह के समय सीता की अवस्था

६६. अनुशिष्टास्मि मात्रा च पित्रा च विविधाश्रयम् ।
नास्ति संप्रति वक्तव्यो वर्तितव्यं यथा मया ।। अयोध्या० २७/६

६७. पाणिप्रदानकाले च यत्पुरा त्वग्नि सन्निधौ ।
अनुशिष्टा जनन्यास्मि वाक्यं तदपि मे धृतम् ।। अयोध्या० ११८/८
न विस्मृतं तु मे सर्वं वाक्यैः स्वैर्धर्मचारिणि ।
पति शुश्रूषणान्नार्यास्तपो नान्यद् विधीयते ।। अयो० ११८/८-६

६८. पुनस्तं परिप्रच्छ प्रांजलिः प्रणतो नृपः ।
इमौ कुमारौ भद्रं ते देवतुल्यौ पराक्रमौ ।।

६६. गजतुल्यगती वीरौ शार्दूल वृषभोपमौ ।
पद्मपत्रविशालाक्षौ खंगतूणीरधनुर्धरौ ।।

७०. अश्विनाविव रूपेण समुपस्थितयौवनौ ।
यदृच्छेवगां प्राप्तौ देवलोकदिवामरौ ।। बाल० ५०/१७-१६

७१. भूतलादुत्थितां तां तु वर्द्धमानां ममात्मजाम् ।
वरयामासुरागत्य राजानो मुनिपुंगवाः ।। बाल० ६६/१५

७२. पतिसंयोगसुलभां वयोदृष्ट्वा तु पिता मम ।
चिन्तामभ्यगमद्दीनो वित्तनाशादिवाधनः ।। अयो० ११८/३४

७३. पंचविंषे ततो वर्ष पुमान् नारी तु षोडशे ।
समत्वागतवीर्यौ तौ जानीयात् कुशली भिषक ।। सुश्रुत संहिता

७४. अभिवाद्याभिवाद्यांश्च सर्वा राजसुतास्तदा ।
रेमिरे मुदिताः सर्वाः भ्रातृभिः सहितारहः ।। बाल० ७७/१३-१४

७५. रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरता देव समन्विताः ।
स्वां स्वां भार्यामुपादाय रेमिरे स्व-स्व मन्दिरे ।। अयो० ७/५२

७६. उषित्वा द्वादश समा इक्ष्वाकूणां निवेशने ।
भुंजाना मानुषान् भोगान् सर्वकामसमृद्धिनी ।। अरण्य काण्ड ४७/४

७७. मम भर्त्ता महातेजा वयसा पंचविंशकः ।
अष्टादश हि वर्षाणि मम जन्मनि गण्यते ।। अरण्य काण्ड ४७/१०

राम का वन से प्रत्यागमन

७८. चतुर्दशे हि सम्पूर्णे वर्षेऽहनिरघूत्तम ।
न द्रक्ष्यामि यदि त्वां तु प्रवेक्ष्यामि हुताशनम् ।। अयो० ११२/२५-२६

७९. चैत्रः श्रीमानयं मासः पुण्यः पुष्पितकाननः ।
यौवराज्याय रामस्य सर्वमेवोपकल्प्यताम् ।। अयो० ३/४

८०. पूर्णे चतुर्दशे वर्षे पंचम्यां लक्ष्मणाग्रजः ।
भरद्वाजाश्रमं प्राप्य ववन्दे नियतो मुनिम् ।। युद्ध० १२७/१

८१. पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।
प्रवृत्ता सौम्य चत्वारो मासा वार्षिक संज्ञकाः ।। कि० २६/१४

८२. नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् ।
अस्मिन् वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सह लक्ष्मणः ।।कि० २६/१५

८३. कार्त्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावणवधे यत ।
एष नः समयः सौम्य प्रविश तवं स्वमालयम् ।। कि० २६/१७

८४. अन्योन्यं बद्धवैराणां जिगीषूणां नृपात्मज ।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः ।। कि० ३०/६२

८५. इयं स प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज ।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं वा तथा विधम् ।। कि० ३०/६०

८६. स कालं परिसंख्याय सीतायाः परिमार्गणे ।
कृतार्थः समयं कृत्वा दुर्मतिर्नालवबुध्यते ।। कि० ३०/६६

८७. कृतार्था ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान् मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुंजते ।। कि० ३०/७३

८८. वर्षाः समयकालं तु प्रतिज्ञाय हरीश्वरः ।
व्यतीतांश्चतुरो मासान् विहरन्नावबुध्यते ।। कि० ३०/७८

८९. नसः संकुचितः पन्था येन बाली हतो गतः ।
समये तिष्ठ सुग्रीव मा बालिपयमन्वगाः ।। कि० ३०/८१

९०. ऊर्ध्वं मासान्न वस्तव्यं वसन् बध्यो भवेन्मम ।
सिद्धार्थाः संनिवर्तध्वमधिगम्य च मैथिलीम् ।। कि० ४०/७०

९१. यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति ।
मत्तुल्यो विभवो भोगैः सुखं च विहरिष्यति ।। कि० ४१/४७

९२. ते वसन्तमनुप्राप्तं प्रतिबुद्ध्वा परस्परम् ।
नष्टसन्देशकालार्था निपेतुर्धरणीतले ।। ५३/५

९३. अयं बसन्तः सौमित्रे नानाविहगनादितः ।
सीताया विप्रहीणस्य शोकसंदीपनो मम ।। कि० १/२२

९४. श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदु भाषा च मे प्रिया।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्यति जीवितम् । कि० १/५०

९५. प्रत्युवाच ततः सीतां भयसंदर्शनं वचः ।
शृणु मैथिलि मद्वाक्यं मासान् द्वादश भामिनि ।। अरण्य० ५६/२४

९६. कालेनानेन नाभ्येषि यदि मां चारुहासिनि ।
ततस्त्वां प्रातराशार्थं सूदाश्छेत्स्यन्ति लेशशः ।। अरण्य० ५६/२५

९७. द्वौ मासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः ।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ।। सुन्दर० २२/८

९८. द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्त्तारं मामनिच्छतीम् ।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ।। सुन्दर० २२/९

९९. द्वौ मासौ तेन मे कालो जीवितानुग्रहः कृतः ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां तु मासभ्यां ततस्त्यक्ष्यामि जीवितम् ।। सु० ३३/३१

१००. स वाच्यः संतरस्वेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ।। सु० ३७/७

१०१. वर्तते दशमो मासा द्वौ तु शेषौ प्लवङ्गम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ।। सु० ३७/८

१०२. उत्तराफाल्गुनी ह्यद्य श्वस्तु हस्तेन योक्ष्यते ।
अभिप्रयाम सुग्रीव सर्वानीकसमावृताः ।। युद्ध० ४/५

जटायु सम्पाति

१०३. जटायो पश्यमामार्य ह्रियमाणामनाथवत् ।
अनेन राक्षसेन्द्रेणकरुणं पापकर्मणा ।। अरण्य० ४९/३८

१०४. उत्पपाताथ वेगेन वेगवानविचारयन् ।
सुपर्णमिव चात्मानं मेने स कपिकुंजरः । । सुन्दर० १/४५

१०५. समुत्पतति तस्मिंस्तु वेगात्ते नगरोहिणः ।
संहृत्य विटपान् सर्वान् समुत्पेतुः समन्ततः ।। सुन्दर० १/४५

१०६. शक्त्युद्‌मो भूतवाहो धूमयानश्शिखोद्‌गमः ।
अंशुवाहस्तारामुखो मणिवाहो मरुत्सखः ।।
इत्यष्टकाधिकरणे वर्गाण्मुक्तानि शास्त्रतः ।।
१०७. यामोषधिमिव आयुष्मन्नन्वेषसि महावने ।
सा देवी मम च प्राणा रावणेनोभयं हृतम् ।।
त्वया विरहिता देवी लक्ष्मणेन च राधव।। ६७/१५
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन बलीयसा ।। ६७/१६
१०८. सीताहरणजं दुःखं न मे सौम्य तथागतम् ।
यथा विनाशे गृध्रस्य मत्कृते च परंतप ।। ६८/८५
१०६. राजा दशरथः श्रीमानु यथा मम महायशः ।
पूजनीयश्च मान्यश्च तथायं पतगेश्वरः ।। ६८/२६
११०. सौमित्रे हर काष्ठानि निर्मथिष्यामि पावकम् ।
गृध्रराजं दिधक्ष्याामि मत्कृते निघ्रनं गतम् ।। ६८/२७
१११. नामं पतगलोकस्य चितामारोपयाम्यहम् ।
इमं धक्ष्यामि सौमित्रे हतं रौद्रेण रक्षसा ।।
११२. या गतिर्यज्ञशीलानामाहिताग्नेश्च या गतिः ।
अपरावर्तिनां या च या च भूमिप्रदायिनाम् ।। ६८/२६
११३. मया त्वं समनुज्ञातो गच्छ लोकाननुत्तमान् ।
गृध्रराजृ महासत्त्व संस्कृतश्च मया व्रज ।। ६८/३०
११४. एवमुक्त्वा चितां दीप्तामारोप्य पतगेश्वरम् ।
ददाह रामो धर्मात्मा स्वबन्धुमिव दुःखितः ।। ६८/ ३१
११५. यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ।।
अनुमानात तु जानाभि मैथिली सा न संशयः।
११६. हिन्यमाणा मया दृष्टा रक्षसा क्रूर कर्मणा ।। कि० ६/६
क्रोशन्ती राम रामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् ।। कि० ६/१०
११७. स्फुरन्ती रावणस्यांके पन्नगेन्द्रर्वधूर्यथा ।
आत्मनापंचमं मां हि दृष्ट्वा शैलतटे स्थितम् ।
उतरीयं तथा त्यक्तं शुभान्याम रणानि च।। कि० ६/११

हनुमानादि बन्दर नहीं थे ?

११८. नानृग्वेदविनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः ।
नासामवेदविदुषः शक्यमेवं प्रभाषितुम् ।। कि० ३/२८
११६. नूनं व्याकरणं कृत्स्मनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहुव्याहरतानेन न किंचिदपशब्दितम् ।। कि० ३/२६

१२०. संस्कारक्रमसंपन्नामद्रमु तामविलम्बिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदयहारिणीम् ।। कि ३/३२
१२१. यदि वाचं प्रदास्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम् ।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति ।। सुन्दर० ३०/१८
१२२. सेयमालोक्य मे रूपं जानकी भाषितं तथा ।
रक्षोभिस्त्रासिता पूर्वं भूयस्त्रासं गमिष्यति ।। सुन्दर० ३०/२०
१२३. ततो जातपरित्रासा शब्दं कुर्यान्मनस्विनी ।
जानाना मां विशालाक्षी रावणं कामरूपिणम् ।। सुन्दर० ३०/२१
१२४. अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः ।
वाचं चोदहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम् ।। सुन्दर० ३०/१७
१२५. बुद्ध्या ह्यष्टाङ्गया युक्तं चतुर्बलसमन्वितम् ।
चतुर्दशगुणं मेने हनुमान् बालिनः सुतम् ।। कि० ५४/२
१२६. शुश्रूषा श्रवणं चैव ग्रहणं धारणं तथा ।
ऊपापोहार्थ विज्ञानं तत्त्वज्ञानं च धीगुणाः ।।
१२७. सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ।। कि० २३/१३
१२८. यदेषा साध्विति ब्रूयात् कार्यं तन्मुक्तसंशयम् ।
न हि तारामतं किंचिदन्यथा परिवर्तते ।। कि० २३/१४

दशरथ के शासन में कौशल्या की स्थिति

१२९. इयं धार्मिक कौसल्या मम माता यशस्विनी ।
वृद्ध चाक्षुद्रशीला च न च तवां देव गर्हते ।। अ०३८/१४
१३०. मया विहीनां वरद अपन्नां शोकसागरम् ।
अदृष्टपूर्वव्यसनां भूयः सम्मन्तुमर्हसि ।। अ० ३८/१५
१३१. पुत्रशोकं यथा नर्च्छेत् त्वया पूज्येन पूजिता ।
मां हि संचिन्तयन्ती सा त्वपि जीवेत् तपस्विनी ।। अ० ३८/१६
१३२. इमां महेन्द्रोपम जातगर्धिनीं, तथा विधातुं जननीं ममाहसि ।
यथा वनस्थे मयि शोककर्शिता, न जवितं न्यस्य यमक्षमं व्रजेत् ।।
३८/१७

राम पिता की आज्ञा से वन नहीं गए

१३३. धर्म बन्धेन बद्धोऽस्मि नष्टा च मम चेतना ।
ज्येष्ठं पुत्रं प्रियं राम द्रष्टुमिच्छामि धार्मिकम् ।। अयोध्या० १४/२४
१३४. अप्रसमनाः किं नु सदा मां प्रति वत्सलः ।
विवर्णवदनो दीनो न हि मामभिभाषते । अयोध्या० १८/१२

१३५. न राजा कुपितो राम व्यसनं नास्य किंचन ।
किंचिन्मनोगतं त्वस्य तद्भयान्नभषते।। अयोध्या० १८/२०
१३६. एष मह्यं वरं दत्वा पुरा मामभिपूज्य च ।
स पश्चात्तप्यते राजा यथान्यः प्राकृतस्तथा ।। अयोध्या० १८/२२
१३७. यदि तद्वक्ष्यते राजा शुभं वा यदि वा शुमभ् ।
करिष्यसि ततः सर्वमाख्यास्यामि पुनस्त्वहम् ।। अयोध्या० १८/२५
१३८. यदि त्वभिहितं राज्ञा त्वयि तन्न विपत्स्यते ।
ततोऽहमभिधास्यामि न ह्ययेष त्वयि वक्ष्यति ।। अयोध्या० १८/२६
१३६. रामस्य वचः श्रुत्वा भृशं दुःखगतः पिता ।
शोकादशक्नुवन् वक्तुं प्ररुरोद महास्वनम् ।। अयोध्या० १८/२७
१४०. सा क्षौमवसना हृष्टा नित्यं व्रतपरायणा ।
अग्नि जुहोतिस्म तदा मन्त्रवत्कृतमंगला ।। अयोध्या० २०/१५
१४१. सा चिरस्यात्मजं दृष्ट्वा मातृनन्दनमागतम् ।
अभिचक्राम संहृष्टा किशोरं वडवा यथा ।। अयोध्या० १६/२०
१४२. सा निकृत्तेव सालस्य यष्टिः परशुना वने ।
पपात सहसा देवी देवतेव दिवश्च्युता ।। अयोध्या० १६/३२
१४३. न रोचते ममाप्येतदार्ये यद् राधवो वनम् ।
त्यक्त्वा राज्यश्रियं गच्छेत् स्त्रिया वाक्यवशंगता ।। अयोध्या० २१/२
१४४. विपरीतश्च वृद्धश्च विषयैश्च प्रधर्षितः ।
नृपः किमिव न ब्रूयाच्चोद्यमानः समन्मथः ।। अयोध्या० २१/३
१४५. मया पार्श्वे सधनुषा तव गुप्तस्य राघव ।
कः समर्थोऽधिकं कर्तुं कृतान्तस्येव तिष्ठतः ।। अयोध्या० २१/६
१४६. धर्मज्ञ इति धर्मिष्ठ धर्मं चरितुमिच्छसि ।
शुश्रूष मामिहस्थस्त्वं चर धर्ममनुत्तमम् ।। अयोध्या० २१/२३
१४७. यथैव राजा पूज्यस्ते गौरवेण तथा ह्यहम् ।
त्वां साहं नानुजानामि न गन्तव्यमितो वनम् ।। अयोध्या० २१/२५
१४८. यथैव ते पुत्र पिता तथाहं, गुरुः स्वधर्मेण सुहृत्तया च ।
न त्वानुजानामि न मां विहाय, सुखदुःखितामर्हसि गन्तुमे ।।
अयोध्या० २१/५२
कौसल्या पुत्रशोकार्ता रामं वचनमब्रपुत्रकीत।
१४६. गमने सुकृतां बुद्धिं न ते शक्नोमि पुत्रक ।। अयोध्या २४/३३
विनिवर्तयितुं वीर नूनं कालो दुरत्ययः ।
गच्छ पुत्र त्वमेकाग्रो भद्रं तेऽस्तुसदा विभो ।।
१५०. कृतान्तस्य गतिः पुत्र दुर्विभाव्या सदा भुवि ।

यस्त्वां संचोदयति मे वच आविध्यराघव ।। अयोध्या० २४/ ३५, ३३, ३५, ३६

१५१. न शक्यसे वारयितुं गच्छेदानीं रघूत्तम ।
शीघ्रं च विनिवर्तस्व वर्तस्व च सतां क्रमे ।। अयोध्या० २५/२

१५२. प्रतीक्षमाणमव्यग्रमनुज्ञां जगतीपतेः ।
उवाच राजा संप्रेक्ष्य वनवासाय राघवम् ।। अयोध्या० ३४/२५

१५३. अहं राघव कैकेय्या वरदानेन मोहितः ।
अयोध्यायां त्वमेवाद्य भव राजा निगृह्य माम् ।। अयोध्या० ३४/२६

१५४. न चैतन्मे प्रियं पुत्र शपे सत्येन राघव ।
छन्नया चलितस्त्वमस्मि स्त्रिया छन्नाग्निकल्पया ।। अयोध्या० ३४/३६

१५५. अर्थितो ह्यस्मि कैकेय्या वनं गच्छेति राघव ।
मया चोक्तं व्रजामीति तत्सत्यमनुपालये ।। अयोध्या० ३४/५०

हनुमान का पहाड़ उठा लाना

१५६. स तं समीक्ष्यानलराशिमदीप्तं विसिस्मिये वासवदूतसूनुः ।
आप्लुत्य तं चौषधिपर्वतेन्द्रं तत्रौषधीनां विचयं चकार ।। युद्ध ७४/६८

१५७. न मृतोऽयं महाबाहो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ।
न चास्य विकृतं वक्त्रं नापि श्यामं न निष्प्रभम् ।। सर्ग १०२, १५

१५८. एवं न विद्यते रूपं गतासूनां विशांपते ।
दीर्घायुषस्तु ये मर्त्यास्तेषां तु मुखमीदृशम् ।। १७

१५९. तस्य बुद्धिः समुत्पन्ना मरुतेरमितौजसः ।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखरं गिरे : ।। युद्ट १०१/ ३४

।। इति ।।

‚‚‚

हितोपदेशस्य श्लोकानि

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थे च चिन्तयेत्।
गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्मम् आचरेत्।।Ÿ
विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।

पात्रत्वाद् धनम् आप्नोति धनाद् धर्मे ततः सुखम्।।१।।

यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता।

एकैकमप्य नर्थाय, किमु यत्र चतुष्टयम्।।३।।

स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम्।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते।।४।।

वरमेको गुणी पुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।

एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणा अपि।।५।।

अर्थागमो नित्यमरोगिता च, प्रिया च भार्या प्रियवादिनी च।
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या, षड् जीवलोकस्य सुखानि राजन्।।६।।
अनभ्यासे विषं विद्या अजीर्णे भोजनं विषम्।
विषं सभा दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम्।।७।।
यस्य कस्य प्रसूतोऽपि गुणवान् पूज्यते नरः।
धनुर्वेशविशुद्धोऽपि निर्गुणः किं करिष्यति।।८।।
आहार निद्रा भय मैथुनं च सामान्यमेतत्पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो, धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः।।९।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां यस्यैकोऽपि न विद्यते।
अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम्।।ॉ९
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पंचैतान्यपि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।।११।।
अवश्यभाविनो भावा भवन्ति महतामपि।
नन्नत्वं नीलकण्ठस्य महाहिशयनं हरेः।।१२।।
यदभावि न तद्भावि, भावी चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते।।१३।।
उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः, ‘दैवेनदेयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या, यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः?।।१४
उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।

न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः।।१५
रूपयौवनसंपन्ना विशालकुलसंभवा।
विद्याहीना न शोभन्ते निर्गन्धा इव किंशुकाः।।१६।।
कांचः काञ्चनसंसर्गाद्धत्ते मारकतीं द्युतिम्।
तथा सत्संनिधानेन मूर्खो याति प्रवीणताम्।।१७।।
गुणा गुणज्ञेषु गुणा भवन्ति, ते निर्गुणं प्राप्य भवन्ति दोषाः।
आास्वाद्यतोयाः प्रभवन्ति नद्यः, समुद्रमासाद्य भवन्तयपेयाः।।१८।।
काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्।
व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा।।१९।।
न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।
संशयं पुनरारुह्य यदि जीवति पश्यति।।२०।।
मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पण्डितः।।२१।।
न धर्मशास्त्रं पठतीति कारणं, न चापि वेदाध्ययनं दुरात्मनं।
स्वभाव एवात्र तथातिरिच्यते, यथा प्रकृत्या मधुरं गवां पयः।।२२।।
नदीनां शस्त्रपाणीनां नखिनां श्रृङ्गिणां तथा।
विश्वासो नैव कर्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च।।२३।।
स हि गगनविहारी कल्मषध्वंसकारी दशशत करधारी ज्योतिषां मध्यचारी
विधुरपि विधियोगाद्ग्रस्यते राहुणासौ, लिखितमपि ललाटे प्रोज्झितुं कः समर्थः।।२४
सुजीर्णमन्नं सुविचक्षणः सुतः, सुशासिता स्त्री नृपतिः सुसेवितः।
सुचिन्त्य चोक्तं सुविचार्य यत्कृतं, सुदीर्घकालेऽपि न याति विक्रियाम्।।२५।।
ईर्ष्यी घृणी त्वसंतुष्टः क्रोधनो नित्यशङ्कितः।
परभाग्योपजीवी च षडेते दुःखभागिनः।।२६।।
असंभवं हेममृगस्य, जन्म, तथापि रामो लुलुभे मृगाय।
प्रायः समापन्नविपत्तिकाले धियोऽपि पुंसां मलिना भवन्ति।।२७।।
न गणस्याग्रतो गच्छेत्सिद्धे कार्ये समं फलम्।
यदि वा कार्यविपत्तिः स्यान्मुखरस्तत्र हन्यते।।२८।।
विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्।।२९।।
संपदि यस्य न हर्षो विपदि विषादो रणे च धीरत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।३०।।
षड् दोषाः पुरुषेणेह हातव्या भूतिमिच्छता।
निद्रा तन्द्रा भयं क्रोध आलस्यं दीर्घसूत्रता।।३१।।
संहतिः श्रेयसी पुंसां स्वकुलैरल्पकैरपि।

तुषेणापि परित्यक्ता न प्ररोहन्ति तण्डुला।।३२।।
माता मित्रं पिता चेति स्वभावात्रितयं हितम्।
कार्यकारणतश्चान्ये भवन्ति हितबुद्धयः।।३३।।
यस्माच्च येन च यथा च यदा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तथा च तदा च तच्च, तावच्च तत्र च विधातृवशादुपैति।।३४।।
रोगशोकपरीताप बन्धनव्यसनानि च।
आत्मापराधवृक्षाणां फलान्येतानि देहिनाम्।।३५।।
मांसमूत्रपुरीषास्थिनिर्मिते ऽस्मिन्कलेवरे।
विनश्वरे विहायास्थां यशः पालय मित्र ! मे।।३६।।
शशिदिवाकरयोर्ग्रहपीडनं, गजभुजंगमयोरपि बन्धनम्।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रतां, विधिरहो बलवानिति मे मतिः।।३७।।
व्योमैकान्त विहारिणोऽपि विहगाः संप्राप्नुवन्त्यापदं,
बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मत्स्याः समुद्रादपि।
दुर्नीतं किमिहास्ति, किं सुचरितं, कः स्थानलाभे गुणः,
कालो हि व्यसनप्रसारितकरो गृह्णाति दूरादपि।।३८।।
अज्ञातकुलशीलस्य वासो देयो न कस्यचित्।
मार्जारस्य हि दोषेण, हतो गृध्रो जरद्गवः।।३९।।
तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम्।
आगतं तु भयं वीक्ष्य नरः कुर्याद्यथोचितम्।।४०।।
जातिमात्रेण किं कश्चिद्धन्यते पूज्यते कचित्।
व्यवहारं परिज्ञाय वध्यः पूज्योऽथवा भवेत्।।४१।।
अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते।
छेत्तुः पार्श्वगतां छायां नोपसंहरते द्रुमः।।४२।।
तष्णानि भूमिरुदकं वाक् चतुर्थी च सूनृता।
एतान्यपि सतां गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन।।४३।।
एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यत्तु गच्छति।।४४।।
यत्र विद्वज्जनो नास्ति श्लाघ्यस्तत्राल्पधीरपि।
निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।।४५।।
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।४६।।
उत्सवे व्यसने चैव दुर्भिक्षे राष्ट्रविप्लवे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति स बान्धवः।।४७।।
दीपनिर्वाणगन्धं च सुहृद्वाक्यमरुन्धतीम्।

न जिघ्रन्ति न शृण्वन्ति न पश्यन्ति गतायुषः।।४८।।
परोक्षे कार्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम्।
वर्जयेत्तादृशं मित्रं विषकुम्भं पयोमुखम्।।४९।।
संलापितानां मधुरैर्वचोभि मिथ्योपचारैश्च वशीकृतानाम्।
आशावतां श्रद्दधतां च लोके किमर्थिनां वञ्चयितव्यमस्ति ।।५०।।
दुर्जनेन समं सख्यं, प्रीति चापि न कारयेत्।
उष्णो दहति चाङ्गारः शीतः कृष्णायते करम्।।५१।।
प्राक् पादयोः पतति खादति पृष्ठमांसं, कर्णे कलं किमपि रौति शनैर्विचित्रम्।
छिद्रं निरूप्य सहसा प्रविशत्यशङ्कः, सर्वे खलस्य चरितं मशकः करोति।।५२।।
दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययालंकृतोऽपि सन्।
मणिना भूषितां सर्पः किमसौ न भयंकरः।।५३।।
यदशक्यं न तच्छक्यं यच्छक्यं शक्यमेव तत्।
नोदके शकटं याति न च नौर्गच्छति स्थले।।५४।।
नरिकेलसमाकारा दृश्यन्ते हि सुहृज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः।।५५।।
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान्
नाऽसमीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत्।।५६।।
परोपदेशे पाण्डित्यं सर्वेषां सुकरं नृणाम्।
धर्मे स्वीयमनुष्ठानं कस्यचित्तु महात्मनः।।५७।।
गुरुरग्निर्द्विजातीनां वर्णानां ब्राह्मणो गुरुः।
पतिरेको गुरुः स्त्रीणां सर्वस्याभ्यागतो गुरुः।।५८।।
नोपभोक्तुं न च त्यक्तुं शक्नोति विषयाञ्जरी।
अस्थि निर्दशनः श्वेव जिह्वया लेढि केवलम्।।५९।।
माता स्वस्रा दुहित्रा वा नो विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति।।६०।।
अर्थेन तु विहीनस्य पुरुषस्याल्पमेधसः।
क्रियाः सर्वा विनश्यन्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा।।६१।।
यस्यार्थास्तस्य मित्राणि, यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः।
यस्यार्थाः स पुमाँल्लोके, यस्यार्थाः स हि पण्डितः।।६२।।
तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव, अन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।६३।।
अर्थनाशं मनस्तापं, गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चापमानं च, मतिमान्न प्रकाशयेत्।।६४।।
आयुर्वित्तं गृहच्छिद्रं मन्त्रमैथुनभेषजम्।

तपो दानापमानं च नव गोप्यानि यत्नतः।।६५।।
वरं मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनृतं, वरं क्लैव्यं पुसां न च परकलत्राभिगमनम्।
वरं प्राणत्यागो न च पिशुनवाक्येप्वभिरुचिः, वरं भिक्षाशित्वं न च परध
ानास्वादनसुखम्।।६६।।
वरं वनं व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं, द्रुमालयं पक्वफलाम्बुभोजनम्।
तृणानि शय्या परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवनम्।।६७।।
अर्थाः पादरजोपमा गिरिनदीवेगोपमं यौवनम्, आयुष्यं जललोलबिन्दुचपलं फेनोपमं जीवितम्।
धर्म यो न करोति निन्दितमतिः स्वर्गार्गलोद्धाटनं, पश्चात्तापयुतो जरापरिगतः शोकाग्निना दह्यते।।६८।।
शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खा, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्।
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां, न नाममात्रेण करोत्यरोगम्।।६९।।
को वीरस्य मनस्विनः स्वविपयः, को वा विदेशस्तथा।
यं देशं श्रयते तमेव कुरुते वाहुप्रतापार्जितम्।
यद्दंष्ट्रानखलाङ्गलप्रहरणः सिंहो वनं गाहते।
तस्मिन्नेव हतद्विपेन्द्ररुधिरैस्तृष्णां छिनत्त्यात्मनः।।७०।।
उत्साहसंपन्नमदीर्घसूत्रं, क्रियाविधिज्ञं व्यसनेष्वसक्तम्।
शूरं कृतज्ञं दृढसौहृदं च, लक्ष्मीः स्वयं याति निवासहेतोः।।७१।।
उपायेन हि यच्छक्यं न तच्छक्यं पराक्रमैः।
श्रृगालेन हतो हस्ती, गच्छता पंकवर्त्मना।।७२।।
एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं, गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेप्वनर्था बहुलीभवन्ति।।७३।।
यो ध्रुवाणि परित्यज्य, अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति, अध्रुवं नष्टमेव हि।।७४।।
अधोऽधः पश्यतः कस्य, महिमा नोपचीयते।
उपर्युपरिपश्यन्तः, सर्व एव दरिद्रति।।७५।।
अरक्षितं तिष्ठति दैवरक्षितं, सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः, कृत प्रयत्नोऽपि गृहे न जीवति।।७६।।
एहि गच्छ पतोत्तिष्ठ वद मौनं समाचर।
एवमाशग्रहग्रस्तैः, क्रीडन्ति धनिनोऽर्थिभिः।।७७।।
मौनान्मूर्खः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा,
क्षान्त्या भीरुर्यदि न सहते, प्रायशो नाभिजातः।
धृष्टः पार्श्वे वसति नियतं दूरतश्चाप्रगल्भः,
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः।।७८।।

लाङ्गूलचालनमधश्चरणावपातं, भूमौ निपत्य वदनोदूरदर्शनं च।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु, धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते।।७६।।
उदीरितोऽर्थः पशुनापि गृह्यते, हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशिताः।
अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः, परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः।।८०।।
आसन्नमेव नृपतिर्भजते मनुष्यं, विद्याविहीनमकुलीनमसंगतं वा।
प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च, यः पार्श्वतो वसति तं परिवेष्टयन्ति।।८१।।
आहारो द्विगुणः स्त्रीणां, बुद्धिस्तासां चतुर्गुणा।
षड्गुणो व्यवसायश्च, कामश्चाष्टगुणः स्मृतः।।८२।।
दुष्टा भार्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः।
ससर्पे च गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः।।८३।।
बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्।
पश्य सिंहो मदोन्मत्तः, शशकेन निपातितः।।८४।।
न सोऽस्ति पुरुषो लोके, यो न कामयते श्रियम्।
परस्य युवतीं रम्यां, सादरं नेक्षतेऽत्र कः।।८५।।
अप्रियस्यापि पथ्यस्य, परिणामः सुखावहः।
वक्ता श्रोता च यत्रास्ति, रमन्ते तत्र संपदः।।८६।।
दुर्जनो नार्जवं याति, सेव्यमानोऽपि नित्यशः।
स्वेदनाभ्यञ्जनोपायैः स्वपुच्छमिव नामितम्।।८७।।
न परस्यापराधेन परेषां दण्डमाचरेत्।
आत्मनावगतं कृत्वा बध्नीयात्पूजयेच्च वा।।८८।।
अनुचितकार्यारम्भः स्वजनविरोधो बलीयसि स्पर्धा।
प्रमदाजनविश्वासो मृत्योर्द्वाराणि चत्वारि।।८९।।
मूलं भुजंगैः कुसुमानि भृङ्गैः, शाखाः प्लवङ्गै शिखराणि भल्लैः।
नास्त्येव तच्चन्दनपादपस्य, यन्नाश्रितं दुष्टतरैश्च हिंस्त्रैः।।९०।।
पयः पानं भुजंगानां, केवलं विषवर्धनम्।
उपदेशो हि मूर्खाणां, प्रकोपाय न शान्तये।।९१।।
स्पृशन्नपि गजो हन्ति, जिघ्रन्नपि भुजंगमः।
पालयन्नपि भूपालः, प्रहसन्नपि दुर्जनः।।९२।।
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा, वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम्।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति, सत्यं न तद्यच्छलमभ्युपैति।।९३।।
असंतुष्टा द्विजा नष्टाः संतुष्टाश्च महीभुजः।
सलज्जा गणिका नष्टा, निर्लज्जलाश्च कुलस्त्रियः।।९४।।
यस्य नास्ति स्वयंप्रज्ञा, शास्त्रं तस्य करोति किम्।
लोचनाभ्यां विहीनस्य, दर्पणः किं करिष्यति?।।९५।।

अनागतविधाता च प्रत्युत्पन्नमतिस्तथा।
द्वावेतौ सुखमेधेते यद्भविष्यो विनश्यति।।६६।।
यदभावि न तद्भावि भावि चेन्न तदन्यथा।
इति चिन्ताविषघ्नोऽयमगदः किं न पीयते।।६७।।
न भूप्रदानं न सुवर्णदानं, न गोप्रदानं न तथाऽन्नदानम्।
यथा वदन्तीह महाप्रदानं, सर्वेषु दानेष्वभयप्रदानम्।।६८।।
वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां, गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्तते, निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम्।।६६।।
आदानस्य प्रदानस्य, कर्तव्यस्य च कर्मणः।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति तद्रसम्।।१००।।
सहसा विद्धीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणुते हि विमृश्यकारिणं, गुणलुब्धाः स्वयमेव संपद।।१०१

इति पूर्णम्

प्रथम तन्त्रम्

गुणिगणगणनारम्भे न पतति कटिनी ससंभ्रमा यस्य।
तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी भवति।।१।।
न सा विद्या न तद्दानं न तच्छिल्पं न सा कला।
न तत्स्थैर्य हि धनिनां याचकैर्यन्न गीयतते।।२।।
न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः।
एतदेवात्र पाण्डित्यं यत्स्वल्पाद्भूरिरक्षणम्।।३।।
अरक्षितं तिष्ठति देवर क्षितं सुरक्षितं दैवहतं विनश्यति।
जीवत्यनाथोऽपि वने विसर्जितः कृतप्रयत्नयोऽपि गृहे विनश्यति।।४।।
सुहृदामुपकारणाद् द्विषतामप्ययपकारणात्।
नृपसंश्रय दृयते बुधैर्जठरं को न बिभर्ति केवलम्।।५।।
अप्राप्तकालं वचनं बृहस्पतिरति ब्रुवन्।
लभते बह्ववज्ञानममानं च पुष्कलम्।।६।।
यस्य न विपदि विषदः संपदि हर्षे रणे न भीरुत्वम्।
तं भुवनत्रयतिलकं जनयति जननी सुतं विरलम्।।७।।
अश्वः शस्त्रं शास्त्रं वीणा वाणी नरश्च नारी च।
पुरुषविशेषं प्राप्ता भवन्त्ययोग्याश्च योग्याश्च।।८।।
सर्पाणं च खलानां च परद्रव्यापहारिणाम्।
अभिप्राया न सिद्ध्यन्ति तनेनेदं वर्तते जगत्।।६।।
अत्तुं वांछति शाम्भवो गणपतेराखुं क्षुधार्तः फणी।
तं च क्रौंचरिपोः शिखी गिरिसुतासिंहोऽपि नागाशनम्।।।१०।।

इत्थं यत्र परिग्रहस्य घटना शम्भोरति स्यात् गृहे।
तत्राप्यस्य कथं न भावि जगतो यस्मात्स्वरूपं हि तत्।।११।।
शम्बरस्य च या माया या माया नमुचेरपि।
बलेः कुम्भीनसैश्चैव सर्वास्ता योषितो बिदुः।।१२।।
अनृतं साहसं माया मूर्खत्वमतिलोभता।
अशौचं निर्दयत्वं च स्त्रीणां दोषाः स्वभावजाः।।१३।।
उद्योगिनं सततमत्र समेति लक्ष्मी दैवं हि दैवमिति कापुरूषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या, यत्ने कष्ते यदि न सिद्धयति कोऽत्र दोषः।।१४।।
निर्विषेणापि सर्पेण कर्तव्या महती फणा।
विषं भवतु वा माभूत्फणाटोपो भयंकरः।।१५।।
जातामात्रं न यः शत्रुं रोगं च प्रशमं नयेत्।
महाबलोऽपि तेनैव वर्षद्धि प्राप्य स हन्यते।।१६।।
हस्ती स्थूलतरः स चाङ्कुशवशः कि हस्तिमात्रोऽङ्कुशो।
दीपे प्रज्वलिते प्राणश्यति तमः किं दोपमात्रं तमः।।१७।।
वज्रेणापि हताः पतन्ति गिरयः किं वज्रमात्रो गिरि।
स्तेजो यस्य विराजते स बलावान्स्थूलेषु कः प्रत्ययः।।१८।।
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत्।
ग्रामं जनपदस्यार्थे स्वात्मर्थे पृथिवीं त्यजेत्।।१६।।
उद्योगिनं पुरूषसिंहमुपैति लक्ष्मी, दैवं हि देवमिति कापुरूषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरू पौरूषमात्मशक्त्या, यत्ने कष्ते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः।।२०
उपदेशो हि मूर्खाणां प्रकोपाय न शान्तये।
पयः पानं भुजङ्गानां केवलं विपवधनम्।।२१।।
मातृवत्परदाराणि परद्रव्याणि लोष्टवत्।
आत्मसवस्वर्वभूतानि वीक्षन्ते धर्मबुद्धयः।।२२

द्वितीय तन्त्रम्

सम्पतै च विपतौ च महतामेकरूपता।
उदये सविता रक्तो रक्तश्चास्तमये तथा।।२३।।
यस्माच्च येन च यदा च यथा च यच्च, यावच्च यत्र च शुभाशुभमात्मकर्म।
तस्माच्च तेन च तदा च तथा च, तावच्च तत्र च कृतान्तवशादुपैति।।२४।।
व्योमैकान्तविचारिणोऽपि विहगाः संप्राप्नुवन्त्यापदं, बध्यन्ते निपुणैरगाधसलिलान्मीनाः समुद्रादपि।
दुर्नीतं किमिहास्ति किं च सुकृत कः स्थानलाभे गुणः, कालः सर्वजानान्प्रसारितकरो गष्ह्राति दूरादपि।।२४।।
सिंहो व्याकरणस्य कर्तुरहरत्प्राणान्प्रियान्पाणिने, मींमांसाकृतमुन्ममाथ सहसा हस्ती

मुनि जैमिनिम्।
छन्दोज्ञाननिधि जघान मकरो वेलातटे पिङ्गल, मज्ञानावृतचेतसामतिरूषा कोऽर्थस्तिरश्चां गुणैः।।२६।।
ददाति प्रतिगष्ह्याति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुङ्क्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम्।।२७।।
तावत्प्रीतिर्भवेल्लोके यावद्दानं प्रदीयते।
वत्सः क्षीरक्षयं दष्ष्ट्वा परित्यजति मातरम्।।२८।।
विद्वत्त्वं च नृपपत्वं च नैव तुल्य कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान्सर्वत्र पूज्यते।।२६।।
एह्यागच्छ समाश्रयासनमिदं कस्माच्चिराद् दृश्यसे,
का वार्ता ह्यातिदुर्बलोऽसि कुशलं प्रोतोऽस्मि ते दर्शनात्।
एवं ये समुपागतान्प्रणयिनः कुशलं प्रोतोऽस्ते दर्शनात्,
तेषां युक्तसशङ्कितेन मनसा हर्म्याणि गन्तु सदा।३०।।
आयुः कर्म च वित्तं च विद्या निधनमेव च।
पंचैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः।।३१।।
उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि हिंहस्य सुप्तस्य प्रविशन्ति मुखे मष्गाः।।३२।।
कि तया क्रियते लक्ष्म्या या वधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरुपभुज्यते।।३३।।
यो ध्रुव्राणि परित्यज्य अध्रुवाणि निषेवते।
ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च।।३४।।
दानेन तुल्यो निधिरस्ति नान्यो, लोभच्च नान्योऽस्ति रिपुः पृथिव्याम्।
विभूषणं शीलसमं न चान्यत्, सन्तोषतुल्यं धनमस्ति नान्यत्।।३५।।
सुलभाः पुरूषा राजन् सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।३६।।
एकस्य दुःखस्य न यावदन्तं गच्छाम्यहं पारमिवार्णवस्य।
तावद्द्वितीयं समुपस्थितं मे छिद्रेष्वनर्था बहुलीभवन्ति।।३७।।

तृतीय तन्त्रम्

जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिंच प्रशञ्च प्रशमं नयेत्।
महाबलोऽपि तेनैव वष्द्धि प्राप्य स हन्यते।।३८।।
नत्र्कः स्वस्थानमासाद्य गजेन्द्रमपि कर्षति।
स एव प्रच्युतः स्थानाच्छुनापि परिभूयते।।३६।।
दंष्ट्राविरहितः सर्पो मदहीनो यथा गजः।
स्थानहीनस्तथा राजा गम्यः स्यात्सर्वजन्तुषु।।४०।।

स्त्रीणां शत्रोः कुमित्रस्य पण्यस्त्रीणां विशेषतः।
यो भवेदेकभावोऽत्र न स जीवति मानवः।।४१।।
स्पृशन्नपि गजो हन्ति जिघ्रन्नपि भुजङ्गभः।
हसन्नपि नृपो हन्ति मानयन्नपि दुर्जनः।।४२।।
पुलाका इव धान्येषु पूतिका इव पक्षिषु।
मशका इव मर्त्येषु येषां धर्मो न कारणम्।।४३।।
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते।
धिक्कष्टं जरयाभिभूतपूरूषं पुत्रोऽप्यवज्ञायते।।४४।।
अपूज्या यत्र पूज्यन्ते पूज्यानां तु विमानना।
त्रीणि तत्र प्रवर्तन्ते दुर्भिक्षं मरणं भयम्।।४५।।
वरं वरयते कन्या माता वित्तं पिता रुतम्।
बान्धवाः कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जनाः।।४६।।
अनागतं यः कुरुते स शोभते, स शोच्यते यो न करोत्यनागतम्।
वनेऽत्रसंस्थस्य समागता जरा, विलस्य वाणी न कदापि मे श्रुता।।४७।।

चतुर्थ तन्त्रम्

बुभुक्षितः किं न करोति पापं क्षीणा जना निष्करूणा भवन्ति।
आख्याहि भद्रे ! प्रियदर्शनस्य न गङ्गदत्त पुनरेति कूपम्।।४८।।
यस्य न ज्ञायते शीलं न कुलं न च संश्रयः।
न तेन सङ्गति कुर्यादित्युवच बृहस्पतिः।।४९।।
सर्वनाश समुत्पन्ने अर्ध त्यजति पण्डितः।
अर्धेन कुरुते कार्यं सर्वनाशो हि दुसतरः।।५०।।
गात्रं सङ्कुचितं गतिविगलिता दन्ताश्च नाशङ्गताः, दृष्टिर्भ्राम्यति रूपमेव ह्रसते वक्त्रं च लालायते।
वाक्यं नैव करोति बान्धवजनः पत्नी न शुश्रूषते, हा कष्टं जरयाभिभूतपुरूषः पुत्रैरवज्ञायते।।५१।।

पंच तन्त्रम्

जीर्यन्ते जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
चक्षुः श्रोत्रे च जीर्येते तृष्णैका तरुणायते।।५२।।
वरं वनं व्याघ्रगजादिसेवितं, जनेन हीनं बहुकण्टकावष्तम्।
तुणानिश्रूया परिधानवल्कलं, न बन्धुमध्ये धनहीनजीवितम्।।५३।।
तानीन्द्रियाण्यविकलानि, तदेव नाम, सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।

अर्थोष्मणा विरहितः पुरूषः स एव, बाह्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत्।।५४।।
किं तया क्रियते लक्ष्म्या, या बधूरिव केवला।
या न वेश्येव सामान्या पथिकैरूपभुज्यते।।५५।।
अयं निजः परोवेति गुणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।५६।।
उत्सवे व्यसने प्राप्ते दुर्भिक्षे शत्रुसङ्कटे।
राजद्वारे श्मशाने च यस्तिष्ठति त बान्धवः।।५७।।
रामस्य व्रजनं वने निसवसंन पाण्डोः सुतानां वने, वृष्णीनां निधन नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम्।
सौदासं तदवस्थमर्जुवधं संचिन्त्य लङ्केश्वरं, दृष्ट्वा राज्यकृते विडम्बनगतं तस्मान्न तद्वांछयेत्।।५८।।
तृष्णे ! देवि ! नमस्तुभ्यं, याया वित्ताऽन्विता अपि।
अकृत्येषु नियोज्यन्ते भ्रामन्ते दुर्गमेष्वपि।।५६।।
लज्जा स्नेहः स्वरमधुरता बुद्धयो यौवनश्रीः, कान्तासङ्ग स्वजनममता दुःखहानिर्विलासः।
धर्मः शास्त्रं सुरगुरुमतिः शौचमाचार चिन्ता, पूर्णे सर्वे जठरपिठरे प्राणिनां सम्भवन्ति।।६०।।
एकः स्वादु न भुंजीत नैकः सुप्तेषु जागृयात्।
एको न गच्छेदध्वान, नैकश्चार्थान्प्रचिन्तयेत्।।६१।।

इति पूर्णम्